पीएच. डी. प्रबंध

❁

विषय

संस्कृत / प्राकृत

❁

शीर्षक

जैन धर्म के नवकार मंत्र में णमो लोए सव्व साहूणं इस पद का समीक्षात्मक समालोचन

प्रथम खण्ड

❁

संशोधक विद्यार्थिनी

जै. साध्वी चारित्रशीलाजी म.

❁

मार्गदर्शक

ज. र. जोशी

❁

संशोधन स्थल

संस्कृत भाषा विभाग

पुणे विद्यापीठ, पुणे

❁

वर्ष

२००६

Date :

CERTIFICATE

Certified that the work incorporated in the thesis **"Jain Dharmake Navakar Mantra me namo loe savva sahoonam is pad ka sameekshatmak samlochan"** was carried out by the candidate **Sadhvi Charitrasheelaji** under my supervision. Such material obtained from other sources, has been duly aknowledged in the thesis.

Ex Dr. J. R. JOSHI

(DR. J. R. JOSHI)

GUIDE

DECLARATION

I do declare that this thesis entitled **"Jain Dharmake Navakar Mantra me namo loe savva sahoonam is pad ka sameekshatmak samlochan"** is an original work prepared by me under the supervision of **Dr. J. R. Joshi**. I also declare that this was not submitted for the degree of Ph.D. or any other degree in this or any other form .

जैन साध्वी-चारित्रशीलाजी म.

SADHVI CHARITRASHEELAJI

Place : Pune

Date : 2006

प्रथम खण्ड

ऋणनिर्देश

आज मेरा Ph.D. का प्रबंध पूर्णता की ओर पहुंचा है। ऋणनिर्देश करने में औपचारिकता हो ही नहीं सकती। विद्यावाचस्पती (Ph.D.) इस उपाधिक पहुँचने के पूर्व और प्राप्त करने तक अनेक व्यक्ति, संस्था, ग्रंथालयकी बहुमूल्य मदद होती है। इन सबके प्रति मेरा आदर भाव ऋण निर्देश मैं व्यक्त करती हूँ।

प्रबंध के अभ्यासके रुपमें भले ही मेरा नाम हो, परंतु उसके पीछे अनेकोंकी मेहनत, सहकार्य और सदिच्छा हैं। विश्वसंत जिनशासन चंद्रिका गुरुणीमैया पूज्य उज्ज्वल कुमारीजी महासतीजी की मैं अत्यंत ऋणी हूँ जिन्होंने मुझे यहाँ तक Ph.D तक पहुँचाने में अदृश्य रुप से सहायता की है।

मेरी प्रिय गुरु बहन उज्ज्वल संघप्रभाविका पूज्य डॉ. धर्मशीलाजी महासतीजी .श. सस्. न. को मैं नहीं भूल सकती। जिन्होंने मेरे प्रबंध के लिए अथाग मेहनत की, उनका ऋण मैं कृतज्ञता पूर्वक व्यक्त कर रही हूँ।

इस समय मेरी सहयोगिनी डॉ. पुण्यशीलाजी महाराज भक्ति शीलाजी महाराज लब्धिशीलाजी महाराज को भी याद किये बिना नहीं रह सकती, जिन्होंने मुझे सभी प्रकार से सहयोग दिया।

अनमोल सेवा करनेवाले महेशभाई भोगीलाल दोशी(पुणे) का भी मैं ऋण व्यक्त करती हूँ।

प्रकांड विद्वान डॉ. छगनलालजी शास्त्रीका भी अत्यंत सहयोग रहा। उनके भी आभार मानती हूँ।

विशेष प्रकार से मेरे प्रबंध मार्गदर्शक समय समय पर बहुमूल्य सेवा देनेवाले प्रोत्साहक पुणे विद्यापीठ के मार्गदर्शक डॉ. ज. र. जोशी का ऋण मैं कृतज्ञतापूर्वक व्यक्त करती हूँ।

भावी जीवन में भी इन सबकी सदिच्छा मरे लिए प्रेरणादायी बनी रहें यही शुभकामना।

प्रस्तावना

> ''मंत्रों में परमेष्ठी मंत्र ज्यों, व्रतों में ब्रह्मचर्य महान।
> तारागण में ज्यों चंदा है, पर्वत बड़ा सुमेरु जान ॥
> नदी में गंगा, काष्ठ में चंदन, ज्यों देवों में इन्द्र महान।
> त्यों सभी में साधु उत्तम, साक्षी आगम वेद पुरान।''

जिस प्रकार व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत महान हैं, तारागणों में चंद्र पर्वतोंमें सुमेरु पर्वत, नदियोंमें गंगानदी, सुगंधोमें चंदन की सुगंध तेज होती है। देवों में इंद्र महान होते हैं। वृक्षोंमें कल्पवृक्ष श्रेष्ठ होता है, वनोंमें नंदनवन मुख्य होता है। पक्षियों में गरुड पक्षी श्रेष्ठ हैं। फूलोंमें गुलाब श्रेष्ठ है। वैसेही सभी मंत्रों में नवकार मंत्र श्रेष्ठ है, तथा साधु श्रेष्ठ है ऐसा आगम वेद पुरान कहा है।

आज का युग विज्ञानका युग है। इस युग में विज्ञान शीघ्र गति से आगे बढ़ रहा है। विज्ञान के नवनवीन आविष्कार विश्वशांति का आह्वान कर रहे हैं। संहारक अस्त्रशस्त्र विद्युत गतिसे निर्मित हो रहे हैं।

आज मानव भौतिक स्पर्धा के मैदानों में तीव्रगति से दौड़ रहा है। मानवकी महत्त्वाकांक्षा आज दानव के समान बढ़ रही है। परिणामत: मानव निर्जिव यंत्र बनता चला जा रहा है। विज्ञान के तुफान के कारण धर्मरुपी दीपक तथा तत्वज्ञानरुपी दीपक करीब-करीब बुझनेकी अवस्थापर पहुँच गये हैं। ऐसी परिस्थितियों में आत्मशांति तथा विश्वशांति के लिए विज्ञान की उपासना के साथ तत्वज्ञान की उपासना भी अति आवश्यक है।

आज दो खंड़ आमने सामने के झरोखे के समान करीब आ गये हैं। विज्ञान ने मनुष्य को एक दूसरे से नजदीक लाया है, परंतु एक दूसरे के लिए स्नेह और सद्भाव कम हो गया है। इतनाही नहीं मानव ही मानव का संहारक बन गया है।

विज्ञानका विकास विविध शक्तियों को पार कर अणुके क्षेत्र में पहुँच चुका है। मानव जल, स्थल तथा नभ पर विजय प्राप्त कर अनंत अंतरिक्ष में चंद्रमा पर पहुँच चुका है इतनाही नहीं अब तो मंगल तथा शुक्र ग्रह पर पहुँचने का प्रयास भी जारी हैं। भौतिकता के वर्चस्वने मानव हृदय की कोमल वृत्तियों, श्रद्धा, स्नेह, दया, परोपकार, नीतिमत्ता सदाचार तथा धार्मिकता आदि को कुंठित कर दिया है। मानव की आध्यात्मिक और नैतिक जीवन का अवमूल्यन हो रहा है।

विज्ञान की बढ़ती हुई उद्दम शक्ति के कारण विश्व विनाश के कगार पर आ पहुँचा है। अणु

आयुद्धों के कारण किसी भी क्षण विश्वका विनाश हो सकता है। ऐसी विषम परिस्थितियों में आशारुपी एक ही ऐसा दीप है जो दुनिया को प्रलयरुपी अंधकार में मार्ग दिखा सकेगा। वह आशारुपी दीप तत्वज्ञान और महामंत्र नवकार है।

विज्ञान के साथ अगर तत्वज्ञान और महामंत्रनवकार जुड़ जाएँ तो विज्ञान विनाश के स्थान पर विकास की दिशामें आगे बढ़ेगा। विज्ञान की शक्ति पर तत्वज्ञान का अंकुश होगा, तभी विश्वमें सुखशांति रहेगी। तत्वज्ञान और महामंत्र नवकार अमृततुल्य रसायन है वही इस विश्वको असंतोष और अशांति की व्याधि से मुक्त कर सकता है। विज्ञान के कारण भौतिक साधनों की बड़ी उन्नति हुई हैं। उनके कारण मानव को बाह्य सुख तो प्राप्त हुआ है। लेकिन आध्यात्मिक दुनियामें कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है।

आज विज्ञान की जितनी उपासना हो रही हैं, उतनी तत्वज्ञान की उपेक्षा हो रही है। यही कारण है कि - मानव को आत्मशांति प्राप्त नहीं हो रही है। तत्वज्ञान के कारण तथा महामंत्र नवकार मंत्र के कारण ऐसी शांति प्राप्त होती है जिससे संसार के सारे पाप, ताप, संताप दूर होते हैं तथा शीतलता प्राप्त होती हैं।

आज विज्ञान जीवन के सब क्षेत्रोंमे प्रगतिकर उसमें खूब क्रांति और उत्क्रांति लाया है। वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण मानव शक्तिशाली बना है, यह निर्विवाद सत्य हैं, परंतु इस शक्ति का उपयोग किस प्रकार करना है इसका निश्चय विज्ञान नहीं कर सकता। शक्ति का उपयोग विकास के लिए करना है या विनाश के लिए यह मानव के हाथ में हैं। यह निर्णय लेने में तत्वज्ञान और आध्यात्म मानव के मार्गदर्शक हो सकते हैं।

प्रख्यात शास्त्रज्ञ तथा गणितज्ञ आलबर्ट आईनस्टाईनने अणु शक्ति का अविष्कार किया , यह अणुशक्ति जिस मूल द्रव्यसे निर्मित होती है वह दश पौंड़ यूरेनियम संसार को एक महिने तक बिजली उपलब्ध करा सकता है और मानव जीवन अधिक सुखी कर सकता हैं, परंतु वही यूरोनियम अेटमबाँम्ब तैयार करने के लिए उपयोग में लाया जाए तो मानव जीवन नष्ट भी हो सकता है।

अमेरिका ने अणुशक्ति का उपयोग करके अणुबॉम्ब तैयार किये, और हिरोशिमा तथा नागासाकी इन दों जापानी शहरों पर उन्हें गिराकर लाखों लोगों का जीवन ध्वस्त किया, इसलिए मानवीय प्रगति अगर सच्चे अर्थों में हो तो विज्ञान और तत्वज्ञान का साथ आवश्यक हैं। विज्ञान और तत्वज्ञान प्रगति के रथ के दो पहियें हैं। रथ चलाने के लिए जिस प्रकार दो पहिये आवश्यक होते हैं, उसी प्रकार प्रगति के कदम सहि दिशामें बढ़ाने केलिए विज्ञान तत्वज्ञान और धर्म का साथ अत्यंत आवश्यक हैं। विज्ञानरुपी मोटर के लिए तत्वज्ञानरुपी

तथा महामंत्र नवकार रुपी स्टियरिंग - व्हील अनिवार्य है इसलिए वैज्ञानिक प्रगति के साथ तात्विक प्रगती होना भी आवश्यक हैं।

विश्व के देशोंमें भारत एक ऐसा देश है, जिसकी अपनी विलक्षण विशेषताएँ हैं। अन्य देशोंमें जहाँ गौरव और महत्त्व उन लोगों का रहा, जिन्होने विपुल वैभव और संपत्ति अर्जित की।उच्च, उच्चस्तर सत्ता और अधिकार हस्तगत किया अधिक से अधिक वैभव एवं विलासोपयोगी साज सामान का संग्रह किया किंतु इस देशमें सर्वाधिक पूजा, प्रतिष्ठा और सम्मान उनका हुआ, जिन्होंने समस्त जागतिक संपत्ति, भोगपभोगों के उपकरणों का परित्याग कर अकिंचनता का जीवन अपनाया। अपरिग्रह, संयम तपश्चरण का और योग का मार्ग स्वीकार किया।

भारतीय चिंतन धारामें भोग - वासनामय जीवन को उपादेय नहीं माना। भोगों को जीवन की दुर्बलता स्वीकार किया। भोग जनीत सुखों के साथ दुःखों की परंपराऐं जुड़ी रहती है, इसलिए यहाँ के ज्ञानियों के ऐसे आध्यात्मिक सुखोंकी खोज की, जो परपदार्थ निरपेक्ष और आत्म सापेक्ष है।

भारतका गौरवमय इतिहास उन ऋषि मुनियों, ज्ञानियों, योगियों और साधु संतोंका इतिहास हैं। जिन्होंने परम प्राप्तिकी साधनामें अपने को लगाया। साथ ही साथ जन-जन को कल्याण का संदेश दिया। सदाचार, नीति,सच्चाई और सेवा के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा दी। यह सब तभी फलित होता है, जब जीवन भोगोन्मुखता से आत्मोन्मुखता की ओर मुड़े।

भारतमें अध्यात्मिक एवं धार्मिक दृष्टिसे साधु का बड़ा महत्त्व है, जो अपना और दूसरों का कल्याण हितका श्रेयस करता है। जैन धर्म में साधु के लिए श्रमण और निर्ग्रंथ शब्द भी प्रयोग में आते हैं।

जैन धर्म का नवकार महामंत्र सर्वश्रेष्ठ है। सबके मन में नवकार मंत्र के प्रति अत्याधिक श्रध्दा और आदर है। इस महामंत्र में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को नमस्कार किया गया है। साधु इनमें पाँचवा पद हैं। वह नवकार मंत्र का मूल है, क्योंकि उपरके पदोंमें सर्वत्र साधुत्वकी विद्यमानता हैं। वे उसके उत्कृष्ट रुप और पद हैं। नवकार मंत्र में आया हुआ साधु पद बड़ा व्यापक अर्थ लिए हुए हैं। वह बाहरी वेष या संप्रदायकी सीमाओं से बँधा हुआ नहीं है। वह तो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के साथ जुड़ा हुआ है। जो व्यक्ति इन गुणों को अपने जीवन में स्विकार करते हैं वे साधु है।

मुझे यह प्रगट करते हुए बड़ा आत्मपरितोष होता है कि मैंने लगभग पैंतीस वर्ष पूर्व जैन साधना का संयममय साधु पथ स्वीकार किया। परमपूजनीय श्रमण संघके आचार्य सम्राट

१००८ पू. श्री आनंदऋषीजी महाराज, आत्मार्थी गुरुदेव पू. मोहनऋषीजी महाराज, पू. विनयऋषीजी महाराज, अनंत उपकारी, वात्सल्यवारिधी पू. माताजी बेन म०, परम पूजनीया ज्ञान एवं साधना की दिव्यज्योति, प्रात: स्मरणीया, विश्वसंत गुरुणी मैया महासतीजी श्री उज्ज्वलकुमारीजी महाराज, तथा उज्ज्वल संघ प्रभाविका पू. डॉ. धर्मशीलाजी महासतीजी के सानिध्य में भागवती दीक्षा अंगीकार की। पू. गुरुणीमैया के सानिध्यमें जो सीखने जानने को मिला वह मेरे श्रामण्यमय जीवन के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ।

पू. गुरुणीमैया की कृपादृष्टि से मैं संयम पथपर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती रही। एक साधु या साध्वी के जीवन में संयम का सर्वोपरि स्थान है। उनके साथ यदि सद्विद्या का संयोग बनता है तो संयम और अधिक प्रोज्ज्वल और प्रशस्त होता जाता है। मैंने मेरी गुरु बहना पू. डॉ. धर्मशीलाजी महासतीजी के निर्देशन और मार्गदर्शन में अपना अध्ययन गतिशील रखा। संस्कृत प्राकृत में रुचि बढ़ती गई। पूना विश्वविद्यालय से मैंने प्राकृतमें एम. ए. फस्ट क्लास में उत्तीर्ण किया। यद्यपि एक जैन साध्वी के लिए इन लौकिक परीक्षाओं का कोई महत्त्व नहीं हैं किंतु परीक्षाओं के माध्यम से अध्ययन करने में समीचीनता और सुव्यवस्था रहती है। एम. ए. होने के बाद मैंने निश्चय किया कि - यदि भविष्यमें पीएच.डी. करने की संधी मिली तो मैं 'नवकार' मंत्र पर ही पीएच.डी. करूँगी।

नवकार मंत्र कहने की प्रणाली बचपनसे ही चालु होती है। जैन धर्म में बचपनसेही नवकार मंत्र सीखाने की प्रथा है। छोटे- बच्चे से लेकर युवक, वृद्ध सभी नवकार मंत्र का जाप करते हैं। मुझे बचपनसे ही नवकार मंत्र पर दृढ़ श्रद्धा थी। मेरी गुरुबहन प्रखर व्याख्याता, पू. डॉ. धर्मशीलाजी महाराज ने 'नमो सिद्धाण पद: समीक्षात्मक परिशीलन' इस विषय पर ६०० पन्ने का ग्रंथ लिखा। यह देखकर मेरे मनमें विचार आया कि - मैं भी पीएच.डी. का विषय 'नवकार मंत्र' क्यों न लूँ ? मेरी गुरुबहन पू. डॉ. धर्मशीलाजी महाराज ने भी मुझे प्रेरणा दी। इसलिए मैने मेरे शोध प्रबंध का विषय 'जैन धर्म के नवकार मंत्र में णमो लोए सव्व साहूणं' इस पदका समीक्षात्मक समालोचन' यह विषय मैंने चुना।

पूना विश्व विद्यालयने और मेरे मार्गदर्शक डॉ. ज. र. जोशी इन्होने भी यह विषय लेने की मुझे अनुमति दी। नवकार मंत्र के विषय में लिखने की जब मुझे अनुमति मिली, तब मुझे अत्यंत आनंद हुआ, क्योंकि मुझे मेरे मन पसंद का विषय मिल गया।

नवकार मंत्र के विषय में प्राकृत, संस्कृत, हिंदी, गुजराती, मराठी, इंग्लिश इ. भाषाओं में जो लेखन मिला, किताबे मिली, उसका रसास्वाद लेकर तात्विक विचारोंका, समीक्षात्मक अध्ययन करने का मैंने निर्णय किया।

जैन साधु चर्या में समर्पित जीवनमें वीतराग प्रभुकी आज्ञामें रहकर आचार धर्म का पालन करते संयम और वैराग्य को उत्तरोत्तर विशुद्ध करना, मोक्षमार्ग की उपासना करना, वैसेही स्वपर कल्याण की प्रवृत्ति का विकास करना, यही मेरा अनिवार्य धर्म है। इसलिए नवकार मंत्र का और साधुपद का विस्तृत अभ्यास करने का मेरा मनोरथ दृढ़ हुआ। मेरी गुरुबहना पू. डॉ. धर्मशीलाजी महाराज की असीम कृपासे ज्ञानवृद्धिके लिए सभी सुविधा मुझे सहजता से प्राप्त हुई। गुरुणीमैया के आशीर्वाद से और जैन संघोंके सहकार्य से अभ्यासमें मेरा उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

विषय निश्चित होने के बाद सर्व प्रथम और जैन आगम साहित्यमें नवकार मंत्र के विषय में और साधु के विषयमें जो विवेचन आया है उसका संशोधन शुरू किया। उसमें अंग, उपांग, मूल, छेद, प्रकीर्णक आदि आगम ग्रंथ और उसके आधार पर प्राकृत, संस्कृत तथा हिंदी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओंमें रचा हुआ साहित्य का अध्ययन किया। उसमें से कुछ ग्रंथों के नाम निम्नलिखित हैं।

जैनों के आचारांग आदि बत्तीस आगम। तत्वार्थ सूत्र और प्रशमरति प्रकरण - आ. उमास्वाती बृहद् द्रव्य संग्रह - टीका - श्री ब्रह्मदेव - नेमीचंद्र सिद्धांत देव, भगवती आराधना - आचार्य शिवार्य , योगशास्त्र - आ. हेमचंद्र ज्ञानार्णव-आचार्य शुभचंद्र एसो पंच नमोकारो - आ. महाप्रज्ञ, त्रैलोक्य दीपक - महामंत्राधिराज - भद्रंकर विजयजी, नमो सिद्धाणं पद समीक्षात्मक परिशलीन - साध्वी डॉ. धर्मशीलाजी महाराज, जीवननी सर्वश्रेष्ठ कला श्री नवकार - बाबुभाई कडीवाला मंगलमंत्र णमोकार एक अनुचिंतन - डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री, तीर्थंकर - णमोकार मंत्र विशेषांक भाग - १-२, अनुत्प्रेक्षा नुं अमृत - श्री भद्रंकर विजयजी गणिवर, नमस्कार चिंतामणि-मुनिश्री कुंदकुंद विजयजी महाराज, नमस्कार महिमा - श्री विजय लक्ष्मणसुरिजी महाराज, नमोक्कार अनुप्पेहा - श्री उमेश मुनि अणु, अभिधान राजेंद्रकोश भाग - १-७- आ. श्री. राजेंद्र सुरिजी, जैन सिद्धांत कोश - भाग - १-४- क्षु. जिनेंद्र वर्णी, षट् खंडागम - फूलचंद सिद्धांत शास्त्री आदि।

इसके अतिरिक्त अनेक आचार्य, मुनि, विद्वानों की रचनाओं का अनुसंधानात्मक दृष्टि से अध्ययन किया। नवकार मंत्र तथा साधु पद के संबंधमें जो - जो सामग्री प्राप्त हुई, उसका यथास्थान संयोजित करने का मैंने प्रयत्न किया है।

विद्या और साधना किसी भी धर्म या संप्रदाय कीं मर्यादामें बंधी हुई नहीं होती है। वह तो सर्वव्यापी, सर्वग्राही और सर्वोपयोगी उपक्रम है। उसको विविध परंपरासे संलग्न ज्ञानीजन और साधक गण समृद्ध करते हैं।

जैन दर्शन अनेकांत वाद पर आधारित समन्वयात्मक दर्शन हैं। इस दृष्टि से किसी भी प्रकार से सांप्रदायिकता का संकीर्ण भेदभाव न रखते हुए नवकार मंत्र तथा साधुपद पर जो आलेखन कार्य शुरू किया वह प्रस्तुत शोध प्रबंधके रुपमें उपस्थित है। वह विषय व्यवस्थित प्रस्तुत करने की दृष्टि से छह प्रकरण में विभक्त किया है। वे छहों प्रकरण छह काय जीवों की रक्षा करके सिद्ध-बुद्ध और मुक्त होने के लिए साधक को उपयोगी होवे यही मंगल कामना है।

प्रकरण १

नवकार मंत्र के मूल ग्रंथ - आगम वाङ्:मय

इस प्रकरण में मानव जीवन, धर्म, भारतीय संस्कृति, वैदिक संस्कृति, श्रमण संस्कृति, काल चक्र, तत्वदर्शन, आचार, आदि का विवेचन करके जैन परंपरा के वर्तमान काल के अंतिम तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर द्वारा प्रस्थापित द्वादशांग और तत्संबंधी अंग, उपांग मूल, छेद आदि बत्तीस आगमों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। प्रकीर्णक, षट्खंडागम, धवला, कषाय पाहूड, आचार्य कुंदकुंद के प्रमुख ग्रंथ - पंचास्तिकाय, प्रवचनसार आदि ग्रंथोंके शोध कार्य की पृष्ठ भूमिका में प्रयुक्त किया है।

सर्व प्रथम मानव जीवन का वर्णन किया है। कारण मनुष्य यह सृष्टि की सर्वोत्तम रचना है। इस सर्वोत्कृष्टता का मूल आधार है, उसकी विचारशीलता और विवेकशीलता जो प्राणीका वैशिष्टय हैं। चैतन्य प्राणी के सहस्राधिक वर्ग में मानवजाति सर्व श्रेष्ठ हैं। हिताहित का विवेक मनुष्यमें हैं। उसके साथ अन्य कोई भी प्राणी स्पर्धा नहीं कर सकता।

प्रेम, करुणा, दया, ममत्व, साहचर्य, संवदेना, क्षमा आदि असंख्य भाव मनुष्य के हृदय में निवास करते हैं। ऐसे भाव अन्य प्राणियों में दिखाई नहीं देते। चिंतन, मनन, विवेक, निर्णय, आदिकी क्षमता का वरदान तो सिर्फ मानव को ही मिला है। यही विचारशीलता मनुष्य के श्रेष्ठत्व की आधारशीला है।

मनुष्य मन का ईश्वर है, मन का स्वामी है। उसके उत्थान पतन का कारण उसके शुभाशुभ विचार है। अशुभ विचारों से उसका पतन होता है और शुभ विचारोंसे उसका उत्थान होता है। यही मनुष्य के मनका व्यक्त रुप है। विचार मनुष्य का निर्माण करनेवाला है। यही मानव जीवन के महल की मजबूत आधारशीला है।

आगम-आगमया ने आप्तवाणी। आगम ग्रंथ जैन साहित्य में जिनका असाधारण महत्त्व है। आगम ग्रंथ के अभ्यास से अष्ट कर्म नष्ट होते हैं। आगम ग्रंथका चिंतन, मनन करना यह सच्चा-स्वाध्याय है। स्व- आत्मा, अध्याय - अभ्यास, निरीक्षण, परिक्षण करना, स्वयंकी आत्माका ज्ञान प्राप्त करना स्वाध्याय हैं। नवकार मंत्र का चिंतन एक प्रकार से आत्म शुद्धि के लिए निर्मल जल है।

धर्म - वस्तु का स्वभाव धर्म है। 'वत्थु सहाओ धम्मो।' दुर्गतिमें पड़नेवाले जीवको बचाने वाला धर्म है। मन पर विजय मिलाना धर्म है। पाँच इंद्रियों को वश करना धर्म है। व्रत, नियम का पालन करना धर्म है। कषाय पर विजय मिलना धर्म है। मोह, ममत्व नष्ट करनेसेही जीवनका अंतरबाह्य विकास होता है। मोह न छोड़ते हुए सिर्फ धार्मिक क्रिया की, तो आत्माका विकास नहीं होता, और संसार परिभ्रमण कम नहीं होता, इसलिए धर्म के स्वरुप का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। प्रस्तुत प्रबंध में आत्मशुद्धि, आत्मविकास, आत्मावलोकन करने के लिए जैन धर्म के नवकार मंत्रमें 'णमो लोए सव्व साहुणं' इस पद का समीक्षात्मक समालोचन का अभ्यास करके मेरे क्षयोपशम के अनुसार आलेखन किया है।

प्रकरण २

जैन धर्म में नवकार मंत्र और भारतीय मंत्र विद्याओं में नवकार मंत्र का स्थान -

इस प्रकरण में नवकार मंत्र का आदि प्रयोग, बाह्य और आंतरिक स्वरुप, नवकार मंत्र की शक्ति, नवकार मंत्र का महत्व, नवकार महामंत्र क्यों ? नमो पद की विशेषताएँ , पंचपरमेष्ठि का विवेचन, णमो लोए सव्व साहूणं का रहस्य, नमस्कार समीक्षा, मंत्र की परिभाषा, मंत्र की महत्ता, मंत्र का अंतर्जागरण, आदि विषयोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकरण में दिया गया है।

अनादि काल से जीवात्मा संसार का चिंतन करता है। नवकार मंत्र मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है। नवकार मंत्र भयसे मुक्त करने का सामर्थ्य रखता है। मनुष्य जन्म के चक्रोंको स्थगित करने की क्षमता नवकार मंत्र रखता है। नवकार मंत्र यह आत्मा से परमात्मा के मिलन करने का साधन है। दुनियामें बहुत मंत्र है, परंतु नवकार मंत्र को सर्वोत्कृष्ट स्थान मिला है। जिस साधु का अंतरात्मा नवकारमंत्रसे शुद्ध होता है वह आत्मा पानीपर तैरनेवाली नौका के समान संसार सागर को पार करके सभी दुःखों से मुक्त होकर परम सुख को प्राप्त करता है।

नवकार मंत्र की साधना याने वैराग्यको प्राप्त करना है और वैराग्य ही मोक्षरुपमें फलीभूत

होता है। नवकार मंत्र की साधना से मिला हुआ वैराग्य ज्ञान से आधारित रहता है और इसलिए वह अटल और स्थिर है।

मनुष्य जैसे विचार होते है वैसे उसका बाह्य व्यवहार भी होता है। अशुभ विचार मनुष्य को दुर्जन, अन्यायी और दूराचारी बनाते हैं और शुभ विचार उसे धर्मप्रिय, सदाचारी परोपकारी और सज्जन बनाते हैं और शुद्ध विचार जीवात्माको परमात्मा बनाता है।

नवकार मंत्र की और साधु पद की अलग - अलग ग्रंथों में अलग - अलग परिभाषा प्राप्त होती है। उसका समीक्षण करके प्रस्तुत प्रकरणमें देने का प्रयत्न किया गया है।

प्रकरण ३

नवकार मंत्र का विशेष विश्लेषण और विश्वमैत्री

इस प्रकरण में नवकार मंत्र और शुभोपयोग और शुद्धोपयोग, षड़ावश्यक और नवकार मंत्र, नवकार मंत्र में चार भावनाओं का समन्वय गुण प्रधान जैन धर्म, नवकार महामंत्र और नवतत्व, नवकार मंत्र और शारीरिक, मानसिक स्वस्थता, नवकार मंत्र से लेश्या विशुद्धि, रंगविज्ञानके आधार पर नमस्कार मंत्र का निरुपण, नवकार की सिद्धि इह लौकिक और पारलौकिक दृष्टि से नवकार मंत्र का निरुपण आदि विषयों का विश्लेषण प्रस्तुत प्रकरणमें किया गया है।

'नवकार मंत्र का विशेष विश्लेषण और विश्वमैत्री' इस प्रकरणमें मैत्री आदि चार योग भावना का विवेचन है। वैराग्य वर्धक और साधक को परमशांति, परमसुख का उत्तम अनुभव करानेवाली, ध्यान का उत्कर्ष साधनेवाली, मैत्री आदि चार भावनाओं का निरुपण किया गया है। इन चार भावना के चिंतन का मुख्य उद्देश यह है कि - व्यक्ति में केवल वैराग्य भावना जागृत होना इतनी ही पर्याप्त नहीं है परंतु उस भावना के आचरण से उनमें इंद्रिय संयम के साथ मनका संयम भी आना चाहिये और देहासक्ति से मुक्त होकर, योग और ध्यान के द्वारा चित्त विरोध करके परमशांति प्राप्त करना इस प्रकार के उत्तम आदर्श से मैत्री आदि चार भावना का विवेचन किया गया है।

नवकार मंत्र के चिंतन के स्वरूप बोध होने पर निर्वेद भाव, अर्थात् संसार का अनादि काल से जो राग आता है उस पर उदासीनता होती है। संसार के प्रति होनेवाला राग, सांसारिक पदार्थों के प्रति आसक्ति, उसमें सुख बुद्धि राग (आसक्ति) है। जन्म-मरण के चक्कर में जीव को फिराता है इसलिए सर्व प्रथम राग रहित होना आवश्यक हैं। वैराग्यभावही

साधना कीही प्रथम नींव है। वैराग्य सहित साधना ही सफल होती है। प्रथम संसार की हेयता, उदासीनता, अरुचिता होने पर साधना सफल होती है। वैराग्य आनेपर संसार की असारता दिखाई देती है और साधुपद को वह साधक प्राप्तकर सकता है।

मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ ये चार भावनाएँ धर्म को आत्मा के साथ जुड़ाती है। उसे दृढ़ करती है, इसलिये उसे योग भावना कहते हैं। उस योग भावना का आध्यात्मिक महत्त्व तो है ही, उसी के साथ उनके चिंतन से मानवमें सच्ची मानवता विकसित होती है। यह दृढ़ होने पर ईर्ष्या, द्वेष और कलह के लिए कोई स्थान नहीं रहता है। राग-द्वेष, अभिमान और स्वार्थसेही इस दुनियामें करके पृथ्वी पर स्वर्ग निर्माण कर सकते हैं। समाज, राष्ट्र और धर्म के लिए उपयुक्त ऐसी चार योग भावना का इस प्रकरण में वर्णन किया गया है इसलिए आत्म शांति के साथ विश्वशांति और विश्वमैत्री निर्माण हो सकती है। नवकार मंत्र की आराधना में संप्रविष्ट होते ही साधक अशुभसे छूटता है और मैत्री भावना में प्रविष्ट होता है। नवकार मंत्र का पाँचवा पद साधु का जो इस भाव का द्योतक है। प्रमोद भावना की नवकार मंत्र की पाँचवे, चौथे, तीसरे पद के साथ संगति है। साधु, उपाध्याय और आचार्य स्वयं गुणी होते हैं गुणग्राही होते हैं, तथा गुणीजनों को आदर देते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि - सद्गुणोमेंही जीवन की उच्चता और महत्ता है।

प्रकरण ४

जैनागमों में साधु पद का विश्लेषण

प्रस्तुत प्रकरणमें आचारांग सूत्र में साधु का स्वरुप, साधु के लक्षण, साधु का धर्म, भिक्षाचारी, मधुकर वृत्ति, साधु को न आचारने योग्य बावन अनाचार, पृथ्वीकाय से त्रस कायतक सचेतन का वर्णन, आहार शुद्धि, परिष्ठापन की विधि,जलग्रहण-अन्नग्रहण, भिक्षुकी चर्या, पाँच महाव्रत, छठ्ठारात्रिभोजन, पाँच समिति, तीन गुप्ति आदि का विस्तृत वर्णन उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि सूत्रों में से लिया गया है।

हरेक महाव्रतरुपी रत्न की रक्षा के लिए भावनारुपी पाँच रक्षक नियोजित किये गये हैं। यदि पहरेदार सावधान होगा तो असंयम रुपी चोर साधक के आचरणकोशमेंसे इन रत्नों की चोरी नहीं कर सकेगा।

इस प्रकरणमें साधुपद का भी विस्तृत वर्णन किया गया हैं। जिसकेद्वारा आत्मा को पापकर्म के आचरण से रोका जाए वही संयमी कहा जाता है। इस प्रकार साधुपद का संशोधनात्मक अभ्यास चौथे प्रकरणमें दर्शाया गया हैं।

प्रकरण ५

विविध ग्रंथोंमें साधु पद की व्याख्या और विवेचन -

प्रस्तुत प्रकरण में महानिशीथ सूत्र में साधुपद का विवेचन, नमोक्कार निज्जुक्ति में साधुपद का निरुपण, संयम और तप की अविच्छिन्नता, चारित्राराधना के साथ ज्ञान और दर्शन का अविनाभाव., सिरि सिरिवाल कहामें साधु पद, विशेषावश्यक भाष्य में गुरु-शिष्य परिक्षण, तत्वसार में साधुत्व विषयक-विश्लेषण, साधु के लिए वैयावृत्त का महत्त्व, ज्ञानसार में मुनिकी तत्वदृष्टि, त्रिषष्टी शलाका पुरष चरित्तमें साधुपद, बृहद् द्रव्य संग्रहमें परिषह जय, आध्यात्म कल्पद्रुममें साधु भगवंत को वंदना तथा साधु का आदर्श, स्वरुप इत्यादि का निरुपण दिया गया है।

जैन वाङ्.मय में ऐसे प्रसंग आते हैं, जहाँ तात्विक स्वरुपात्मक एवं कारण कार्यात्मक आदि अनेक अपेक्षाओं से साधुपद का विविधरुपों में विश्लेषण, विवेचन हुआ है।

जैन धर्म दर्शन या साधना का परम प्राप्त सिद्धपद ही है। अत: उसकी गरिमा और महिमा से जिज्ञासु तथा मुमुक्षुवृंद अवगत रहे, प्रेरित रहे। इसे विद्वान आचार्यों और ग्रंथकारोंने अपने ध्यान में रखा क्योंकि साहित्य सर्जन का लक्ष्य 'स्वान्त: सुखाय होने के साथ-साथ सर्वजनोपकाराय' भी होता है। अत: समस्त लोगों के उपकार हेतु लेखकोंने अपने शास्त्रज्ञान तथा अनुभूति के आधारपर जो लिखा वह बहुत महत्त्वपूर्ण है।

आगमोत्तर कालमें लेखक, कवि आदियोंने नवकार मंत्र के विषयमें और साधुपद के विषयमें विस्तृत वर्णन किया हैं। साधुपद के विवेचन से मनमें निर्वेद और वैराग्य उत्पन्न होता है। नवकार मंत्र और साधुपद साधक को उच्चतम स्थितितक ले जाता है। साधु पद का महत्त्व असाधारण है। नवकार मंत्र की साधना करनेवाले साधु और सर्व साधकों को स्वयंका आंतरिक ऐश्वर्य, तप और संयम का भावात्मक सुख प्राप्त हो जाता है।

नवकार मंत्र यह व्यवधानरहित मोक्षका राजमार्ग है।

नवकार मंत्र यह परमसुख और शांति देनेवाला है।

नवकार मंत्र से और साधुपद की आराधना से आत्मा को शुद्ध अवस्था प्राप्त होती है।

नवकार मंत्र से शुद्ध चेतना की अनुभूति होती है। नवकार मंत्र यह भवरोग को दूर करने का रामबाण उपाय (औषध) है।

नवकार मंत्र अमृत बिंदू के समान हैं।

नवकारमंत्र यह Law of Gravity कार्य करता है तथा आध्यात्मिक सृष्टि में Law of

Grace अपना कार्य करता है। Gratitude द्वारा हम हलके बनते हैं, जिससे हमें प्रभुका Grace उपर ले जाता है।

आत्म कल्याण के लिए आत्म स्वरुपके चिंतनकी अत्यंत आवश्यकता है। इस चिंतन का प्रमाद किया तो जन्म, मरण, दु:ख इत्यादि भयंकर शत्रु आक्रमण करेंगे। इसलिए आत्मा को सतत् जागृत रखने के लिए चिंतन करने की अत्यंत आवश्यकता है।

मोह बुद्धि से जो कुछ होता है वह प्रमाद हैं, परंतु मोहरहित बुद्धि से जो कुछ होता है , वह अप्रमाद हैं। क्षणमात्र का भी प्रमाद न करके हमेशा शुभ और शुद्ध विचार करने के लिए नवकार मंत्र आलंबन रुप है।

❁❁❁

प्रकरण ६

उपसंहार, उपलब्धि और निष्कर्ष -

प्रस्तुत शोध प्रबंध में नवकार मंत्र के संबंध में किया हुआ समीक्षात्मक विवेचन का इस प्रकरणमें उपसंहार किया है। उप याने समीप, नजदीक और संहार याने नाश करना, विध्वंस करना। अर्थात् मुमुक्षु जीव के दोषों का अत्यंत निकट से संपूर्णत: नाश करना, छेदन करना याने उपसंहार है।

नवकार मंत्र के ग्रंथरुपी प्रासाद का निर्माण होने के बाद इस दिव्य प्रासाद के शिखर पर उपसंहार रुपी कलश इस प्रकरण में चढ़ाया गया है।

इसके छह प्रकरण छह काय जीवकी रक्षा करने का संदेश दे रहे हैं। नवकार मंत्र का और साधु पद का चिंतन, मनन हरेक जिज्ञासु के लिए कल्याणकारी, शुभकारी,आध्यात्म रसके रसीकों के लिए आनंद रससे परिपूर्ण करनेवाला, आंतरिक तृप्ति देनेवाला होवे यही मंगल अभिलाषा है।

प्रबंध लेखन का उद्देश्य मुमुक्षु साधकों को और जैन दर्शनानुसार उपासना करनेवाले साधकों को एक बौद्धिक और आध्यात्मिक सीमातक साधन उपलब्ध कर देना यह है। परीक्षक इससे सहमत होंगे ऐसा विश्वास है।

नवकार मंत्र के स्मरण से और साधुपदकी आराधना से आत्मा जीव से शीव, भक्त से भगवान, आत्मा से परमात्मा बन सकता है।

❁❁❁

कृतज्ञता - अभिव्यक्ति

प्रस्तुत शोध ग्रंथ के लेखन कार्य में प्रत्यक्ष - अप्रत्यक्ष रुपमें अनेक पूजनीय, वंदनीय, स्मरणीय, गुरुवर्यों का आशीर्वाद, कृपादृष्टि और सत्प्रेरणा हैं। उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना यह मेरा प्रथम कर्तव्य हैं।

मेरे आध्यात्म जगत की दिव्यज्योति, अमृतवाणीद्वारा जनता के लिए धर्मसुधा की वृष्टि करनेवाले, पवित्र हृदया, विश्वसंत, जिनशासन चंद्रिका, मेरे जीवन के शिल्पकार, मेरी गुरुणीमैया, बा.ब्र. महासतीजी, पू. उज्ज्वलकुमारीजी महाराज जो. संपूर्ण साध्वी समुदाय के लिए हमेशा प्रेरणा की दिव्य मूर्ति थी। उनकी दिव्य परंपरा में मेरा शैक्षणिक, साहित्यिक और इस शोधकार्य में परोक्षरुप से उनका आशीर्वाद स्फूर्तिदायक बना है। ऐसी महान प्रभाविका पवित्र आत्मा को मैं शतशत वंदन करके श्रद्धान्वित और कृतज्ञ हुई।

मेरी आराध्य गुरुबहन आध्यात्म योगी उज्ज्वलसंघ प्रभाविका, विश्वशांतिरत्न, प.पू. डॉ. धर्मशीलाजी महाराज एम.ए. पी.एच.डी. साहित्यरत्न जिनकी छत्रछायामें और सतत् सानिध्यमें मुझे अपने विद्या, संयम और साधनामय जीवनमें नित्य प्रेरणा मिली और मार्गदर्शन मिला। उनका भी मैं तहेदिल से आभार व्यक्त करती हूँ।

मेरे इस शोधकार्य में शुभकामना रखनेवाले स्वाध्याय प्रेमी विवेकशीलाजी महाराज तथा मुझे हमेशा सहयोग देनेवाले और सद्भावना रखनेवाले डॉ. पुण्यशीलाजी, भक्तिशीलाजी, और लब्धिशीलाजी इनके प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ।

इस शोधकार्य में महत्त प्रयत्न से विविध समस्या का समाधान करके, कुशलतापूर्वक मार्गदर्शन करनेवाले संस्कृत प्राकृत, पाली आदि प्राच्य भाषा के ज्ञानी और भारतीय दर्शन के विविध पक्षके मनीषी, प्राकृत शोध संपन्न, वैशाली और मद्रास-विश्व विद्यालय के पूर्व प्राध्यापक डॉ. छगनलालजी शास्त्रीद्वारा अविस्मरणीय मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। मैं उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। उनके शिष्य डॉ. महेंद्रकुमार रांकावत इन्होंने भी सहयोग दिया इसलिए उन्हें भी धन्यवाद देती हूँ।

जैन विद्या अनुसंधान, प्रतिष्ठान, मद्रास के प्रेसिडेन्ट और अहिंसा रिसर्च फाउन्डेशन के निर्देशक, तत्वनिष्ट, उदार हृदयी, प्रबुद्ध समाजसेवी, पितृतुल्य श्रावकवर्य श्री सुरेन्द्रभाई मेहता इनकी विद्या विनियोग की अभिरुची और संतसेवा की उत्कृष्ट भावना श्लाघनीय हैं। उनके अपूर्व सहकार्य के प्रति उन्हें धन्यवाद देती हूँ।

घाटकोपर के प्राध्यापक डॉ. रसीकभाई शाह, उनके सहयोग के लिए भी आभार व्यक्त करती हूँ। सरलात्मा सुदृढ़ श्राविका तथा आदर्श शिक्षिका सौ. पद्माबाई बाँठीया ने भी अति

सहयोग दिया इसलिए उनका आभार मानती हूँ। सेवाभावी सुश्रावकजी नेमिचंदजी कटारिया और सेवानिष्ठ सुश्रावकजी माणकचंदजी कटारियाने भी सहयोग दिया, उनका भी आभार मानती हूँ। सेवाभावी हमेशा सभी प्रकार से सहयोग देनेवाले सुश्रावक तथा सुश्राविका सौ. चंदनबेन तथा डॉ. धीरेंद्रभाई गोसलिया इनका भी आभार व्यक्त करती हूँ।

पूना निवास सेवाभावी श्री. महेशभाई भोगीलाल दोशीने प्रबंध में पूर्ण सहायता की इसलिए उन्हें धन्यवाद देती हूँ।

मुंबईका घाटकोपर संघ, सोलापूर संघ, चैन्नई संघ तथा पुना के श्रमणोपासक के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने सहृदयता और भक्तिभाव से अध्ययन के लिए अपेक्षित सामग्री मिलाकर देनेमें सहयोग दिया।

करुणा, अनुकंपा और मानवता से जिनका जीवन पूरा भरा था, अपनी संतानों में संस्कार देने का काम उन्होंने बचपनसेही किया था। "सादा जीवन उच्च विचार" ऐसा जिनका जीवन था ऐसे श्री सेवाभावी दृढ़धर्मी, समाजसेवी, सुश्रावकजी, करुणामूर्ति, मेरे संसारी मातुश्री - पिताश्री सौ. प्रभावतीबेन साराभाई पारेख, जिन्होंने मुझे संयम मार्ग की ओर प्रेरित कर, संयम दिलाया और उच्च शिक्षण में सहयोग दिया। वैसेही मेरे संसारी भाई-भाभी सौ. शोभाबेन-रमेशभाई, सौ. दक्षाबेन-हसमुखभाई, सौ. मालाबेन, दीपकभाई पारेख तथा संसारी बहन सौ. कलाबेन महेंद्रभाई वोरा इनका भी अत्यंत सहयोग रहा, इसलिए मैं तहेदिल से आभार व्यक्त करती हूँ।

मेरे सुश्रावकजी पोपटलाली शिंगवी तथा उनकी सुपुत्री उज्ज्वला रविन्द्रजी लुंकड तथा शारदा अशोकजी छाजेड़का भी सहयोग के लिये आभार मानती हूँ। अध्यक्ष विजयकांतजी कोठारी और विजयकुमार भटेवडा इनके सहयोग के लिए उनकी भी आभारी हूँ।

❖❖❖

अनुक्रमणिका

प्रथम प्रकरण

नवकार मंत्र के मूलग्रंथ आगम वाङ्मय

अनु क्र.	नाम	पान क्र.
१)	महामंगलमय नवकार महामंत्र	१
२)	मानव जीवन और धर्म	२
३)	जीवन की परिभाषा	२
४)	अध्यात्म एवं धर्म की भूमिका	३
५)	भारतीय संस्कृति की त्रिवेणी	३
६)	वैदिक संस्कृति	४
७)	श्रमण संस्कृति	५
८)	बौद्ध धर्म	६
९)	जैन धर्म	७
१०)	इतिहास एवं परंपरा	७
११)	जैन धर्म की सार्वजनिनता	९
१२)	जैन धर्म का अंतिम लक्ष्य : शाश्वत शांति	१०
१३)	कालचक्र	११
१४)	समीक्षा	११
१५)	अवसर्पिणी काल के छह आरे	१२
१६)	उत्सर्पिणी काल के छह आरे	१३
१७)	समीक्षा	१४
१८)	तीर्थंकर एवं धर्मतीर्थ	१४
१९)	तीर्थंकरोपदेश आगम	१५
२०)	आगमों की भाषा	१६
२१)	भगवान महावीर द्वारा धर्म देशना	१७
२२)	आगमों का महत्त्व	१८

अनु क्र.	नाम	पान क्र.
२३)	आगमों का संकलन	१९
२४)	प्रथम वाचना	१९
२५)	द्वितीय वाचना	२०
२६)	तृतीय वाचना	२०
२७)	आगमों का विस्तार	२०
२८)	आगम : अनुयोग	२१
२९)	चरण करणानुयोग	२१
३०)	धर्मकथानुयोग	२१
३१)	गणितानुयोग	२१
३२)	द्रव्यानुयोग	२२
३३)	अंग आगम परिचय	२२
३४)	आचारांगसूत्र	२३
३५)	सूत्रकृतांग सूत्र	२४
३६)	स्थानांग सूत्र	२५
३७)	समवायांग सूत्र	२६
३८)	व्याख्या प्रज्ञाप्ति सूत्र (भगवती) सूत्र	२६
३९)	ज्ञाताधर्म कथा सूत्र	२७
४०)	उपासक दशांग सूत्र	२७
४१)	अन्तकृत् दशांग सूत्र	२७
४२)	अनुत्तरौप पातिक सूत्र	२८
४३)	प्रश्न व्याकण	२८
४४)	विपाक सूत्र दृष्टिवाद	२८
४५)	दृष्टिवाद	२९
४६)	उपांग परिचय	२९
४७)	औपपातिक सूत्र	२९
४८)	राजप्रश्नीय सूत्र	३०
४९)	जीवाजीवाभिगम सूत्र	३०

अनु क्र.	नाम	पान क्र.
५०)	प्रज्ञायना सूत्र	३०
५१)	जंबूद्विप प्रज्ञप्ति सूत्र	३१
५२)	सूर्य प्रज्ञप्ति चंद्र प्रज्ञाप्ति सूत्र	३२
५३)	निरयावलिका कल्पिका सूत्र	३२
५४)	कल्पावतंसिका सूत्र	३२
५५)	पुष्पिका सूत्र	३२
५६)	पुष्पचूलिका सूत्र	३३
५७)	वृष्णिदशा	३३
५८)	चारमूल सूत्र परिचय	३३
५९)	दशवैकालिक सूत्र	३४
६०)	उत्तराध्ययन सूत्र	३४
६१)	नंदी सूत्र	३५
६२)	अनुयोग द्वार सूत्र	३५
६३)	चार छेद सूत्र	३६
६४)	व्यवहार सूत्र	३७
६५)	बृहत् कल्प सूत्र	३७
६६)	आगम गृह	३८
६७)	निशीथ सूत्र	३८
६८)	दशाश्रुत स्कंध सूत्र	३९
६९)	आवश्यक सूत्र	३९
७०)	प्रकीर्णक आगम साहित्य	४०
७१)	चउसरण : चतु:शरण प्रकीर्णक	४१
७२)	आउर पच्चक्खाण : आतुर प्रत्याख्यान प्रकीर्णक	४२
७३)	महापच्चक्खाण : महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक	४२
७४)	भत्त परिण्णा भक्त परिज्ञा प्रकीर्णक	४२
७५)	तंदुलवेयालिय तन्दुल वैचारिक प्रकीर्णक	४३
७६)	संथारग : संस्ताकर प्रकीर्णक	४३

अनु क्र.	नाम	पान क्र.
७७)	गच्छायार गच्छाचार प्रकीर्णक	४४
७८)	गणिविज्जा गणिविद्या प्रकीर्णक	४४
७९)	देवाधिदेव देवेन्द्रस्तव प्रकीर्णक	४५
८०)	वीरत्थओ : वीर स्तुति प्रकीर्णक	४५
८१)	मरण समाही (मरण समाधी)	४६
८२)	महानिशीथ छेद सूत्र	४६
८३)	जीय कप्प सुत्त जीत कल्प सूत्र	४६
८४)	पिंडनिज्जुत्ति, ओहनिज्जुत्ति	४७
८५)	ओघनिर्युक्ति	४७
८६)	पिण्डनिर्युक्ति ओघ निर्युक्ति	४७
८७)	प्रकीर्णक में साधु की भावना	४८
८८)	आगमों पर व्याख्या साहित्य	४९
८९)	निर्युक्ति	५०
९०)	भाष्य	५०
९१)	चूर्णि	५१
९२)	टब्बा	५१
९३)	समीक्षा	५१
९४)	टीकाकार मंत्र के मूलग्रंथ आगम वाङ्मय	५२
९५)	श्वेतांबर : दिगंबर परिचय	५३
९६)	दिगंबरों के सर्वमान्य शास्त्र	५४
९७)	षट्‍ खण्डागम	५४
९८)	षट्‍ खण्डागम पर व्याख्या साहित्य	५५
९९)	धवला की रचना	५५
१००)	कषाय पाहूड (कषाय प्राभृत)	५५
१०१)	तिलोय पन्नति (तिलोक प्रज्ञप्ति)	५६
१०२)	आचार्य कुंदकुंद के प्रमुख ग्रंथ	५६

अनु क्र.	नाम	पान क्र.
१०३)	पंचास्तिकाय	५६
१०४)	प्रवचनसार	५७
१०५)	समयसार	५७
१०६)	नियमसार	५८
१०७)	रयणसार	५८
१०८)	दिगम्बर परंपरामें संस्कृत रचनायें	५८
१०९)	निष्कर्ष	५९
११०)	संदर्भ प्रथम प्रकरण	६० से ६४

●●

द्वितीय प्रकरण

जैन धर्म में नवकार मंत्र और भारतीय मंत्र विद्याओमें नवकार मंत्रका स्थान

अनु क्र.	नाम	पान क्र.
१११)	णमोक्कार मंत्र की उत्पत्ति	६६
११२)	जैन धर्म का महामंत्र : नवकार आदि प्रयोग	६६
११३)	श्री नवकार महामंत्र का अर्थ	६८
११४)	श्री नवकार महामंत्र का बाह्य स्वरूप	६९
११५)	नवकार की सम्पदाएँ	७०
११६)	नवकार मंत्र का अक्षरात्मक विश्लेषण	७०
११७)	नवकार मंत्र का आंतरिक स्वरुप	७२
११८)	णमो पदकी विशेषताएँ	७३
११९)	पंच परमेष्ठि विवेचन	७५
१२०)	अरिहंत	७५
१२१)	सिद्ध	७६
१२२)	आचार्य	७७
१२३)	उपाध्याय	७७
१२४)	साधु	७८
१२५)	पाँच प्रकार के गुरु	७८
१२६)	णमो लोए सव्व साहुणं का रहस्य	७९
१२७)	नवकार चूलिका समीक्षा	८१
१२८)	जैन धर्म में गुण और गुणी पूजा का महत्त्व :	८३
१२९)	नवकार महामंत्र का आधार: गुण निष्पन्नता	८३
१३०)	नवकार महामंत्र क्यों ?	८४
१३१)	नवकार मंत्र : आभ्यन्तर तप	८५

अनु क्र.	नाम	पान क्र.
१३२)	नामस्मरण	८६
१३३)	नवकार महामंत्र का महत्त्व	८७
१३४)	भाव मंगल श्री नवकार	९१
१३५)	नवकार मंत्र स्वरुप मंत्र और विश्व का उत्तम मंत्र	९२
१३६)	महामंत्र का उपकार	९४
१३७)	पंच परमेष्ठि में तीन तत्व	९६
१३८)	भारतीय विद्याओं में मंत्रशास्त्र	९७
१३९)	मंत्र की परिभाषा	९९
१४०)	मंत्र के भेद	१०१
१४१)	मंत्र जप की उपयोगिता	१०२
१४२)	मंत्र जप के दो रुप - लौकिक और अध्यात्मिक	१०३
१४३)	मंत्र और अन्तर्जागरण	१०३
१४४)	नवकार मंत्र में निर्विकल्प आस्था	१०५
१४५)	नवकार मंत्र की तीन शक्तियाँ	१०५
१४६)	मंत्र ध्वनि- तरंग एवं प्रकाश	१०६
१४७)	शब्द ब्रह्म रुप मंत्र	१०७
१४८)	नवकार की महिमा : श्लोक	१०८
१४९)	अभयकुमार चरित में नवकार महिमा	११०
१५०)	सुकृत सागर में नवकार	१११
१५१)	पंच नमस्कृति दीपक में परमेष्ठि मंत्र	११२
१५२)	नवकार मंत्र का प्रभाव	११४
१५३)	नवकार मंत्र शांति का स्रोत	११६
१५४)	नवकार महामंत्र से ज्ञातृत्व भाव	११७
१५५)	द्रव्यात्मक पर्यायात्मक दृष्टि से नवकार का निरुपण	११८
१५६)	नवकार मंत्र और जप अष्ट शुद्धियाँ	११९
१५७)	द्रव्यशुद्धी	११९

अनु क्र.	नाम	पान क्र.
१५८)	क्षेत्रशुद्धी	११९
१५९)	कालशुद्धी	१२०
१६०)	आसन शुद्धी	१२०
१६१)	विनय शुद्धी	१२१
१६२)	मानसिक शुद्धी	१२१
१६३)	वचन शुद्धी	१२२
१६४)	देहशुद्धी	१२२
१६५)	नवकार के आराधक	१२३
१६६)	आराधक के लिए प्रयोजन भूत ज्ञान	१२३
१६७)	नवकार साधना की सच्ची प्रक्रिया	१२४
१६८)	आराधक के लिए उपयोगी शिक्षा	१२६
१६९)	नवकार से विनय का उद्‌बोध	१२८
१७०)	नवकार मंत्र की अपिरिवर्तनशीलता	१३०
१७१)	जप और जप के प्रकार	१३१
१७२)	कमल जाप्य	१३१
१७३)	हस्तांगुली जाप्य	१३३
१७४)	साधारण आवर्त	१३३
१७५)	पटनावर्त	१३३
१७६)	सिद्धावर्त	१३३
१७७)	मालाजाप्य	१३४
१७८)	जप्य का त्रिविध क्रम	१३५
१७९)	भाष्य जप	१३६
१८०)	उपांशु जप	१३६
१८१)	मानस जप	१३६
१८२)	पंचविध जप	१३७
१८३)	त्रयोदश विध जप	१३९

अनु क्र.	नाम	पान क्र.
१८४)	अनुपूर्वी जप	१४१
१८५)	नवकार मंत्र और ध्यान	१४३
१८६)	पंचपरमेष्ठि नवकार स्तवमें ध्यान	१४४
१८७)	नवकार मंत्र और चत्तारि मंगलं	१४४
१८८)	नवकार मंत्र और कथा का महत्त्व	१४८
१८९)	नाग-नागिन का उद्धार जब सुना नवकार : धरणेंद्र पद्मावती	१४९
१९०)	नवपदमय णमोक्कार जीवन में जयकार : मैना सुंदरी	१५१
१९१)	सबका रक्षक महामंत्र नवकार : अमरकुमार	१५३
१९२)	विषघर बना फूलों की माला : श्रीमती	१५५
१९३)	नवकार महामंत्र के चमत्कार प्रत्यक्ष अनुभवकी कसौटी पर : श्री गुलचन्द भाई	१५६
१९४)	निष्कर्ष	१५८
१९५)	संदर्भ द्वितीय प्रकरण	१५९ से १७३

●●

तृतीय प्रकरण

नवकार मंत्र का विशेष विश्लेषण और विश्वमैत्री

अनु क्र.	नाम	पान क्र.
१९६)	नवकार महामंत्र और विश्वमैत्री	१७४
१९७)	नवकार के आराधक अधिकारी	१७६
१९८)	नवकार मंत्र और शुभोपयोगी - शुद्धोपयोग	१७९
१९९)	सिद्ध, साधक ~~के भेद~~ और साधन - तीनों का नवपद में संगम	१८०
२००)	उपयोग के भेद	१८१
२०१)	साधक को कैसा उपयोग रखना चाहिए	१८२
२०२)	मनिषीयों और ज्ञानियोंका उपयोग के प्रती आदर	१८२
२०३)	षडावश्यक और नवकार मंत्र	१८३
२०४)	सामायिक	१८६
२०५)	सम्यक सामायिक	१८८
२०६)	श्रुत सामायिक	१८८
२०७)	चरित्र सामायिक	१८८
२०८)	बौद्ध और वैदिक धर्म की साधना पद्धति	१८९
२०९)	चतुर्विंशतिस्तव	१९१
२१०)	वंदना	१९३
२११)	प्रतिक्रमण	१९५
२१२)	बौद्ध धर्म में प्रवारणा	२०१
२१३)	कायोत्सर्ग	२०२
२१४)	प्रत्याख्यान	२११
२१५)	नवकार मंत्र के चार भावनाओं का समन्वय	२१८
२१६)	चार भावनामें क्रम व्यवस्था	२२४
२१७)	मैत्री आदि चारों भावनाओं का संक्षेप में निरुपण	२२४
२१८)	मैत्री भावना	२२४

अनु क्र.	नाम	पान क्र.
२१९)	मैत्री भावना सर्वश्रेष्ठ प्रार्थना	२२६
२२०)	उपसर्ग सहनेमें मैत्री भावना	२२८
२२१)	प्रमोद भावना	२२९
२२२)	द्रव्य का लक्षण	२३१
२२३)	गुण प्रधान जैन धर्म	२३१
२२४)	श्रीकृष्ण की गुण ग्राहिता	२३५
२२५)	सर्व दु:ख विनाशीनी करुणा भावना	२३६
२२६)	पर दु:ख विनाशीनी करुणा	२३७
२२७)	द्रव्य और भाव करुणा भावना	२३९
२२८)	करुणा सागर भगवान महावीर	२३९
२२९)	माध्यस्थ भावना	२४१
२३०)	उदासिनता	२४२
२३१)	नमस्कार महामंत्र और नवतत्व	२४४
२३२)	नयवाद से नवकार की सिद्धी	२४८
२३३)	नय की परिभाषा	२४८
२३४)	नय के प्रकार	२४९
२३५)	शुद्ध नयानुसार आत्मा का स्वरुप	२५१
२३६)	अष्टांग योग : नवकार महामंत्र परिशीलन	२५३
२३७)	नवकार से लेशा विशुद्धी का विश्लेषण	२५७
२३८)	लेश्याकी परिभाषा	२५८
२३९)	लेश्या से भावमुक्ति	२६३
२४०)	लेश्या और आगामी जन्म	२६४
२४१)	प्रशमरति प्रकरण में लेश्या का वर्णन	२६६
२४२)	रंग विज्ञान के आधार पर नवकार मंत्र का निरुपण	२६८
२४३)	नवकार मंत्र और शरीर विज्ञान	२७१
२४४)	नवकार से कृतज्ञभाव का उद्‌भव तथा विकास	२७२

अनु क्र.	नाम	पान क्र.
२४५)	मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नमस्कार महामंत्र	२७५
२४६)	इहलौकिक और परलौकिक दृष्टि से नमस्कार मंत्र का निरुपण	२७७
२४७)	नवकार मंत्र की सर्व सिद्धान्त सम्मतता	२७७
२४८)	आगम साहित्य में नवकार मंत्र	२७८
२४९)	चरण करणानुयोग की दृष्टि से नवकार मंत्र	२७९
२५०)	धर्माकथानुयोग की दृष्टि से नवाकर मंत्र	२७९
२५१)	गणितानुयोग की दृष्टि से नवकार मंत्र	२७९
२५२)	द्रव्यानुयोग की दृष्टि से नवकार मंत्र	२८०
२५३)	गणितशास्त्र की दृष्टि से नवकार मंत्र	२८०
२५४)	चतुर्विध संघ की दृष्टि से नवकार मंत्र	२८२
२५५)	वैयक्तिक उन्नति की दृष्टि से नवकार मंत्र	२८२
२५६)	इष्ट सिद्धि की दृष्टि से नवकार मंत्र	२८२
२५७)	ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से नवकार मंत्र	२८२
२५८)	राजनैतिक की दृष्टि से नवकार मंत्र	२८३
२५९)	अर्थशास्त्र की दृष्टि से नवकार मंत्र	२८४
२६०)	न्यायतंत्र और नमस्कार मंत्र	२८४
२६१)	वैधानिक दृष्टि से नवकार मंत्र	२८५
२६२)	चराचर विश्वकी दृष्टि से नवकार मंत्र	२८५
२६३)	अनिष्ट निवारण नवकार मंत्र	२८६
२६४)	नवकार मंत्र की विलक्षण शक्ति	२८६
२६५)	नवकार : परमात्मा - साक्षात्कार का निर्बाध माध्यम	२९०
२६६)	निष्कर्ष	२९४
२६७)	संदर्भ तृतीय प्रकरण	२९६ से ३१७

●●

प्रथम प्रकरण

नवकार मंत्र के मूलग्रंथ आगम वाङ्मय

महामंगलमय नवकार महामंत्र

विश्वके धर्मों में जैन धर्म का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है । जैन धर्म अहिंसा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनेकांत और विश्वशांति के सर्वकल्याणकारी आदर्शोंपर संप्रतिष्ठित है । प्रत्येक धर्म के अपने-अपने नमस्कार मंत्र अथवा मंगलसूत्र होते हैं ; जो श्रद्धालू धार्मिक जनों में चेतना, स्फूर्ति और ऊर्जा का संचार करते हैं ।

नवकारमंत्र यह जैन धर्म का महामंत्र है । यह नमस्कार रूप है, किन्तु इस महामंत्र में जैन दर्शन का तात्विक स्वरूप अत्यंत सुंदर ढंग से प्रस्तुत है । इस मंत्र में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये वंदनीय पाँच पद हैं - जिनके साथ साधना के उर्ध्वमुखी सूत्र संपृक्त है । सिद्ध पद, इस महामंत्र मे यद्यपि दूसरे स्थान पर प्रयुक्त है किन्तु वह आत्मा का परम विशुद्ध रूप है । प्रत्येक साधक का परम लक्ष्य सिद्धत्व अधिगत करना है । सिद्धत्व को प्राप्त करने के पूर्व साधुत्व स्वीकार करना आवश्यक है । साधुत्व - साधुपद को ग्रहण करने के बाद उपाध्याय पद को प्राप्त करना, आचार्य पद प्राप्त करना है । अरिहंत पद को प्राप्त कर सकते हैं और बादमें सिद्धत्व पद को याने मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं । इन सब के लिए साधुत्व स्वीकार करना अत्यंत आवश्यक है । इस साधुत्व पद याने "नमो लोए सव्व साहूणं" इस साधुत्व प्राप्त करने की दिशामें अग्रसर होने के लिए साधुत्व का विश्लेषण ज्ञात होना आवश्यक है कि यहाँ धर्म, संस्कृति, जैन परंपरा, आगमादि साहित्य चर्चा की जायें ।

साहित्य ही इसका माध्यम हैं । जिसके द्वारा साधुत्व का स्वरूप जाना जा सकता है । साथ ही साथ साधुत्व रूप का लक्ष्य विभिन्न मार्ग भी जैन वाङमय में प्रतिपादित किया गया है, जिन्हें अवगत कर साधुपद को स्वीकार करनेवाला साधक अपनी साधनामें सम्बल प्राप्त कर सकता है । अत: विश्वमें संप्रवहणशील धार्मिक स्त्रोत, उनके उद्गम विकास आदि की चर्चा करते हुए जैसा उपर उल्लेख हुआ है, जैन धर्म और साहित्य पर प्रकाश डालना नितांत आवश्यक है, जिससे यह शोध प्रबंधका विषय भली भाँति गृहीत किया जा सके । इसी दृष्टि से प्रस्तुत प्रकरण में जैन धर्म, दर्शन और साहित्य की तात्विक तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और विस्तार पर प्रकाश डाला गया है ।

मानव जीवन और धर्म

संसार के सभी प्राणियोंमे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं अध्यात्मिक दृष्टि से मानव का सर्व श्रेष्ठ स्थान है। मानव ही एक ऐसा मननशील प्राणी है, जो अपने हित अहित का यथावत रूपमें चिंतन करने में और उसके अनुसार क्रियाशील होने में सक्षम है। इसलिये मानव जीवन को बड़ा दुर्लभ और मूल्यवान माना गया है। इसी जीवनमें मनुष्य यदि सन्मार्ग का अवलंबन कर कार्यशील रहे तो वह उन्नतिके चरम शिखर पर पहुँच सकता है।

जीवन की परिभाषा

शरीर और आत्माका साहचर्य या सहवर्तीत्व जीवन है, जो पूर्वाचरित कर्मो पर आधारित है। कर्मों का आत्मा के साथ अनादि काल से संबंध चला आ रहा है।

जब तक सत्यका यथार्थ बोध नहीं होता तब तक मनुष्य की दृष्टि शरीर पर रहती है, आत्मा पर नहीं। शारीरिक सुख, सुविधा, भोग, उपभोग आदि पदार्थों में उसका मन ग्रस्त रहता है। जिससे इनकी प्राप्ति हो उसीको वह संग्रहित करने में उन्मत्त की तरह दौड़ता रहता है। भौतिक सुख सुविधायें प्राप्त करने का साधन धन है। धन एक ऐसा पदार्थ है, वह ज्यों ज्यों प्राप्त होता है, त्यों त्यों प्राप्त करनेवाले की इच्छायें उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है -

> "इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया।"
> इच्छायें आकाश के समान अनंत होती है।[१]

भौतिक सुखोंमें विभ्रांत मानव उन्हें पाने के लिये चिरकालसे दौड़ रहा है, पर वास्तविकता यह है कि - जिन्हें वह सुख मानता है, वे नश्वर है। इतना ही नहीं वे दु:खों के रूपमें परिणत हो जाते हैं। जिस शरीर के प्रति उसे अत्यधिक ममत्व है वह भी जीर्ण-शीर्ण, व्याधि ग्रस्त हो जाता है और एक दिन वह चला जाता है। यही बात परिवार पर और धन संपत्ति पर भी लागू होती हैं। ये सभी पदार्थ क्षणभंगूर है। परिवर्तनशील हैं। जिन भोगों को भोगने में मानव सुख मानता है, वे भोग रोगों के कारण बन जाते है।

"खणमित्त सोक्खा बहुकाल दुक्खा।" वे क्षणिक सुख चिरकाल तक दुख देनेवाले होते हैं।[२]

अध्यात्म एवं धर्म की भूमिका

भौतिक सुखों में विभ्रांत मानव उन सुखोंको प्राप्त करने के लिए चिरकाल से अविश्रांत रूप से दौड़ रहा है किंतु वास्तविकता यह है कि जिन्हें वह सुख मानता है, वे नश्वर हैं। इतना ही नहीं, वे दुःखों के रूप में परिणत हो जाते है। जिस शरीर के प्रति मानव को सबसे अधिक ममता है वह भी जीर्ण-शीर्ण और व्याधिग्रस्त हो जाता है और एक दिन सदा के लिए चला जाता है। यह सत्य, यह सच्चाई, परिवार, धन, वैभव, संपत्ति आदि सभी पर घटित होती है। ये सभी क्षणभंगूर है।

शरीर, परिवार, भौतिक सुख आदि की नश्वरता के भाव ने मानव को आत्मा की ओर प्रेरित किया। उसके फलस्वरूप वह आत्म-स्वरूप की गवेषणा में संलग्न हुआ और उसने अनुभव किया कि आत्मा ही सत्य है, परमतत्व है। उसने आप्त पुरूषों के वचनों से यह भी ज्ञात किया कि आत्मा में अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत बल है। वह कर्मों के आवरणों से आच्छादित है। अपने पराक्रम, उद्यम और पुरूषार्थ द्वारा जीव कर्मावरण हटा सकता है, नष्ट कर सकता है तथा अपने परम दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार कर सकता है। आध्यात्मिक शक्ति जागरण का यह प्रसंग है - जिसने मानव को भौतिक एषणाओं, अभिप्साओं और आकर्षणों से दूर किया।

भारतीय संस्कृति की त्रिवेणी

संस्कृति एक ऐसा विराट तत्त्व है, जिसमें ज्ञान, भाव और कर्म ये तीन पक्ष है, जिसे दूसरे शब्दोंमें बुद्धि, हृदयऔर व्यवहार कहा जाता है। इन तीनों तत्त्वोंका पूर्ण सामंजस्य होता है वह संस्कृति है। संस्कृतिमें १) तत्त्वज्ञान २) नीति ३) विज्ञान और ४) कला इनका समावेश होता है। एक लेखक ने लिखा है - बाहर की ओर देखना विज्ञान है। अंदर की ओर देखना दर्शन और उपरकी ओर देखना धर्म है। कला मानव जीवनका विकास है। अर्थात् संस्कृतिमें धर्म दर्शन, विज्ञान और कला है। संस्कृति को अंग्रेजी में कल्चर (Culture) कहा जाता है।

भारतवर्ष की यह विशेषता है कि जब संसार के अन्यान्य देशों के लोग केवल बहिर्जीवन या शारीरिक सुख तक के ही चिंतन में सीमित थे, यहाँ के ज्ञानी पुरुषों ने आत्मा के सूक्ष्म चिंतन में अपने आपको लगाया। शाश्वत एवं पवित्र विचार मनुष्य के

कर्ममय जीवन को सार्थक बनाते हैं। उत्तम विचार औरआचार का यह स्रोत उच्च कोटि के संस्कारों को जन्म देता है। वे संस्कार स्थिर, पवित्र और श्रेयस्कर होते हैं। संस्कारों की उस धारा को संस्कृति कहा जाता है। नि:संदेह भारतवर्ष सांस्कृतिक विकास और उन्नति की दृष्टि से बहुत ही सौभाग्यशाली रहा है। भारतीय संस्कृति राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध और गांधीकी है। राम की मर्यादा, कृष्ण का कर्मयोग, महावीर की सर्वभूत हितकारी अहिंसा और अनेकांत, बुद्ध की करूणा, गांधी की धर्मानुप्रणित राजनीति और सत्य का प्रयोग ही भारतीय संस्कृति है। 'दयतां, दीयंता, दम्यताम्' - याने दया, दान और दमन ही भारतीय संस्कृति का मूल है।[३]

भारतमें जन्म लेनेवालों का आचरण और व्यवहार इतना निर्मल और पवित्र है कि उनके पावन चरित्र की छाप प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ी। एतदर्थ ही आचार्य मनुने कहा है -

एतद्देश प्रसूतस्य, सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं- स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा ॥[४]

यहाँ वैदिक, जैन और बौद्ध परंपराओं के रूप में संस्कृति की त्रिवेणी संप्रवाहित हुई, वह अत्यंत गौरवपूर्ण है।

इन तीनों सांस्कृतिक धाराओं को वैदिक संस्कृति और श्रमण संस्कृति के रूपमें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। इनका संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है।

वैदिक संस्कृति

वैदिक संस्कृति, ब्राह्मण संस्कृति के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ ब्राह्मण शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। ब्राह्मण संस्कृतिमें संन्यासी एकाकी साधना के पक्षधर रहे, उन्होने वैयक्तिक साधनाको अधिक महत्त्व दिया है। वे एकांत शांत वनोंमें, आश्रम में रहते थे। उन आश्रमों में अनेक ऋषिगण भी रहते थे। पर सभी वैयक्तिक साधना ही करते थे और जो ब्रह्म या परमात्मा को जानता है या ब्रह्म की उपासना करता है, उसे ब्राह्मण कहा जाता है।[५] ब्राह्मण संस्कृति के आधार वेद है। वेद शब्द संस्कृत की विद् धातु से बना है, जो ज्ञान के अर्थ में है। वेद में उन सिद्धांतों का वर्णन है, जो मानव को ज्ञान द्वारा सन्मार्ग दिखलाते है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, एवं अथर्ववेद के रूप में वेद चार हैं। वेदों को श्रुति भी का कहा जाता है क्यों कि इनको गुरू से सुनकर शिष्य अपनी स्मृति में रखते थे।

वैदिक संस्कृति या धर्म के अंतर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र - इन चार वर्णों में समाज को विभक्त किया गया। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के रूप में जीवन

को चार भागों मे बाँटा गया, जो आश्रम कहे जाते हैं।

विषय की दृष्टि से वेदों के कर्मकांड और ज्ञानकांड दो भाग है। कर्मकांड में यज्ञ, याग आदि का वर्णन है। वैदिक काल में यज्ञों का बहुत ही प्रचलन था। 'स्वर्ग कामों यजेत्' अर्थात् जो स्वर्ग की कामना करता हो, उसे यज्ञ करना चाहिए। इस सिद्धांत के अनुसार अश्वमेध, राजसूय आदि अनेक प्रकार के यज्ञ किये जाते थे। यज्ञों में पशुओं की बलि भी दी जाती थी। ऐसा माना जाता था कि यज्ञ में हिंसित पशु स्वर्ग प्राप्त करता है। इसलिए "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" - अर्थात् वैदिक विधि के अनुसार यज्ञ आदि में की गई हिंसा, हिंसा नही मानी जाती थी। उसमें हिंसा का दोष नहीं लगता, किसी प्रकार का पाप नहीं होता; परंतु जैन धर्म को यह मान्यता मान्य नहीं है-[५] क्योंकि जैन धर्म अहिंसावादी धर्म है।

ज्ञानकांड में उपनिषद आते हैं। जिनमें आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, विद्या, अविद्या इत्यादि तत्त्वों का विवेचन है। आध्यात्मिक ज्ञान की दृष्टि से उपनिषदों का भारतीय साहित्य में बहुत महत्त्व है।

वेदों के अतिरिक्त स्मृतियाँ, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, पुराण, इतिहास आदि के रूप में और भी विशाल साहित्य है, जिसमें वैदिक संस्कृति के आदर्शों का विवेचन है। विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार महर्षि गौभ्रंका न्याय, कणाद का वैशेषिक, कपिलका सांख्य, पातंजलका योग, जेमिनीका पूर्वमीमांसा और बादरायणका उत्तरमीमांसा अथवा वेदांत - ये सब वैदिक दर्शन के नाम से जाने जाते है क्योंकि ये वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार करते है।[६]

●●●

श्रमण संस्कृति

श्रमण संस्कृत शब्द है। उसका प्राकृत रूप 'समण' है। इसके मूल में 'सम' है। संस्कृत के श्रम, शम तथा सम - इन तीनों शब्दों का प्राकृत में एक मात्र 'सम' ही होता है। समण वह है जो पुरस्कार के पुष्प को पाकर प्रसन्न नहीं होता और अपमान के हलाहल से खिन्न नहीं होता, अपितु सदा मान, अपमान में सम रहता है।[७] उत्तराध्यन सूत्र में कहा है - सिर मुंडा लेने से कोई समण नहीं होता, किंतु समता का आचरण करनेसे ही समण होता है।[८]

सूत्रकृतांग सूत्र में समण के समभाव की अनेक दृष्टियोंसे व्याख्या करते हुए लिखा है - मुनिको गोत्र-कुल आदिका मद न कर, दूसरोंके प्रति घृणा न रखते हुए सदा समभाव में रहना चाहिए।[९] जो दूसरोंका अपमान करता है वह दीर्घकाल संसार में परिभ्रमण करता है।

अतएव मुनि (साधु) मद न कर समता में रहे।[१०] चक्रवर्ती दंडित होने पर अपने से पूर्वदीक्षित अनुचर को भी नमस्कार करने में संकोच न करें, किंतु समता का आचरण करें। प्रज्ञासंपन्न मुनि क्रोध आदि कषायों पर विजय प्राप्तकर समता धर्मका निरूपण करें।[११]

यों समण 'श्रमण' शब्द श्रम, शम तथा सम के साथ संपृक्त तीन प्रकार के अर्थों से जुड़ जाता है।

श्रम का अर्थ उद्यम तथा व्यवसाय है, जो एक श्रमण के संयम, सदाचरण तथा तपोमय जीवन द्योतक है। एक श्रमण अपनी साधना में सतत् प्रयत्नशील, पराक्रमशील रहता है। ज्ञान के साथ क्रियाशीलता उसके जीवन की विशेषता है। श्रम में क्रियाशीलता सन्निहित है।

शम, निर्वेद, वैराग्य एवं त्याग का बोधक है। त्याग ही एक श्रमण के जीवन का अलंकरण है।

सम का अभिप्राय; प्राणिमात्र के प्रति समत्वभाव या समता है। अहिंसा एवं करूणा जीवन में तभी फलित हो सकती है, जब व्यक्ति के अंत:करण में 'आत्मवत् सर्वभुतेषु' का भाव हो। विश्वमैत्री का यही मूलमंत्र है। श्रमण के विश्व वात्सल्यमय जीवन का समत्व में संसूचन है। श्रमण आत्मकल्याण के साथ-साथ जन-जन के कल्याण में निरत रहता है।

श्रमण शब्द की यह सामान्य रूप से शाब्दिक व्याख्या है। बौद्ध धर्म और जैन धर्म दोनों परंपराएँ श्रमण संस्कृति में समाविष्ट है। श्रमण संस्कृति कर्मवाद पर आधारित है। जो पवित्र और श्रेष्ठ कर्म करता है वही उच्च है। जो हिंसा, निर्दयता, लोभ आदि अशुभ कर्मो से संलग्न रहता है, वह नीच है।

बौद्ध धर्म

महात्मा बुद्ध ने भी ऐसा कहा है कि - "जो व्रतयुक्त है, सत्यभाषी है, इच्छा और लोभ से रहित है, जो छोटे बड़े पापों का शमन करता है वह श्रमण है।"[१२]

बौद्ध धर्म संसार के प्रमुख धर्मो में है। इसका भारत के बाहर के देशों में भी प्रचार है। भगवान बुद्ध ने इसका उपदेश दिया, जो भगवान महावीर के समकालीन थे। बौद्ध धर्म में ऐसा माना जाता है कि उनसे पूर्व भी अनेक बुद्ध हुए हैं। इतिहासकार प्राय: भगवान बुद्ध को ही बौद्ध धर्म का प्रवर्तक मानते हैं। बौद्ध धर्म में चार आर्य सत्य स्वीकार किये गऐ हैं

१) दु:ख है २) दु:ख का कारण है ३) दु:ख का निरोध किया जा सकता है ४) दु:ख के *निरोध का मार्ग है।* [१३]

बुद्ध ने मध्यम मार्ग को स्वीकार किया। अत्यंत त्याग और अत्यंत भोग के बीच के मार्ग को लेकर उन्होने धर्म के सिद्धांतों का प्रसार किया।

बौद्ध धर्म के सर्वाधिक मान्य शास्त्र पिटक कहलाते हैं। वे तीन है - १) विनय पिटक, २) सुत्त पिटक तथा ३) अभिधम्म पिटक। उनमें भिक्षुओं के आचार के नियम, मुख्य सिद्धांत एवं तत्वों का विवेचन है।[१४]

बौद्ध धर्म के हीनयान तथा महायान - मुख्य दो संप्रदाय हैं। हीनयान में ऐसा माना जाता है कि शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की वासनाएँ हैं। निर्वाण ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। हीनयानी साधक स्वकल्याण पर जोर देते हैं।

महायान संप्रदाय में अशुभ वासनाओं को छोड़कर शुभ वासनाओं के विकास पर जोर दिया है। वे करुणा को बहुत महत्त्व देते हैं।

●●●

जैन धर्म

जैन धर्म का विश्व के धर्मों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह आत्म- कल्याण और प्राणीमात्र के श्रेयस के सिद्धांतों पर आधारित हैं। जैन धर्म अनादि अनंत है। जिनों द्वारा उपदिष्ट होने के कारण यह जैन कहलाता है। "जयति राग द्वेषौ इति जिन:" जो राग एवं द्वेष को जीत लेते हैं, वे जिन कहलाते है। वे सर्वज्ञ होते हैं, क्योंकि उनके ज्ञान के आवरण नष्ट हो जाते हैं। वैसे वीतराग महापुरुष विभिन्न कालोंमें धर्म का प्रतिबोध देते हैं, उन्हें तीर्थंकर भी कहा जाता है। यहाँ तीर्थ शब्द का प्रयोग बाह्य तीर्थ स्थानों के लिए नहीं है। श्रमण, श्रमणी, श्रमणोपासक - श्रमणोपासिका रुप चतुर्विध धर्म संघ यहाँ तीर्थ शब्द से अभिहित है। वे सर्वज्ञ प्रभु उसकी स्थापना करते हैं। इसलिए तीर्थंकर कहलाते हैं, 'तीर्यतेऽनेनेति तीर्थम्'।

जिसके द्वारा तीर्थ किया जाता है या पार किया जाता है, वह तीर्थ है।[१५] धर्म - तीर्थ संसार - सागर को पार करने का, जन्म- मरण रुप आवागमन से छूटने का साधन या माध्यम है।

●●●

इतिहास एवं परम्परा

ऐतिहासिक दृष्टिसे देखें तो जैन धर्म पहले इस नाम से प्रचलित नहीं था, तो जैन धर्म के लिए 'निर्ग्रंथ' शब्द का उपयोग किया जाता था। जैन आगमोंमें निग्गंथ शब्द प्रसिद्ध है। निग्गंथ शब्द का संस्कृतरुप निर्ग्रन्थ है। निर्ग्रंथ याने (धन, धान्य इत्यादी) बाह्यग्रंथी और (मिथ्यात्व, अविरति, और क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि) अंतरग्रंथी अर्थात् बाह्यांतर परिग्रहसे रहित संयमी साधु को निर्ग्रंथ कहा जाता था। उन्होने कहे हुए सिद्धांतों को 'निर्ग्रंथ प्रवचन' कहा जाता है।

आवश्यक सूत्र में "निग्गंथं पावयणं" शब्द आया है।[१६] पावयणं शब्द का अर्थ प्रवचन होता है। जिसमें जीवाजीव इत्यादि पदार्थोंका और ज्ञान, दर्शन इत्यादि रत्नत्रय साधना का यथार्थ रूप में निरुपण किया जाता है। शास्त्रानुसार बिंदुसार पूर्वतक का ज्ञान निर्ग्रंथ प्रवचनमें समाविष्ट हुआ है।[१७]

जैन धर्म में चौबीस तीर्थंकर माने गये हैं, जो विभिन्न युगों में अनंत बार होते रहे हैं एवं होते हैं। वर्तमान युग के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर थे। उन द्वारा उपदिष्ट सिद्धांतों पर जैन धर्म आश्रित है। उन्होने धर्म परिषदों में अर्धमागधी प्राकृत में जो उपदेश दिया, वह उनके प्रमुख शिष्योंद्वारा शब्दरुप में संकलित सुग्रंथित किया गया।[१८] वही उपदेश आगमों के रुप में हमें प्राप्त है। उसेही द्वादशांगी वाणी कहते हैं। उसका संकलन, आकलन, रचना गणधरोने की है।[१९] वे अंगसूत्रकें रुपमें हैं। 'अंगसूत्र' को समवायांग सूत्रमें गणिपिटक कहा गया है। जिसमें गुणों का समुदाय होता है ऐसे आचार्योंका 'गणि' कहा जाता है। और पिटक याने पेटी, मंजूषा, पेटारा ऐसा अर्थ होता है। इसप्रकार श्रुतरत्नों की पेटी को गणिपिटक कहते हैं।[२०] ये अंग, उपांग, छेद, मूल तथा आवश्यक रूप में मुख्यत: बत्तीस आगम है।[२१] श्वेताम्बर जैन परम्परा के सभी आम्नायोंद्वारा वे स्वीकृत है। उनमें साधुओं के व्रत, आचार, नियम, दिनचर्या, भिक्षाचर्या, रहनसहन, विहारयात्रा, तपश्चरण इत्यादि का तथा श्रमणोपासकों के व्रत, नियम आदि का वर्णन है। इन आगमों में तत्कालीन समाज, शासन, राज्य व्यवस्था, कृषि, सुरक्षा, व्यापार, कला, शिक्षा, यान, वाहन, भवन इत्यादि का भी बड़ा सजीव वर्णन है, जिससे देश की तत्कालीन स्थिति का यथार्थ परिचय प्राप्त होता है। वास्तव में ये आगम भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है।

दिगम्बर परंपरा में षट्खंडागमों का विशेष महत्त्व हैं। धरसेन नामक आचार्य से, जिन्हें आंशिक रुप में पूर्वो का ज्ञान था, विद्याध्ययन कर भूतबली और पुष्पदंत नामक मुनि द्वय ने षट्खंडागम की रचना की। इसके छह भाग है इसलिए इन्हें षट्खंडागम कहा जाता है। इनमें जीव तत्व, कर्म सिद्धांत इत्यादि का बड़ा विस्तृत विवेचन है।

वीरसेन नामक आचार्य ने इन पर 'धवला नामक' टीका की रचना की। इसमें संस्कृत और प्राकृत का मिश्रित रुप में प्रयोग है, जिसे मणि - प्रवाल न्याय मूलक शैली कहा जाता है। जैसे मणियों और प्रवाल को एक साथ मिला दिया जाये तो भी वे पृथक् पृथक् दृष्टि गोचर होते है, उसी प्रकार इस रचना - शैली में संस्कृत और प्राकृत अलग - अलग दिखाई पड़ते है।

दिगंम्बर परंपरा में आचार्य कुंदकुंद का भी बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होने समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय तथा नियमसार आदि ग्रंथों की रचना की, जो आगम तुल्य माने जाते हैं। उनमें निश्चय, नय और शुद्धोपयोग की दृष्टि से अध्यात्म तत्व का बहुत ही सूक्ष्म विवेचन हैं।

जैन धर्म की सार्वजनीनता -

जैन धर्म जन्म, जाति, वर्ण, वर्ग, रंग, लिंग, देश आदि की संकीर्ण सीमाओं से प्रतिबद्ध नहीं है। वह आकाश की तरह व्यापक और समुद्र की तरह विशाल तथा गंभीर है। ।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है - कर्म से ब्राह्मण होता है , कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र होता है।[२२]

भगवान महावीर ने जन्मगत जातिवाद के विरुद्ध एक बहुत बड़ी क्रांति की। "एकैव मानुषी जाति रन्यत सर्व प्रपंचनम्" मनुष्य जाति एक है। उसमें भेद करना प्रपंच मात्र है वास्तविकता नहीं है। भगवान महावीर के सिद्धांतों में मानवीय एकता का यह सूत्र फलित था।

भगवान महावीर के साधु संघ में सभी जातियों के व्यक्ति सम्मिलित थे। वहाँ साधु संघ में प्रविष्ट होने का आधार वैराग्य, त्याग और संयम था। भगवान महावीर स्वयं क्षत्रिय जाति के थे। उनके प्रमुख शिष्य ग्यारह गणधर, जो उनके श्रमण संघ के अंतर्गत भिन्न - भिन्न साधु समुदायों के संचालक थे, ब्राह्मण जाति केथे। वेद वेदांत के बड़े विद्‌वान थे। भगवान महावीर से प्रभावित होकर उन्होने जैन दीक्षा स्वीकार की।

भगवान महावीर के साधु संघ में अछुतों तक के लिए, जिन्हें चांडाल कहा जाता था, प्रवेश पाने का द्वार खुला था। उत्तराध्ययन में हरिकेश मुनि का एक प्रसंग है, जो जाति से

चांडाल थे। वहाँ कहा गया है -

ये श्वपाक - पुत्र, चांडालकुलोत्पन्न हरिकेश मुनि है, जिनकी तपश्चर्या की विशेषता साक्षात् दिखाई देती है, जाति की कुछ भी विशेषता दिखाई नहीं देती। इनके तप की ऋद्धि अत्यंत प्रभावशालिनी है।[२३]

हरिकेश मुनि के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि नीच कहे जाने वाली जातियों में भी उच्च कोटि के ज्ञानी एवं तपस्वी महापुरुष हुए हैं। वहाँ व्रत, त्याग, शील और आत्मोपासना, अहिंसा, करुणा, दया, सेवा और मैत्री भावना का महत्त्व है।

भगवान महावीर के समय में देश में हिंसा का मानो तांडव नृत्य हो रहा था। कुछ लोग तो हिंसा को धर्म का साधन मानते थे। जैसा पहले संकेत दिया है कि भगवान महावीर की क्रांति अहिंसक क्रांति थी। उन्होने अहिंसा को सबसे बड़ा धर्म बतलाया। कहने के लिए तो अन्य धर्मों में भी "अहिंसा परमो धर्मः"[२४] कहा जाता है किंतु उनके जीवन में अहिंसा का स्वीकार नहीं था। भगवान महावीर ने मन, वचन और कर्म द्वारा अहिंसक भाव अपनाने की प्रेरणा दी।

जैन धर्म की दृष्टि से सदाचार, सत्य, संतोष, इन्द्रिय दमन आत्मनिग्रह, राग-द्वेष लोभ आदि का नियंत्रण - इन गुणों का ही महत्त्व है। व्यक्ति विशेष का कोई महत्त्व नहीं है, चाहे वह लौकिक दृष्टि से कितना ही बड़ा वैभवशाली और सत्ताधीश क्यों न हो। वहाँ तो वे ही पूजनीय हैं, उन्हीं का सर्वाधिक महत्त्व है, जिनमें ये गुण हैं, वे ही आदर और सम्मान के पात्र होते हैं।

जैन धर्म का अंतिम लक्ष्य : शाश्वत शांति -

जैन धर्म के अनुसार धार्मिक कार्य - कलापों का अंतिम या मूल उद्देश्य शाश्वत शांति और मोक्ष की प्राप्ति करना है। अनंतज्ञान और अनंतदर्शन आत्मा के स्वाभाविक गुण है। संसार के प्राणियों में मनुष्य सर्वाधिक विकसित प्राणी है। आत्मा की विशुद्ध अवस्था का अनुभव करने की उसमें शक्ति है। तीर्थंकरों द्वारा निर्दिष्ट धार्मिक एवं नैतिक संस्कृति आत्मा को पूर्णत्व की आर ले जाने के लिए एक व्यावहारिक मार्ग की संरचना करती है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारतीय धर्मों में मोक्ष प्राप्त करने की आवश्यकता

पर बल दिया गया है। उनमें और जैन धर्म के सिद्धांत में विशेष अंतर यह है कि जो त्याग और साधना की गहराई इसमें है, वह अन्यत्र नहीं मिलती।[२५] जैन धर्म पुरुषार्थ - सिद्धिसे सर्वार्थ सिद्धि की सफल तीर्थ - यात्रा है। वह सिद्ध पुरुषों अर्थात् शूरवीरोंका धर्म है।[२६]

कालचक्र

काल चक्र की तरह अनादि कालसे भ्रमणशील है। न उसका आदि है और न अंतही। कालचक्र बैलगाड़ी के आरों की भाँति नीचे से उपर और उपरसे नीचे घूमता रहता है।[२७]

जंबूद्विप प्रज्ञाप्ति सूत्रमें गौतम गणधरने भगवान महावीर से प्रश्न किया - भगवान् ! जंबूद्विपके अंतर्गत भरतक्षेत्र में कितने प्रकारका काल कहा गया है ?

भगवान महावीर ने उत्तर दिया -"गौतम, अवसर्पिणी काल और उत्सर्पिणी काल के रूपमें वह दो प्रकार का कहा गया है।"[२८] गौतमने पुन: पूछा, "भगवन् ! अवसर्पिणी काल कितने प्रकार का है ?"

भगवान ने कहा - "गौतम ! अवसर्पिणी काल छह प्रकारका है।

१) सुषम-सुषम काल २) सुषमा काल ३) सुषम दु:षमा काल
४) दुषम- सुषमा काल ५) दु:षमा काल ६) दु:षम - दु:षमा काल."

गौतम ने पुन: प्रश्न किया, "भगवन् ! उत्सर्पिणी काल कितने प्रकार का है ?" भगवानने उत्तर दिया - "गौतम ! उत्सर्पिणी काल छह प्रकार का है।"

१) दुषम - दु:षमा काल २) दु:षमा काल ३) दु:षम - सुषमा काल
४) सुषम-दु:षमा काल ५) सुषमा काल ६) सुषम -सुषमा काल।[२९]

समीक्षा :

सर्पण शब्द का अर्थ रेंगना, सरकना या चलना है। कालके दोनों भेदोके साथ यह शब्द जुड़ा हुआ है। काल सर्प की तरह रेंगता हुआ शनै: शनै: अपनी गतिसे चलता है। अवसर्पिणी शब्दमें जो 'अव' उपसर्ग लगा है। वह अपकर्ष या ऱ्हास का द्योतक है।

उत्सर्पिणी शब्दमें 'उत्' उपसर्ग लगा है, वह उत्कर्ष या वृद्धि का सूचक है।

अवसर्पिणी काल सभी दृष्टियोंसे क्रमशः ऱ्हासोन्मुख होता है। उसके जो छह भेद बतलाये गये हैं। वे चक्र या पहिये के आरक की तरह है, इसलिये इन्हें आरक या आरा कहा जाता है।

अवसर्पिणी काल के छह आरे -

अवसर्पिणी कालका पहला आरक सुषम सुषमा कहा गया है। सुषमा शब्द सुंदरता, समृद्धि या सुकुमारता का द्योतक है। प्रथम आरक में यह दो बार आया है। इसका तात्पर्य यह है कि - इस कालमें जीवों की शक्ति, अवगाहना, आयु तथा समस्त पदार्थ अत्यंत उत्कर्षमय होते हैं। शास्त्रों में उनका विस्तारसे वर्णन किया गया है।

यह आरक या काल उत्तरोत्तर ऱ्हासोन्मुख होता है जो सुषमा या सुखमयता प्रथम आरक में होती है वह दूसरे आरक में नही होती। उसमें अपेक्षाकृत हीनता या न्यूनता आ जाती है। इस लिये दूसरे आरक के नाम में सुषम-सुषमा के बदले केवल सुषमा ही रह जाता है। केवल अत्यंत सुखमयता में परिवर्तित हो जाता है। उसमें अत्यंतता या अधिकता नही रहती। यह अपकर्ष या ऱ्हास का क्रम उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है।

तीसरे आरक में सुखमयता, दूसरे आरक की अपेक्षा कम हो जाती है। अर्थात उसमें सुख के साथ दुःख भी जुड़ जाता है। इसमें सुख अधिक होता है और दुःख कम होता है। काल के प्रभाव से धरती के रसकस कम हो जाते हैं। इस आरे में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का जन्म होता है। उन्होने पुरुषोंको के लिये (७२) बहत्तर कलायें और स्त्रियों को चौषठ (६४) कलायें बताई है।

वे स्वयं प्रवर्जित होकर साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध धर्म संघ की स्थापना करते हैं। वे मुनियों के लिये पांच महाव्रत और गृहस्थोंके लिये बारह व्रतों का उपदेश देते हैं और वे आयु पूर्ण कर मोक्षगामी होते हैं।

इस आरक को सुषम दुषम कहा जाता है। सुषम शब्द को दुषम से पहले प्रयुक्त किया जाना इसी भावका द्योतक है।

चतुर्थ आरकमें दुःख का भाग अधिक होता है तथा सुखका भाग कम होता है। इसलिये इसे दुःषम-सुषमा कहा जाता है। दुःषम शब्दको सुषम से पूर्ण प्रयुक्त किया जाना इसीका सूचक है। इस आरकमें चोबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी मोक्ष प्राप्त करते है।

पंचम आरेको दु:षम कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि - वह सर्वथा दु:खमय होता है। उसमें सुख नही होता। इस आरेमें वर्णादि पर्यायोंमे अनंतगुणा हीनता आ जाती है। क्रमश: ऱ्हास होते जाता है।

छठे आरक में दु:ख की अत्यधिकता हो जाती है तथा वह घोर दु:खमय होता है, इसलिये इसे दु:षम-दुषमा कहा गया है। दुषम शब्द का दोबार प्रयोग उसकी घोर दु:खमयता का सूचक है।

अवसर्पिणी काल का प्रथम आरक अत्यंत सुखमय और अंतिम आरक अत्यंत दु:खमय होता है। उसकी पराकाष्ठा क्रमश: घटती घटती दु:खकी पराकाष्ठामें परिवर्तित होती है।

उत्सर्पिणी काल के छह आरे

अवसर्पिणी काल के पश्चात् उत्सर्पिणी काल आता है। उसका गतिक्रम अवसर्पिणीसे सर्वथा विपरीत या उलटा होता है। अवसर्पिणी के अंतिम आरक दुषम-दुषमा के समान ही उत्सर्पिणीका प्रथम आरक होता है। जिस प्रकार अवसर्पिणी में क्रमश: सुख घटता जाता है और दु:ख बढ़ता जाता है। उसी प्रकार उत्सर्पिणी में दु:ख घटता जाता है और सुख बढ़ता जाता है। जिस अवसर्पिणी का अंतिम आरक नितांत दु:खमय होता है उसी प्रकार उत्सर्पिणीका प्रथम आरक घोर दु:ख पूर्ण होता है, इसलिये उसका नाम भी दुषम-दुषमा है।

अवसर्पिणी के पंचम आरे समान उत्सर्पिणीका द्वितीय आरक होता है। दोनों की संज्ञा दुषमा काल है। दोनों दु:खमय है। उत्सर्पिणीके दुषम नामक दूसरे आरेमें भरतक्षेत्रमें सर्वत्र पांच प्रकार की वृष्टि होती है। वनस्पतियों में पाँच रसों की उत्पत्ति होती है।

उत्सर्पिणी का तीसरा आरक दु:ख की बहुलता और उसकी अपेक्षा सुखकी अल्पता का काल है। वह दु:षम-सुषमा नामक है। वह अवसर्पिणी काल के चौथे आरेके समान इसमें प्रथम तीर्थंकर का जन्म होता है।

उत्सर्पिणी का चौथा आरक सुषम-दुषमा काल है। उसमें सुख अधिक है, और दु:ख कम है। इसमें चोबीसवे तीर्थंकर मोक्षमें जाते है। वर्णादि शुभ पर्यायोंमे वृद्धि होती है। उसी प्रकार अवसर्पिणीका तीसरा काल है।

उत्सर्पिणीका पांचवा सुषमा काल है; जो सुखमय है। उसी प्रकार अवसर्पिणी का दूसरा काल सुखमय है। इसमें वर्णादि शुभपर्यायो की वृद्धि होती है।

उत्सर्पिणी का छठा आरक सुषम-सुषमा है। जो अत्यंत सुखमय है। अवसर्पिणी का प्रथम आरा इसके सदृश है।[३०]

●●●

समीक्षा

प्रकृति जगत् के वातावरण में क्षण-क्षण परिवर्तन होता रहता है। वह परिवर्तन अनेकमुखी होता है। उसके परिणाम स्वरूप जगतमें विद्यमान पदार्थ भी बदलते जाते हैं। पुद्गलात्मक परिणमन भी विविधतामय होता जाता है। उस परिवर्तन के अनुरूप जैविक जीव की स्थितियाँ भी विविध रूपमें प्रकट होती है। वहाँ परिवर्तन की धारा उत्कर्ष और अपकर्ष को लेकर द्विमुखी होती है। उसे उत्सर्पण और अवसर्पण द्वारा व्यक्त किया गया है। कालचक्र के दोनों रूपों के साथ क्रमशः यही भाव जुड़ा रहता है।

"उत्सर्पिणी प्रथम और अवसर्पिणका अंतिम काल अत्यधिक विकार युक्त होता है। सभी पदार्थ दुर्गति और दूखवस्था लिये रहता है। वैसी घोर पापमय स्थितियों पर सोचते हुए व्यक्ति के अंतःकरण में यह भाव उत्पन्न होता है कि-अपनी अनुकूल जिस स्थिति में वह है वैसी नहीं है, उसको उसका लाभ लेते हुए धर्माचरणमें लीन रहना चाहिये।

कालचक्र के स्वरूप के परिशीलन से जगत की विचित्रता और विषमता का बोध होता है, और इस भ्रमणशील काल चक्र को पार कर परमसुख को प्राप्त करना उससे मानव आत्मावलोकन में उत्प्रेरित होता है।

●●●

तीर्थंकर एवं धर्मतीर्थ

वर्तमान अवसर्पिणी के तीसरे चौथे आरेमें चौबीस तीर्थंकर हुए है, जो निम्नांकित है -

१) श्री ऋषभदेवजी	२) श्री अजितनाथजी	३) श्री संभवनाथजी
४) श्री अभिनंदन स्वामीजी	५) श्री सुमतिनाथजी	६) श्री पद्मप्रभुजी
७) श्री सुपार्श्वनाथजी	८) श्री चंद्रप्रभुजी	९) श्री सुविधिनाथजी
१०) श्री शीतलनाथजी	११) श्री श्रेयांसनाथजी	१२) श्री वासुपुज्यस्वामीजी
१३) श्री विमलनाथजी	१४) श्री अनंतनाथजी	१५) श्री धर्मनाथजी

१६) श्री शांतिनाथजी १७) श्री कुंथूनाथजी १८) श्री अरनाथजी

१९) श्री मल्लिनाथजी २०) श्री मुनिसुव्रत स्वामीजी २१) श्री नमिनाथजी

२२) श्री नेमिनाथजी २३) श्री पार्श्वनाथजी २४) महावीरस्वामीजी[३१]

श्री जैन-सिद्धांत बोल संग्रह भाग - ६ में चौबीस तीर्थंकरो के च्यवन, विमान, जन्म-स्थान, जन्म, माता-पिता के नाम, लांछन एवं शरीरप्रमाण आदिका उल्लेख है।[३२]

तीर्थंकरों की ऐसी अनंत चौबीसियाँ हो चुकी है और होती रहेगी। [३३]

तीर्थंकर एवं धर्मतीर्थ

तीर्थंकर शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। श्रमण-श्रमणी श्रमणोपासक तथा श्रमणोपासिका इन चारोंका समुदाय तीर्थ या धर्मतीर्थ कहा जाता है। तीर्थंकर अपने-अपने युगमें उसकी स्थापना करते है। वे सर्वज्ञ होते है क्योंकि उनके ज्ञानावरणीय कर्म दर्शनावरणीय कर्म, मोहनीय कर्म और अंतराय कर्म के क्षय होने से वे वीतराग, सर्वज्ञ केवली हो जाते हैं। वे धर्म देशना देते हैं। जिसमें तत्त्वदर्शन एवं आचार विधा का विवेचन होता है।

एक तीर्थंकर की परंपरा जब तक चलती हैं, तब उनकी वाणी के आधार पर ही सभी धार्मिक उपक्रम गतिशील होते है। वर्तमान युग में धर्मतीर्थ या जैनधर्म भगवान महावीर के द्वारा दी गई धर्म देशना या उपदेश के आधारपर गतिशील है।

तीर्थंकरोंपदेश - आगम :

आगम विशिष्ट ज्ञान के सूचक है, जो प्रत्यक्ष बोध के साथ जुड़ा हुआ है। दूसरे शब्दोंमें ऐसा कहा जा सकता है कि - जिनका ज्ञान, ज्ञानवरणीय कर्म के अपगम या क्षय से सर्वथा निर्मल और शुद्ध हो जाता है। संशय और संदेह रहित होता है। ऐसे आप्त पुरूषों - सर्वज्ञ महापुरूषों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतो का संकलन आगम है।[३४]

तीर्थंकर सर्वदर्शी सर्वज्ञाता होते है। क्योंकि उनके दर्शनावरणीय, ज्ञानावरणीय कर्म क्षीण हो जाते है। वे धर्म देशना देते हैं। जन-जन को धर्म के सिद्धांतोंका, आचार का, ज्ञान प्रदान करते हैं। एक-एक युगमें एक एक तीर्थंकर की धर्मदेशना चलती है। यद्यपि, तात्त्विक रूपमें तो कोई भेद नहीं होता, पर आगे होनेवाले तीर्थंकर अपने युग को अपनी वाणी द्वारा संबोधित करते हैं।

उनके द्वारा प्रतिपादित विचारोंका संकलन शब्दरूपमें संग्रथन (गूंथना) उनके प्रमुख शिष्य गणधर करते हैं। यह ज्ञानका स्रोत - आगम इसलिए कहा जाता है कि - यह अनादि कालकी परंपरासे चला आ रहा है। वर्तमान युगमें भगवान महावीर की धर्मदेशना हमें आगमों के रूपमें प्राप्त है। जिसका गणधरोंनें संकलन किया।

भगवान की धर्मदेशनाके संबंधमें आचार्य भद्रबाहू ने लिखा है - अर्हत- तीर्थंकर अर्थ भाषित करते है। सिद्धांतो या तत्वोंका आख्यान करते है। धर्मशासन या चतुर्विध धर्म संघ के हित-लाभ या कल्याणके लिए गणधर निपुणतापूर्वक - कुशलतापूर्वक सूत्ररूप में उनका ग्रंथन करते है - शब्दरूप में संकलन करते है। इस प्रकार सूत्रका प्रवर्तन - प्रसार होता है।[३५]

आचार्य श्री पूज्य देवेंद्रमुनिजी महाराज ने जैनागम साहित्य नामक विशाल ग्रंथमें आगम साहित्यका महत्त्व, आगमके पर्यायवाची शब्द, आगमकी परिभाषा इत्यादि विभिन्न पक्षोंको लेते हुए विद्वान आचार्यों के मन्तव्यों का विस्तार से विवेचन किया है, जिससे अध्येताओंको इस संबंध में यथेष्ट परिचय मिलता है।[३६]

वर्तमानकालमें हमें जो आगम प्राप्त है, ये भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित है। ऐसी जैन परंपरामें मान्यता है। यहाँ आगमों के संबंधमें संक्षेपमें चर्चा करना आवश्यक है।

आगमों की भाषा

भाषा का जीवनमें बहुत महत्त्व है। वही अभिव्यक्ति का साधन है। यदि भाषा नही होती तो मनुष्य अपने भावों को कभी भी व्यक्त नहीं कर सकता था। भाषा ही वह कारण है जिससे आज हम अतीत के महापुरूषों और महान चिंतकों के विचारों से लाभान्वित हो रहे हैं। उन्होने भाषाद्वारा अपने-अपने समय में जो भाव प्रगट किये वे आगमों में, शास्त्रों में और अन्य साहित्य द्वारा हमें प्राप्त है।

भाषा का संबंध मानव समुदाय या समाज के साथ जुड़ा हुआ है। भिन्न भिन्न देशों, प्रदेशों और जनपदों के लोग अपनी-अपनी भाषायें बोलते हैं। उनके द्वारा एक दूसरे के विचारोंको जानते हैं। भिन्न भिन्न देशों, प्रदेशों में भाषायें भिन्न-भिन्न होती है क्योंकि वहाँ रहनेवाले लोगों का संपर्क सूत्र लगभग वहीं तक होता है।

भगवान महावीर का जन्म लिच्छवी गणराज्यमें हुआ। आज वह भूभाग उत्तरी बिहारमें आता है। वैशाली उस समय लिच्छवी गणराज्य की राजधानी थी जो अब एक गांव

के रूपमें स्थित है।

दक्षिणी बिहार तब मगध कहलाता था। उस समय उत्तर भारतमें जन भाषा के रूप में प्राकृत का प्रचार था। मगध में जो प्राकृत बोली जाती थी; उसे मागधी कहा जाता था। उत्तर भारतके पश्चिमी अंचलमें जो भाषा बोली जाती थी; उसे शौरसेनी कहा जाता था। इन दोनों के बीच की भाषा अर्धमागधी थी। अर्धमागधी, मागधी और शौरसेनी दोनों का रूप लिये हुए थी। वह उस समय भिन्न भिन्न प्रदेशों में बोली जानेवाली प्राकृतों की संपर्क सूत्ररूप भाषा थी।[३७] यही कारण है कि - भगवान महावीर ने अर्धमागधी भाषामें धर्म देशना दी।[३८]

धार्मिक जगतमें उस समय संस्कृत का महत्त्व था। उसीमें औरोंके धर्मशास्त्र रचित थे। धर्म के क्षेत्र में संस्कृतका बड़ा महत्त्व था। किंतु साधारण जनता संस्कृत नहीं समझती थी। अत: भगवान महावीर ने धर्मोपदेश के माध्यम के रूपमें अर्धमागधी को अपनाया, क्योंकि उसे सभी लोग समझ सकते थे।[३९] समझकर वे उसका लाभ उठा सकते थे।

कहा गया है कि - बालकों, स्त्रियों, वृद्धों तथा अशिक्षितों - सभी लोगों के उपकार के लिए जो चारित्रमूलक धर्म को जानना चाहते थे; भगवानने प्राकृत भाषा में धर्मोपदेश देनेका अनुग्रह किया।[४०]

भगवान महावीर द्वारा धर्मदेशना

भगवान महावीर ने केवलज्ञान - सर्वज्ञत्व, प्राप्त करने के बाद धर्म देशना दी। वे अर्थरूप में उपदेश देते थे। उनके प्रमुख शिष्य गणधर शब्दरूप में उसका संकलन करते थे। भगवान महावीर का उपदेश जो गणधरों द्वारा शब्दरूप में संकलित किया गया वह ग्यारह अंगो या अंगसूत्रों के रूप में विभाजित हैं। वे इस प्रकार हैं।

ग्यारह अंग

१)आचारांग २) सुत्रकृतांग ३) स्थानांग ४) समवायांग

५)भगवती ६) ज्ञाताधर्मकथा ७) उपासक दशा ८) अंतकृतदशा

९)अनुत्तरोपपातिक दशा १०) प्रश्न व्याकरण ११) विपाक सूत्र

बारह उपांग

१)औपापात्तिक सूत्र २) राज प्रश्नीय सूत्र ३) जीवाजीवाभिगमसूत्र

४) प्रज्ञापना सूत्र	५) जंबूद्विप प्रज्ञाप्तिसूत्र	६) चंद्रप्रज्ञप्ति सूत्र
७) सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र	८) निरियावलिया सूत्र	९) कल्पवतंसिका सूत्र
१०) पुष्पिका सूत्र	११) पुष्पचुलिका सूत्र	१२) वृष्णिदशा सूत्र

चार मूल सूत्र -

१) दशवैकालिक	२) उत्तराध्ययन सूत्र
३) नंदीसूत्र	४) अनुयोगद्वार सूत्र

चार छेद सूत्र

१) व्यवहार सूत्र	२) बृहद्कल्पसूत्र	१) आवश्यक सूत्र·
३) निशीथ सूत्र	४) दशाश्रुत स्कंध	इस प्रकार ३२ आगम है।

प्राचीनकाल में शास्त्रों का ज्ञान कंठस्थ कर याद रखा जाता था। गुरू अपने शिष्यों को सीखाते थे। आगे चलकर वे शिष्य अपने शिष्यों को बताते थे। इस प्रकार वह परंपरा श्रवण या सुनने के आधार पर उत्तरोत्तर चलती रही। इसी कारण उस ज्ञान को श्रुत कहा जाता है।

●●●

आगमों का महत्त्व

जैन आगम साहित्य भारतीय साहित्य की अनमोल उपलब्धि है। अनमोल निधि है। ज्ञान, विज्ञान का अक्षय भंडार है। आगम शब्द 'आ' उपसर्ग 'गम' धातु से बना है। 'आ' याने 'पूर्ण', और 'गम्' का अर्थ 'गती' या प्राप्ति इस प्रकार होता है। आचारांग[४१] सूत्र में आगम शब्द 'जानना' इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। भगवती[४२] अनुयोगद्वारा[४३] और स्थानांग[४४] सूत्र में आगम शब्द 'शास्त्र' इस अर्थ से प्रयुक्त हुआ है। मूर्धन्य महामनिषियोंने आगम शब्द की अनेक परिभाषा में लिखी है। स्याद्वादमञ्जरी की[४५] टीका में आगम की परिभाषा इस प्रकार की है - 'आप्त वचन आगम है।' उपचार से आप्तवचनों से अर्थज्ञान होता है। वह आगम है।[४६] आचार्य मलयगिरीने लिखा है कि - जिससे पदार्थोंका परिपूर्णता के साथ मर्यादित ज्ञान होता है वही आगम है।[४७] जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण[४८] इन्होने आगम की परिभाषा देते हुए लिखा है कि - जिसके द्वारा सत्यशिक्षा मिलती है वह शास्त्र आगम या श्रुतज्ञान कहा जाता है।

आगम केवल अक्षररूपी देहसे विशाल और व्यापक ही नहीं, लेकिन ज्ञान और विज्ञान के, न्याय और नीतिके, आचार और विचार के धर्म और दर्शनों के, अध्यात्म और अनुभवों के अनुपम और अक्षय कोष है।

वैदिक परंपरामें जो स्थान वेदका है, बौद्ध परंपरामें जो स्थान त्रिपिटक का है, ईसाई धर्मे में जो स्थान बाईबल का है, इस्लाम धर्म में जो स्थान कुराण का है, पारसी धर्म में जो स्थान अवेस्ता का है, शीख धर्म में गुरू ग्रंथसाहेबा का जो स्थान है, वही स्थान जैन परंपरामें आगम साहित्य का है।[४९]

आगमों का संकलन

प्रथम वाचना

जैन परंपरामें ऐसा माना जाता है कि भगवान महावीर के निर्वाण के लगभग १६० वर्ष *पश्चात् (३६७ इ. स. पूर्व) चंद्रगुप्त मौर्य के शासन काल में* भयंकर अकाल पड़ा। साधु, इधर-उधर बिखर गये। संघ को चिंता हुई कि- आगमों का ज्ञान यथार्थ रूपमें चलता रहें, इसका प्रयास किया जाए। दुष्काल समाप्त हो जानेपर पाटलीपुत्र में आचार्य स्थूलभद्र के नेतृत्व में साधुओं का एक सम्मेलन किया गया। साधुओं ने अंग आगम के पाठ का मिलान किया। बारहवाँ अंग दृष्टिवाद किसी को भी याद नहीं था। इसलिये उसका संकलन नहीं हो सका। दृष्टिवाद में पूर्वों का ज्ञान था। आगमों के संकलनका यह पहला प्रयास था। इसे आगमों की प्रथम वाचना कहा जाता है।

उस समय चतुर्दश पूर्वों के धारक केवल आचार्य भद्रबाहु थे। वे नेपालदेशमें महाप्राण ध्यान की साधना कर रहे थे। उनसे पूर्वों का ज्ञान प्राप्त करने हेतू संघने १५०० मुनियों को उनके पास नेपाल भेजा। ५०० मुनि पढ़नेवाले थे। १००० मुनि उनकी सेवा हेतु थे। अध्ययन चालु हुआ। अध्ययन की कठीनता से घबराकर स्थूलभद्र के अतिरिक्त बाकी सब मुनि वापस लौट आये।

स्थूलभद्रने दस पूर्वोंका अर्थसहित अध्ययन कर लिया किंतु किसी त्रुटी के कारण आचार्य भद्रबाहु ने चार पूर्वोंका केवल पाठ रूपमें अध्ययन करवाया, अर्थ नहीं बताया। इस प्रकार स्थूलभद्र दश पूर्वों के परिपूर्ण ज्ञाता थे तथा चार पूर्वों का केवल पाठ जानते थे। आगे चलकर धीरे धीरे पूर्वोंका ज्ञान लुप्त होता गया।[५०]

द्वितीय वाचना

ऐसा माना जाता है कि - भगवान महावीर के निर्वाण के बाद आठ सौ सत्ताईस और आठ सौ चालीस वर्ष के बीच आगमों को व्यवस्थित करनेका एक और प्रयास चला। क्योंकि उस समय भी पहले की तरह एक भयानक अकाल पड़ा था, जिससे भिक्षाके अभाव में अनेक साधु देवलोक हो गए। मथुरामें आर्य स्कंदील की प्रधानता में साधुओंका सम्मेलन हुआ। जिसमें आगमों का संकलन किया गया।

इसी समय के आसपास सौराष्ट्र में वल्भी में भी आचार्य नागार्जुन सूरी के नेतृत्व में साधुओं का वैसा ही सम्मेलन हुआ। मथुरा और वल्भी में हुए इन दोनों सम्मेलनों को द्वितीय वाचना कहा जाता है।

तृतीय वाचना

धीरे धीरे लोगों की स्मरण शक्ति कम होने लगी। इसलिये भगवान महावीर के निर्वाण के नौ सौ अस्सी या नौ सौ तिरानब्बे (९८० या ९९३) वर्ष के बाद सौराष्ट्र के अंतर्गत वल्भीमें देवर्धी गणी क्षमा-श्रमण नामक आचार्य के नेतृत्व में सम्मेलन हुआ। आगमों का मिलान और संकलन किया गया। उस समय यह विचार आया कि धीरे धीरे मनुष्यों की स्मरण शक्ति कम होती जा रही है। इसलिये समस्त आगमों को कंठाग्र रखना कठीन होगा। तब आगमों को लिपिबद्ध या लेखन बद्ध करने का निर्णय लिया गया। तद्नुसार आगमों का लेखन हुआ। दृष्टिवाद तो पहलेसे ही लुप्त था। उसे विच्छिन्न घोषित किया गया। मूल और टीका में अपनेको 'वायणंतरे पूण अथवा नागार्जुनीयास्तु पठन्ति' ऐसा उल्लेख मिलता है।[५१]

आज हमें जो आगम प्राप्त है वे तीसरी वाचना में लिखे गये थे।[५२] यह बड़े महत्त्वकी बात है कि - भगवान महावीर की वाणी आजभी हमें प्राप्त है।

आगमों का विस्तार

ग्यारह अंगों के अतिरिक्त जिनका उपर उल्लेख किया गया है। उपांग, मूल छेद के रूपमें अन्य ग्रंथ भी प्राप्त होते हैं। जो अंगोंसे संबंधित है। इस प्रकार अंग और अंग बाह्य के रूपमें जैन आगमोंका विस्तार हुआ। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि - ये आगम श्वेतांबर परंपरामें मान्य है।

श्वेतांबरोंमें भी इनकी संख्याके विषय में एक समान मत नही हैं। कोई इनकी संख्या ८४, कोई इनकी संख्या पेंतालीस (४५) और कोई बत्तीस (३२) मानते है।

श्वेतांबर मंदिरमार्गी संप्रदाय में ४५ एवं ८४ की संख्या की भिन्न-भिन्न गणों में मान्यता है। अंग, उपांग, छेद, मूल के अतिरिक्त जो आगम माने जाते है उन्हे प्रकीर्णक कहा जाता है।

आगम : अनुयोग -

आगमोमें आये हुए विषय - अंग, उपांग, छेद, मूल, सिद्धांत, भेद, तत्व आदि की दृष्टि से है। आचार्य आर्य रक्षित सूरिने उनका चार अनुयोगोमें विभाजन किया है। १) चरकरणानुयोग २) धर्मकथानुयोग ३) गणितानुयोग ४) द्रव्यानुयोग कहलाते हैं।[५३]

अर्थ के साथ सूत्र की जो अनुकूल योजना की जाती है, उसका नाम अनुयोग है, अथवा सूत्र का अपने अभिध्येय में जो योग होता है, उसे अनुयोग जानना चाहिये।[५४]

१) चरणकरणानुयोग

इसमें आत्माके उत्थान के मूल गुण, आचार, व्रत, उत्तर गुण, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चरित्र, संयम, वैयावृत्य, कषाय निग्रह, आहार- विशुद्धि, समिति, गुप्ति, भावना, इंद्रिय निग्रह, प्रतिलेखन, आदि का विवेचन है।

इसमें आचारांग तथा प्रश्नव्याकरण ये दो अंग, सूत्र, दशवैकालिक यह एक मूल सूत्र, निशीथ, व्यवहार, बृहत्कल्प एवं दशाश्रुतस्कंध ये चार छेदसूत्र तथा आवश्यक इस प्रकार कुल आठ सूत्र आते हैं।

२) धर्मकथानुयोग :

इसमें दान, शील, तप भावना, दया, क्षमा, आर्जव, मार्दव आदि धर्म के अंगोंका विशेषरुप से कथानकोंके माध्यमसे विवेचन किया गया है। इसमें कथा, आख्यान, उपाख्यान द्वारा धार्मिक सिद्धांतों का विवेचन है।

इसके अंतर्गत ज्ञातृधर्मकथा, उपासक दशा, अन्तकृतदशा, अनुत्तरौपपातिक दशा तथा विपाक ये पांच अंग सूत्र, औपपातिक, राजप्रश्नीय, निरयावलीका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, और वृष्णिदशा ये सात उपांगसूत्र एवं उत्तराध्ययन यह एक मूल सूत्र इस प्रकार कुल तेरह सूत्र इसमें आते हैं।

३) गणितानुयोग :

इसमें सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, भूगोल, खगोल आदि विषयों का तथा ग्रहगतियों आदि से संबंधित गणनाओं पर विचार किया गया है। इसमें गणित की प्रधानता है।

मुनिश्री महेंद्रकुमारजी द्वितीय ने 'विश्व प्रहेलिका' नामक पुस्तक में विज्ञान, पाश्चात्य

दर्शन एवं जैन दर्शन के आलोक में विश्वकी वास्तविकता, आयतन व आयु की मीमांसा के अंतर्गत दिगंबर - एवं श्वेतांबर - परंपरा की मान्यता के अनुसार जो गाणितिक विवेचन किया है, उससे गणितानुयोग को समझने में बड़ी सहायता मिलती है। [५५]

इसके अंतर्गत जंबूद्विप, प्रज्ञप्ति, चंद्रपज्ञप्ति, तथा सूर्य प्रज्ञप्ति ये तीन उपांग सूत्र समाविष्ट है ।

४) द्रव्यानु योग:

इसमें जीव, अजीव आदि छह द्रव्यों और नौ तत्वों का कहीं विस्तार से, कहीं संक्षेप में वर्णन किया गया है।

बत्तीस आगमों को इन चार अनुयोगों की दृष्टि से श्रेणिगत किया जाय तो चरण करणानुयोग के अंतर्गत सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्या प्रज्ञप्ति ये चार अंग सूत्र, जीवा -जीवाभिगम, प्रज्ञापना, ये दो उपांगसूत्र एवं नंदी और अनुयोगद्वार ये दो मूलसूत्र - ये कूल मिलाकर आठ सूत्र समाविष्ट हैं।

यह उपरोक्त वर्गीकरण विषय सादृश्य की दृष्टि से हुआ है, परंतु निश्चित रूप से यह कहा नहीं जा सकता कि अन्य आगमोमें अन्य अनुयोगों का वर्णन नहीं है। उदाहरणार्थ उत्तराध्ययन सूत्र में धर्म कथा के साथ - साथ दार्शनिक तथ्यों का भी विवेचन है। भगवती सूत्र तो अनेक विषयों का महासागर है। आचरांगमें भी अलग - अलग विषयों की चर्चा है।

कुछ - कुछ आगमोमें चारों अनुयोग का सम्मिश्रण देखा जाता है। इन चारों अनुयोगोंमें सम्यक्दर्शन, सम्यक् ज्ञान, तथा सम्यक् चरित्ररुप मोक्ष मार्ग का विविध स्थानों पर कहीं संक्षेपमें और कहीं विस्तार पूर्वक विषद विवेचन हुआ है।

यह कार्य आगमोंकी व्यवस्था को सरल बनाने हेतु आर्यरक्षित द्वारा वि.स. १२२ के आसपास संपन्न हुआ।[५६]

अंग आगम परिचय -

मानव के शरीर में भिन्न - भिन्न अंग- उपांग होते हैं। उन सबके समवाय को जीवन कहा जाता है। प्रत्येक अंग का अपना - अपना कार्य होता है। वैसे ही ज्ञानी पुरुषोंने आगम पुरुष की कल्पना की है।

जैन आगम साहित्यको अंग, उपांग, मूल, छेद आदि को भिन्न - भिन्न रुप में स्वीकार

किया गया है। उनके बारह अंग माने गये हैं। जिनमें जैन धारा दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक आदि विभिन्न रुपोमें प्रवाहित होती है ; उनके बारह अंग माने गये हैं। आचार प्रभृति आगममें श्रुत पुरुष का अंगस्थान में होने से अंग इस प्रकार पहचाने जाते है।[५७]

आगम पुरुष में आचारांग उसके शीर्ष (मस्तक) स्थानिय है। जिस प्रकार हाथ - पैर आदि अंग मनुष्य के शरीर को संचालित करते हैं वैसे ही आगम धार्मिक जीवन को संचालित करते हैं। उसी प्रकार से यहाँ आगम श्रुत ज्ञानरुपी पुरुष के विविध अंगोंका संक्षेपमें वर्णन किया जा रहा है।

१) आचारांग

आचारांग सूत्र का बारह अंगोमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसलिए विद्वानोंने इसको अंगोंका सार कहा है।[५८] साधुओं और साध्वियों की आचार परंपरा का इसमें विस्तार से वर्णन किया गया है।

यह दो श्रुतस्कंधोमें विभक्त है। पहले श्रुत स्कंधमें नौ अध्ययन हैं। वे ब्रह्मचर्य - आचार चर्या कहलाते हैं इसमें चवालीस उद्देशक हैं।

इसके प्रथम अध्ययनका नाम उपधान श्रुत है। इसमें भगवान महावीर की कठोर साधना और तपश्चर्या का वर्णन है। जब भगवान लाढ़ देशमें वज्रभूमि तथा शुभ्रभूमि नामक स्थानों में विचरण कर रहे थे, तब उन्हें अनेक प्रकारके उपसर्गों - कष्टों को सहन करना पड़ा। वहाँ के लोग उन्हें मारते, पीटते, दाँतों से काट लेते थे। उनको वहाँ लुखा, सूखा आहार प्राप्त होता था। वहाँ लोग उनके पीछे कुत्तों को छोड़ते थे। कोई एकाद व्यक्ति कुत्तोंसे उन्हें बचाता था।[५९]

स्थानांग सूत्र के नौवें स्थान इसी से मिलता-जुलता उपसर्ग सहनका पाठ मिलता है।[६०]

जब भोजन या स्थान के लिये भगवान महावीर किसी गाँव में पहुँचते तो, गाँव में रहनेवाले लोग मारते, पीटते और कहते यहाँ से दूर चले जाओ। वे उनको दंडोंसे मुक्कों से, भालों की तीखी नोंकसे, मिट्टी के ढेलोंसे या कंकरों और पत्थरों से उन पर प्रहार करते, तथा बहुत कोलाहल करते। कभी - कभी उनके शरीर का मांस नोंच लेते। उनके उपर धूल बरसातें। उन्हें उपर उठाकर नीचे पटक देते। आसन से गिरा देते किंतु भगवान महावीर शरीर का ममत्व त्यागकर सब सहते हुअे अपने लक्ष्य के प्रति अविचल रहते।[६१]

दूसरे श्रुत स्कंध में सोलह अध्ययन हैं। वे तीन चूलिकाओं में विभक्त हैं। पिंड़ैषणा नामक अध्ययन में साधु साध्वियों के आहार विषयक नियमों का विस्तारसे वर्णन हैं।

शैया अध्ययनमें आवास स्थान के गुणदोषोंका तथा गृहस्थ के साथ रहने में लगनेवाले, दोषों का वर्णन है।

इरिया अध्ययन में साधुके विहार या विचरण विषयक नियमोंका विवेचन है। बतलाया गया है कि - देश की सीमा पर निवास करनेवाले अकालचारी - बिना समय घूमनेवाले तथा अकालभक्षी बिना समय चाहे जो खानेवाले, दष्यु-डाकु, म्लेच्छ और अनार्य आदि के देशोंमें साधु-साध्वियों को विचरण नहीं करना चाहिये।

भाषा अध्ययन में भाषा संबंधी नियमोंका, वस्त्रैषणा अध्ययनमें वस्त्रसंबंधी नियमोंका एवं अवग्रह प्रतिमा अध्ययन में उपाश्रय संबंधी नियमोंका वर्णन है। ये सात अध्ययन प्रथम चुलिका के अंतर्गत हैं।

द्वितीय चूलिका में भी स्वाध्याय स्थान आदि के संबंध में साधुसाध्वियों के नियमों का विधान है। तीसरी चूलिका में भगवान महावीर का चरित्र और महाव्रत की पाँच भावनाओंका तथा मोक्ष का वर्णन है।

इस सूत्र पर आचार्य भद्रबाहुने निर्युक्ति, जिनदास गणि महत्तरने चूर्णि और आचार्य शिलांकने टीका की रचना की। जिनहंस नामक आचार्य ने इस पर दिपिका लिखी। जर्मन के प्रसिद्ध विद्वान - डॉ. हर्मन जेकोबीने इसका अंग्रेजीमें अनुवाद किया और इसकी गवेषणापूर्ण प्रस्तावना लिखी।

सबसे पहले आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध सन् १९१० में प्रॉफेसर वोल्टरने सूब्रींग नामक जर्मन विद्वान द्वारा संपादन किया गया तथा जर्मनी में 'लिपजग' में प्रकाशन हुआ।

२) सूत्रकृतांग सूत्र

सूत्रकृतांग सूत्रमें स्वसमय अपने तथा जैन धर्म के सिद्धांतों तथा पर समय अन्यमतवादियोंके सिद्धांतों का वर्णन हैं। इसमें दो श्रुतस्कंध है। पहले श्रुतस्कंधमें एक अध्ययन के अतिरिक्त और सब अध्ययन पद्यबद्ध है। दूसरे अध्ययनमें गद्यपद्य दोनों हैं।

पहले श्रुतस्कंध में पंचभूतवादी, अद्वैतवादी, जीव और शरीर को अभिन्न माननेवाले, जीव पुण्य और पापका कर्ता नहीं है, ऐसा माननेवाले पांच भूतों के साथ छठ्ठा आत्मा है, ऐसा स्वीकार करनेवाले, कोई भी क्रियाफल नहीं देती ऐसा माननेवालों के सिद्धांतों का विवेचन है।

नियतिवाद, अज्ञानवाद जगतकर्तृत्ववाद एवं लोकवाद का इसमें खंड़न किया गया है।

वैताढ़िय अध्ययनमें शरीर के अनित्यत्व उपसर्ग सहिष्णुता, काम परित्याग और अशरणत्व आदि का प्रतिपादन है। उपसर्ग अध्ययनमें संयम पालनमें आनेवाले उपसर्गों, विघ्नों या कष्टोंका वर्णन हैं।

स्त्रीपरिज्ञा अध्ययनमें साधुओं को स्त्रीजन्य उपसर्ग को आत्मबल के साथ सहन करना चाहिये और निवारण करना चाहिये।

द्वितीय श्रुतस्कंधमें सात अध्ययन हैं। पुंडरिक अध्ययन में इस लोक को पुष्करणी की उपमा दी गई है। तद्ज्जीव, तज्जशरीर, पंचमहाभूत, ईश्वर तथा नियतिवाद का खंडन किया गया है।

साधु को असन, पान, खाद्य, स्वाद्य आदि पदाथोंको मर्यादा, नियम और विरक्ति भाव के साथ ग्रहण करना चाहिए।

क्रिया स्थान अध्ययनमें क्रिया स्थानों का, आहार परिज्ञा अध्ययन में वनस्पतियाँ, जलचर तथा पक्षी आदि का और प्रत्याख्यान के अध्ययनमें जीव हिंसा हो जाने पर प्रत्याख्यान की आवश्यकता का विवेचन हैं।

आचारश्रुत अध्ययन में साधुओंके आचार का वर्णन है।

सातवें अध्ययन का नाम नालंदिय अध्ययन है। गौतम गणधर नालंदा में लेप नामक गृहपति के हस्तीयाम नामक वनखंडमें ठहरे थे। यहाँ भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य उदक पेढ़ाल पुत्र के साथ विचार विमर्श हुआ। परिणाम स्वरुप उदक पेढ़ाल पुत्र ने चातुर्याम धर्म के स्थान पर पाँच महाव्रत स्वीकार किये।[६२]

आचार्य भद्रबाहुने सुत्रकृतांग सूत्र पर निर्युक्ति की रचना की। जिनदास महत्तरने इस पर चूर्णि लिखी। आचार्य शिलांक ने संस्कृतमें इस पर टीका की रचना की। मुनि हर्षकुल और साधुरंग ने दिपिकायें लिखी। जर्मनी के सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ. हर्मन जेकोबी ने इसका अंग्रेजीमें अनुवाद किया।

भाषा और विवेचन की दृष्टि से आचारंग सूत्र की तरह यह भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

३) स्थानांग सूत्र

यह तीसरा अंग है। इसमें अन्य आगामों की तरह उपदेशोंका संकलन नहीं है, किंतु यहाँ स्थान या संख्या के क्रमसे लोकमें प्रचलित एक से दस तक की विभिन्न वस्तुऐं गिनाई गई है। साधु - श्रावक के आचार गोचर का कथन है। यह शास्त्र विद्वानोंके लिये बड़ा चमत्कार जनक है।

बौद्ध साहित्यमें अंगुत्तरनीकाय इसी प्रकारका ग्रंथ है।

स्थानांग सूत्रमें दस अध्ययन है। तथा ७८३ सूत्र हैं। आचार्य अभय देव सूरिने इस पर संस्कृतमें टीका लिखी।

४) समवायांग सूत्र

यह चौथा अंग है। स्थानांग सूत्रकी तरह इसमें भी संख्याओके आधार पर वर्णन है। स्थनांग सूत्र में दसतक की संख्यायें ली गई है। इसमें एक से लेकर कोटानुकोटी संख्यातक की वस्तुओं का उल्लेख है। द्वादशांगीकी संक्षिप्त हुण्डी भी इसमें उल्लिखित है। ज्योतिषचक्र, दंड़क, शरीर, अवधिज्ञान, वेदना, आहार, आयुबंध, संहनन, संस्थान, तीनों कालों के कुलकर, वर्तमान चौबीसी, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव प्रतिवासुदेव आदि नाम उनके माता-पिताके पूर्व भवके नाम तीर्थंकरों के पूर्वभवों के नाम तथा ऐरावत क्षेत्र की चौबीसी आदि के नाम भी बतलाये गए हैं। यह गहन ज्ञान का खजाना है। अभय देव सूरिने इस पर टीका लिखी।

५) व्याख्या प्रज्ञप्ति - (भगवती) सूत्र:

व्याख्या का अर्थ विश्लेषण और प्रज्ञप्ति का अर्थ प्ररुपण होता है। इस सूत्र में जीवादि व्याख्याओं का प्ररुपण या विवेचन है। इसलिये इसे व्याख्या प्रज्ञप्ति कहा जाता है।

ये व्याख्यायें प्रश्नोत्तरों के रूपमें हैं। इस पाँचवें अंगमें एक श्रुतस्कंध है, ४१ शतक और १००० उद्देशक हैं। इसमें छत्तीस हजार प्रश्नोत्तर हैं। भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य गणधर गौतम भगवान से जैन सिद्धांतों के बारे में प्रश्न करते हैं।

इस सूत्रमें कुछ ऐसे भी संवाद है जिनमें अन्य मतवादियों के साथ भगवान महावीर का वाद- विवाद या वार्तालाप उद्धृत है। इस सूत्रमें ऐसे प्रसंग भी है जिससे भगवान महावीर के विषयमें ज्ञात होता है।

इसमें भगवान के लिए वैशालिय श्रावय - वैशालिक श्रावक शब्द आया है। जिससे यह प्रगट होता है कि भगवान महावीर वैशाली के थे। अनेक स्थलों पर ऐसे वर्णन आते हैं जहाँ भगवान पार्श्वनाथ के शिष्योंने चातुर्याम धर्म को छोड़कर भगवान महावीर के पंचमहाव्रत अंगीकार किये।

इस सूत्र में गोशालक का विस्तार से वर्णन है। नौमल्ली और नौ लिच्छवी गण राज्यों का इसमें उल्लेख है। उदायन, मृगावती, जयंती आदि भगवान महावीर के अनुयायी की महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

अंग, बंग, माल्य, मालवय, आदि सोलह जनपदों का इसमें उल्लेख मिलता है।

इस सूत्रमें जैन सिद्धांत, आचार और इतिहास संबंधी इतना विस्तारसे वर्णन है कि इस एक आगमके अध्ययन से अध्येताको जैन धर्म का यथेष्ट ज्ञान हो सकता है।

इस पर आचार्य अभयदेव सूरिने टीका लिखी।

६) ज्ञातृ धर्म कथा सूत्र :

यह छठ्ठा अंग है। इसको "नायधम्म कहा" ज्ञात धर्म कथा भी कहा जाता है। ज्ञात का अर्थ उदाहरण है। इसमें उदाहरण और धार्मिक कथायें है। धर्म के सिद्धांत, आचार, आदिका इसमें विवेचन है। विद्वानोने भाषा, वर्णन, शैली आदि की दृष्टिसे इसे प्राचीनतम आगमोमें माना है।

इसमें दो श्रुतस्कंध है। पहले श्रुतस्कंधमें उन्नीस अध्ययन है और दूसरेमें दस वर्ग है। आचार्य अभयदेव सूरिने इस पर टीका लिखी।

७) उपासक दशांग सूत्र:

यह सातवां अंग है। अंग सूत्रोंमें यह एक ऐसा आगम है जिसमें श्रावकोंके जीवनका, व्रतोंका, विस्तारसे विवेचन है। इसमें दश अध्ययन हैं। प्रत्येक अध्ययन में एक -एक श्रावक का जीवन वृत्तांत दिया गया है।

इसके प्रथम अध्ययनमें आनंद श्रावकका वृत्तांत है जो भगवान महावीर का परम भक्त था। उसकी संपत्ति, परिवार, व्यापार, रहन, सहन, आदिका विस्तारसे वर्णन किया गया है। जिनसे हमें उस समयके लोक जीवन का परिचय प्राप्त होता है। यह भी ज्ञात होता है कि-विपुल संपत्तिके स्वामी होते हुए भी धर्म के प्रति वे बहुत आकृष्ट रहते थे। धर्माचरण और धर्मोपासनामें रूचि लेते थे। उनके जीवन में धार्मिकता, पारिवारिकता, सामाजिकता का बड़ा सुखद समन्वय था।

भगवान महावीर से आनंद श्रावक ने जिस प्रकार व्रत ग्रहण किये वह प्रसंग बड़ा ही उद्‌बोधप्रद है। वहाँ प्रत्येक व्रतका तथा उसके अतिचारों का विशद रूपमें वर्णन किया गया है। आनंद श्रावक ने संपत्ति, भोगोपभोग आदि में जो अपवाद रखें, उनमें उसके जीवन की सरलता, सादगी और बुद्धिमत्ता प्रगट होती है।

अन्य श्रावकों का जीवन भी बहुत उन्नत था। धर्म पालन में विघ्न आनेपर भी उन्होने धर्म का परित्याग नहीं किया। आचार्य अभयदेव सूरिने इस पर टीका की रचना की।

८) अंतकृत् दशांग सूत्र:

जैसे उपासक दशांग सूत्र में उपासकोंकी कथायें है उसी प्रकार इसमें संसारका अंत करनेवाले केवलियोंकी कथायें हैं इसलिये इसका नाम अंतकृत दशांग सूत्र है।

इसमें जो कथायें आयी है, वे प्राय: एक जैसी शैलीमें लिखी गई है। वहाँ कथाओंके कुछ अंशकाही वर्णन किया गया है। बाकी के अंश व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र से या ज्ञातृधर्म कथांग

सूत्र से लेनेका संकेत किया गया है। इसमें श्रेणिक की कालि आदि रानियोंद्वारा की हुई तपस्या का वर्णन है।[६३] इसमें कुल नब्बे मोक्षगामी जीवोंका वर्णन है।

९) अनुत्तरौपपातिक सूत्र:

ये नववां अंग है। इसमें अपने पुण्यप्रभावसे अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न होनेवाले विशिष्ट महापुरुषोंका वर्णन हैं। इसमें उपासक दशांग और अंतकृत दशांग की तरह इसमें भी पहले दश अध्ययन थे, किंतु अब कुल तीन वर्ग बाकी रह गये हैं। सर्वत्र एक सी शैली है।

इसमें काकंदी नगरी के धन्ना सेठ के दीक्षा ग्रहण कर अत्यंत कठीन तपस्या कर शरीर दमन किया, वे एकावतारी होकर मोक्ष जायेंगे यह सारा वर्णन इसमें है। आचार्य अभयदेवसुरिने इस पर टीका लिखी।[६४]

१०) प्रश्नव्याकरण सूत्र

यह दशवाँ अंग है। प्रश्न तथा व्याकरण इन दो शब्दों से बना है। प्रश्न का अर्थ पूछना या जिज्ञासा करना है। व्याकरण का अर्थ व्याख्या करना या उत्तर देना है।

वर्तमानकालमें इस सूत्र का जो हमें रुप प्राप्त होता है उसमें कहीं भी प्रश्नोत्तर नहीं है। केवल आश्रवद्वार और संवरद्वार रुपमें वर्णन प्राप्त होता है[६५] आश्रवद्वार में प्राणातिपात, विरमण आदि पांच संवरोंका वर्णन है।

स्थानांग और नंदी सूत्रमें, प्रश्नव्याकरण सूत्र में विषयोंका जो उल्लेख हुआ है। वर्तमान में इस सूत्र का जो रुप उपलब्ध है,उसमें वे विषय प्राप्त नहीं होते ऐसा प्रतीत होता है कि इसका प्राचीन रुप विच्छिन्न हो गया।

वर्तमान रूपमें हिंसादि, आश्रव द्वारोंका तथा अहिंसादि संवर द्वारोंका जो वर्णन इसमें प्राप्त होता है वह, हिंसा - अहिंसा आदि तत्वों को विषद रुपमें समझने में बहुत उपयोगी है। आचार्य अभय देव सूरि की इस पर टीका प्राप्त है।

आचार्य - श्री देवेंद्र मुनि म. ने प्रश्नव्याकरणसूत्रकी प्रस्तावनामें लिखा है कि, वर्तमान प्रश्नव्याकरण भगवान महावीर के प्रश्नों के उत्तरों का आंशिक भाग है। [६६]

११) विपाक सूत्र:

विपाक का अर्थ फल या परिपाक है। इसमें पापों और पुण्योंके विपाक या फल का वर्णन है। इसलिये यह विपाक के नाम से प्रसिद्ध है। स्थानांग के अनुसार इसमें दस अध्ययन होने चाहिये, किंतु इसमें बीस अध्ययन है। जो दो श्रुत स्कंधोमें विभाजित है।

पहला श्रुतस्कंध दु:खविपाक और दूसरा सुखविपाक के नामसे प्रसद्धि है। गणधर गौतम

संसार के बहुत से दु:खित लोगोंको देखकर भगवान महावीर से प्रश्न करते है तथा भगवान महावीर उसके उत्तर देते हैं। पाप कर्मों के परिणाम स्वरुप प्राणी किस प्रकार कष्ट पाते हैं तथा पुण्योंके परिणामस्वरुप सुख भोगते हैं। इन दोनों ही स्थितियों का इस सूत्रमें विषद विवेचन है। आचार्य अभयदेव सूरीने इस पर टीका की रचना की।

इस प्रकार आचार्य अभयदेव सूरिने तृतीय अंग सूत्र समवायांग सूत्र से लेकर विपाक सूत्र तक नौ अंगोंकी टिकायें लिखी। इसलिये वे जैन जगतमें नवांगी टिकाकार के नामसे प्रसिद्ध है।

जैसा पहले सूचित किया गया है बारहवां अंग दृष्टिवाद लुप्त हो गया। इसलिए उसका संकलन नहीं किया जा सका।

१२) दृष्टिवाद :

यह बारहवाँ अंग है। दृष्टि का अर्थ दर्शन तथा वाद का अर्थ चर्चा या विचार विमर्श है। इसमें विभिन्न दर्शनों की चर्चा रही होगी। दृष्टिवाद इस समय लुप्त है।

उपांग परिचय

'उप' उपसर्ग समीप का द्योतक है। जो अंगोंके समीप होते हैं अर्थात उनके पूरक होते हैं वे उपांग कहलाते है। चार वेदोंके शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, निरुक्त तथा ज्योतिष ये छह अंग माने गये हैं। पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र ये उपांग माने गये हैं।

जैन परंपरामें भी बारह उपांगोंकी तरह बारह अंगोंकी भी मान्यता है किंतु प्राचीन आगम ग्रंथोंमें इस संबंधमें उल्लेख प्राप्त नहीं होता। अंगों की रचना या संग्रंथना गणधरों द्वारा की गई और उपांगोंकी रचना स्थविरोंने की। विषय आदि की दृष्टि से इनका कोई विशेष संबंध प्रतीत नहीं होता। वैसे अंगोंमें सामान्यत: तत्व और आचारका वर्णन है। उपांगोंमें भी उसी विषय पर भिन्न - भिन्न रुपोंमें चर्चा की गई है।

आचार्य श्री देवेंद्र मुनिमहाराजने बारहवीं शताब्दी के पूर्व हुए आचार्य श्रीचंदऔर तेरहवी शताब्दि के बाद के और चौदहवीं शताब्दी के प्रथम चरणमें हुए आचार्य जिनप्रभ का उल्लेख करते हुए लिखा है कि - अंगबाह्य को उपांग के स्वरुप में स्विकार किया है।[६७]

१)औपपातिक सूत्र:

यह पहला उपांग है। उपपात का अर्थ जन्म या उत्पत्ति होता है। इससे औपपातिक शब्द बना है। इस आगममें देवों तथा नारकों में जन्म लेने का अथवा साधकोंद्वारा सिद्धि

प्राप्त करने का वर्णन है। इसलिये यह औपपातिक कहा जाता है।

गौतमने जीव, अजीव, कर्म आदि के संबंधमें भगवान महावीर से प्रश्न किये। भगवान महावीरने उसका उत्तर दिया। इस प्रकार तत्वज्ञान संबंधी अनेक विषय इसमें है। भगवान महावीर के समयमें जो जैनेत्तर धर्म संप्रदाय प्रचलीत थे, उन वानप्रस्थीतापसों, श्रमणों, परिव्राजकों, आजीविका तथा निन्हवों का भी वर्णन प्राप्त होता हैं।

इसमें नगर, राजा आदि का जो वर्णन आया है वह सर्व समान्य है। दूसरे आगमोंमें जहाँ भी ये विषय आते हैं वहाँ प्राय: औपपतिक सूत्रमें आये हुए वर्णनों से लेने का संकेत है।

२) राजप्रश्नीय सूत्र:

यह दूसरा उपांग है। इसमें परदेशी राजा और भगवान पार्श्वनाथ की परंपरा के मुनि केशीकुमार श्रमणके प्रश्नोत्तर है। परदेशी सेयविया नगरी का राजा था। वह नास्तिक था। आत्मा स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप आदि में विश्वास नहीं करता था।

केशीकुमार श्रमणने न्याय और युक्ति पूर्वक ये तत्व समझाये। राजाके विचार बदल गये और वह आस्तिक बन गया।

इस सूत्रमें कला, शिल्प, आदि का वर्णन हैं बहत्तर कलाओं का उल्लेख हैं कंबोज देश के अश्व आदिका वर्णन हैं। आचार्य मलयगिरीने बारहवीं शताब्दीमे इसपर टीका की रचना की।

३) जीवा जीवा भिगम सूत्र:

यह तीसरा उपांग है। इसमें गणधर गौतम और भगवान महावीर के प्रश्नोंत्तरोंके रुपमें जीव एवं अजीव तत्वों के भेद प्रभेदोंका अभिगम - विस्तृत विवेचन है। इस सूत्रमें नौ प्रकरण या प्रतिपत्तियाँ हैं। जिनमें दो सौ बहत्तर सूत्र हैं।

तृतीय प्रकरण सबसे विस्तृत है। उसमें द्विपों, सागरों का वर्णन हैं। रत्न, अस्त्र, धातु, मद्य, पात्र आभूषण, भवन, वस्त्र, मिष्टान्न, दास, पर्वजन्य त्योहार, उत्सव, यान, व्याधी, आदिका वर्णन हैं।

आचार्य मलयगिरीने इसपर टीका की रचना की। आचार्य हरिभद्र सूरि और आचार्य देवसूरिने इसपर लघु वृत्तियों की रचना की।

४) प्रज्ञापनासूत्र :

यह चौथा उपांग है। प्रज्ञापना का अर्थ विशेष रुपमें ज्ञापित करना, ज्ञान, कराना या समझाना है। इसमें ३४९ सूत्र हैं। जिनमें प्रज्ञापना, स्थान, लेश्या, समुद्धात, आदि

छत्तीस पदोंका विवेचन है। गणधर गौतमने प्रश्न किये है और भगवान महावीर ने उत्तर दिये है।

अंग सूत्रोंमें जिस प्रकार व्याख्या प्रज्ञाप्ति सूत्र सबसे विशाल है उसी प्रकार सूत्रोंमें प्रज्ञापना सूत्र सबसे बड़ा है। इसकी रचना वाचक वंशीय पूर्वधारी आर्य श्यामने की। ऐसा माना जाता है कि वे सुधर्मा स्वामी की तेइसवी पीढ़ि में हुए। आचार्य हरिभद्र सूरिने इस विषम - कड़े पदोंकी व्याख्या करते हुए प्रदेश व्याख्या नामक लघु वृत्तिकी रचना की। इसके आधार पर आचार्य मलयगिरीने टीका लिखी।

इसके पहले पदमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वृक्ष, बीज, गुच्छ, लता, तृण, कमल, कंद, मूल, मगर, मत्स्य, सर्प, पशु, पक्षी आदिका वर्णन हैं। इसमें आर्य देश, जाति आर्य, कूल आर्य तथा शिल्पआर्य आदि का उल्लेख हैं। ब्राह्मी खरोष्ट्री आदि लिपियोंकी भी चर्चा हैं।

५) जंबू द्वीप प्रज्ञाप्ति :

यह पाँचवाँ उपांग हैं। यह पूर्वार्ध उत्तरार्ध इन दो भागों में विभक्त है। पूर्वार्धमें चार तथा उत्तरार्ध में तीन वक्षष्कार हैं। वे १७६ सूत्रोंमें विभक्त है। पहले वक्षष्कारमें जंबू द्विप में स्थित भरत क्षेत्रका वर्णन है। अनेक पर्वत, गुफायें, नदियाँ, दुर्गम स्थान, अटवी, तथा स्वापद पशु आदि का भी वर्णन उसमें हैं।

दूसरे वक्षष्कारमें उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के छह छह भेदों का विवेचन हैं। सुषमा - दुषमा नामके तीसरे कालमें पंद्रह कुलकर हुए। उनमें नाभिकुलकर की मरुदेवी नामक पत्नी से आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का जन्म हुआ। वे कोशलदेश के निवासी थे। प्रथम राजा, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर तथा प्रथम धर्म वर चक्रवर्ती - धर्मवर चतुर्गत चक्र वर्ती कहे जाते थे।

उन्होने कलाओं एवं शिल्पोंका उपदेश दिया। तदनंतर अपने पुत्रों को राज्य सौंपकर उन्होने श्रमण धर्ममें प्रवज्या स्वीकार की। उन्होने अपने तपोमय जीवनमें अनेक उपसर्ग कष्ट सहन किये। पुरिमताल नामक नगर के उद्यानमें उन्हें केवल ज्ञान हुआ। अष्टापद पर्वत पर उन्होने सिद्धि प्राप्त की। तीसरे वक्षष्कार में भरत चक्रवर्ती और अनेक दिग्विजयका विस्तार से वर्णन है। अष्टापद पर्वत पर भरत चक्रवर्ती को निर्वाण प्राप्त हुआ।

आचार्य मलयगिरिने इसपर टीका लिखी, किंतु वह लुप्त हो गई। तद्नंतर इसपर और टीकायें लिखी गयीं।

बादशहा अकबरने जिनको गुरु रुपमें आदर दिया, उन आचार्य हरि विजय सुरि के शिष्य शांतिचन्द्र वाचकने वि.स. १६५० में इस सूत्र पर प्रमेय रत्न मंजूषा नामक टीका लिखी।

६-७) सूर्यप्रज्ञप्ति - चंद्र प्रज्ञप्ति :

ये छट्ठे - सातवें उपांग है। यद्यपि ये दो ग्रंथ माने जाते है किंतु इनमें सारी सामग्री एक जैसी है। सूर्य, चंद्र, नक्षत्रों आदि का इसमें विस्तार से वर्णन है। सूर्यप्रज्ञप्ति में प्रारंभ में मंगलाचरण की चार गाथायें हैं। चंद्रप्रज्ञप्तिमें वे गाथायें नहीं है। बाकीकी सामग्री में कुछभी अंतर नहीं हैं। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि इनमें से एक आगम लुप्त हो गया। उंपांगोंकी संख्या पूर्ति की दृष्टि से दो आगमों की मान्यता प्रचलित हुई। आचार्य- मलयगिरीने इस पर टीका की रचना की।

८) निरयावलिका: कल्पिका : -

इसमें १) निरयावलिका - कल्पिका - २) कल्पावतंसिका ३) पुष्पिका ४) पुष्प चूलिका तथा ५) वृष्णि दशा इन पांच अंगोंका समावेश है। ऐसा माना जाता है कि पहले ये पांचों एक ही सूत्र के रुपमें माने जाते थे किंतु आगे चलकर बारह अंगों और उपांगों का संबंध जोड़ने के लिये इन्हें पृथक्-पृथक् गिना जाने लगा [६८] इनमें आर्य जंबू के प्रश्न और गणधर सुधर्मांके उत्तर हैं।

निरयावलिका सूत्र में दस अध्ययन हैं। पहले अध्ययन में कोणिक - अजातशत्रु का जन्म, बड़े होने पर उसके द्वारा अपने पिता श्रेणिक को कारागृह में ड़ालना, स्वयं राजसिंहासन पर बैठना, श्रेणिक द्वारा आत्महत्या, कोणिक और वैशाली गणराज्य के अध्यक्ष चेटक के संग्राम आदिका वर्णन है।

९) कल्पावतंसिका -

यह अंतगड दशांग सूत्रका उपांग है। कल्पावतंसिका में दस अध्ययन है। इसमें राजा कोणिक के दस पुत्रों का वर्णन है, जिन्होंने दीक्षा ग्रहण की। उग्र संयमाराधनाद्वारा अंतिम समय में पंडित मरणद्वारा सब देवलोक में गये।

श्रेणिक कषायके कारण नरक में जाते हैं, उनके पुत्र सत्कर्म से देवलोक में जाते हैं। उत्थान पतन का आधार मानव के स्वयं के कर्मोंपर ही है। मानव साधना से भगवान् बन सकता है और विराधना से नरक का कीड़ा भी बन सकता है।

१०) पुष्पिका :

इसमें दस अध्ययन हैं। प्रथम और द्वितीय अध्ययनमें चंद्र और सूर्य का वर्णन हैं।

तृतीय अध्ययनमें सोमिल ब्राह्मण का कथानक है। इस ब्राह्मणने वानप्रस्थ तापसों की दीक्षा अंगीकार की थी। वह दिशाओं की पूजा करता था तथा अपनी भुजायें ऊपर उठाकर सूर्य की आतापना लेता था।

चौथे अध्ययनमें सुभद्रा नामक आर्यिका का कथन है।

११) पुष्पचुलिका :

यह प्रश्न व्याकरण का उपांग है। इस उपांगमें भी श्रीं, ह्रीं. धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, इला, सूरा, रस और गंधदेवी आदि दस अध्ययन है। इसमें भगवान पार्श्वनाथकी परंपरामें दीक्षित श्रमणियों की चर्चा है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसमें भगवान पार्श्वनाथ के युग की साध्वियोंका वर्णन है।

१२) वृष्णिदशा:

इसमें बारह अध्ययन हैं। पहले अध्ययन में द्वारिका नगरी, कृष्णवासुदेवका वर्णन है। बावीसवें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि संबंधी विवेचन भी इसमें है। जब भगवान अरिष्टनेमि विचरण करते हुए रैवतक पर्वत पर आये। कृष्णवासुदेव गजारूढ़ होकर दलबल सहित दर्शन हेतु गये।

वृष्णिवंश - यादववंश के बारह कुमारों ने भगवान अरिष्टनेमि के पास श्रमण दीक्षा ग्रहण की।

चार मूल सूत्र : परिचय

उपांग, छेद, मूल आदि अंगोंसे संबंद्ध हैं। मुख्य रुपसे अंगोमें जैन धर्म के सिद्धांत, व्रत, विधान, आचार- मर्यादा आदि का वर्णन हैं। उन्हीं विषयों का उपांग आदि में अपनी अपनी पद्धति से विवेचन किया गया हैं। आचार या महाव्रतों का सम्यक परिपालन जैन धर्म का सबसे मुख्य आधार है। आचार ही पहला धर्म है। आचार के अभाव में चाहे कितना ही शास्त्रज्ञान हो, प्रवचन कौशल हो, उनका कोई महत्त्व नहीं माना जाता। सबसे पहले मूल की रक्षा आवश्यक है।

मूल के नामसे प्रसिद्ध सूत्रोंमें जैन धर्म मूल रूप आचार पर प्रकाश डाला गया है। एक साधुका आचार अखंडित रहे, उसमें जराभी स्खलना न आये, इस ओर इन सूत्रोंमें विशेष ध्यान दिलाया गया है। इनका अध्ययन प्रत्येक साधु-साध्वी के लिये अत्यंत आवश्यक माना जाता है।

पहले आगमोंका अध्ययन आचारांग से शुरु होता था, परंतु जबसे आचार्य शयंभवने दशवैकालिका सूत्र की रचना की तबसे सर्व प्रथम दशवैकालिकके अध्ययन करने की परंपरा शुरु हुई और उसके बाद उत्तराध्ययन सूत्र आदि सीखाया जाता है।[६९]

१) दशवैकालिक सूत्र :

यह पहला मूल सूत्र है। ऐसी मान्यता है कि - कालसे निवृत्त होकर अर्थात् दिनके अपने सभी कार्यों को भलिभांति संपन्न कर, विकाल में - संध्याकालमें इसका अध्ययन किया जाता था। इसलिये यह दशवैकालिक कहा गया है। इसकी रचना के बारेमें जैन समाज में एक कथानक प्रचलित है।

शय्यंभव नामक एक विद्वान ब्राह्मण थे। जिन्होंने कालांतर में जैन श्रमण दीक्षा स्वीकार की। उनका मनक नामक बालक पुत्र भी उनके पास दीक्षित हो गया। अपने विशिष्ट ज्ञानद्वारा शय्यंभव ने यह जाना कि - बालक मनकका आयुष्य छह महिने का है। उसे श्रुत का बोध कराने हेतू आगमों के सार रुपमें दशवैकालिक सूत्र की रचना की। बालक ने उसका अध्ययन कर आत्मकल्याण किया।

इस सूत्रमें दस अध्ययन है। अंतमें दो चूलिकायें हैं। ऐसा माना जाता है कि- इन चुलिका की रचना आचार्य शयंभव ने नहीं की। ये बादमें मिलाई गई है।

आचार्य भद्रबाहुने इसपर निर्युक्ति की रचना की। अगस्थसिंह और जिनदास गणि महत्तरने चूर्णि लिखी।आचार्य हरिभद्र सूरिने टीका की रचना की।

तिलकाचार्य, सुमतिसूरि तथा विनय हंसादि विद्वानों ने इस पर वृत्तियाँ लिखी यापनीय संघ के आचार्य अपराजित सूरिने जो विजयाचार्य के नाम से भी प्रसिद्ध थे; इसपर उन्होंने विजयोदया नामक टीका लिखी।

जर्मन विद्वान वाल्टर सूब्रिंगने भूमिका आदि सहित तथा प्रोफेसर लायमेनने मूलसूत्र और निर्युक्ति के जर्मन अनुवाद सहित इसे प्रकाशित किया। प्राकृत के सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ. पीसलने उत्तराध्ययन और दशवैकालिक को भाषाविज्ञान की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण बताया है।

२) उत्तराध्ययन सूत्र :

उत्तराध्ययन सूत्र यह दूसरा मूल सूत्र है। उत्तर + अध्ययन इन दो शब्दों के मिलनेसे उत्तराध्ययन शब्द बना है। ऐसा माना जाता है कि - श्रमण भगवान महावीर ने अपने अंतिम चातुर्मासमें अपने अंतिम समयमें परिषद में उपस्थित जनों को छत्तीस विषयों का उपदेश दिया वे उत्तराध्ययन सूत्रमें संग्रहित हैं।

इसमें ३६ अध्ययन हैं। इसकी रचना अधिकांशत: पद्यात्मक शैली में है। शब्दरचना इतनी सुंदर है कि- इसे धार्मिक काव्य भी कहा जा सकता है। इसमें उपमा, रूपक, दृष्टांत आदि अलंकारों का सहज रूपमें प्रयोग हुआ है। जिससे वर्णित विषय बड़े सरस और प्रेरक रूपमें प्रगट हुए हैं।

सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ. विंटरनिझने इसकी *गीता, धम्मपद और सुत्तनिपात आदि* के साथ तुलना की है। इसमें जैनधर्म और दर्शन के संक्षेप में सार तत्व संकलित है।

आचार्य भद्रबाहुने इस पर निर्यक्ति की रचना की, तथा जिनदास गणि महत्तरने चूर्णि लिखी। आचार्य लक्ष्मीवल्लभ, जयकीर्ति, कमलसंयम, भाव विजय, विनयहंस, हर्षकूल आदि अनेक विद्वानों ने इस पर टीकायें लिखी। सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान डॉ. हर्मन जेकोबीने अंग्रेजी अनुवाद सहित इसे प्रकाशित किया।

३) नंदी सूत्र :

नंदी सूत्र अन्य आगमों के साथ अर्वाचीन है। ऐसी मान्यता है कि - इसके रचनाकार देववाचक थे। उनके गुरु का नाम दूष्यगणि था। नंदी सूत्रमें ९० पद्यात्मक गाथायें हैं और ६९ सूत्र है। प्रारंभिक गाथाओंमें भगवान महावीर, धर्मसंघ एवं श्रमण वृंद का संस्तवन किया गया है। जैन स्थविरावली या जैन आचार्य परंपरा का इसमें क्रमानुबद्ध वर्णन है।

प्रथम सूत्रमें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान मन:पर्यवज्ञान और केवलज्ञान का उल्लेख हैं। ज्ञान के भेद प्रभेदों का विस्तार से वर्णन किया गया है, जो शास्राध्याताओं और जिज्ञासुओं के लिये बहुत उपयोगी है।

सम्यक् सूत के अंतर्गत बारह अंगों की चर्चा हैं। यह बतलाया गया है कि - वे सर्वज्ञों, सर्वदर्शियों द्वारा भाषित हैं। श्रुत के भेदों की भी कई अपेक्षाओंसे चर्चा आई है। अंग प्रविष्ट और अंगबाह्य के रुपमें उनके दो भेद बतलाये गये हैं। अंग प्रविष्ट भी आगम कहलाते हैं, जो गणधरों द्वारा संकलित या प्रणित है। अंगबाह्य उन शास्रों या ग्रंथोंका नाम है जो स्थवीर मुनिवृंद द्वारा विरचित है। जिनदास गणि महत्तरने इस पर चूर्णि तथा आचार्य हरिभद्र *एवं मलयगिरीने टीकाओं की* रचना की है।

४) अनुयोग द्वार :

यह सूत्र आचार्य आर्य रक्षित द्वारा रचा गया ऐसी मान्यता है। भाषा का प्रयोग तथा विषयों के प्रतिपादन आदि की अपेक्षासे यह सूत्र काफी अर्वाचीन प्रतित होता है। प्रश्नोत्तर की शैलीमें इसमें नय, निक्षेप, अनुगम, संख्यात, असंख्यात, पल्योपम, सागरोपम एवं अनंत आदि का वर्णन है।

इसमें काव्य शास्त्र निरुपित नौरस उनके उदाहरण, संगीत संबंधी स्वर, उनके लक्षण, ग्राम, एवं मूर्च्छना आदिका विवेचन है। इसमें जैनेत्तर मतवादियों की भी चर्चा है। व्याकरण संबंधित धातु, समास, तद्धित तथा निरुक्ति - व्युत्पत्ति आदि का विस्तार से विवेचन किया गया है। विभिन्न प्रकार के कर्मकरों या व्यवसायों तथा शिल्पियों की भी चर्चा है।

इस सूत्र पर जिनदास महत्तरने चूर्णिका की रचना की। आचार्य हरिभद्र तथा मलधारी हेमचंद्र ने टीकाओं की रचना की।

चार छेद सूत्र - परिचय

सबसे पहले 'छेदसूत्र' इस शब्द का प्रयोग आवश्यक निर्युक्ति इसमें मिलता है।[७०] इससे पहले की कोई भी प्राचीन साहित्य में 'छेदसूत्र' नाम नही आया। इसके बाद आचार्य जिनभद्र गणि क्षमाक्षमण इन्होंने विशेषावश्यक भाष्यमें[७१] इसी प्रकार संघदास गणि इन्होंने 'निशीय भाष्य' इस ग्रंथ में ध्येय सूत्र का उल्लेख किया है।[७२]

छेद सूत्र जैन आगमों का प्राचीनतम भाग है। अत: अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इन सूत्रोंमें साधु साध्वियों के प्रायश्चित के विधि विधानोंका प्रतिपादन है। यह सूत्र चारित्र की शुद्धि स्थिर रखनेमें हेतुभूत हैं। इसलिए इसे उत्तम श्रुत कहा जाता है।

इन सूत्रोंमें साधु - साध्वियों के आचार, विचार संबंधी नियमों का वर्णन है। जिनके - नियमों को भगवान महावीरने और उनके शिष्योंने देश कालकी स्थिතितयों के अनुसार साधु संघके लिये निश्चित - निर्धारित किया था।

बौद्ध धर्म के तीन पिटकोंमें पहले विनय पिटक के साथ इनकी तुलना की जा सकती है। बौद्ध धर्म में जैसा पहले संकेत किया गया है, विनय शब्द आचार या चारित्र के अर्थ में है। वहाँ भिक्षुओं के नियमोपनियम वर्णित हैं।

आचार्य के लिये छेद सूत्रों का गहन अध्ययन बताया गया है। इनका अध्ययन किये बिना आचार्य या उपाध्याय जैसे महत्त्वपूर्ण पदोंका कोई अधिकारी नहीं हो सकता। छेद सूत्र संक्षिप्त शैलीमें रचे गये हैं।

१) व्यवहार सूत्र २) बृहत्कल्प सूत्र ३) निशीथ सूत्र ४) दशशाश्रुत स्कंध - ये चार छेद सूत्र माने जाते हैं। कतिपय विद्वानोंने निशीथसूत्र, महानिशीथ, व्यवहार सूत्र, दशाश्रुत स्कंध, कल्पसूत्र (बृहद् कल्प) तथा पंचकल्प - जितकल्प ये छह छेद सूत्र माने हैं।

१) व्यवहार सूत्र :

व्यवहार सूत्र छेद सूत्रोंमें अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसे बारह अंगों का नवनीत कहा गया है। इसके रचनाकार आचार्य भद्रबाहु थे। उन्होंने इस पर निर्युक्ति की रचना की। व्यवहार सूत्र पर भाष्य भी प्राप्त होता है किंतु उसके रचयिता का नाम अज्ञात है। मलयगिरिने भाष्य पर विवरण लिखा है। इस पर चूर्णिभी प्राप्त होती है, जो अप्रकाशित है।

इसमें दस उद्देशक है। उनमें साधु द्वारा की गई भूलों के लिये प्रायश्चितों और त्रुटियों का विधान है। यदि कोई साधु गण को छोड़कर चला जाये और फिर वापस चला आये तो उसे आचार्य, उपाध्याय आदि के समक्ष आलोचना, निंदा, गर्हा आदि करके अपने को विशुद्ध करना चाहिये। यदि आचार्य उपाध्याय आदि न मिले तो ग्राम, नगर, निगम, राजधानी, आदि की पूर्व तथा उत्तर दिशामें अपने मस्तक पर दोनों हाथों की अंजलि रखें और मैंने ये अपराध किये हैं, इस तरह अपने अपराधों का कथन करता हुआ आलोचना करें।

आचार्य एवं उपाध्याय के लिये हेमंत तथा ग्रीष्म ऋतुओंमें एकाकी विहार करने का निषेध किया गया है। वर्षा कालमें दो के साथ विहार करने का विधान है। स्थविरोंसे बिना पूछे अपने पारिवारिकों संबंधियों के यहाँ साधुओं के लिये भिक्षार्थ जाने का निषेध है। ग्राम आदि में जिस स्थल को एक दरवाजा हो, वहाँ अल्पश्रुतधारी बहुत से साधुओंके लिये रहने का निषेध हैं।

एक आचार्य की मर्यादा में रहनेवाले साधु साध्वियों को पीठ पीछे व्यवहार न करके प्रत्यक्ष में मिलकर भूल आदि बताकर आपस में भोजन आदि का व्यवहार करना चाहिए ऐसा विधान किया गया है।

इस प्रकार और भी विधि विधानोंका उल्लेख है - जो प्रायश्चित एवं आलोचना आदि से संबंधित हैं।

२) बृहत् कल्पसूत्र:

यह कल्प अथवा बृहत्कल्प या कल्पाध्ययन भी कहलाता है। जो पर्युषण में पढ़े जानेवाले कल्पसूत्र से भिन्न है। यह जैन साधुओंका प्राचीनतम आचार शास्त्र है। निशीथ सूत्र व्यवहार सूत्र और बृहत्कल्पकी भाषा काफी प्राचीन है।

इस सूत्रमें कल्प - कल्पयोग्य या कल्पनीय, अकल्प, अकल्पनीय स्थान, कपड़े, पात्र, उपकरण आदि का इसमें विवेचन है। इस कारण इसका नाम कल्प है। इसमें छह उद्देशक हैं।

आचार्य मलयगिरीने लिखा है कि- प्रत्याख्यान नामक नवम् पूर्वकी आचार नामक

तृतीय वस्तुके बीसवें प्राभृत में प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। कालक्रमसे पूर्वोका पठन पाठन बंद हो गया, जिससे प्रायश्चितों का उच्छेद हो गया, अत: आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने बृहत् कल्पसूत्र और व्यवहार सूत्र की रचना की तथा इन दोनों छेद सूत्रों पर निर्युक्ति लिखी।

बृहत् कल्प पर संगदास गणि क्षमा श्रमण ने लघुभाष्य की रचना की। भाष्य पर मलयगिरीने विवरण लिखा जो अपूर्ण रहा। जिसे लगभग सव्वादो सौ वर्षों पश्चात् संवत् १३३२ में क्षेम किर्ती सूरिने पूर्ण किया। इसमें कल्पनीय एवं अकल्पनीय वस्तुओं के ग्रहण करने और न ग्रहण करने का विस्तार से वर्णन है। साधु-साध्वियों को किस प्रकार बोलना चाहिये। भोजन, पान आदिसे संबंधित क्रिया, मर्यादा, नियम आदि विषयोंका समीचीन रूपमें वर्णन किया गया है।

आगम गृह - सार्वजनिक स्थान, खुले हुए घर, घरके बाहर का चबूतरा, वृक्षमूल आदि के स्थानों में साध्वियोंका रहने का निषेध है। इस प्रकार चारित्र पालन में उपयोगी नियमो का वर्णन है।

३) निशीथ सूत्र :

छेद सूत्रमें निशीथ सूत्र सबसे बड़ा है। जिसका स्थान सर्वोपरि माना गया है। इसे आचारांग सूत्रके द्वितीय श्रुतस्कंधकी पाँचवी चूला मानकर आचारांगकाही एक भाग माना जाता है। इसे निशीथ चूला अध्ययन माना जाता है। इसका दूसरा नाम आचार कल्प है।

निशीथका अर्थ अर्धरात्रि या अप्रकाश कहा गया है। जैसे रहस्यमय विद्या, मंत्र, एवं योग को प्रकट नहीं करना चाहिये इसी प्रकार निशीथ सूत्र को अर्धरात्रि के तुल्य अप्रकाश्य या गोपनीय रखना चाहिये, क्योंकि इसमें साधु - साध्वियों को उनके जीवनसे संबंधित होनेवाली भूलोंकी जानकारी दी गई है जिन्हें उन्हीं को जानना चाहिये तथा अपनी आत्माका परिष्कार करनी चाहिये।

यदि कोई साधु कदाचित निशीथ सूत्र को भूल जाये तो वह आचार्य पदका अधिकारी नहीं हो सकता। इस सूत्रमें साधुओंके आचारसंबंधी, उत्सर्ग विधि और अपवाद विधिका तथा प्रायश्चित आदि का सूक्ष्म विवेचन है। ऐसा माना जाता है कि - नौवें प्रत्याख्यान नामक पूर्व के आधार पर इस सूत्र की रचना हुई।

इस सूत्र के २० उद्देशक है। प्रत्येक उद्देशक में अनेक सूत्र हैं। सूत्रों पर निर्युक्ति है। सूत्रों और निर्युक्ति पर संघदास गणिका भाष्य है। सूत्र निर्युक्ति और भाष्य पर जिनदास गणि महत्तरने चूर्णिकी रचना की।

४) दशाश्रुत स्कंधसूत्रः

यह चौथा छेद सूत्र है। इसको आचार दशा कहा जाता है। इसके रचयिता आचार्य भद्र बाहु माने जाते हैं। इस पर निर्युक्ति प्राप्त होती है। जैसा बतलाया गया है - जैन परंपरा में भद्रबाहु नामक एकाधिक अनेक आचार्य हुए हैं। विद्वानों का ऐसा मंतव्य है कि - जिन भद्रबाहु ने छेद सूत्र की रचना की। नियुक्तिकार भद्रबाहु इनसे भिन्न थे।

दशाश्रुत स्कंध पर चूर्णि की भी रचना हुई। ब्रह्मर्षी पार्श्वचंद्रियने वृत्ति या टीका की रचना की।

इस ग्रंथ में दस विभाग हैं। आठवें और दशवें विभाग को अध्ययन कहा गया है और बाकीके विभागोंको दशा कहा गया है। इनमें असमाधिके स्थानोंकी चर्चा की गई है। अनाचरण रात्रिभोजन, राजपिंड ग्रहण आदि का वर्णन किया गया है। उनमें और दो सौ प्रायश्चितों का वर्णन है। आठ प्रकार की गणि संपदाओं या गणाधिपति आचार्य के व्यक्तित्व की विशेषताओंका वर्णन किया गया है। जैसे आचार संपदा, श्रुतसंपदा, शरीर संपदा, वचन संपदा, वाचना संपदा मतिसंपदा, प्रयोगमति संपदा तथा संग्रह संपदा।[७३] 74

भगवान महावीर के जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान तथा मोक्ष का विस्तार से वर्णन है। एक प्रसंग में महामोहनीय कर्मबंध के तीस स्थानों का प्रतिपादन है।

इस प्रकार साधु जीवनमें आशंकित दोष, उनका निराकरण उनकी आलोचना, प्रायश्चित, इत्यादि के साथ साथ जैन आचार- विधाओं और मर्यादाओंका विभिन्न प्रसंगोंमें बड़ा विषद विवेचन हुआ है।

आवश्यक सूत्र :

आवश्यक शब्द अवस्य से बना है। जहाँ किसी कार्य को किये बिना रहना उचित नहीं माना जाता। किसी भी स्थिति में टाला नहीं जाता। उसे अवश्य किया जाता है। आवश्यक सूत्रमें साधुओंको करणीय छह आवश्यक क्रिया, अनुष्ठानों या नित्य कर्मोंका विवेचन है। सामाईक, चतुर्विशंतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण , कायोत्सर्ग एवं प्रत्याख्यान ये छह आवश्यक अवश्य करणीय अनुष्ठान है।

आचार्य हरिभद्र बाहुने इस पर निर्युक्ति का प्रणयन - (रचना) की है। इस पर आचार्य जिनभद्र गणि क्षमा श्रमण गणिने विशेषावश्यक भाष्य की रचना की जो तत्व एवं आचार विषयक सिद्धांतों के निरुपण को दृष्टि से जैन साहित्य में बहुतही प्रसिद्ध है।

जिनदास गणिमहत्तरने इस पर चूर्णि की रचना की। आचार्य हरिभद्रसूरिने अध्ययनशील

जिज्ञासु मुनियों को उद्दिष्ट कर टीका का सर्जन किया। टीका का नाम शिष्यहिता है। अर्थात् वह पढ़नेवाले शिष्यों या विद्यार्थियों के लिये बहुत लाभप्रद है। इस टीका में रचनाकारने छह आवश्यकों का पैंतीस अध्ययनोंमें विवेचन किया है।

वर्ण्य विषयोंका हृदयंगम कराने हेतू टीकाकारने प्राकृत एवं संस्कृतकी अनेक प्राचीन कथाओं का भी समावेश किया है।

आचार्य मलयगिरीने भी इस पर टीका की रचना की। आचार्य माणिक्यशेखर सूरिने इसकी निर्युक्ति पर दीपिका लिखी। तिलकाचार्य ने भी इस पर लघुवृत्ति याने संक्षिप्त टिका की रचना की। इस पर इतने आचार्यों द्वारा टीकाओंकी रचनासे यह सिद्ध होता है कि - इस सूत्रका साधकों के जीवन में अत्यंत महत्त्व माना जा रहा है। आगमों का यह संक्षेप में परिचय है।

●●●

प्रकीर्णक आगम साहित्य

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संप्रदाय में पैंतालीस आगम स्वीकृत है। श्वेताम्बर स्थानकवासी एवं तेरापंथी संप्रदायद्वारा पूर्व में विवेचित ग्यारह अंग, बारह उपांग, चार छेद, चार मूल और एक आवश्यक - ऐसे बत्तीस आगम प्रामाणिक रूप से स्वीकार किये जाते हैं इन्हीं बत्तीस आगमों को मूर्तिपूजक संप्रदाय भी मानते है किंतु वे मूल सूत्र में पिण्डनिर्युक्ति - जिसका दूसरा नाम ओघनिर्युक्ति, छेदसूत्र में महानिशीथ, पंच कल्प और दस प्रकीर्णक.. ऐसे तेरह आगम और अधिक मानते हैं।

नंदीसूत्र के टीकाकार आचार्य मलयगिरी ने लिखा है कि तीर्थंकर द्वारा उपदिष्ट श्रुत का अनुसरण करके श्रमण प्रकीर्णकों की रचना करते हैं। प्रकीर्णक का आशय इधर - उधर बिखरी हुई सामग्री या विविध विषयों के संग्रह से है।

श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में १४००० प्रकीर्णक माने जाते थे किंतु वर्तमान में इसकी संख्या दस है। वे इस प्रकार है - १) चतु:शरण २) आतुरप्रत्याख्यान ३) महाप्रत्याख्यान ४) भक्तपरिज्ञा ५) तन्दुलवैचारिक ६) संस्तारक ७) गच्छाचार ८) गणविद्या ९) देवेन्द्रस्तव १०) मरण-समाधि अन्यत्र वीरत्थओ नाम भी है। किंतु इन नामों में भी एकरुपता दिखाई नहीं देती है। कहीं ग्रंथों में मरण-समाधि और गच्छाचार के स्थान पर चन्द्रवेध्यक और वीरस्तव को गिना है तो किन्हीं ग्रंथोंमें देवेन्द्रस्तव और वीरस्तव को सम्मिलित कर दिया गया है किंतु संस्तारक की परिगणना न कर उसके स्थान पर कहीं

गच्छाचार और कहीं मरण - समाधि का उल्लेख करते है।[७५]

जैन पारिभाषिक दृष्टि से प्रकीर्णक उन ग्रंथों को कहा जाता है जो तीर्थंकरों के शिष्य उद्‌बुद्धचेता श्रमणों द्वारा आध्यात्म सम्बद्ध विविध विषयों पर रचे जाते रहें है।

ऐसा कहा जात है कि जिन - जिन तीर्थंकरों को औत्पातिकी, वैनयिकी, कार्मिकी तथा परिणामिकी - इन चार प्रकार की बुद्धि से युक्त जितने भी शिष्य होते है, उनके भी उतने ही प्रकीर्णक ग्रंथ होते हैं।

प्रत्येक बुद्ध प्रव्रज्या देने वाले की दृष्टि से किसी के शिष्य नहीं होते पर तीर्थकर द्वारा उपदिष्ट धर्मशासन की प्ररुपणा करने की अपेक्षा से अथवा उनके शासन के अन्तवर्ति होने से वे औपचारिकता से तीर्थकरों के शिष्य कहे जा सकते हैं अतः प्रत्येक बुद्धो द्वारा प्रकीर्णक की रचना करना युक्ति संगत है।

वर्तमान के मान्य दस प्रकीर्णको में से एक - एक का संक्षिप्त परिचय यहाँ किया जा रहा है -

१) चउसरण - चतुःशरण, प्रकीर्णक

जैन परंपरा में अरिहंत, सिद्ध, साधु और सर्वज्ञ प्ररुपित धर्म को शरणभूत माना गया है। इन्हीं चार शरण के आधार पर इस प्रकीर्णक का नाम चतुःशरण रखा गया।[७६]

इस प्रकीर्णक के आरंभ में षडावश्यक पर प्रकाश डाला गया है उसमें लिखा है -

१) सामायिक आवश्यक से चरित्र की शुद्धि होती है।

२) चतुर्विंशति जिनस्तवन से दर्शन की विशुद्धि होती है।

३) वंदना से ज्ञान में निर्मलता आती है।

४) प्रतिक्रमण से ज्ञान आदि रत्नत्रय की विशुद्धि होती है।

५) कार्योत्सर्ग से तप की शुद्धि होती है और प्रतिक्रमण से चारित्र की शुद्धि न हुई हो उसकी शुद्धि कायोत्सर्ग से होती है।

६) पच्चक्खाण से वीर्य की विशुद्धि होती है।

तदनन्तर स्वप्न जो तीर्थंकर की माता देखती है उसका उल्लेख करके महावीर स्वामी को वंदन करके चार शरण का विस्तृत विवेचन किया गया है जिसमें अरिहंत, सिद्ध, साधु और धर्म की महत्ता बताकर उसका गुण कीर्तन कर, पूर्व किये पापों की निंदा और सुकृत्य का अनुमोदन किया है।

२) आउर पच्चक्खाण। आतुर प्रत्याख्यान। प्रकीर्णक -

यह प्रकीर्णक मरण से संबंधित है इसके कारण इसे अन्तकाल प्रकीर्णक भी कहा गया है। इसमें बाल- मरण और पंडित मरण का विवेचन है जिसकी स्थिति प्राय: आतुरावस्था में बनती है। 'आतुर' शब्द सामान्यत: रोग-ग्रस्त वाची है, संभव है इसी कारण इस प्रकीर्णक का नाम आतुर प्रत्याख्यान रखा है।[७७] इसमें लिखा है जो मृत्यु के समय धीर बनकर और आकुल-व्याकुल न बनकर प्रत्याख्यान करते हैं वे मरकर उत्तम स्थान को प्राप्त करते है।[७८]

इसमें प्रत्याख्यान को शाश्वत गति का साधन बताया गया है।

३) महापच्चक्खाण (महाप्रत्याख्यान) प्रकीर्णक -

इस प्रकीर्णक में पाप और दुश्चरित्र की निंदा करते हुए उनके प्रत्याख्यान पर बल दिया है। त्याग या प्रत्याख्यान को जीवन की यथार्थ सफलता का परिपोषक माना है। इस आधारशीला पर धर्माचरण टीका है। त्याग के महान आदर्श की उपादेयता का इसमें विशेष रूप से उल्लेख होने से इसका नाम महाप्रत्याख्यान रखा गया हो ऐसा प्रतीत होता है।

पौद्गलिक भोगों का मोह व्यक्ति को संयमित जीवन नहीं अपनाने देता। पौद्गलिक भोगों से प्राणी कभी तृप्त नहीं होता किंतु संसार वृद्धि होती है इस विषय का विश्लेषण इसमें किया है तथा माया वर्जन, तितिक्षा एवं वैराग्य के हेतु पंच महाव्रत, आराधना आदि विषयों का विवेचन किया गया है।

४) भत्तपरिण्णा (भक्त परिज्ञा) प्रकीर्णक -

जैन धर्म में भत्त - परिज्ञा अनशनपूर्वक मरण के भेद में से एक है। आतुर प्रत्याख्यान में रुग्णावस्था में साधक आमरण अनशन स्वीकार कर पंडित मरण प्राप्त करता है, भक्त परिज्ञा की स्थिति उससे थोड़ी भिन्न है, ऐसा प्रतीत होता है। इसमें दैहिक अस्वस्थता की स्थिति का विशेष संबंध नहीं है। सद्सद् विवेक पूर्वक साधक आमरण अनशन द्वारा देह त्याग करता है।

प्रस्तुत प्रकीर्णक में अन्यान्य विषयों कें साथ - साथ भत्त परिज्ञा का विशेष रुप से वर्णन है इसलिए इस प्रकीर्णक का नाम भत्त - परिज्ञा रखा गया है। इसमें इंगित और पादोपगमन मरण का भी विवेचन है, जो भत्त परिज्ञा की तरह विवेकपूर्वक अशन- त्याग द्वारा प्राप्त किये जाने वाले मरण के भेद है। इस कोटि के पंडित - मरण के ये तीन भेद माने गये हैं।

दर्शन विशुद्धि को भी इसमें बहुत महत्त्वपूर्ण बताया गया है। साधना की स्थिरता के लिए मनोनिग्रह की आवश्यकता का भी विवेचन है।

५) तंदुलवेयालिय, तन्दुलवैचारिक, प्रकीर्णक -

तन्दुल का अर्थ चावल होता है, प्रस्तुत प्रकीर्णक में एक दिन में एक सौ वर्ष का पुरुष जितने तन्दुल खाता है उनकी संख्या को उपलक्षित कर यह नामकरण हुआ है।

इसमें जीवों का गर्भ में आहार, स्वरुप, श्वासोश्वास का परिमाण, शरीर में संधियों की स्थिति व स्वरुप, नाड़ि यों का परिमाण, रोम -कूप, पित्त, रूधिर, शुक्र आदि का विवेचन है। साथ - साथ गर्भ का समय, माता-पिता के अंग, जीव की बालक्रीड़ा आदि दस दशाएँ तथा धर्म के अध्यवसाय आदि और भी अनेक सम्बद्ध विषयों का वर्णन है। इस प्रकीर्णक में नारी का हीन रेखा चित्र भी अंकित किया है।

अनेक विचित्र व्युत्पत्तियोंद्वारा नारी का कुत्सित और वीभत्स पदार्थों के रुप में चित्रित करने का अभिप्राय यही रहा हो कि मानव काम और कामिनी से भयाक्रांत हो जाये जिससे उसका उस ओर का आकर्षण ही मिट जाये।

इसमें जो उपमाएँ स्त्रियों के लिए दी गई है कि स्त्री के लिए पुरुष भी उसी प्रकार हेय है।

अंत में कहा है जन्म, जरा, मरण एवं वेदनाओं से भरा हुआ यह शरीर एक प्रकार का शकट है; अत: इसके द्वारा ऐसा कार्य करना चाहिए जिससे संपूर्ण दु:खों से मुक्ति प्राप्त हो सके।

६) संथारग (संस्तारक) प्रकीर्णक

जैन साधना पद्धति में संथारा - संस्तारक का अत्याधिक महत्त्व है। जीवन भर में जो भी श्रेष्ठ तथा कनिष्ट कृत्य किये हो उसका लेखा - जोखा होता है और अंतिम समय में समस्त दुष्टप्रवृत्तियों का परित्याग करना, मन,वाणी और शरीर को संयम में रखना, ममता से मन को हटाकर समता में रमण करना, आत्मचिंतन करना, आहार आदि समस्त उपाधियों का परित्याग कर आत्मा को निर्द्वद्व और निस्पृह बनाना, यही संस्तारक यानि संथारे का आदर्श है।

मृत्यु से भयभीत होकर उससे बचने के लिए पापकारी प्रवृत्तियाँ करना, रोते और बिलखते रहना उचित नहीं है। जैन धर्म का यह पवित्र आदर्श है जब तक जीओ तब तक आनन्दपूर्वक जीओ और जब मृत्यु आ जाये तो विवेकपूर्वक आनन्द के साथ मरो। संयम , साधना, तप की आराधना करते हुए अधिक से अधिक जीने का प्रयास करो और जब जीवन की लालसा में धर्म से च्युत होना पड़े ऐसा हो तो धर्म व संयम साधना में दृढ रहकर समाधि मरण हेतु हँसते, मुस्कराते हुए तैयार हो जाओ। मृत्यु को किसी भी तरहसे टाला तो नहीं जा

सकता किंतु संथारे की साधना से मृत्यु को सफल बनाया जा सकता है। इस प्रकीर्णक में संस्तारक की प्रशस्तता का बड़े सुंदर शब्दों में वर्णन किया गया है जिन्होंने संस्तारक पर आसीन होकर पंडित मरण प्राप्त किया है उनका कथन इसमें किया गया है।

जो देह त्याग करना चाहते हैं वे भूमि पर दर्भ आदि से संस्तारक अर्थात् बिछौना तैयार करके उस पर लेटते हैं। उस बिछाने पर स्थित होते हुए साधक साधना द्वारा संसार सागर को तैर जाते हैं।

संथारे में साधक सभी से क्षमायाचना कर कर्म क्षय करता है और तीन भव में मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

७) गच्छायार (गच्छाचार) प्रकीर्णक -

इसमें गच्छ अर्थात समूह में रहने वाले श्रमण - श्रमणियों के आचार का वर्णन है। यह प्रकीर्णक महानिशीथ, बृहत्कल्प व व्यवहार सूत्रों के आधार पर लिखा गया है। असदाचारी श्रमण गच्छ में रहता है तो वह संसार परिभ्रमण को बढ़ाता है किंतु जो सदाचारी श्रमण गच्छ में रहता है तो धर्मानुष्ठान की प्रवृत्ति दिन दुनी रात चौगुनी बढ़ाता है। जो आध्यात्मिक साधना में उत्कर्ष करना चाहता है उन्हें जीवन पर्यन्त गच्छ में ही रहना चाहिए क्योंकि गच्छ में रहने से साधना में बाधा नहीं हो सकती है।

इसमें गच्छ, गच्छ के साधु, साध्वी, आचार्य उन सब के पारस्पारिक व्यवहार नियम आदि का विशद वर्णन है।

ब्रह्मचर्य पालन में सदा जागरुक रहने की ओर श्रमणवृन्द को प्रेरित किया गया है। विषय को अधिक स्पष्ट करते हुए उल्लेख किया गया है कि दृढचेता स्थविर के चित्त में स्थिरता, दृढता होती है पर जिस प्रकार घृत अग्नि के समीप रहने पर द्रवित हो जाता है उसी प्रकार स्थविर के संसर्ग से साध्वी का चित्त द्रवित हो जाये ऐसी आशंका बनी रहती है।

चंदविजयं (जंदविज्झय) यह गच्छाचार का दूसरा भाग है जिसमें विनय,आचार्य गुण, शिष्य गुण, विनयनिग्रहगुण आदि सात विषयोंका विस्तार से विवेचन है।

८) गणिविज्जा (गणिविद्या) प्रकीर्णक

यह ज्योतिष का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। गणि शब्द गण के अधिपति या आचार्य के अर्थ में है। संस्कृत में भी गणि शब्द इसी अर्थ में हैं किंतु इस प्रकीर्णक के नाम के पूर्वार्द्ध में जो गणि शब्द है वह गण-नायक के अर्थ में नहीं है। गणि शब्द की एक अन्य निष्पत्ति भी है। गण् धातू के 'इन' प्रत्यय लगाकर गणना के अर्थ में गणि शब्द बनाया जाता है। यहाँ उसी का अभिप्रेत है क्योंकि प्रस्तुत प्रकीर्णक में गणना संबंधी विषय वर्णित है। इसमें दिन, तिथि,

नक्षत्र, करण, ग्रह, दिवस, मुहूर्त, शकुन बल, लग्न बल, निमित्त बल आदि ज्योतिष संबंधि विषयों का विवेचन है।

९. देविंदथव (देवेन्द्र-स्तव) प्रकीर्णक -

इसमें बत्तीस देवोन्द्रों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। ग्रंथ के प्रारंभ में कोई श्रावक भगवान् ऋषभदेव से लेकर चौबीसवे तीर्थंकर महावीर स्वामी तक की स्तुति करते हुए कहता है कि तीर्थंकर बत्तीस इन्द्रों के द्वारा पूजित है। श्रावक की पत्नी यह सुनकर जिज्ञासा प्रस्तुत करती है कि, "बत्तीस इन्द्र कौन-कौन से है ? कैसे है ? कहाँ रहते है ? किसकी स्थिति कितनी है ? भवन परिग्रह उनके अधिकार में भवन या विमान कितने है ? नगर कितने है ? वहाँ के पृथ्वी की लंबाई-चौड़ाई कितनी है ? उन विमानों का रंग कैसा है ? आहार का काल कितना है ? श्वासोश्वास कैसा है ? अवधिज्ञान का क्षेत्र कितना है आदि मुझे बताओ"

श्रावक उसका समाधान करते हुए देवताओं आदि का जो वर्णन करता है यही इस प्रकीर्णक का मुख्य विषय है। इसमें बत्तीस इन्द्र पर प्रकाश डालने की बात कही है किंतु उससे अधिक इन्द्रों के संबंध में चर्चा की गई है।

१०. वीरत्थओ (वीर स्तुति) प्रकीर्णक -

इस प्रकीर्णक के स्थान डॉ. मुनी नगराजजी तथा आचार्य देवेन्द्रमुनीजी महाराज ने मरण-समाधि प्रकीर्णक का उल्लेख किया है जिसका विवेचन आगे किया जायेगा।

आगम-दीप प्रकाशन द्वारा प्रकाशित ४५ आगम की गुर्जर छाया में वीरत्थओ प्रकीर्णक लिया गया है। उसमें ४३ गाथा है। प्रारंभ में वीर जिनेंद्र को नमस्कार कर उनके प्रकट नामों से उनकी स्तुति की गई है। जिसमें अरू, अरहंत, अरिहंत, देव, जिन, वीर आदि अनेक नाम दिये है और उन नामों की व्याख्या दी है।

अंत में लिखा है कि श्री वीर जिनेंद्र की इस नामावली द्वारा मेरे जैसे मंदपुण्य ने स्तुति की है, हे जिनवर ! मुझपर कृपा करके मुझे पवित्र शिवपथ में स्थिर करो।

इस प्रकार दस प्रकीर्णकों के बाद छह छेद सूत्रों का विवेचन किया है जिसमें से निशीथसूत्र बृहत्कल्प, व्यवहार सूत्र और दशाश्रुतस्कंध का तो विवेचन पहले किया जा चुका है। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संप्रदाय में वीयकप्पो और महानिसीह - इन दो को भी छेद सूत्र में समाहित किया गया है जिसका वर्णन आगे दिया जाएगा। पहले मरण समाधि प्रकीर्णक का वर्णन दिया जा रहा है।

मरणसमाही (मरण - समाधि)

इसका दूसरा नाम मरण विभक्ति है। यह सबसे बड़ा प्रकीर्णक है - १) मरण विभक्ति, २) मरण विशोधि ३) मरण समाधि ४) संलेखनाश्रुत ५) भत्तपरिज्ञा ६) आतुर-प्रत्याख्यान ७) महाप्रत्याख्यान ८) आराधना - इन आठ प्राचीन श्रुत ग्रंथों के आधार पर प्रस्तुत प्रकीर्णक की रचना हुई है।

शिष्य ने आचार्य से जिज्ञासा प्रस्तुत की कि भगवान समाधि-मरण किस प्रकार प्राप्त होता है ? आचार्य ने समाधान करने हेतु आलोचना, संलेखना, क्षमापना आदि चौदह द्वारों का विवेचन किया है। परिसह - सहन करके पादोपगमन संथारा करके सिद्ध गति प्राप्त करने वालों के दृष्टांत भी दिये हैं अंत में अनित्य अशरण आदि बारह भावनाओं पर भी प्रकाश डाला है और भी अनेक प्रकीर्णकों की रचनाएँ हुई है किंतु वे प्राप्त नहीं है।

महानिशीथ छेद सूत्र -

महानिशीथ पूर्ण रुप से यथावत नहीं रह सका है। इसमें छह अध्ययन तथा दो चूलाएँ है। प्रथम अध्ययन का नाम शल्योद्धरण है। इसमें पाप रुपी शल्य की निंदा और आलोचना के संदर्भ में अठराह पाप-स्थानकों की चर्चा है।

द्वितीय अध्ययन में कर्मों के विपाक तथा पाप-कर्मों की आलोचना की विधेयता का वर्णन है। तृतीय और चतुर्थ अध्ययन में कुत्सित शील या आचरण वाले साधुओं का संसर्ग न किया जाने के संबंध में उपदेश है। पंचम अध्ययन में गुरु- शिष्य के पारस्पारिक संबंध का विवेचन है उस प्रसंग में गच्छ का भी वर्णन है। षष्ठ अध्ययन में आलोचना के दस भेदों का तथा प्रायश्चित के चार भेदों का वर्णन है।

इस सूत्र की भाषा तथा विषयवस्तु को देखते हुए यह रचना अर्वाचीन हो ऐसा लगता है।

जीयकप्पसुत्त (जीतकल्प) सूत्र

इसके रचयिता सुप्रसिद्ध भाष्यकार जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण माने जाते हैं। इस सूत्र में जैन श्रमणों के आचार के संबंध में प्रायश्चित का विधान है। प्रायश्चित का महत्त्व आत्म-शुद्धि या अन्त:परिष्कार की उपादेयता - इन विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

प्रायश्चित दो शब्दों के योग से बनता है प्राय: का अर्थ है पाप और चित्त का अर्थ है उस पाप का विशोधन करना। प्राय: नाम तप: प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते, तपोनिश्चय संयोगात् प्रायश्चित्तमितीर्यते।[७९]

अर्थात् पाप को शुद्ध करने की क्रिया का नाम प्रायश्चित है। इसमें प्रायश्चित के दस भेदों का विवेचन है - १) आलोचना, २) प्रतिक्रमण ३) मिश्र - आलोचना -

प्रतिक्रमण दोनों, ४) विवेक ५) व्युत्सर्ग ६) तप ७) छेद, ८) मूल ९) अनवस्थाप्य १०) पाराचिक।

पिंडनिज्जुत्ति, ओहनिज्जुत्ति -

पिण्डनिर्युक्ति, अघनिर्यक्ति -पिण्ड शब्द जैन पारिभाषिक दृष्टि से भोजनवाची है। प्रस्तुत ग्रंथ में आहार एषणीयता, अनेषणीयता, आदि के संदर्भ में उद्‌गम आदि दोष तथा श्रमण जीवन के आहार, भिक्षा आदि पहुलओं पर विशद विवेचन किया है।

दशवैकालिक के पंचम अध्ययन का नाम पिण्डैषणा है। इस अध्ययन पर आचार्य भद्रबाहु की निर्युक्ति बहुत विस्तृत हो गई है। यही कारण है कि इसे पिण्ड - निर्युक्ति के नाम से एक स्वतंत्र आगम के रुप में स्वीकार कर लिया गया है।

ओघनिर्युक्ति : ओघ का अर्थ प्रवाह, सातत्य परंपरा प्राप्त उपदेश है। जिस प्रकार पिण्ड निर्युक्ति में साधुओं के आहार विषयक पहलुओं का विवेचन है उसी प्रकार इसमें साधु जीवन से संबंध आचार व्यवहार के विषयों का संक्षेप में उल्लेख किया है। पिण्ड - निर्युक्ति दशवैकालिक निर्युक्ति का जिस प्रकार अंश माना जाता है उसी प्रकार इसे आवश्यक निर्युक्ति का एक अंश स्वीकार किया जाता है, जिसके रचयिता आचार्य भद्रबाहु है।

ओघनिर्युक्ति प्रतिलेखना द्वारा आलोचना द्वार तथा विशुद्धि द्वार में विभक्त है। प्रकरणों के नामों से स्पष्ट है कि साधु जीवन चर्या का इसमें समावेश है।[८०]

पिण्ड-निर्युक्ति और ओघ निर्युक्ति : इन दोनों ही निर्युक्तियों को पैतालीस आगमों में क्यों लिया हो यह प्रश्न है और दोनों अलग - अलग आगम अंशों की निर्युक्तियाँ होते हुए भी दोनों का नाम साथ में दिया है। इसका कारण भी विचारणीय है। वास्तव में दोनों के विषय साधु जीवन संबंधी है इसलिए नाम साथ में दिया हो ऐसा हो सकता है किंतु निर्युक्तियाँ तो और भी है उनका आगम में समावेश नहीं किया जाता है। यदि इनको न लीया जाये तो पैंतालीस की संख्या नहीं होगी और दोनों को अलग - अलग लिया जाये तो छियालीस हो जायेंगे इसलिए दोनों का साथ में विवेचन किया हो ऐसा अनुमान किया जा सकता है। यह विषय विचारणीय है।

इस प्रकार श्वेताम्बर, स्थानकवासी और तेरा पंथी परंपरा द्वारा मान्य बत्तीस आगम और इन बत्तीस में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक द्वारा मान्य और तेरह आगम मिलाने से कुल पैंतालीस आगमों के विषयवस्तु का यहाँ संक्षेप में प्रतिपादन किया है क्योंकि आगमों के आधार पर जैन सिद्धांत की मंजिल खड़ी है इसलिए सर्वप्रथम आगमों का विवेचन किया गया है।

प्रकीर्णक में साधु की भावना

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक की मान्यतानुसार प्रकीर्णक को भी आगम मानते हैं वे दस है। उसमें से प्रथम प्रकीर्णक का नाम चउसरण (चतु:शरण) है, उसमें अरिहंत, सिद्ध, साधु एवं केवली भगवंत ने कहा हुआ धर्म, इनकी शरण, चार गति का नाश करने वाला है। ऐसा सुन्दर विवेचन किया है। उसमें अरिहंत आदि के गुणों का विस्तृत वर्णन किया है और विशेष रुप से यह बात कही है कि इन चार की शरण भाग्यशाली पुरुष को ही प्राप्त होती है। आगे कहा है कि जिसने इन चार का शरण नहीं लिया, दान, शील, तप, भावना, रुप धर्म नहीं किया और चार गति रुप संसार का छेद नहीं किया वह मनुष्य जन्म हार गया है।[८१]

बारह भावनाओं में दूसरी अशरण भावना में यही बात है कि जगत की कोई वस्तु शरणरुप नहीं है मात्र उपरोक्त चार शरण ही शरण रुप है।

दूसरे आतुर प्रत्याख्यान प्रकीर्णक में एकत्व भावना का उल्लेख हुआ है उसमें लिखा है जीव अकेला ही जाता है निश्चित रुप से अकेला ही उत्पन्न होता है, अकेले की ही मृत्यु होती है और कर्म रहित होने पर अकेला ही सिद्ध होता है, ज्ञान दर्शन सहित मेरी आत्मा ही शाश्वत है अन्य सभी बाह्य पदार्थ संबंध मात्र है।[८२]

तीसरे महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक में भी एकत्व भावना का ऐसा ही वर्णन हुआ है।[८३] चतुर्थ तंदुलवैचारिक प्रकीर्णक में अनित्य भावना और अशुचि भावना का वर्णन प्राप्त होता है। उसका विवेचन करते हुए लिखा है कि यह शरीर अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, वृद्धि और हानि को प्राप्त होनेवाला विनाशशील है जिससे पहले या बाद में उसे अवश्य छोड़ना ही पड़ेगा।

उसके बाद में इसी में शरीर की संरचना का विवेचन है। शरीर की अशुचिता का वर्णन करते हुए लिखा है कि यदि शरीर के अंदर का मांस परिवर्तन करके बाहर कर दिया जाये तो अशुचि को देखकर माता भी घृणा करने लगेगी। मनुष्य शरीर मांस, शुक्र, हड्डियों से व्याप्त अपवित्र है किंतु वस्त्र, गंध और माला आदि द्वारा आच्छादित होने से सुशोभित दिखता है। यह शरीर खोपड़ी, चरबी, मज्जा, मांस, हडिड्याँ, खून, चर्म कोश, नाक का मैल और विष्टा आदि का घर है। ये नेत्र, कान, होंठ, ललाट, तालु आदि अमनोज्ञ मल से युक्त है, होंठ के चारों ओर लाल चिकनापन, मुख पसीने से लथपथ, दांत मलिन है हाथ की अंगुलियाँ, अंगुठा, नख, सांधे से जुड़े है। यह अनेक स्रावों का घर है। इस शरीर के समान, कपाल सुखे हुए वृक्ष के कोटर के समान, पेट बालों से आच्छादित, अशोभनीय कटि-प्रदेश, रोमकूप में से स्वभावत: अपवित्र और घोर दुर्गन्धयुक्त पसीना निकलता रहता है। उसमें कलेजा, आँते, पित्ताशय, हृदय, फेफड़े, प्लीहा आदि मल स्राव के नौ छिद्र है,

जिसमें दुर्गन्ध युक्त पित्त, कफ, मूत्र आदि का निवास स्थान है। मांस गंध से युक्त अपवित्र और नश्वर है इस प्रकार विचार करने से और उसका विभत्स रुप देखकर यह जानना चाहिए कि यह शरीर अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, सड़न- गलन और विनाशधर्मी है। इस प्रकार एक सौ दो सूत्र से एक सौ बयालीस सूत्र तक शरीर की रचना और उसकी अशुचिता का विस्तृत विवेचन किया है।[८४]

इसमें वर्णित अशुचि भावना का विवेचन बारह भावना में से अशुचिभावना के समान है। आगम वाङ्मय में भावनाओं के संबंध में विभिन्न प्रसंगों में जो वर्णन आया है उसका यहाँ संक्षेप में विवेचन किया गया है। इस वर्णन में दो बातें मुख्य रुप से हमारे समाने आती है। पहली बात यह है कि बारह भावनाओं के रुप में जो सुव्यवस्थित क्रमबद्ध विवेचन हमें आज प्राप्त है; आगमों में वैसा नहीं है जो कुछ भी है वह संकेत रुप में है इसलिए अनित्यत्व, अशरणत्व आदि के अतिरिक्त अन्य भावनाएँ प्रकट रुप में दृष्टिगोचर नहीं होती। अन्य विभिन्न प्रसंगों में आये हुए वर्णनों में उनको सांकेतिक भाव रुप में तो हम परिग्रहित कर सकते हैं।

एक दूसरी बात यह है कि अशुभ या अप्रशस्त तथा शुभ या प्रशस्त भाव के आधार पर ही भावनाओं का वर्णन किया गया है। वहाँ चिंतन मूलक मुख्य अशुभ और शुभ पक्षों को स्वीकार किया गया है। साधक पहले अशुभ का चिंतन करे उसका परित्याग करे, बाद में शुभ का चिंतन करे और उसे ग्रहण करे।

उपर्युक्त संदर्भों में आये वर्णन से इतना तो अवश्य ही सिद्ध होता है कि वैचारिक भावोद्भावन तथा चिंतन विमर्श से सत्वोन्मुखता, चर्या में आत्म पराक्रमशीलता, उदित होती है।

आगमों पर व्याख्या साहित्य

आगमों की व्याख्या और विश्लेषण में विद्वानों ने भिन्न भिन्न विधाओंमे साहित्यकी रचना की इसका एक ही लक्ष्य था कि आगम गत तत्वोंका विषदरूपमें विवेचन किया जाए, ताकि अध्ययन करनेवाले, जिज्ञासु जन आगमों का सार आत्मासात करनेमें सक्षम हो सके, क्योंकि, आगमों पर ही जैन संस्कृति, धर्म, दर्शन और संघका प्रासाद अवस्थित है।

आगमोंपर निर्युक्ति, भाष्य, यूर्णि, टीका, वृत्ति, दीपिका, टब्बा आदि के नाम से विशाल साहित्य की रचना हुई।

निर्युक्ति

व्याख्यामूलक साहित्यमें निर्युक्तिका स्थान सर्वोपरि है। सूत्र में जो अर्थ निश्चित *किया हुआ है, जिसमें वह सन्निबद्ध हो उसे निर्युक्ति कहा गया है।*

आगमों पर आर्या छंद में जिसे गाथा कहा जाता है, वह प्राकृत भाषामें उपलब्ध है। विषयको भलिभाँति प्रतिपादित करनेहेतू अनेक कथानको, उदाहरणों, तथा दृष्टांतों का प्रयोग किया जा रहा है जिनका उल्लेख मात्र निर्युक्तियोंमे मिलता है।

इसलिये यह साहित्य इतना सांकेतिक और संक्षेप में है कि बिना व्याख्या या विवेचन को भलिभाँति समझा नही जा सकता। यही कारण है कि - टीकाकारोंने मूल आगम के साथ-साथ निर्युक्तियों पर भी टीकायें रची है।

ऐसा जान पड़ता है कि - प्राचीन गुरू परंपरासे प्राप्त पूर्व साहित्य आधारपर ही निर्युक्ति साहित्य की रचना की गई। यह संक्षिप्त और पद्यबद्ध होनेसे इसे सरलता से कंठस्थ किया जा सकता है तथा धर्मोपदेश के समय इसे कथा आदिके उद्धरण दिये जा सकते है।

आचारांग सूत्र, सूत्रकृतांग सूत्र, सूर्यप्रज्ञाप्ति, व्यवहार सूत्र, कल्पसूत्र, दशाश्रुतस्कंध, उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक सूत्र और आवश्यक सूत्र आदि पर निर्युक्तियों की रचना की गई। परंपरासे इनके रचनाकार आचार्य भद्रबाहु माने जाते हैं। जो संभवत: छेद सूत्रोंके रचयिता, अंतिम श्रुत केवली आचार्य भद्रबाहुसे भिन्न थे।

निर्युक्तियोंमें जैन सिद्धांत के तत्व, परंपरागत आचार, विचार अनेक ऐतिहासिक तथा पौराणिक परंपरायें आदि का वर्णन है। निर्युक्तियोंमें प्राय: अर्धमागधी - प्राकृत का प्रयोग हुआ है।

भाष्य

विद्वानों को निर्युक्तियों द्वारा की गई व्याख्या संभवत: पर्याप्त न लगी हो। अत: उन्होने भाष्योंके रुप में नया व्याख्या - ग्रंथ लिखा।

'भाषितुं योग्यं भाष्यम्' जो भाषित या व्याख्या करने योग्य की आति है, उसे भाष्य कहते हैं। शिशुपालवध में महाकवि माघने एक स्थान पर भाष्य का विवेचन करते हुए लिखा है - संक्षिप्त किंतु अर्थ गरिमा या अर्थ - गंभीरता से युक्त वाक्य का सुविस्तृत शब्दोंमें विश्लेषण करना भाष्य है। [८५]

विद्वानों ने भाष्य की एक अन्य प्रकार से भी व्याख्या की है - 'जहाँ सूत्र का अर्थ, उसका अनुसरण करनेवाले शब्दोंद्वारा किया जाता है, अथवा अपने शब्दोंद्वारा उसका विशेषरुपमें वर्णन किया जाता है, उसे भाष्य कहा जाता है।'[८६]

निर्युक्तियों की तरह भाष्यों की रचना भी प्राकृत गाथाओं में संक्षिप्त शैलीमें हुई है। उनमें भी मुख्यरुपसे अर्धमागधी का प्रयोग हुआ है। कतिपय स्थानोंपर मागधी और शौरसेनी का भी प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। भाष्योंकी रचना का समय सामान्यत: लगभग चौथी - पाँचवी शताब्दि माना जाता है।

भाष्य साहित्यमें विशेषत: निशीथ भाष्य, व्यवहार भाष्य तथा बृहत्कल्पाभाष्य का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भाष्यमें अनेक प्राचीन अनुस्तृतियाँ - सुनी हुई बातें, लौकिक कथायें तथा साधुओके परंपरागत प्राचीन आचार, विचार आदि की विधियोंका विवेचन हैं। जैन साधु संघके प्राचीन इतिहास को भलिभाँति जानने के लिये भाष्योंका अध्ययन अत्यंत आवश्यक हैं।

संघदास गणि क्षमा श्रमणने कल्प, व्यवहार और निशीथ भाष्योंकी रचना की ऐसा प्रसिद्ध है। ये आचार्य हरिभद्रसूरि के समकालीन थे।

चूर्णि :

निर्युक्तियों और भाष्योके पश्चात चूर्णियों की रचना की। केवल अंग आगमों परही नहीं किंतु उपांग, मूलादि अन्य आगमों पर भी टीकाओं की रचना होती रही जिनमें से बहुत सी आज हमें प्राप्त हैं। धन्य है ये आचार्य जिन्होने ज्ञानाराधना का बहुत बड़ा कार्य किया तथा लोगोंपर अत्यधिक उपकार किया।

टब्बा :

संस्कृत टीकाओं के बाद व्याख्या का एक और रुप प्रकाशमें आया, उसे टब्बा कहा जाता है। गुजराती एवं राजस्थानी भाषाओंमें आगमों पर टब्बों की रचनायें हुई। गुजरात राजस्थानमें जैन धर्म बहुत फैला हुआ था। आज भी है।

टब्बा संभवत: संस्कृतके 'स्तब्ध' शब्द से बना है। स्तब्ध का अर्थ घेरा हुआ, रोका हुआ, अवरुद्ध किया हुआ होता है। टब्बा मूल आगम के शब्दको अर्थद्वारा घेरे रहता है। अत: शाब्दिक दृष्टि से यह शब्द सार्थकता लिये हुए हैं।

टब्बा का तात्पर्य - आगम के शब्दों का बहुत ही सरल रुपमें अर्थ देना है। जिन जिन शब्दोंका अर्थ किया जाता , उनके नीचे उसके टब्बे लिख दिये जाते हैं। साधारण लोग इन टब्बों की सहायता से आगमों का आशय या भाव बड़ी सुगमता से समझ लेते।

समीक्षा :

इतना विशाल व्याख्या साहित्य लिखे जाने का अभिप्राय यह है कि जैन तत्वज्ञान और आचार विधाओके अध्ययन में साधुओके साथ - साथ गृहस्थों की भी अभिरुचि रही है

। अतएव व्यापक लाभकी दृष्टीसे यह विपुल साहित्य रचा गया।

इस व्याख्यामूलक साहित्यमें तात्विक सिद्धांतोंका, साधुओं की चर्याका तथा गृहस्थ उपासकोंकी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक स्थितियोंका विभिन्न वर्गोंके लोगोके कार्य, शिल्प, व्यवसाय, शिक्षा, कलाकृतियाँ, स्थापत्य, भवन निर्माण कला इ. की रचना हुई। जैसा बतलाया गया है - निर्युक्तियाँ और भाष्य प्राकृत गाथाओंमें लिखे गये, चूर्णियों की रचना गद्यमें हुई। निर्युक्ति और भाष्योंमें जैन धर्म के सिद्धांत विस्तार से प्रतिपादित नहीं किये गये। संक्षिप्त एवं सांकेतिक रुपमें वहाँ विवेचन हुआ। इसके अतिरिक्त निर्युक्तियों और भाष्यों की गाथायें कई कई आपसमें मिश्रित होती गई इसलिए उनके माध्यमसे जैन दर्शन और आचार के सिद्धांतों को विशेष रुप से समझना साधारण पाठकों के लिये कठीन हो गया।

चूर्णियोंकी एक विशेषता यह रही कि - वहाँ प्राकृत के साथ- साथ संस्कृत भाषाका भी प्रयोग हुआ। इसके कारण भाषाकी रोचकता भी बढ़ी और विषयोंके निरुपणमें अधिक अनुकूलतायें हुई।

टीका :

चूर्णियों के बाद भी व्याख्यामूलक साहित्यकी रचना का क्रम आगे बढ़ता रहा। विद्वान आचार्यों ने संस्कृत में आगमों पर बड़े विस्तृत रुपमें वृत्तियों या टीकाओं की संस्कृत में रचना की। संस्कृत एक ऐसी भाषा है, जिसमें थोड़े शब्दोंमें विस्तृत भाव प्रकट किया जा सकता है।

आचारांग और सूत्रकृतांग पर आचार्य शिलांक द्वारा रचित टीकायें प्राप्त हैं। इन दोनों अंग सूत्रों का आगमोंमें सर्वोपरि महत्त्व है। आचार्य शिलांक की टीका के साथ इन आगमों का अध्ययन करने से जैन दर्शन के गहन तत्वोंको भलिभाँति समझा जा सकता है।

इन दो आगमों के अतिरिक्त बाकी के दो अंग आगमों पर आचार्य अभयदेव सूरिने टीकाओंकी रचना की। वे नवांगि टीकाकार कहे जाते हैं। उन द्वारा रचित टीकाओंका जैन साहित्यमें बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है।

अनेक विद्वान आचार्योंने आगमों पर और भी टीकाएँ लिखीं और अनेक विषयोंका यथा प्रसंग वर्णन किया है।

जैन आगमोंमें जो द्रव्यानुयोग मूलक आगम है वे तात्विक दृष्टिसे बहुत गंभीर है। टीकाकारों और व्याख्याकारोंमें उनमें वर्णित - आत्मा, कर्म, आश्रव, तपके विभिन्न भेद, उपभेद, पुद्गल का गहन विवेचन, परमाणुवाद की विषद चर्चा अनेकविध परमाणुओंके सम्मिलनसे निष्पन्न होनेवाली विभिन्न दशायें, कार्योत्सर्ग, ध्यान, स्वाध्याय आदि का बहुत ही

सूक्ष्म, गहन, विश्लेषण किया है जो तात्विक ज्ञानमें अभिरुचिशील श्रमणों और विद्विद्जनों के लिये विशेषत: पठनीय है, क्योंकि जीवनमें तत्वज्ञान का बहुत बड़ा महत्त्व है। यद्यपि सब लोग, तत्वज्ञानमें प्रगति नहीं कर सकते, क्योंकि - उसमें प्रज्ञा, अभ्यास और श्रमकी अत्याधिक आवश्यकता है, किंतु जिनमें प्रतिभा, रुचि और कार्यशक्ति हो, उन्हें तो अवश्यही उच्चस्तरीय तत्वज्ञान प्राप्त करना चाहिये। ऐसे पुरुषोंके लिये टीकाकारोंद्वारा की गई व्याख्यायें बहुतही लाभप्रद है।

व्याख्या साहित्य के अंतर्गत चूर्णियोंकी यह विशेषता रही है कि - सैद्धांतिक तत्वोंको समझाने के लिये उनमें कथाओं का विशेष रुप से उपयोग किया गयाहै। कथानकों, दृष्टांतों और उदाहरणोंद्वारा गहन एवं कठीन तत्वोंको आसानी से समझा जा सकता है। चूर्णिकारों का यह प्रयत्न वास्तवमें अत्यंत उपयोगी है। शताब्दियों से तत्वजिज्ञासु इनका अध्ययन करते हुए लाभान्वित हो रहे हैं।

दार्शनिकता के साथ - साथ लौकिक विषयोंपर भी टीकाकारोंने बहुत ही विशद विश्लेषण किया है - जिससे पाठक अपने अतित को भलिभाँति समझ सकते हैं। किसी भी समाज या राष्ट्र के संबंध में उसका गौरवमय अतीत बड़ा प्रेरणाप्रद होता है। इसलिए इसे जीवित रखना विद्वानों का कार्य है। इन टीकाकारोंने व्याख्याकारोंने इस कार्य को बड़ी सुंदरता से निष्पादित किया है। यह व्याख्या मूलक साहित्य ऐसा साहित्य है जो युग - युग तक जिज्ञासुओं और पाठकोंको प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

●●●

श्वेतांबर : दिगंबर परिचय

आगम

जैन धर्म श्वेतांबर और दिगंबर दो समुदायोंमें विभक्त है। मौलिक सिद्धांतों की दृष्टि से दोनोंमें कोई विशेष अंतर नहीं है किंतु आचार विषयक मान्यताओंमें और तद्नुसार कुछ सैद्धांतिक मान्यताओंमें अंतर हैं।

"श्वेतानि अंबराणि येषां ते श्वेतांबरा"[८७]

इस विग्रह के अनुसार जिनके वस्त्र सफेद होते है वे श्वेतांबर कहे जाते हैं। इसका आशय यह है कि - श्वेतांबर परंपराके साधु - साध्वी आगम निरुपित परिमाण और मर्यादा के अनुसार सफेद वस्त्र धारण करते हैं।

"दिशा एव अंबराणि येषां ते दिगंबरा"

इस विग्रह के अनुसार दिशायें ही जिनके वस्त्र हैं वे दिगंबर कहलाते हैं । अर्थात् दिगंबर साधु वस्त्र धारण नहीं करते । वे वस्त्रों को परिग्रह मानते हैं । दिगंबर परंपरामें स्त्रियाँ मुनिधर्म स्वीकार करने के लिये अधिकृत नहीं हैं ।

दिगंबर मान्यता के अनुसार भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात ६८३ वर्ष तक द्वादश अंगोके ज्ञान की प्रवृत्ति गतिशील रही । ज्ञान, गुरु शिष्य की परंपरा से मौखिक रुप में दिया जाता था । क्रमशः वह विलुप्त होता गया । बारह अंगों का कुछ आंशिक ज्ञान धरसेन नामक आचार्य को था। वे राष्ट्र के अंतर्गत गिरनार पर्वत पर चंद्रगुफामें ध्यान निरत थे । ऐसा कहा जाता है कि उन्हें आचारांग पूर्णतया स्मरण था ।

आचार्य धरसेनको यह चिंता हुई कि - उन्हें जो श्रुतज्ञान स्मरण है, कहीं उन्हीं के साथ न चला जाय इसलिये उन्होने महिमा नगरी के मुनिसंघको पत्र लिखा कि- वे कुछ ऐसी व्यवस्था करें कि ज्ञान की यह महती परंपरा आगे भी चलती रहें ।[८८]

मुनिवृंद के चिंतन के अनुसार आंध्र प्रदेश से पुष्पदंत एवं भूतबली नामक दो मुनियों को आचार्य धरसेन के पास ज्ञान प्राप्त करने हेतु भेजा । वे दोनों मुनि बड़े मेधावि थे, धरसेन ने उनको दृष्टिवाद के अंतर्गत कुछ पूर्वों और व्याख्याप्रज्ञप्ति की शिक्षा दी । ज्ञान प्राप्त कर दोनों मुनि वहाँ से वापस लौट आए ।

दिगंबरों के सर्वमान्य शास्त्र :

षट्खंडागम :

मुनि पुष्पदंत और भूतबलीने यह विचार किया कि उन्होने आचार्य धरसेन से जो दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया है, उससे औरोंकोभी लाभ मिलें । इसलिये उन्होने षट्खंडागम की रचना की । ये शौरसेनी प्राकृतमें हैं । पुष्पदंत ने १०७ सूत्रोंमें सत् प्ररुपणा का विवेचन किया तथा भूतबलीने ६०० सूत्रोंमें कर्म प्रकृतियाँ आदि के विषयमें शेष सारा ग्रंथ लिखा ।

डॉ. जगदिशचंद्र जैन ने 'प्राकृत साहित्यका इतिहास' नामक पुस्तक में षट्खंडगम् का महत्त्व उसके छः खंड, उनमें वर्णित विषय और उन पर रचित धवला आदि टीकाओं पर विस्तार से प्रकाश डाला है ।[८९]

षट्खंडागम का आधार चतुर्दश पूर्वों के अंतर्गत द्वितीय अग्रायणी पूर्वका कर्म प्रकृति नामक अधिकार है

यह छह खंडोमें विभक्त है, इसलिये इन्हें षट्खंडागम कहा जाता है। दिगंबर परंपरामें यह आगमों के रुपमें मान्य है।[१०]

षट्खंडागम पर व्याख्या साहित्य:

षट्खंडागम दिगंबर परंपरामें सर्वमान्य ग्रंथ है। समय - समय पर अनेक विद्वानोंने इन पर टीकायें लिखी। लगभग दूसरी शताब्दिमें आचार्य कुंदकुंद ने इसपर परिकर्म नामक टीका की रचना की।

तीसरी शताब्दि में आचार्य श्यामकुंड़ने पद्धति नामक टीका लिखी। चौथी शताब्दीमें आचार्य तुम्बूलूर ने चूड़ामणि नामक टीका रची। पांचवी शताब्दिमें श्रीसमंत भद्र स्वामीने टीका की रचना की। यह क्रम आगे भी चलता रहा। छठ्ठी शताब्दी में बप्पदेव गुरुने व्याख्या प्रज्ञप्ति नामक टीका लिखी। ये बड़े दुःखका विषय है कि ये सभी टीकायें लुप्त हो गई हैं। इनमें से इस समय कोई भी टीका प्राप्त नहीं है। केवल उनका उल्लेख हुआ है।

धवला की रचना :

षट्खंडागम पर आचार्य वीरसेन द्वारा रचित धवलाटीका बहुत प्रसिद्ध है। वह इस समय उपलब्ध है। वीरसेन के गुरु का नाम आचार्य नंदी था। इनके शिष्य जिनसेन थे। जिन्होंने आदि पुराण की रचना की।

धवला टीका चूर्णियों की तरह संस्कृत प्राकृत मिश्रित है। यह बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण है। इसकी प्रशस्तिमें टीकाकारने लिखा है कि - यह सन् ८१६ में इस टीका का लेखन संपन्न हुआ। धवलाकार आचार्य वीरसेन बहुश्रुत विद्वान थे। टीकाके अध्ययनसे पता चलता है कि उन्होंने दिगंबर तथा श्वेतांबर के आचार्यद्वारा लिखे गये साहित्यका गहन अध्ययन किया था। षट्खंडागम में निरुपित कर्म सिद्धांत आदि विविध विषयोंका अत्यंत सूक्ष्म गंभीर और विस्तृत विश्लेषण है।

कषाय पाहूड (कषाय प्राभृत) :

गिरनार पर्वत की चंद्रगुफामें ध्यान करनेवाले आचार्य धरसेन के समय के आसपास गुणधर नामक एक और आचार्य हुए। उनको भी द्वादशांग श्रुतका कुछ ज्ञान था। उन्होने कषाय पाहूड के नाम से दूसरे सिद्धांत ग्रंथकी रचना की।

आचार्य वीरसेनने इस पर भी टीका लिखना शुरू किया किंतु वे २०,००० (बीस हजार) श्लोक प्रमाण टीका ही लिख पाये थे कि - इसी बीच वे दिवंगत हो गये। उनके शिष्य आचार्य जिनसेनने बाकी की टीका पूर्ण की। यह टीका जय धवला के नामसे प्रसिद्ध है। यह

टीका साठ हजार (६०,०००) श्लोक प्रमाण है।

कषाय पाहूड़ भी षट्खंडागम की तरह दिगंबर परंपरा में सर्वमान्य है। यह पाँचवे ज्ञान प्रवाद पूर्व की दशवी वस्तु के तृतीय पाहूडं "पेज्जदोष:" से लिया गया है। इसलिये इसको पेज्जदोष पाहूड़ भी कहा जाता है। पेज्जका अर्थ प्रेय या राग है तथा दोष का अर्थ द्वेष है। इस ग्रंथमें क्रोध, मान, माया, लोभ, रुप, कषाय, राग, द्वेष उनकी प्रकृति स्थिति, अनुभाग, प्रदेश आदि का निरुपण किया गया है।

तिलोय पन्नत्ति : (तिलोक प्रज्ञप्ति)

आचार्य यति वृषभने तिलोय पन्नत्ति की रचना की। यह प्राकृत भाषामें लिखा गया प्राचीन ग्रंथ है। जो आठ हजार (८०००) श्लोक प्रमाण है। इसमें तीनों लोकोंसे संबंधित विषयोंका विवेचन है। दिगंबर परंपरामें प्राचीनतम श्रुतांग के अंतर्गत माना जाता है।

धवला टीकामें इस ग्रंथ कें अनेक उद्धरण आये हैं। इसमें भूगोल, खगोल, जैन सिद्धांत, पुराण एवं इतिहास आदि पर भी प्रकाश ड़ाला गया है। समाज, राज्यशासन, लोकव्यवहार आदि विषयोंकी यथा प्रसंग चर्चा हुई है।

आचार्य कुंदकुंद के प्रमुख ग्रंथ

आचार्य कुंदकुंद का दिगंबर परंपरामें बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। गौतम गणधर के पश्चात् इनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। पद्मनंदी वक्रग्रीव, एलाचार्य तथा गृध्द पृच्छ के नामसे भी ये प्रसिद्ध हैं, किंतु इनका वास्तवकि नाम पद्मनंदी था। ये आंध्रप्रदेश के अंतर्गत कोंडकूंड के निवासी थे। जिससे इनका नाम कुंदकुंद पड़ा ऐसा माना जाता है।

आचार्य कुंदकुंद के समय के विषयमें कोई निश्चित प्रमाण मालूम नहीं होता। कोई विद्वान उनका समय प्रथम शताब्दि के आसपास मानते हैं। कईयों के मतानुसार उनकी तीसरी चौथी शताब्दि मानी जाती है।

आचार्य कुंदकुंदने प्राकृतमें अनेक ग्रंथ रचे। जिनमें पंचास्तिकाय, प्रवचनसार तथा समयसार बहुत प्रसिद्ध है। ये द्रव्यार्थिक नय प्रधान ग्रंथ है। इनमें सूत्र निश्चय नयसे पदार्थों का प्रतिपादन किया है।

पंचास्तिकाय :

पंचास्तिकाय में धर्म, अधर्म, आकाश, जीव और पुद्गल इन पांच अस्तिकायों का

वर्णन है। यह दो श्रुत स्कंधों में विभाजित है। इसमें १७३ गाथायें है।

प्रथम श्रुत स्कंधमें छह द्रव्यों और पाँच अस्तिकायों का विवेचन है। इसमें द्रव्य का *लक्षण, उसके भेद, स्यादवाद के सात भंग, गुण, पर्याय,* काल, द्रव्य का स्वरुप, जीव का लक्षण, सिद्धों का स्वरुप, जीव एवं पुद्गलका बंध जीवास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय तथा काल के लक्षण आदि का प्रतिपादन किया गया है।

द्वितीय श्रुतस्कंधमें जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा बंध एवं मोक्ष का विवेचन है। आचार्य अमृतचंद्र सुरि तथा आचार्य जयसेनने संस्कृतमें टीकाओं की रचना की।

प्रवचनसार :

आचार्य कुंदकुद का यह दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें तीन श्रुतस्कंध हैं। प्रथम श्रुतस्कंध में ज्ञान का, द्वितीयश्रुत स्कंधमें ज्ञेयका और तृतीय श्रुतस्कंध में चारित्र का प्रतिपादन है। इसमें कुल दो सौ पचहत्तर (२७५) गाथायें हैं।

इसके प्रथम श्रुतस्कंध के ज्ञानाधिकार में आत्मा और ज्ञानका एकत्व एवं अन्यत्व, सर्वसत्व की सिद्धि, इंद्रिय सुख और अतिंद्रिय सुख, शुभोपयोग, अशुभोपयोग तथा शुद्धोपयोग, मोहक्षय आदि का निरुपण है।

दूसरे श्रुतस्कंधमें गेय अधिकारमें द्रव्य गुण एवं पर्याय का स्वरुप, ज्ञान, कर्म, कर्म का फल, मूर्त- अमूर्त द्रव्यों के गुण, जीव और पुद्गल का संबंध, निश्चय और व्यवहार नयका विरोधाभाव, शुद्धात्माका स्वरुप आदि का विश्लेषण है।

तृतीय श्रुतस्कंध चारित्राधिकार में श्रामण्यके चिन्ह, लक्षण, उत्सर्ग मार्ग, अपवाद मार्ग, आगमज्ञान का महत्त्व, श्रमण का लक्षण, मोक्षतत्व आदि विषयों का प्ररुपण है। इस ग्रंथ पर भी आचार्य अमृतचुद्र सूरि तथा आचार्य जयसेन सुरि द्वारा रचित टीकायें हैं।

समयसार :

समय का अर्थ सिद्धांत या दर्शन है। समयसारमें जैन सिद्धांत या तत्वों का विवेचन है। इसमें दस अधिकार हैं और चारसौ सेंतीस (४३७) गाथायें है। प्रथम अधिकारमें स्वसमय, परसमय, शुद्धनय, आत्मभावना एवं सम्यक्त्व का निरुपण है। दूसरे अधिकार में जीव, अजीव का, तीसरे में कर्म - कर्ता का, चौथे में पुण्य, पाप का पाँचवेमें आश्रव का छठ्ठे में संवर का, सातवेंमें निर्जरा का, आठवेंमें बंधका नौवें में मोक्ष का और दसवें में शुद्ध पूर्ण ज्ञान का वर्णन है। शुद्ध नयकी अपेक्षासे जीव को कर्मोंसे अस्पृष्ट और आबद्ध - बिना छुआ हुआ माना गया है।

व्यवहार नय की अपेक्षासे जीव कर्मोंसे स्पृष्ट एवं बद्ध माना गया है। इस पर आचार्य अमृतचंद्र सूरि और आचार्य जयसेन ने टीकायें लिखी। ये तीनों ग्रंथ नाटकत्रय, प्राभृतत्रय या रत्नत्रय कहलाते हैं। इन तीनों के अतिरिक्त आचार्य कुंदकुंद के कतिपय और भी ग्रंथ है। जिनमें से कुछ का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है।

नियमसार :

इस ग्रंथमें एक सौ छियासी (१८६) गाथाये हैं। इसमें सम्यक्त्व, आप्त, आगम सप्त पदार्थ, सम्यक, ज्ञान, सम्यक चारित्र के अंतर्गत द्वादशव्रत, द्वादश प्रतिमायें, प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित, परमसमाधि, परम भक्ति, शुद्धोपयोग आदि का वर्णन है।

इस ग्रंथ पर पद्मप्रभ मलधारी देवने सन् १००० के आसपास टीकाकी रचना की। उन्होंने प्राभृतत्रय के टीकाकार आचार्य अमृतचंद्र सूरि की टीका के श्लोकों को अपनी नियमसार की टीकामें भी उधृत किया है।

रयणसार :

इसमें एक सौ सड़सठ (१६७) गाथायें हैं। यहाँ सम्यक्त्व को रत्नसार कहा गया है। इसमें भक्ति, विनय वैराग्य, त्याग आदि का विवेचन है। निश्चय नय के आधार पर जिन संतों और विद्वानों का चिंतन रहा, उन्होंने आचार्य कुंदकुंद के विचारों का विशेष रुपसे अनुसरण किया।

वर्तमान शताब्दिमें कानजी स्वामी नामक साधक हुए हैं, जिन्होने आचार्य कुंदकुंद के समयसार, प्रवचनसार आदि ग्रंथों को ही अपनी साधना का प्रमुखतम अंग स्वीकार किया तथा जीवनभर उन ग्रंथोंपर प्रवचन किया।

दिगंबर परांपरामें संस्कृत रचनायें :

दिगंबर परंपरा के अंतर्गत संस्कृतमें जैन सिद्धांत, न्याय आदि विषयों पर अनेक आचार्यों ने बड़े बड़े ग्रंथ लिखे। जिनका जैन विद्याके क्षेत्र में ही नहीं, भारतीय विद्या के क्षेत्रमें भी बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनमें आचार्य समंतभद्र, अकलंक, विद्यानंदि, माणिक्य नंदि, अनंतवीर्य, तथा प्रभाचंद्र आदि के नाम उल्लेखनीय है।

१) आप्त मीमांसा २) रत्नकरंड श्रावका चार ३) अष्टसती ४) अष्ट सहस्त्री, तत्वार्थ राजवार्तिक, तत्वार्थ श्लोक वार्तिक, परीक्षामुख, न्याय कुमुद चंद्र, प्रमेय कमल मार्तंड, सत्यभंगी तरंगिणी, न्यायदीपिका आदि अनेक महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रंथ है।

निष्कर्ष :

इस प्रकरणमें जैन संस्कृति, धर्म, आगम तथा श्वेतांबर, दिगम्बर साहित्य का संक्षेपमें विवेचन किया गया है। साहित्य की विशदरुपमें चर्चा करने का एक विशेष प्रयोजन है इस साहित्य में तत्वज्ञान, आचार, व्रतपरंपरा, साधना की विविध पद्धतियाँ, तपश्चरण, स्वाध्याय, ध्यान इत्यादि अनेक विषय अनेक दृष्टियोंसे व्याख्यात हुए हैं। किसी भी विषयपर गहन अध्ययन, अनुशीलन और अनुसंधान के लिये तत्संबंधी संस्कृत, दर्शन और साहित्य का आधार बहुत आवश्यक है।

नवकार महामंत्र का साधुपद जैन धर्म के केंद्र में प्रतिष्ठित है।

आगमों और सिद्धांत ग्रंथोंमें धर्मका जो व्रतमय स्वरुप वर्णित हैं वह एक साधु के जीवन में मूर्तिमान होता है। साधु के स्वरुप, उनकी साधना की सूक्ष्मतम भूमिका,कठोर त्याग, वैराग्य के कारण उसकी पवित्रता और पूजनीयता आदि पर गहन अनुशीलन और अनुसंधान के लिये जैन आगम और साहित्य का आलंबन सर्वथा आवश्यक है।

मेरे द्वारा शोध हेतू स्वीकृत 'नमो लोए सव्व साहूणं' विषय पर अनुसंधेय सामग्रीकी दृष्टि से इन सबका उपयोग आवश्यक होगा। अत: इन सब पर सामान्य रुपमें प्रकाश ड़ालना अपेक्षित मानते हुए इस प्रकरण में इन सबका संक्षेप में निरुपण किया गया है। जो आगे के प्रकरणोंमें विवेचनीय, गवेषणीय और परीक्षणीय विषयों की दृष्टिसे अनुकूल पृष्ठभूमि सिद्ध होगी।

संदर्भ

प्रथम प्रकरण

१) **उत्तराध्ययन सूत्र :** (युवाचार्य मधुकर मुनिजी) - अध्याय ९, गाथा ४८

२) **उत्तराध्ययन सूत्र :** (युवाचार्य मधुकर मुनि) - अ.१४/१३. पृ.२२७

३) **अमृत महोत्सव गौरव ग्रंथ :** परिच्छेद उ. पृ. ८-१२

४) **सम्मेलन पत्रिका -** लोक संस्कृति के अंचल विशेषांक पृ. १८ मनुस्मृति

५) **अमृत महोत्सव गौरव ग्रंथ -** पृ. १३

६) **भारतीय दर्शन** (डॉ. राधाकृष्णन्) भा. २, पृ. १७

७) तो समणो जई सुमणो, भावेण य जइ न होइ पावमणो ।
समणे - य जणे य जाणे, सोम य माणावमाणो सु ॥

दशवैकालिक निर्युक्ति - गाथा १५६

८) **उत्तराध्ययन सूत्र** - अ - २५/ गाथा २९,३०

९) **सूत्रकृतांग सूत्र** - १/२/२/१

१०) **सूत्रकृतांग सूत्र** - १/२/२/२

११) **सूत्र कृतांग सूत्र** - १/२/२/६

१२) **धम्मपद धम्मट्ठ वग्ग** - ९,१०- पृ. ११८

१३) **बौद्धधर्म क्या कहता है ?** - पृ. ३५

१४) **बौद्ध धर्म दर्शन :** नगीनजी शाह - पृ. ६२

१५) **गृहस्थ -** धर्म प्रथम भाग - पृ. ४३

१६) **आवश्यक सूत्र** - (युवाचार्य मधुकर मुनि) अध्ययन ४ - पृ. ७०

१७) **आवश्यक सूत्र** - (युवाचार्य मधुकर मुनि) अध्ययन - पृ. ४-७३

१८) अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गन्थानी गणहरा, निउणं,
सासणस्स हियद्वाए तओ सुत्तं पवत्तइ ॥

आवश्यक निर्युक्ति - १९२

१९) **समवायांग सूत्र -** १२ /५११ पृ. १७१

२०) **जैन तत्वप्रकाश** : (अमोलक ऋषिजी महाराज) - पृ. २९

२१) **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास** : भाग - १ पृ. ५४
जैनेंद्र सिद्धांत कोश : भाग २ - पृ. २१२

२२) कम्मुणो बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होई सुहहो हवइ कम्मुणा ॥
उत्तराध्ययन सूत्र - अ - २५ गाथा ३३ पृ. ४३०

२३) सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो न दीसइ जाइ विसेस कोइ ।
सेवागपुत्ते हरिएस साहू जस्सेरिस्सा शड्ढि महाणुभागा
उत्तराध्ययन सूत्र - अ - १२ गाथा ३७

२४) **महाभारत की सुक्तियाँ** (सूक्ति त्रिवेणी) (उपाध्याय अमरनुमनि) अ-॥ श्लो. १३

२५) **भारतीय धर्मोंमें मुक्ति विचार**, पृ. २६,२७

२६) तीर्थंकर (मासिक) (णमोकार मंत्र विशेषांक -१) वर्ष १० अंक ७,८
नवम्बर दि.१९८० पृ. ७४

२७) क - **स्थानांग सूत्र :** (युवाचार्य मधुकर मुनि) ६ /२३/२४ पृ. ५४०
ख - **जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र** - वक्षष्कार सूत्र - २५ - पृ. २७

२८) क) **जैनतत्व प्रकाश :** पृ. ८४-१०३
ख) **जैनागम स्तोक संग्रह** - पृ. १४५

२९) **स्थानांग सूत्र** - ६/२३-२४ पृ. ५४०

३०) **जैनथोक संग्रह -** भाग २ (धींगडमलजी गिड़िया) पृ. २२५

३१ क) **यंत्र-मंत्र-तंत्र विज्ञान :** भाग २ - पृ. ३४
ख) **आगम के अनमोल रत्न :** पृ. २, पृ. २५२

३२) **श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह** : भाग ६ पृ. १७७, १७८

३३) क) **बड़ी साधुवंदना** पद - १
ख) **वंदनीय साधुजनो** - पृ. १

३४) **प्रमाण नय तत्वालोक :** अध्याय ४, सूत्र १, २

३५) **आवश्यक निर्युक्ति** - गाथा ९२

३६) **जैन आगम साहित्य** - मनन और मीमांसा, पृ. ३-१०

३७) **भाषा विज्ञान** :(डॉ. भोलानाथ तिवारी) पृ. १७८

३८) क) **समवायांग सूत्र** - समवाय ३४, सूत्र २२ ३८

ख) **भगवई लाडनुं**, शतक ५, उद्देशक ४, सूत्र ९३ ३९

ग) **भगवई लाडनुं**, शतक ९ उद्देशक ३३ सूत्र १४९

घ) **आचारांग चूर्णि** (जिनदास गणि) पृ. २५५ ४०

३९) **नवकार** - प्रभावना पृ. ७

४०) क) **दशवैकालिक वृत्ति** - पृ. २२३

ख) **नवकार प्रभावना** - पृ. ७

४१) क) **आगमेत्ता आणवेज्जा आचारांग सूत्र** : (युवाचार्य मधुकर मुनि) १/५/४

ख) **लाघवं आगममाणे आचारांग सूत्र** : (युवाचार्य मधुकर मुनि) १/६/३

ग) **साहित्य और संस्कृति** (ले. आ. देवेन्द्रमुनि शास्त्री) पृ. २

४२) **भगवती सूत्र** : (युवाचार्य मधुकर मुनिजी) ५/३/१९२

४३) **अनुयोग द्वारा** : (युवाचार्य मधुकर मुनिजी) - सूत्र ४२

४४) **स्थानांग सूत्र** : (युवाचार्य मधुकर मुनिजी) - ३३८

४५) **आप्तवचनादि विर्भूत संवेदन मागम** : उपचारादाप्त वचनंच स्यिद्वाद मंजरी टीका, श्लोके ३८

४६) आ - अभिविधिना सकल श्रुत विषय व्याप्ति रुपेण मर्यादया वा अर्था: येनस: आगम: ॥ आ.मलयगिरी

४७) **रत्नाकर वतारिका वृत्ति**

४८) **विशेषावश्यक भाष्य** - ५५९

४९) **श्री उत्तराध्ययन सूत्र** (गुजराति अनुवाद - दुर्लभजी खेताणी) प्रस्तावना

५०) क) **आगम युग जैन दर्शन** पृ. १५-१६

ख) **जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज** - पृ. २९

ग) **उपा. सू** प्रस्तावना - पृ. ४

घ) जैन, आ.सा.म. मि. - पृ. ३५ जैन आगम साहित्य मनन और मिमांसा.

ड) **जैनतत्व प्रकाश** - पृ. २०१,२०२

च) **नमस्कार महिमा** - पृ. ५

५१) **आ. यु. जै. द.** (ले.दलसुख मालवाणिया) पृ. २०

५२) क) **जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज** पृ. २९-३०

ख) **आगम - युग का जैन दर्शन** पृ.१८-२०

५३) क) **जैन दर्शन मनन और मिमांसा** पृ. २४

ख) **नमस्कार चिंतामणि** पृ. ६४

ग) **दशवैकालिक निर्युक्ति** ३ टी

घ) **आवश्यक निर्युक्ति** पृ. ३३६- ३७७

ड) **विशेषावश्यक भाष्य** - पृ. २८४ - २९५

५४) **जैन लक्षणावलि** भाग - १ पृ. ७९

५५) **विश्वप्रहेलिका** - पृ. ९३-१२३

५६) क) **आवश्यक निर्युक्ति** - पृ. ३६३ - ३७७

ख) **विशेषावश्यक भाष्य** - २२८४-२२९५

ग) **दशवैकालिक निर्युक्ति** - ३ टीका ✓

५७) क) **नंदीसूत्र** - चूर्णी - पृ. १०

ख) **मुलाराधना** - ४/५९९ विजयोदया

५८) **आचारांग निर्युक्ति** - गाथा ९ (आचार्य भद्रबाहु स्वामी)

५९) क) **आचारांग मूल पाठ** - सारिप्पण

ख) **निषधकुमार चरित्र** पृ. २६१

६०) **स्थानांग सूत्र** - ९

६१) **आचारांग चूर्णि** - मू. पा. रि. पृ. २७४

६२) **उत्तराध्ययनसूत्र** : (युवाचार्य मधुकर मुनिजी) अ. २१

६३) **अंतकृत दशा सूत्र** : (युवाचार्य मधुकर मुनि) वर्ग ८- अ १ पृ. १४६- १५३

६४) **अनुत्तरोपपातिक सूत्र** : (युवाचार्य मधुकर मुनि)

६५) **प्रश्नव्याकरण सूत्र** : (आ. अभयदेव सूरी) वृत्ति के प्रारंभ में

६६) **प्रश्नव्याकरण सूत्र :** प्रस्तावना पृ. १९,२०

६७) **औपपातिक सूत्र** (आ. देवेंद्रमुनिजी महाराज) प्रस्तावना

६८) **जैन आगम साहित्य मनन और मिमांसा** : (देवेंद्र मुनि शास्त्री) पृ. २७१

६९) **व्यवहार भाष्य :** उद्देशक -३, गाथा - १७३ - १७६

७०) **आवश्यक निर्युक्ति :** ७७७

७१) **विशेषावश्यक भाष्य :** २२९५

७२) क) **निशीथ भाष्य :** ५९४७
ख) **केनोनिकल लिटरेचर** - पृ. ३६

७३) **दशवैकालिक सूत्र :** (युवाचार्य मधुकर मुनि) - अ. ४, गा.७ ,८

७४) **दशाश्रुत स्कंध** - चौथी दशा, सूत्र - १-८- पृ. २०-२१

७५) **जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा :** (आ. देवेंद्र मुनि शास्त्री) पृ. ३८८

७६) **जैनागम दिग्दर्शन :** (डॉ. मुनिनगराज) पृ. १७०,१७१

७७) क) **अभिधान राजेंद्र कोश :** भाग १ पृ. ३८७
ख) **आउर पच्चक्खाण पइण्णयं** : गाथा ७०, पृ. २३ (पुस्तक -आगमदीप)

७८) क) **आउर पच्चक्खाण पइण्णयं :** गा. ७०, पृ.२३,२४ (पुस्तक - आगम दीप)
ख) **उत्तराध्ययन सूत्र :** अ २९/२३ पृ. ४९९

७९) **संस्कृत हिन्दी कोश** (वामन शिवराम आपटे) पृ. ६९१

८०) क) **जैन आगम** : दिग्दर्शन (डॉ. नगराज) पृ. १४५, १४८
ख) **तत्वार्थ सूत्र :** (उमास्वाति) सू. ९/७ पृ. २११
ग) **भगवती आराधना:**गा - १७१० - १८६९ पृ. ७३-८३

८१) **चउसरणं प्रकीर्णक:**- गाथा ११, पृ. १४

८२) **आउरपच्चक्खाण प्रकीर्णक:**- गाथा २६ पृ. २०

८३) **महापच्चक्खाण प्रकीर्णक** - गा. १३-१६, पृ. २४,२५

८४) **तंदुल वैचारिक प्रकीर्णक सूत्र** १०२-१४२, पृ. ५०-५४

८५) **शिशुपाल वध** - महाकाव्य, सर्ग - २, श्लोक २४

८६) **संस्कृत हिन्दी कोश** : (वामन शिवराम आपटे) पृ. ७३९

८७) **तत्वार्थ सूत्र** - श्रुत सागरी वृत्ति १/२०

८८) **जैन धर्म** - पृ. २६२

८९) **प्राकृत साहित्य का इतिहास** - पृ. २७४ - २९०

९०) **प्राकृत साहित्य का इतिहास** : (डॉ. जगदीशचंद्र जैन) पृ. २७८

द्वितीय प्रकरण

जैन धर्म में नवकार मंत्र और भारतीय मंत्र विद्याओं में नवकार मंत्र का स्थान

णमोक्कार मंत्र की उत्पत्ति :

नवकार मंत्र शब्दात्मक है। शब्द द्रव्य रुप में नित्य है, तथा पर्याय - रुपमें अनित्य है। अत: नवकार मंत्र भी द्रव्य-रुपमें नित्य माना जाता है और पर्याय रुप में अनित्य माना जाता है। द्रव्य भाषा, पुद्‌गलात्मक है। पुद्‌गल के पर्याय अनित्य हैं इसलिए भाषा के पुद्‌गल भी अनित्य हैं किंतु भाव, भाषा, जो आत्मा का क्षयोपशमात्मक रुप है, वह आत्म - द्रव्य की तरह नित्य है।

श्री नवकार मंत्र द्रव्य एवं भाव दोनों दृष्टियों से शाश्वत है अथवा शब्द और अर्थ की अपेक्षा से नित्य है। जैन शास्त्रकार नवकार मंत्र को शाश्वत या अनुत्पन्न मानते हैं। वह सर्वसंग्राही नैगमनय की अपेक्षासे है। विशेषग्राही नैगम - ऋजुसूत्र तथा शब्द आदि नयों की अपेक्षा से नवकार मंत्र उत्पन्न भी माना जाता है। [१]

नवकार मंत्र का सूक्ष्म विश्लेषण करें तो उसके शब्दात्मक, अर्थात्मक अथवा द्रव्यात्मक, भावात्मक दो रुप हैं।

जैन दर्शन के अनुसार श्रुत - ज्ञान की परंपरा अर्थरुपमें, भावरुपमें या तत्वरुपमें अनादि है, नित्य है।[२] नवकार मंत्र श्रुत का ही प्रतीक है, इसलिए उसकी आदि नहीं है। जिसकी आदि नहीं होती, उसकी उत्पत्ति भी नहीं होती, इसलिये वह अनुत्पन्न है, शाश्वत है, नित्य है। अर्थ और भावरुपमें वह नित्य है ही।जैन दर्शन अनेकांत द्वारा नित्य और अनित्य को समन्वित करता है। एक पदार्थ जो नित्य है, वह किसी अन्य अपेक्षासे अनित्य भी है।

इस प्रकार अपेक्षा - भेद से नित्यत्व और अनित्यत्व - दोनों एक ही पदार्थ में सिद्ध होते हैं।[३]

जिसके नवपदोंमें क्रियामें भेद है, अथवा जिसके गिननेकी नव क्रियायें है उसे नवकार कहते हैं। इसलिए नमस्कार महामंत्र का दूसरा नाम नवकार मंत्र भी है।[४]

"नवसु पदेसु कारा: क्रिया: यस्मिन् स नवकार: ।"

जैन धर्म का महामंत्र : नवकार: आदि प्रयोग

धर्म यह सुख का भंडार है। जो वीतराग भाषित धर्म को समझकर भी यहाँ-वहाँ अपनी बुद्धी भ्रमित करता है वह सचमें ही अज्ञान है। धर्म की श्रेष्ठता, प्रशस्तता, और स्व-पर कल्याण की भावनामें वृद्धि होगी, उतनी ही धर्म में रुची होगी। यह रूची गति का रुप लेकर प्रगती करके धर्म शिखर पहुँचायेगी।[५]

आचार्य शुभचंद्र लिखते है कि - चिंतामणी रत्न, दिव्य निधि, कामधेनु, कल्पवृक्ष ये सब धर्म की श्री, शोभा, अथवा कांति - प्रकाशके समाने दीर्घकाल तक नौकर के समान है।[६]

धर्म ही गुरु, मित्र, स्वामी, बंधु, अनाथों का नाथ और तारणहार है।[७]

अग्निशीखाने यदि टेढी गति की होती तो विश्व भस्मीभूत हुआ होता , हवाने उर्ध्वगति की होती तो जीवमात्र को जीना कठीन हुआ होता, लेकिन ऐसा होता नहीं है इसका कारण धर्म है। सारा विश्व जिसके आधार पर टीका हुआ है ऐसी वसुंधरा किसी भी आधारपर टीकी नहीं है, उसका आधार धर्म ही है। चंद्र, सूर्य का प्रतिदिन उदय होता है अस्त होता है, विश्वपर उपकार करते हैं, ये सब धर्म का ही प्रभाव है।[८] विश्व का कल्याण धर्म से ही है।[९]

संपूर्ण कला जाननेवाला कलाकार यदि होगा लेकिन एक धर्म कला नहीं होगी तो वह कला व्यर्थ है।[१०]

नवकार जैन धर्म का सर्वोत्तम मंत्र है। इसके पाँच पदों में जैन दर्शन का सार, रहस्य भरा हुआ है। वे पाँच पद पंचपरमेष्ठी कहे जाते हैं। परमेष्ठी का अर्थ परम पूजनीय या अत्यन्त गुण - निष्पन्न होता है। नवकार महामंत्र में उन पाँचों को नमस्कार, नमन या प्रणमन किया गया है। वहाँ नमनीय के रुप में किसी व्यक्ति विशेष का उल्लेख नहीं है।

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधु - ये पाँच परमेष्ठी [११] के रुप में स्वीकार किये गये हैं। ये पाँचों पद सर्वथा गुणोत्कृष्टता पर आधारित है। इनमें प्रत्येक पद की गुणों की दृष्टि से बड़ी गरिमा है इसलिए ये सबके लिए आदरणीय,सम्मानीय और पूजनीय है।

नमस्कार महामंत्र गुणपूजा का एक अद्‌भूत उदाहरण है। इसका प्रत्येक पद वंदन और नमन करने वालों को यह प्रेरणा देता है कि सभी इन परमात्म पदों को प्राप्त करने की दिशा में अध्यवसाय - उद्यम करें, क्योंकि प्रत्येक आत्मा में वह असीम शक्ति विद्यमान है जिससे वह उत्तरोत्तर आध्यात्मिक उन्नति करती हुई इन पदों तक पहुँच सकती है।

अन्यान्य धर्मो में उनके मंत्रों में उनके देवों का वर्णन है, जो व्यक्ति परक है। जैन धर्म में जो नवकार मंत्र है, वह तो आत्मा के, प्राणी मात्र के उत्थान के साथ जुड़ा हुआ है। इसमें गुणों का वर्णन है, व्यक्ति का नहीं।

व्याख्याप्रज्ञाप्ति सूत्र अंग आगमों में पाँचवा अंग है। जैन आचार और तत्वों के विशद, विस्तृत विवेचन की दृष्टि से यह आगम अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। विषय वैविध्य तथा विवेचन विस्तार की दृष्टि से इसे जैन सिद्धांतों का विश्वकोश कहा जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी।

इस आगम का प्रारंभ नवकार मंत्र रुप मंगलाचरण से होता है।[१२]

णमो अरिहंताणं

णमो सिद्धाणं

णमो आयरियाणं

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्व साहूणं ।

अरिहंतो को नमस्कार ।

सिद्धों को नमस्कार ।

आचार्यों को नमस्कार ।

उपाध्यायों को नमस्कार ।

लोक के समस्त साधुओं को नमस्कार ।[१३]

●●●

श्री नवकार महामंत्र का अर्थ

नमो अरिहंताणं ।।१।।

अरिहंतों को मेरा नमस्कार हो। अरि याने शत्रु। बाह्य शत्रु नहीं, आंतरिक शत्रु। हंताणं याने नाश करना। वे आंतरिक शत्रु क्रोध, मान, माया, लोभ, राग और द्वेष है, ये छः शत्रुओंका जिन्होने नाश किया है वे अरिहंत है।[१४]

नमो सिद्धाणं ।।२।।

सिद्ध भगवान को मेरा नमस्कार हो। जिन्होने अष्ट कर्म - ज्ञानवरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, वेदनीय कर्म, मोहनीय कर्म, आयुष्य कर्म, नाम कर्म और गोत्र कर्म इन आठ कर्मो का नाश किया है उनको मेरा नमस्कार हो। सिद्ध भगवान संपूर्ण कर्मो का नाश करके सिद्धशिला पर बिराजमान है।

नमो आयरियाणं ।।३।।

आचार्यों को मेरा नमस्कार हो। जो ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार इन पाँच आचारोंका पालन करते हैं। उनको आचार्य कहते हैं।

नमो उवज्झायाणं ।।४।।

उपाध्यायों को मेरा नमस्कार हो। जो स्वयं शास्त्र पढ़ते हैं, दूसरे को शास्त्र पढ़ाते हैं

जो श्रुत प्रेमी है, अबुध को पंडित बनानेवाले हैं उन्हें उपाध्याय कहते हैं।

नमो लोए सव्व साहूणं ।।५।।

इन लोक (दुनिया - विश्व) में जितने साधु हैं उन सबको मेरा नमस्कार हो। परंतु जो साधु, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करते हो, उन्हें साधु कहते हैं।[१५]

एसो पंच नमुक्कारो ।।

इन पाँचों को (अरिहंत - सिद्ध - आचार्य - उपाध्याय और साधुओं को) किया गया नमस्कार।

सव्व पाव पणा सणो -

सभी पापों का नाश करता है।

मंगलाणं च सव्वे सिं -

सभी मंगलमों मे यह नमस्कार महामंत्र

पढ़मं हवई मंगलं -

प्रथम अर्थात् सर्व श्रेष्ठ मंगलोंमें महामंगल है।[१६]

नवकार मंत्र का बाह्य स्वरुप -

किसी भी क्रिया का, पूरा फल तभी प्राप्त होता है जब उसे विधि के साथ किया जाये। किसी भी मंत्र की आराधना तभी सिद्धि प्रदान करती है, जब उसका जप स्मरण ध्यान ~~तथा~~ विधि से किया जाये। एक किसान यदि विधिपूर्वक भूमि को स्वच्छ कर बीज-वपन करता है, तभी धान्य की फसल प्राप्त करता है। विधि सहित क्रिया करने हेतु उस पदार्थ, वस्तु या कार्य का ज्ञान अति आवश्यक है। नवकार मंत्र के विधिवत् जप करने हेतु उसके स्वरुप को जानना अपेक्षित है। नवकार के बाह्य एवं आंतरिक दो स्वरुप है।

बाह्यस्वरुप का तात्पर्य मंत्र के अक्षरात्मक देह से हैं।[१७] नवकार मंत्र में चूलिका सहित नौ पद हैं। आठ सम्पदाएँ हैं और ६८ अक्षर है। इन ६८ अक्षरोंमें सात संयुक्त अक्षर हैं और ६१ पृथक् पृथक् अक्षर हैं। नौं पदों की दृष्टि से नवकार एवं चूलिका का स्वरुप इस प्रकार है।

णमो अरिहंताणं,

णमो सिद्धाणं,

णमो आयरियाणं,

णमो उवज्झायाणं,

णमो लोए सव्व साहूणं,

एसो पंच णमुक्कारो,

सव्व पावप्पणासणो,

मंगला णं च सव्वेसिं,

पढमं हवइ मंगलं ॥[१८]

●●●

नवकार की सम्पदाएँ -

अर्थ के विश्राम - स्थान को सम्पदा कहा जाता है। "सांगत्येन पद्यते - परिच्छिद्यतेऽर्थो याभिस्ता: संपद:" जिनके द्वारा अर्थ भलीभाँति समझ में आ जाता है, उन्हें सम्पदाएँ कहा जाता है। नवकार की आठ सम्पदाएँ मानी गयी है। पहले से सातवें पद तक की सात सम्पदाएँ हैं तथा आठवें और नौवें पद की एक संपदा है। इस प्रकार कुल मिलाकर आठ संपदाएँ होती हैं।[१९]

●●●

नवकार मंत्र का अक्षरात्मक विश्लेषण -

'न क्षरति इति अक्षरम्' - जिसका क्षय नहीं होता, विभाग नहीं होता या जो अपने आप में स्वतंत्र ध्वन्यात्मक रुप लिये होता है, उसे अक्षर कहा जाता है। स्वर एवं व्यंजन के रुप में अक्षर के दो भेद हैं। कहा गया है -

अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त अक्षर **मातृका** वर्ण कहलाते हैं। सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम तथा संहारक्रम के रुप में उनका तीन प्रकार का क्रम है। नवकार मंत्र में मातृका ध्वनियों का तीनों प्रकार का क्रम सन्निविष्ट है। यही कारण है कि यह मंत्र आत्म - कल्याण के साथ लौकिक अभ्युदय भी उत्पन्न करता है। सृष्टिक्रम और स्थितिक्रम आत्मानुभूति के साथ लौकिक अभ्युदयों को प्राप्त कराने में भी सहायक होते हैं। संहारक्रम[२०] से अष्ट क्रमों के विनाश की भूमिका उत्पन्न की जा सकती है।

हल् - क से लेकर ह तक व्यंजन बीज कहलाते हैं तथा स्वर शक्ति कहलाते हैं। बीज और शक्ति के संयोग में मंत्रों की निष्पत्ति होती है।[२१]

नवकार मंत्र ६८ मातृका वर्णों से निष्पन्न होता है, जो निम्नांकित है -

णमो अरिहंताणं

ण्, अ, म्, ओ = णमो = ४ अक्षर =

अ, र्, इ, ह्, अं, त्, आ, ण्, अं = ९ अक्षर, अरिहंताणं

णमो सिद्धाणं

ण, अ, म्, ओ = णमो = ४ अक्षर

स्, इ, द्, ध्, आ, ण्, अं, = ७ अक्षर, सिद्धाणं

णमो आयरियाणं

ण्, अ, म, ओ = णमो = ४ अक्षर

आ, इ, र्, इ, य्, आ, ण्, अं = ८ अक्षर, आयरियाणं

णमो उवज्झायाणं

ण्, अ, म्, ओ = णमो = ४ अक्षर

उ, व्, अ, ज्, झ्, आ, य्, आ, ण, अं = १० अक्षर, उवज्झायाणं

णमो लोए सव्व साहूणं

ण्, अ, म्, ओ, = णमो = ४ अक्षर

ल् , ओ, ए, स्, अ, व्, व्, अ, स्, आ, ह्, ऊ, ण्, अं = १४ अक्षर, लोए सव्व साहूंणं

अक्षरों की गिनती में संयुक्ताक्षर को एक ही गिना जाता है। उसे गुरु माना जाता है। बाकी के ऱ्हस्व, दीर्घ, स्वरों तथा ऱ्हस्व, दीर्घ स्वर युक्त व्यंजनों को लघु माना जाता है। यह एक विशेष मान्यता है। नवकार मंत्र में अडसठ अक्षर है।

संस्कृत में, छंदों में ऱ्हस्व स्वरों तथा ऱ्हस्व स्वरयुक्त व्यंजनों को लघु एवं दीर्घ स्वरों और दीर्घ स्वर व्यंजनों को गुरु माना जाता है। संयुक्ताक्षर के पूर्व के वर्ण को अनुस्वार युक्त एवं विसर्ग युक्त वर्ण को गुरु माना जाता है।

यहाँ लघु गुरु के संदर्भ में यह मान्यता स्वीकृत नहीं है।

नवकार के प्रथम पद 'णमो अरिहंताणं' में सात अक्षर हैं। वे पूर्वोक्त मान्यता के अनुसार सातों ही लघु हैं।[२२]

दूसरे पद णमो सिद्धाणं में पाँच अक्षर हैं। उनमें चार लघु और एक गुरु है। सिद्धाणं पद में 'द्धा'अक्षर गुरु है।

तीसरे पद 'णमो आयरियाणं' में सात अक्षर हैं। वे सातों ही लघु हैं।

चौथे पद 'णमो उवज्झायाणं' में सात अक्षर हैं। उनमें छः लघु है और एक गुरु हैं। उवज्झायाणं शब्द में 'ज्झा' अक्षर गुरु हैं।

पाँचवे पद 'णमो लोए सव्व साहूणं' में नौ अक्षर हैं। 'सव्व साहूणं' में "व्व" अक्षर गुरु हैं।

नवकार मंत्र के पाँच पदों में पैंतीस अक्षर हैं। उनमें बत्तीस अक्षर लघु और तीन अक्षर गुरु है।

छट्ठे पद चूलिका के पहले पद " ऐसो पंच णमुक्कारो" में आठ अक्षर हैं। उनमें सात अक्षर लघु और एक अक्षर गुरु हैं णमुक्कारों में 'क्का' अक्षर गुरु है।

सातवें पद 'सव्व पाव पणासणों' में आठ अक्षर हैं। उनमें छ: अक्षर लघु हैं और दो गुरु हैं। "सव्वप्पाव पणासणों" में 'व्व' और 'प्प' अक्षर गुरु हैं।

आठवें पद 'मंगलाणं च सव्वेसिं' में आठ अक्षर है। उनमें सात अक्षर लघु और एक अक्षर गुरु है। सव्वेसिं में 'व्वे' अक्षर गुरु हैं।

नौवें पद 'पढ़मं हवाइ मंगलं' में नौ अक्षर हैं। वे सभी लघु हैं।

इस प्रकार नवकार के चार चूलिका पदों में कुल ३३ अक्षर हैं। उनमें उनतीस अक्षर लघु हैं तथा चार अक्षर गुरु हैं।[२३]

कहा गया है - इस लोक में और परलोक में मनोवांछित फलप्रद तथा अनुपम, शक्ति स्वरुप नमस्कार मंत्र जयशील हो। त्रिभुवनपति - तीनों लोकों को धर्म का पथ दिखलाने वाले तीर्थकरों ने नवकार के पाँच पदों को पँच तीर्थ कहा है। जिनागमों के रहस्यमूल इसके ६८ अक्षरों को तीर्थ स्वरुप प्रतिपादित किया है। उसकी आठ संपदाओं को अनुपम अष्ठ महासिद्धियों के समान बतलाया है।[२४]

●●●

नवकार मंत्र का आंतरिक स्वरुप

नवकार मंत्र का अर्थ, अभिप्राय उसका आंतरिक स्वरुप है। नवकार से भलीभाँति परिचित होने हेतु उसके प्रत्येक शब्द का अर्थ - ज्ञान आवश्यक है।

नवकार शब्द का अर्थ नमस्कार है। नमस्कार संस्कृत भाषा का शब्द है। प्राकृत भाषा

में उसके नमुक्कार एवं नमोक्कार - ये दो रुप बनते हैं। प्राकृत व्याकरण के अनुसार शब्द के आदि का नकार णकार में परिणत हो जाता है। तदनुसार णमुक्कार तथा णमोक्कार ये रुप भी होते हैं। इन रुपों में से यहाँ नमुक्कार पद को लिया गया है। नमुक्कार में म का लोप करने से नउक्कार शब्द बनता है। उसी से नमस्कार तथा अंत में नवकार शब्द होता है।[२५]

णमो पद की विशेषताएँ

नमो पद निपात है। एक प्रकार का अव्यय है। नमो शब्द द्रव्य नमस्कार और भाव नमस्कार - दोनों को सूचित करता है।[२६]

द्रव्य नमस्कार का आशय हाथ जोड़ना, मस्तक झुकाना, भूमि पर घूटने टेकना आदि हैं। जिनको नमस्कार करना है, उनके प्रति विनय, भक्ति तथा सम्मान रखना भाव नमस्कार है। नमस्कार करनेवाला व्यक्ति अपने मन में यह सोचे कि जिनको मैं नमस्कार करता हूँ, वे महान् हैं। मैं बहुत छोटा हूँ। ऐसी भावना किये बिना भाव नमस्कार नहीं होता।

णमो पद में जो नमस्कार की, विनय की, भावना है, वह धर्म का बीज है। नमस्कार से अंत:करण में धर्म के बीज का वपन होता है। नमस्कार से उत्पन्न भावोल्लास आत्मा रुपी क्षेत्र में धर्म के बहुमान रुपी बीज को बोता है। उससे धर्म चिंतनादि के रुप में अंकुर प्रस्फुटित होते हैं। धर्म श्रवण और धर्माचरण रुप शाखा - प्रशाखाओं का विस्तार होता है तथा स्वर्ग एवं मोक्ष प्राप्ति रुप पुष्प एवं फल प्राप्त होते हैं।

णमो पद धर्म शास्त्र, तंत्र शास्त्र तथा मंत्र शास्त्र - तीनों की दृष्टि से बड़ा रहस्यमय है। धर्मशास्त्रों में विनय को धर्म का मूल कहा गया है। उत्तराध्ययन सूत्र के पहले अध्ययन का नाम विनय श्रुत है।[२७] उसमें विनय का विशद विवेचन किया गया है।

विनय का फल गुरु की सेवा है। गुरु सेवा का फल श्रुतज्ञान की प्राप्ति है। श्रुत ज्ञान की प्राप्ति का फल आस्त्रव का निरोध है। आस्त्रव- निरोध का फल संवर की प्राप्ति है। संवर की प्राप्ति का फल तपश्चरण है। तपश्चरण का फल कर्म - निर्जरा है। कर्म - निर्जरा का फल क्रिया निवृत्ति है। क्रिया - निवृत्ति का फल मानसिक, वाचिक और कायिक योगों का निरोध हैं। योग निरोध का फल मोक्ष है। विनय से मोक्ष तक पहुँचने की यह एक प्रक्रिया है।

मंत्र-शास्त्र की दृष्टि से णमो शब्द शोधन - बीज कहा जाता है। शरीर, मन और आत्मा के शोधन में, परिष्कार में, वह अत्यंत उपयोगी है।

तंत्र शास्त्र की दृष्टि से णमो शब्द शांति और पुष्टि को सिद्ध करनेवाला पद है। अत: नमो पद के साथ प्रयोजित सूत्र शांतिपद और पुष्टिकर होता है।

नवकार के आदि में प्रयुक्त णमो पद में ओम भी व्याप्त है। नमो पद में न+अ + म् + ओ ये चार वर्ण है। यदि इन वर्णों को व्यतिक्रम से रखा जाये, उल्टा रखा जाये तो ओ + म् + अ + न् - ऐसा होता है। इनमें पहले दो अक्षरों के संयोजन से ओम् बन जाता है।

संस्कृत के मन:पद के म और न अक्षरों को यदि उल्टा किया जाये तो नम: पद बनता है। इसका अभिप्राय यह है कि इससे मन अंतर्मुखी बनता है अर्थात् बाह्य जगत् की ओर न दौड़कर वह आत्मोन्मुख होता है। तब नम: या नमो पद का सार्थक्य होता है।

नवकार मंत्र और चूलिका में नमो पद का छह बार प्रयोग हुआ है। इसको छह बार स्मरण कराया है। इस नमो पद में अनेक गंभीर भाव निक्षिप्त हैं। जैसे विशुद्ध मन का नियोग - उपयोग, मन का विशुद्ध प्रणिधान, मन की विषय कषायों से निवृत्ति अथवा सांसारिक भावों में परिभ्रमण का अवरोध।

नमो पद श्रद्धा, भक्ति, आंतरिक बहुमान और सम्मान का सूचक है। यह सर्व-समर्पण-भाव का द्योतक है। इस पद में पंच परमेष्ठियों के प्रति प्रमोद भाव है। प्रमोद भाव यह अनुमोदन मूलक बीज है जिससे सर्व - समर्पण का विशाल वृक्ष फलता - फूलता है। नवकार मंत्र के साथ जैसे प्रमोद - भाव का संबंध है, उसी प्रकार समर्पण भाव का भी सहज संबंध है। जब पँच-परमेष्ठी भगवंतों के प्रति बिना किसी आकांक्षा या स्वार्थ के समर्पण भाव प्रस्फुटित होता है, तब अपने में व्याप्त दुर्भाव मिटते हैं तथा आत्मचेतना सिद्धत्व की दिशा में ऊर्ध्वमुखी होती है। नीचे की ओर जाने वाले भाव-प्रवाह को ऊपर की ओर ले जाने की पंच परमेष्ठियों में बहुत बड़ी शक्ति है, किंतु इस शक्ति को उद्भावित करने में नमो पद मुख्य कारण है।

नमस्कार मंत्र पंच परमेष्ठियों की अनुमोदना का पद है, जो त्रैकालिक सर्वोत्तम महाविभूतियों को प्रगट करने की कुंचि (चाबी) हैं। नमो पद द्वारा साधक का पंच परमेष्ठियों के साथ संबंध स्थापित होता है। अनुमोदना नमस्कार की प्राथमिक भूमिका है तथा सर्व - समर्पण - भाव उसकी पराकाष्ठा है। नमो पद में अचिंत्य सामर्थ्य है। इसका स्मरण करने से इससे-अनुभावित होने से आराधना के अंतिम लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है।

पंच परमेष्ठियों का अत्याधिक महत्त्व है, किंतु इस महत्त्व का लाभ प्राप्त कराने की क्षमता नमो पद में हैं।

●●●

पंच परमेष्ठी विवेचन

अरिहंत -

नवकार मंत्र के पहले पद में अरिहंतो को नमन किया गया है।[२८] जो राग, द्वेष, मोह आदि का सर्वथा नाश कर वीतरागता प्राप्त कर लेते हैं, वे अरिहंत कहलाते हैं। वे सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी होते हैं। वे सयोगी केवली भी कहे जाते हैं। केवली और सर्वज्ञ समानार्थक है। योग का अर्थ मानसिक, वाचिक तथा कायिक कर्म होता है।[२९] वे योग सहित होते है क्योंकि कर्मों का क्षय उनके कुछ अंश में बाकी रहता है। वे धर्मदेशना देते है। वे सबके उपकारक है। उन्हींद्वारा बतलाये गये धर्म के मार्ग का अवलम्बन कर लोग अपना कल्याण करते है।[३०]

अरिहंत शब्द अर्हत का द्योतक है। अर्हत शब्द का अर्थ योग्य होता है। जो महापुरूष, सुरेन्द्र, असुरेन्द्र आदि की पूजा के योग्य है। वे अर्हत् कहलाते है।[३१]

आचार्य श्रीभद्रबाहुस्वामी ने आवश्यक निर्युक्ति में कहा है -

जो वंदन एवं नमस्कार के योग्य है, जो पूजन, सत्कार के योग्य है, जो सिद्धत्व प्राप्ति के योग्य है वे अर्हत् या अरिहंत कहलाते है।

अर्हत् - अरहंत तथा अरिहंत - ये तीनों शब्द समान अर्थ के सूचक है। अर्हत् शब्द संस्कृत का है, तथा अरहंत और अरिहंत प्राकृत के रूप है। अरहंत तथा अरिहंत के रूपांतर है। अरिहंत का अर्थ कर्म या मोह रूपी शत्रुओं का नाश करनेवाला है। अर्हत् या अरहंत का अर्थ तीनों लोगो में पूजा या सम्मान योग्य है। अरुहंत का अर्थ पुन: उत्पन्न नहीं होनेवाला, संसार में पुन: नहीं आनेवाला है, क्यों कि वे कर्म क्षयकर मुक्त हो जाते है।

नवकार में अरिहंताणं पद बहुवचन है। पांचवें पद में विद्यमान "लोए" तथा "सव्व" पद को अरिहंताणं पद के साथ जोड़ने से लोक के सब अरिहंतो को नमस्कार हो, ऐसा भाव होता है। यदि सर्व शब्द का अर्थ सर्वकालीन करें, तो यह नमस्कार केवल वर्तमान काल के अरिहंतो को ही नहीं किंतु तीनों कालों के अरिहंतों को होता है। लोक और काल को प्रत्येक पद के साथ ही इसी प्रकार जोड़ा जा सकता है। वे तीर्थंकर जिन और पुरुषोत्तम कहलाते है, क्योंकि वे अपने गुणों के कारण सभी पुरूषो में उत्तम या श्रेष्ठ होते हैं, इसलिए पुरूषोत्तम कहलाते है।

अरिहंत भगवान् अनंत गुणों के निधान है। उनके संपूर्ण गुणों की कोई गणना नहीं कर सकता। जिस प्रकार समुद्र के जल की बुँदों को, पृथ्वी की समस्त मृत्तिका के कणों को तथा

आकाश के तारों को साधारण मनुष्य गिन नहीं सकते, उसी प्रकार तीर्थंकरों के अनंत गुण अगम्य है।

अरिहंत साकार या सशरीर परमात्मा है। सिद्ध निराकार या अशरीरी परमात्मा है, क्यों कि समस्त कर्मों के क्षीण हो जाने पर शरीर का भी अस्तित्व नहीं रहता। आराधक की आराधना या उपासना का क्रम ऐसा है कि पहले साकार या सशरीर की उपासना की जाती है। वैसा करना अपेक्षाकृत सरल है। उसके पश्चात् निराकार की उपासना की जाती है। साकार परमात्मा या तीर्थंकर ही निराकार परमात्मा का या सिद्धों का बोध कराते हैं। [३२]

सिद्ध

दूसरे पद में सिद्धों को नमस्कार किया गया है, जो ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय - इन आठ कर्मो का क्षय कर देते है, मानसिक, वाचिक एवं कायिक योगों से सर्वथा रहित हो जाते है, अयोगावस्था प्राप्त कर लेते है, वे सिद्ध कहे जाते हैं उन्हें मुक्त, परिनिवृत्त भी कहा जाता है। मोक्ष या परिनिर्वाण समानार्थक है।[३३]

जो ज्यों भव्य, जीव उत्कृष्ट भाव से नित्य सिद्ध भगवान की स्तुति करता है, वह भविष्यमें अवश्य सिद्ध होता है। इसलिए मैं अपने मन-वचन-काया द्वारा अनंत सिद्ध भगवानस्र वीतराग महासत्ताको नमस्कार करता हूँ।[३४]

सिद्ध शब्द जीवन की अंतिम सफलता या सिद्धी का सूचक है।[३५] इसी पद या स्थान को प्राप्त करने हेतु सभी साधक, भक्त या उपासक सदैव प्रयत्न करते हैं। सिद्ध सर्वोच्च पद है। इसलिए उनका स्थान लोक में सर्वोच्च या लोग अग्रभाग में माना गया है। अतीत काल में अनेक सिद्ध हो चुके है। वर्तमान में भी होते हैं और भविष्य में होते रहेंगे। जब आत्मा के गुणों एवं विशेषताओं को रोकने वाले कर्मो का पूर्णतया नाश हो जाता है, तो अनंत ज्ञान एवं अनंत दर्शन उत्पन्न होता है। जिसमें कोई भी बाधा नहीं होती, ऐसा अनंत सुख प्राप्त होता है। अनंत चारित्र, अक्षय स्थिति, अमूर्तत्व, अगुरुलघुत्व तथा अनंत वीर्य-शक्ति प्रादुर्भूत होती है। ऐसा माना जाता है कि सिद्धों की आत्मा में इतनी शक्ति होती है कि, वे सारे लोक को हिला सकते है, किंतु वे इस शक्ति का कभी उपयोग करने की आवश्यकता नही समझते।

Prastractions to those supreme souls who are liberated from the bond the bondage of this perishable physical body.[३६]

जितने जीव मोक्ष में गये है और जाएँगे, अर्थात् कर्म से मुक्त हुए है, उनके निमित्त

पंचपरमेष्टिमंत्रका अथवा परमेष्ठीमंत्रके अंशका मुख्य कारण समझना चाहिए। कर्मबंधन से मुक्त होने में यही मंत्र सहायक समझना चाहिए।[३७]

आचार्य :

तीसरे पद में आचार्यो को नमन किया गया है जो साधु-साध्वी रूप धर्मसंघ को अनुशासित और संचालित करते है। वे स्वयं आचार का पालन करते है, तथा साधु-साध्वियों से पालन करवाते है, उन्हें पालन करने की प्रेरणा देते हैं। आगम सूत्रों का उन्हें अर्थज्ञान करवाते हैं। वे आचार्य कहलाते हैं। वे धर्म संघ के प्रमुख आधार होते हैं वे अरिहंतो के प्रतिनिधि कहे जाते है, अरिहंतो ने जो धर्म का उपदेश दिया, उसे वे अपने समय में जन-जन तक पहुँचाने का महान् कार्य करते है।[३८]

आचार्य पद आचार, ज्ञान, अनुशासन और व्यवस्था के साथ जुड़ा हुआ है। कहा है - जैन शासन में ऐसी परंपरा है कि आगमों के पाठ की वाचना उपाध्याय देते हैं। आचार्य अर्थ-वाचना देते हैं। वे आगमों के रहस्यों के ज्ञाता होते हैं, विशषज्ञ होते हैं। संघ के साधु-साध्वियों को आगमों का अर्थ प्राप्त कराते हैं। [३९]

आचार्य, गच्छ के नायक होते है। वे संघ के साधुओं की सार-संभाल रखते हैं। तीर्थंकर देव के अत्यंत उत्तम, कारूण्यपूर्ण धर्मशासन की उन्नति के लिए वे प्रयत्नशील रहते हैं।

वे पाँचों इन्द्रियों के विषयों पर नियंत्रण रखते है। क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषायों से विमुक्त होते हैं। पाँच महाव्रत, पंचाचार, पाँच समिति सर्व तीन गुप्ति से युक्त होते है। आचार के उत्कृष्ट परिपालक होते है।

उपाध्याय -

उपाध्याय शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए विद्वानों ने लिखा है।

"उप-समीपे अधिवसनात् श्रुतस्य आयो लाभो भवति येभ्यस्ते उपाध्याया:"

चौथे पद में उपाध्यायों को नमस्कार किया गया है। उपाध्याय पद का शिक्षण से संबंध है। वे साधु, साध्वी, समुदाय को आगम-सूत्रों की वाचना देते हैं। आगामों का शुद्ध पाठ करना सिखलाते है। आगमों के पाठों के उच्चारण की शुद्धता पर बहुत जोर दिया जाता है। उपाध्याय की एक स्वतंत्र पद के रूप में स्थापना इसका सूचक हैं।[४०]

उपाध्याय शिक्षण या अध्यापन से संबंधित है। साधु-साध्वियों के लिए आगम सूत्रों का अध्ययन आवश्यक हैं, क्योंकि उनमें तत्वज्ञान और आचार के सिद्धांतो का विस्तृत वर्णन हैं।[४१] प्रत्येक साधु-साध्वी को यथायोग्य आगमों का ज्ञान होना चाहिए। भारतवर्ष में

शब्द को बहुत महत्त्व दिया गया है। आगमों में, शास्त्रों में धर्मदेशना जिन शब्दावलियों में दी गई है, उनका उनके पाठों का शुद्ध उच्चारण अतिआवश्यक है। उपाध्यायों पर ये दायित्व होता है कि वे साधु-साध्वियों को आगमशास्त्रों का शुद्ध पाठोच्चारण सीखलायें, जिससे भगवान् महावीर की धर्मदेशना की परंपरा शाब्दिक दृष्टि से अक्षुण्ण रह सके।

जिनके समीप या सान्निध्य में रहने से श्रुत का, आगमों के अध्ययन का लाभ हो, वे उपाध्याय कहलाते है।[४२] उपाध्याय आचारांग आदि ग्यारह अंगो का तथा औपपातिक आदि बारह उपांगो का स्वयं अध्ययन करते हैं और साधु-साध्वियों को उनका पाठ देते हैं। इस प्रकार वे आगमों की मौलिक परंपरा को जिवित रखते है।

साधु :

जो निर्वाण या मोक्ष के मार्ग की साधना करते है अथवा आत्महित - आत्मकल्याण तथा परहति-लोककल्याण को साधते हैं, साधु कहलाते है।[४३] साधु धर्म के संबंध में बतलाया गया हैं।

"सामायिकादिगतविशुद्धक्रियाभिव्यङ्ग्य - सकलसत्त्व - हिताशयामृतलक्षण स्वपरिणामः। एव साधु धर्म :"[४४]

पांच महाव्रत, पांच समिति आदि २८ मूल गुण रूप सकल चारित्र को पालनेवाला निर्गंथ मुनिही साधू संज्ञा को प्राप्त है।[४५]

साधु सामायिक आदि विशुद्ध क्रियायें करते हैं। जिनसे उनमें ऐसा अमृत तुल्य उत्तम आत्म परिणाम उत्पन्न होते है, जिसमें संसार के समस्त प्राणियों के हित का भाव व्याप्त रहता है।[४६]

साधु शब्द बड़ा व्यापक हैं। यह साधना पर आधारित हैं। बाह्य स्वरूप तो केवल व्यवहार है। यथार्थ साधुत्व तो अंतरात्मा की वृत्तियों पर टिका हुआ है।[४७]

आचार्य समंतभद्र रत्नकरंडक श्रावकाचार में लिखते है कि - जिसकी विषय विकार की इच्छा मूल से समाप्त हुई है, जो आरंभ प्रिरिग्रह से सर्वथा दूर है, जो ध्यान और तपमें लीन है, जो निरंतर निज स्वभावमें मग्न है वे साधु परमेष्ठि है।[४८]

पांच प्रकार के गुरू :

श्री नवकार मंत्रमें पांच प्रकार के गुरू हैं। अरिहंत मार्गदर्शक होने के कारण प्रेरक गुरू हैं। सिद्ध अविनाशी पद को प्राप्त हुए है, इसलिए सूचक गुरू है। आचार्य अर्थ के देशक होनेसे बोधक गुरू है। उपाध्याय सूत्र के दाता होने से वाचक गुरू है। साधु मोक्षमार्ग में सहायक होने से सहायक गुरू है। पांच गुरू को नमस्कार करने से श्री नवकार मंत्र के गुरू

मंत्र अथवा पंचमंगल भी कहते है।[४९]

णमो लोए सव्व साहूणं का रहस्य

जैन धर्म का दृष्टिकोण सदासेही बहुत व्यापक और उदार रहा है।[५०] जैन शब्द तत्त्वत: किसी संप्रदाय का द्योतक नहीं हैं। यह एक आध्यात्मिक जीवनशैली है, जिसका आधार उच्च चरित्र, शील, त्याग, प्रामाणिकता, नैतिकता, करूणा, सेवा आदि पवित्र गुण है। उन्ही से मानव जीवन सफल होता है।

नीतिकारों ने कहा है -

येषां न विद्या न तपो न दानं,
न चापि शीलं न गुणो न धर्म: ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता:,
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

जो न तो विद्याध्ययन करते हैं, न तपश्चरण करते हैं, न दान करते हैं, न शीलवान होते हैं, न उत्तम गुणों का अर्चन करते हैं, न धर्म का पालन करते हैं, वे मर्त्यलोक में - पृथ्वी पर भार स्वरूप है। मनुष्यों के रूप में पशुओं की तरह जीवन व्यतीत करते हैं।

जैन धर्म मानव को सच्चे मानव बनने की प्रेरणा प्रदान करता है। संसार में सभी प्राणी प्रेम, सद्भावना, मैत्री एवं सहृदयता के साथ रहे, यह जैन धर्म का संदेश है। छोटे-बड़े सभी प्राणियों को जीवित रहने का अधिकार है।

दशवैकालिक सूत्र में कहा है -

सभी जीव जीना चाहते है, मरना नहीं चाहते। इसलिए निर्ग्रंथ - राग, द्वेषादि ग्रंथि रहित संत प्राणियों के वध का, हिंसा का वर्णन करते है।[५१]

जैन धर्म का यह अहिंसा का महान् संदेश है। संसार में सुख तथा शांतिपूर्वक जीने का यह मूलमंत्र है। जैन धर्म केवल उच्च आदर्शों की चर्चाओं पर टिका हुआ नही हैं। वह सर्वथा व्यावहारिक भूमिका को लेकर चलता रहा है। उसके अनुसार जीवन व्यतीत करनेवाले साधकों की दो श्रेणियाँ हैं। जिनमें त्याग और वैराग्य की तीव्रतम भावना होती है, वे सांसारिक जीवन में कुछ भी रस नहीं लेते। उनको विषय-भोग अप्रिय लगते हैं। यद्यपि ऐसे उच्च भावोप्रन्न व्यक्ति बहुत कम होते हैं, किंतु होते अवश्य हैं। वे समस्त सांसारिक संबंधो, आकर्षणों और इच्छाओं को त्याग कर पूर्ण रूप से आत्मोपासना और प्राणीमात्र के हित का मार्ग अपना लेते हैं, वे ही साधु, श्रमण, अनगार या निर्ग्रंथ कहलाते हैं। ये सभी

शब्द सर्व-त्यागी संतो या महात्माओं के लिए प्रयुक्त होतें है ।

नवकार मंत्र के पाँचवे पद में ये ही महापुरूष आते हैं। इनका जीवन पूर्णत: स्वावलंबी होता है । ये किसी पर किसी प्रकार भार रूप नहीं बनते, इसलिए इनको वायु की तरह अप्रतिबंध विहारी कहा गया है। वायु सहज रूप में चलती है। किसी को कोई बाधा नाही पहुँचाती हैं, इसी प्रकार ये संत महात्मा किसी के लिए, किसी भी प्रकार की असुविधा उत्पन्न नहीं करते। वे एक परिवार का त्याग करते हैं, परन्तु संसार के सभी प्राणी उनके पारिवारिक हो जाते हैं। कहा गया हैं -

अयं निज: परों वेदि, गणना लघुवेसाम् ।
उदारचरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

यह अपना है या पराया है, ऐसी गणना छोटे चित्तवाले, संकीर्ण भावनावाले लोग करते हैं। उदार चरित साधु पुरुषों के लिए तो सारी पृथ्वी ही - सारा संसार ही अपना कुटुंब है। यह दृष्टिकोन कितना उंचा हैं, कितना पवित्र है, जिसके अनुसार संसार के छोटे-बड़े सभी जीव अपने परिवार के तुल्य हो जाते हैं। जिस प्रकार अपने परिवार की कोई हिंसा नहीं करता, उसको कष्ट नहीं देता, उसी प्रकार वे समस्त जगत् के प्राणियों को परिवार तुल्य मानकर कभी किसी को नहीं सताते ।

वे भिक्षाजीवी होते हैं, इसलिए वे भिक्षु कहलाते हैं, किंतु जैन साधुओं की भिक्षाजीविता सर्वथा निर्दोष होती हैं। वे अपने आहार की दृष्टि से किसी पर भार नहीं बनते। गृहस्थ अपने लिए जो भोजन तैयार करते हैं, उसमें से यदि वे भावनापूर्वक देना चाहते हैं तो साधु उसे ग्रहण करते हैं। साधु को भिक्षा देने के पश्चात् वे बाकी बचे हुए भोजन से प्रसन्नतापूर्वक काम चलाते हैं। नई रसोई नहीं बनाते। बनाने से वे दोष के भागी होते हैं। साधु भी यदि यह जानता हुआ भी ले लें तो वह भी दोष का भागी बनता हैं । जैन साधुओं की भिक्षाचर्या बहुत सूक्ष्म हैं।

जो प्रमादमें पड़ जाता हैं वह मुनिपद से च्युत हो जाता हैं, अतएव मुनिजन सदैव जागते रहते है ।[५२]

भोजन की तरह आवास की दृष्टि से भी साधु किसी पर भार स्वरूप नहीं होते । गृहस्थोंद्वारा अपने प्रयोजन हेतु निर्मित भवनों में, मकानों में साधु उनकी स्वीकृति से निवास करते हैं । वे कहीं भी स्थायी रूप से नहीं रहते, केवल वर्षा ऋतु के चार मासों के अतिरिक्त वे पाद विहार करते हुए ग्रामानुग्राम विचरणकरते हैं तथा लोगों को सदाचार, नैतिकता, मैत्री, समता और सद्भावना पूर्ण जीवन जीने का संदेश देते हैं। वे समाज से साधारण, अल्पतम भोजन, स्थान, वस्त्र, पात्र आदि के रूप में सेवा लेते हुए अधिकतम प्रदान करने का प्रयास

करते हैं। यह सब करते हुए भी उनका मुख्य लक्ष्य आत्मकल्याण होता हैं। वे अपनी संयम मूलक साधना में उत्तरोत्तर अग्रसर होते हुए उर्ध्वगामी बनते जाते हैं। राग-द्वेष, मोह आदि का वर्जन करते हुए कर्म क्षय करते जाते हैं।

ऐसे संत पुरुष, हम जान पाये या न जान पायें, सारे लोक में भिन्न -भिन्न स्थानों पर अधिक नहीं तो कुछ मिल सकते हैं। वे सभी नमस्कार के योग्य हैं।

साधु यह नहीं चाहते कि लोग उनको नमस्कार करें, वंदन करें। ऐसा चाहने की उन्हें आवश्यकता भी नहीं होती। वे तो अपने आप में परितुष्ट होते हैं। उनको नमस्कार करने में लोगों का विनय और कृतज्ञता का भाव सूचित होता है। ऐसा कर लोग अपना ही हित करते हैं। क्योंकि विनय से आत्मा में निर्मलता, पवित्रता और सरलता आती हैं। इन गुणों के आने से जीवन बड़ा सात्त्विक और पवित्र बन जाता है। "णमो लोए सव्व साहूणं" का यही रहस्य है, जिसमें अनेक सूक्ष्म तत्त्व सन्निहित हैं। उन्हीं का प्राकट्य इस शोध ग्रंथ का प्रयोजन है।

नवकार चुलिका: समीक्षा :

नवकार चुलिका के चार पदों में नमस्कार की गरिमा का बहुत थोड़े शब्दोंमे बड़ा ही मार्मिक विवेचन हुआ हैं। इसके पूर्वार्ध में नवकार को सर्व पाप प्रणाशक कहा है -

"प्रकर्षेण नाशयति इति प्रणाशक:"

जो विशेष रूप में जड़ मूल से नाश करता हैं, उसको प्रणाशक कहा जाता हैं।

नवकार मंत्र समस्त पापों का प्रणाश करता हैं, मूलोच्छेद करता हैं, उन्हें जड़ से मिटा देता हैं। सर्वथा क्षीण कर देता हैं, जिससे वे फिर कभी उत्पन्न नहीं होते।

प्राणियों को दु:ख, क्लेश तथा संकट आदि का जो अनुभव होता है, वह उनके अशुभ कर्मों के उदय का परिणाम हैं। जब पापों या अशुभ कर्मोंका संपूर्णत: नाश हो जाता है तो फिर दु:ख, कष्ट आदि आपत्तियों का प्रसंगही नहीं बनता। इसका आशय यह है कि पंच परमेष्ठियों को किया गया नमस्कार समस्त पापों का तथा उनके परिणाम स्वरूप समस्त दु:खों का नाश करता है।

चुलिका के अंतिम दो पदोंमें यह प्रतिपादित किया गया है कि नवकार महामंत्र समस्त मंगलों मे सर्वोपरि है।

मंगल शब्द की व्याख्या शास्त्रकारों ने अनेक प्रकार से की है। लिखा है - "मंगति हितार्थ सर्पतीति मंगलम्" जो समस्त प्राणियों के हित में प्रवृत्त रहता है, उनका हित साधता है, वह मंगल है। प्राणियों की हित प्रवृत्ति के अनेक प्रकार हैं। अत: मंगलाणंच सव्वेसिं शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो सभी प्रकारों के मंगलोंका द्योतक हैं।

नमस्कार मंत्र प्राणियों के लिए द्रव्य - मंगल और भाव-मंगल दोनों ही दृष्टिसे हितप्रद हैं। सांसारिक दृष्टि से उत्तम मांगलिक स्थितियों का यह हेतु है तथा आध्यात्मिक दृष्टि से यह अहिंसा, संयम, तप, स्वाध्याय आदि अशुभ भावों का हेतु है। दोनों दृष्टियों से यह अत्यंत हितकर है। इसलिए जो इसकी आराधना करता है, उसे किसी भी प्रकार का संकट उपद्रव या दु:ख नहीं होता, भावपूर्वक पंच परमेष्ठियों का जो भव्य जीव स्मरण करता है, उसके विचारों और परिणामों की धारा निर्मल बनती है।

संक्षेप में कहा जाये तो पंच-परमेष्ठियों के स्मरण से आत्मशुद्धि होती है। आत्मशुद्धि का परिणाम मुक्ति, मोक्ष या निर्वाण है। नवकार मंत्र का स्मरण, जप तथा आराधन साधक को अनंत सुखमय, शांतिमय, अंतिम लक्ष्य तक पहुँचा देते हैं।

प्रथम प्रकरण का प्रारंभ मानव जीवन में अध्यात्म एवं धर्म की भूमिका से होता है, जिसमें यह बतलाया गया है कि भौतिक सुखो और उपलब्धियों से मानव को सच्ची शांति प्राप्त नहीं होती। इसलिए उसकी मनोवृत्ति अध्यात्म एवं धर्म की दिशा में प्रवृत्त होती है। उसके मन में यह आशा उत्पन्न होती है, विश्वास दृढ़ होता है कि धर्म की आराधना द्वारा ही उसे शाश्वत सुख एवं शांति प्राप्त हो सकती है। यह मानव की अति चिरकालीन अंतर भावना का सृजन है।

भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक भाव विशेष रूप से विकसित और समुन्नत हुआ। ऐहिक जीवन के परिष्कार के साथ-साथ पारलौकिक उन्नति की दिशा में भारतीय मनीषी सतत् जागृत रहे हैं। यह यहाँ की संस्कृति की अद्‌भुत विशेषता है।

भारतीय संस्कृति का स्रोत बहुत ही व्यापक और विस्तीर्ण रहा है। उसमें समन्वय का बड़ा उदात्तभाव रहा है। वह वैदिक, बौद्ध और जैन - तीन धाराओं की त्रिवेणी के रूप में सतत् प्रवहणशील रही।

वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म उसी के सैद्धांतिक और साधनामूलक जीवनपथ हैं। इन विषयों का परिचय कराते हुए यहाँ जैन धर्म के इतिहास, परंपरा, उसकी सार्वजनीनता आदिपर प्रकाश डाला गया है।

नवकार जैन धर्म का महामंत्र है। उसके बाह्य तथा आंतरिक स्वरूप, उसकी आध्यात्मिक संपदाएँ, अक्षरात्मक विश्लेषण आदि पर सार रूप में इसमे विवेचन किया गया है।

नवकार में नमस्कृत पंचपरमेष्ठी - अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, तथा साधु पद विचार करते हुए शोध के मूल विषय "नमो लोए सव्व साहुणं" का संस्पर्श तथा तद्‌गत रहस्य को उद्‌घाटित करने का प्रयत्न किया गया है।

शोध हेतु परिगृहित विषय का एक प्रकार से यह बीज प्रकरण है। बीज से अंकुरित, *पल्लवित, परिविर्धित होते पादप की तरह आगे से प्रकरणों इसी का विस्तार हैं, जिनमें अंतत:* अनुसंधेय विषय का परिसमापन होता है।

आगे मंत्रविद्या की परंपरा, मंत्र जप की उपयोगिता, नवकार मंत्र की उत्पत्ति, माहात्म्य, उसमें सन्निहित - उत्कृष्ट शक्ति, निर्वेद का निर्मल स्रोत, आत्मा के ज्ञातृत्व भाव की प्रेरणा आदि विविध विषयों पर सामान्यत: प्रकाश डालने का प्रयत्न रहेगा।

नवकार की जपाराधना, उसके विविध प्रकार के विधि-विधान, नवकार के आराधक की भूमिका, आचार, कर्तव्य इत्यादि की भी साधारणत: इसमें चर्चा की जायेगी।

जैन धर्म में गुण और गुणीपूजाका महत्त्व :

जैन धर्म व्यक्तिनिष्ठ नहीं है। किसी व्यक्ति विशेष की पूजा और प्रतिष्ठा में विश्वास नहीं करता। वहाँ गुणों और गुणियों की पूजा का सर्वाधिक महत्त्व है। चाहे मनुष्य किसी जाति, वर्ग या समुदाय का हो, यदि वह आत्म पराक्रम, श्रम एवं उद्यम द्वारा उच्च - उत्कृष्ट गुणों का अर्जन कर लेता है तो वह सबके लिए पूजनीय और सन्मानीय बन जाता है।

जैन धर्म की उदारता, व्यापकता और सार्वजनीनता का यह सबसे बड़ा साक्ष्य है। यहाँ महान वह होता है, जो गुणों में महान होता है। कुल, पद और वैभव की महत्ता का यहाँ महत्त्व नहीं है।[५३]

नवकार महामंत्र का आधार : गुणनिष्पन्नता

नवकार महामंत्र जैन धर्म का सर्वोत्तम मंत्र है। इसके पांच पदोंमे जैन दर्शनका समग्र रहस्य भरा हुआ है। इसमें नमनीयता के रूपमें किसी व्यक्ति विशेष का उल्लेख नहीं है।

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधु ये पांचो पद सर्वथा गुण निष्पन्नता पर अवलंबित हैं। इनमें एक एक पदकी गुणों की दृष्टि से बड़ी गरिमा हैं। इसलिए वे आदरणीय, सन्मानीय, पूजनीय और वंदनीय हैं। इन्हें पंच परमेष्ठी कहा जाता है।

नमस्कार महामंत्र गुण पूजा का एक अद्भुत उदाहरण है। इसका प्रत्येक पद वंदन एवं नमन करनेवालों को यह प्रेरणा देता है कि - वे भी इन पदोंको प्राप्त करने की दिशामें समुद्यत

हो क्योंकि - उनकी आत्मामें भी वह असीम शक्ति विद्यमान है, जिससे वह परमात्मभाव प्राप्त कर लेनेमें समर्थ हो सकते हैं।[५४]

नवकार महामंत्र क्यों ?

जैन शासनमें आज तक अनेक संप्रदाय बने, शाखा-प्रशाखाएँ निकली। उत्तरकालीन जैन साहित्य में घोर पक्षापक्ष की झलक आई, तथापि, नमस्कार महामंत्र की निर्विकल्प आस्था पर कोई असर नही आया। हिंदु धर्म में जो स्थान गायत्री मंत्र का हैं, बौद्ध संपद्राय में जो स्थान त्रिशरण का है, वही स्थान जैन शासनमें नमस्कार महामंत्रका है।

नवकार महामंत्र यह सागर ही नही महासागर है। कितनी ही डुबकियाँ लों, कितना ही अवगाहन करें, इसका आर-पार पाना बहुत ही कठिन है। इसकी गहराई को मापना असंभव है। नवकार मंत्र की गहराई समुचे श्रुतसागर की गहराई है। नवकार मंत्र को 'महामंत्र' कहते है क्यों कि वह चौदह पूर्वों का सार है। विश्व की सारी शाब्दिक विशिष्टता, ज्ञानराशि चौदह पूर्वोमें समा जाती है। नमस्कार महामंत्र आत्मा का जागरण करता है। आध्यात्मयात्रा इससे संपन्न होती है।

नवकार मंत्र कामनापूर्ति का मंत्र नही है। कामनापूर्ति के अनेक मंत्र होते है। जैसे - सरस्वती मंत्र, लक्ष्मी मंत्र, रोग-निवारण मंत्र, सर्पदंश मुक्ति मंत्र आदि। जिस प्रकार बीमारियोंके लिए औषधियों का निर्माण हुआ, वैसे ही रोग-निवारण के लिए मंत्रो की संरचना हुई। जितनी बिमारियाँ, उतनी ही औषधियाँ। जितने प्रकार के कामना के स्रोत है, उतने ही मंत्र है। नमस्कार महामंत्र कामनापूर्ति का मंत्र नहीं है, इच्छापूर्ति का मंत्र नहीं है किंतु यह वह मंत्र है जो कामनाको समाप्त कर सकता है, इच्छा को मिटा सकता है। दोनों में बहुत बड़ा अंतर है - एक मंत्र होता है, कामनापूर्ति करनेवाला और एक मंत्र होता है, कामना मिटाने वाला। दोनों में बहुत बड़ा अंतर है। कामनापूर्ति और इच्छापूर्ति का स्तर बहुत नीचे रह जाता है। जब मनुष्य की उर्ध्व चेतना जागृत होती है। तब उसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सबसे बड़ी उपलब्धि वही है, जिससे कामना और इच्छा का अभाव हो सके। कामना की पूर्ति और कामना का अभाव - दो बातें हैं। दोनों में बहुत दूरी है।

जब व्यक्तिमें अंतर की चेतना जाग जाती है तब वह कामनापूर्ति के पीछे नही दौड़ता, तब वह इच्छापूर्ति का प्रयत्न नहीं करता। वह उस बातके पीछे दौड़ता है, वह उस मंत्र की खोज करता है जो कामना को काट दें, उसके स्रोत को ही सुखा दें। उसे वह मंत्र चाहिए जो इच्छा का अभाव पैदा कर दें, इच्छा के स्रोत को नष्ट कर दें। नमस्कार 'महामंत्र' इसलिए है कि - उससे

इच्छा की पूर्ति नही होती किंतु इच्छा का स्रोत ही सूख जाता है। जहाँ सारी इच्छाएँ समाप्त होती है, सारी कामनाएँ समाप्त हो जाती है, जहाँ व्यक्ति निष्काम बन जाता है और कामना के धरातलसे उपर उठ सकता है, वहाँ उसका अर्हत् स्वरूप जागता है। यही नमस्कार महामंत्र का प्रयोजन है और इसीलिए यह केवल नवकारमंत्र ही नहीं "महामंत्र" है।[५५]

नमस्कार महामंत्र से भी ऐहिक कामनाएँ पूरी होती हैं, किन्तु यह उसका मूल उद्देश्य नही हैं, मूल प्रयोजन नहीं है। उसकी संरचना केवल अध्यात्म जागरण के लिए हुई है, कामनाओ की समाप्ति के लिए हुई है। यह एक तथ्य है कि - जहाँ बड़ी उपलब्धि होती, है, वहाँ आनुषंगिक रूपमें अनेक छोटी उपलब्धियाँ भी अपने आप हो जाती है। छोटी उपलब्धि में बड़ी उपलब्धि नहीं होती किंतु बड़ी उपलब्धि में छोटी उपलब्धि सहज हो जाती है। कोई व्यक्ति सरस्वतीके मंत्र की आराधना करता है तो उसका ज्ञान बढ़ेगा। कोई व्यक्ति लक्ष्मी के मंत्र की आराधना करता है तो उसका धन बढ़ेगा किंतु अध्यात्मका जागरण या आत्मा का उन्नयन नहीं होगा, क्यों कि छोटी उपलब्धि के साथ बड़ी उपलब्धि के लिए चलता है, रास्ते में उसे छोटी - छोटी अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त हो जाती है।[५६]

●●●

नवकार मंत्र - आभ्यंतर तप:

जैनदर्शन में तप के मुख्य दो प्रकार बताये गये है। १) बाह्य तप और १) अभ्यंतर तप [५७] प्रत्येक के छ: छ: प्रकार दर्शाये गये हैं। जीव को उत्तम स्थान प्राप्त कराने के लिए ये प्रकार दिये गये हैं। वास्तवमें तो आत्माको परमात्मा बनाने के लिए दोनों प्रकार के तप अनिवार्य है। दोनोके संगमसेही सिद्धावस्था की प्राप्ति हो सकती है। तप जैन धर्म का प्राण है। प्रत्येक जैन की यह मनीषा होती हि कि किसी न किसी प्रकार तप की आराधना अवश्य होनी चाहिए। चरम तीर्थंकर भगवान महावीर को सारे विश्वमें तपके सर्वोत्तम प्रणेता कहा जाता है।

अभ्यंतर तप का एक भेद 'विनय' है । जैन धर्म में विनय का बहुत विशद और बहुविध निरूपण उपलब्ध होता है। विनय को किसी एक परिभाषा या एक अर्थ में बांध पाना संभव नहीं हैं। 'विनय' का अर्थ यदि भक्ति-बहुमान करे तो ज्ञान -दर्शन-चारित्र आदि के प्रति भक्ति और बहुमान प्रदर्शित करता है। शरीर से गुरूजनों की भक्ति करें और विवेकपूर्वक की गई समूची शारीरिक प्रवृत्तियोंको विनय कहते है।

आत्मशुद्धि, ज्ञानप्राप्ति, सद्गुणप्राप्ति, गुरूभक्ति एवं गुणीजनों के सम्मान के लिए

झुकना ही विनय कहा गया है। विनय हमारे समग्र धर्माचरणों की नींव है। विनयहीन धर्म वास्तवमें धर्म ही नही है। विनय जिनशासन का मूल है। तप-जप, ज्ञान-ध्यान, संयम और धर्म की आराधना विनयशील ही कर सकता है और नवकार मंत्र के स्मरण से अहम् का नाश होता है और विनय गुणकी वृद्धि होती है। सर्व कल्याणों का आधारभूत विनय को माना गया है।

आत्मशोधन का हेतू यह मंत्र जाप है। नमस्कार मंत्र सद्‌बुद्धि, सद्‌विचार और सत्कर्मो की परंपरा का सर्जन करता है। पवित्र, अपवित्र, रोगी, दु:खी आदि किसी भी अवस्थामें इस मंत्र का जप करने से व्यक्ति बाह्य और आभ्यंतर दोनों दृष्टियोंसे पवित्र हो जाता है। ऐहिक और पारलौकिक दृष्टि से कल्याणकारी यह मंत्र आभ्यंतर तपका प्रथम मांगलिक सोपान है।[५८]

●●●

नामस्मरण

भक्ति, आराधना, या उपासना का प्रथम अंग नामस्मरण है। उपास्य देवको याद करना, उपास्य देवका नाम लेना, नामका स्मरण करना, उसका जप करना उसे नामस्मरण कहते हैं। उसे प्रभु स्मरण भी कहते हैं। कारण उसमें प्रभु के नामका स्मरण होता है।

नामस्मरण यह सहज साधन है, याने वह बहुत आसानीसे हो सकता है। हे अरिहंत, हे वीतराग , हे परमात्मा यह जिन नाम सूचक शब्द मन में स्मरणकरने से अथवा मुख से बोलने से कोई तकलीफ नहीं पड़ती। फिर वह मनुष्य छोटा हो या बड़ा हो, किसीभी स्थान में रहता हो, किसीभी अवस्थामें रहता हो तो भी यह नामस्मरण कर सकता है। एक अहोरातमें सौ-दोसो बार प्रभु का नामस्मरण करना जरा भी कठीण नहीं है।

जैन परंपरा ऐसी है कि - बच्चा थोड़ा बड़ा होते ही उसे नवकार मंत्र सीखाया जाता है, जिससे वह बच्चा उठते, बैठते, सोते, जागते, नवकार मंत्र का स्मरण करके अपने जीवन को सफल बना सकता है।[५९]

किसी संत महात्माने कहा है कि - नामस्मरण सच्चे हृदय से, सच्ची श्रद्धा से करोगे तो मन में किसीभी प्रकार का शोक संताप नहीं होगा और सभी प्रकार की मुसीबत दूर होगी।

कबीरदासजी ने भी नामस्मरण के बारे में कहा है कि -

"सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दु:ख जाए।
कहे कबीर सुमिरन किये, साई मांहि समाय ।।"

नामस्मरण से सुख याने निजस्वरूपानंद की प्राप्ति होती है, और दु:ख याने जन्म, जरा और मृत्यु का नाश होता है। कबीरदासजी कहते है कि साई का, भगवान का नामस्मरण से अंतमें ही उसमें लीन हो जाते है।[६०]

●●●

नवकार महामंत्र का महत्त्व

मोक्षमार्ग की आराधना के लिए मंत्राधिराज महामंत्र उत्तमोत्तम है। पंचपरमेष्टि भगवंत सर्व उत्तमोत्तम द्रव्य क्षेत्र, काल और भावमें व्यापक है। अत: मुक्ति पद की आराधना, साधना और उपासना के लिए पंचपरमेष्टि भगवंत की भक्ति करनी चाहिए।[६१]

मनवचन एवं काया तीनों से वासित नमस्कार की क्रिया को ही शास्त्रों में 'नमस्कार पदार्थ' कहा है। श्री नमस्कार निर्युक्तिमें पंचपरमेष्टि के गुणोंमे परिणमन, वचन से उनके गुणों का किर्तन एवं काया से सम्यक् विधियुक्त उन्हें प्रणाम ही नमस्कार पदार्थ है। अर्थात् नमस्कार पद का यही वास्तविक अर्थ है।[६२] सच्चा नमस्कार करने के लिए काया से प्रणाम वाणी से गुणों के उच्चारण के साथ मनका परमेष्टी के गुणोंमे परिणमन ही आवश्यक है।

अरिहंत भगवान के नमस्कार के पीछे जिस प्रकार मार्ग हेतु है, वैसे ही सिद्ध भगवानके नमस्कार के पीछे 'अविनाश' हेतु है। संसार की सभी वस्तुएँ विनाशी है, एक सिद्धपद ही अविनाशी है, अविनाशी पद की सिद्धि हेतु सिद्ध भगवान को किया हुआ नमस्कार सहेतुक नमस्कार है। इसीसे वह भाव नमस्कार बन जाता है। किसी भी क्रिया के भाव क्रिया बनाने के लिए शास्त्रों मे चित्त को आठ प्रकार के ~~भाव क्रिया बनाने के लिए शास्त्रों मे चित्तको आठ प्रकार के~~ विशेषणों से विशिष्ट बनाने हेतु आदेश दिया गया है। श्री अनुयोगद्वार सूत्रमें भाव क्रिया का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि - साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका उभयकाल आवश्यक प्रतिक्रमण करते है। यह आवश्यक मनको अन्यगामी न बनाकर एकनिष्ठ होकर करें तो यह भाव क्रिया है। इस प्रकार किया गया आवश्यक भाव आवश्यक है।[६३]

भद्रबाहु स्वामी कहते है कि -"मार्ग, अविप्रणाश, आचार विनय एवं सहाय - इन पांच हेतुओं के लिए मैं श्री पंचपरमेष्ठी भगवानको नमस्कार करता हूँ।" सहेतु क्रिया ही फलवती होती है। हेतु अथवा संकल्पविहीन कर्म फलीभूत नहीं होता।

श्री अरिहंत परमात्मामें मोक्षमार्ग की आद्यप्रकाशता के साथ विशुद्ध सम्यक्दर्शन है एवं यह सम्यकदर्शन पाने की जितनी सामग्री चाहिए उतनी एक साथ उनमें स्थित है। श्री अरिहंतों का ज्ञान, वैराग्य, धर्म, ऐश्वर्य आदि एक एक वस्तु ऐसी है, कि उसका प्रणिधान करनेवाली आत्मा के भीतर सम्यकत्व् का सूर्य उदित करती हे, मिथ्यात्व का घोर अंध:कार

हमेशां के लिए दूर कर देती है। नमस्कार को भाव नमस्कार बनाने के लिए नमस्कार की क्रियामें चित्त के भाव को जगाने हेतु या सरलतम युक्ति है।

श्री षोड़शक आदि ग्रंथों में धर्म सिद्धि के पाँच लक्षण दर्शाये गये है। पहला लक्षण औदार्य, दूसरा धैर्य, तीसरा तीनों कालके पाप की जुगुप्सा, चौथा लक्षण निर्मल बोध और पाँचवा लक्षण जनप्रियत्व है। श्री अरिहंतों का अनुपम औदर्य उनकी धर्मसिद्धि को सूचित करता है। सम्यक्त्व का प्रथम लक्षण उपशम अर्थात् अपराधीके प्रति क्रोधका अभाव है। श्री अरिहंतों में मैत्री, प्रमोद, कारूण्य और माध्यस्थ सम्यक्त्व की ये चार भावनाएँ पराकाष्ठा को प्राप्त हुई है। श्री अरिहंतों की अहिंसा सर्वलोकव्यापी है। समस्त जीवराशिको संग्रहित करनेवाली है।

अरिहंतो की तरह सिद्धभगवान के गुणों के प्रणिधानपूर्वक होनेवाला नमस्कार, गुण बहुमान के भाववाला होता है। अत: वह भी अचिंत्य शक्तियुक्त है। एवं कर्मवान को जलाने के लिए दावानल तुल्य बनता है। इस प्रकार होनेवाला भावनमस्कार हमारे लिए परम उपकारी बन सकता है। भाव नमस्कार के बिना अनंत बार ग्रहण किये हुए श्रमण लिंग भी द्रव्यालिंग बन जात हैं। अर्थात् उनकी साधना सार्थक नहीं होती।

नक्षत्रमालामें जिस प्रकार चंद्रमा सभी का स्वामी है, वैसे ही सभी प्रकार के पुण्य समूह में भाव नमस्कार मुख्य है। भावनमस्कार रहित जीवने अनंतबार द्रव्यलिंग ग्रहण किये और छोड़े पर कार्यसिद्धि नहीं हुई।[६४]

कार्यकी सिद्धि के लिए नमस्कार आवश्यक है एवं वह गुणबहुमान के भाव सें में आता है। अत: श्री अरिहंतादि परमेष्ठियोके एक-एक विशिष्ट गुणको प्रधान बनाकर उसके प्रणिधान पूर्वक नमस्कार का अभ्यास करना आवश्यक है।

श्री पंचपरमेष्ठियों को किया जानेवाला नमस्कार पापी से पापी एवं अधम से अधम जीव को भी पवित्र एवं उच्च बना देता है। श्री अरिहंत पद, श्री सिद्धपद, श्री आचार्यपद, श्री उपाध्याय पद एवं श्री साधुपद में स्थित निर्मल आत्माएँ जगत् पर जो उपकार करती हैं, वैसा उपकार दूसरे किसी भी स्थान पर स्थित आत्माएँ नहीं कर सकती। देवेंद्र अथवा चक्रवर्ती वासुदेव, प्रतिवासुदेव अथवा बलदेव, राजा-महाराजा अथवा राष्ट्रपति, विश्व की भौतिक समृद्धि के इन सभी अधिपतियों के उपकार, आध्यात्मिक समृद्धि के स्वामी श्री पंचपरमेष्ठियों के उपकार के समक्ष नगण्य है, तुच्छ है एवं तृणतुल्य है। इसी कारण इन परमेष्ठियों को किया जानेवाला भावनमस्कार सभी पापोंका समूल नाश करनेमें समर्थ है।

शरीरमें पांच इंद्रिय हैं, एवं लोक में परमेष्ठि भगवान भी पांच है। प्रत्येक इंद्रियों के एक एक विषय हैं, एवं उस विषयके संबंधमें जिन को अनादि कालसे अनुराग है, पर पंचपरमेष्ठि भगवन् के प्रति अनुराग को प्रयत्न पूर्वक प्राप्त करना पड़ता है। विषय संबंधी राग एवं

परमेष्ठि भगवान के प्रति राग एक ही समयमें एक ही चित्तमें संभव नही हो सकते है। एक जड़ है तो दूसरा चेतन है। जड़ के एवं चेतनके धर्म अलग अलग है। अंध:कार और प्रकाश दोनों एक ही स्थान पर साथ साथ नहीं रह सकते हैं। उसी प्रकार एक ही चित्तमें विषयों का राग एवं परमेष्ठियों के प्रति भक्तिराग एक ही कालमें टीक नहीं सकती।[६५] परमेष्ठियों के प्रति भक्तिराग उत्पन्न करना हो तो विषयों के प्रति वैराग्य की साधना करनी चाहिये। वैराग्य को साधने का उपाय विषयों की नश्वरता बार बार चिंतन करना है। सोचना सरल है करना सरल नहीं। वासना इतनी गहरी होती है कि - वह चिंतन से दूर या नष्ट नहीं होती बल्कि अनेक बारके अभ्यास से दृढ़ बनी हुई वैराग्य भावना उसे दूर कर सकती है।

पाँच परमेष्ठियों में स्थित पाँच महाव्रत, पाँच आचार, सम्यक्त्व के पांच भूषण एवम् धर्म सिद्धि के पाँच लक्षण, मैत्री आदि भाव, क्षमा आदि धर्म जो साधारण रीति से अपने परिचित हैं, उन्हें पांच-पांच की संख्यामें योजित कर पंच परमेष्ठियों का विशुद्ध प्रणिधान हो सकता है, जैसे कि - अरिहंतो में स्थित अहिंसा, सिद्धोंमें स्थित सत्य, आचार्यों में स्थित अचौर्य, उपाध्यायोंमें स्थित ब्रह्मचर्य एवं साधुओंमें स्थित अकिंचनता इत्यादि।

अरिहंतो में अहिंसा के साथ सत्य आदि गुण भी निहित है वैसे ही सिद्धों में, आचार्यो में, उपाध्यायों में एवम्, साधुओं में भी ये गुण निहित हैं, तो भी ध्यान की सुविधा के लिए प्रत्येक में एक-एक गुण अलग मानकर चिंतन करने से ध्यान सुदृढ बनता हैं। इसी प्रकार सभी विषयों में इसी क्रम का पालन करना चाहिए।

इस प्रणिधानपूर्वक किया नमस्कार भाव नमस्कार गिना जाता है एवं उसके फलस्वरूप जीव को बोधि लाभ, स्वर्ग के सुख तथा परंपरा से सिद्धि गति से अनंत एवं अव्यबाध सुख मिल सकते हैं।

"जिन सासणस्स सारो, चउदस्स, पुव्वाण जो समुद्धारो
जस्स मणे नवकारो, संसारो तस्स किं कुणई।"

जिनसाशन का सार एवं चौदह पूर्वका सार नवकारमंत्र है जिसके मनमें निवास करता हैं ऐसी व्यक्ति को संसार के उपद्रव किसी भी प्रकार की पीड़ा नहीं पहूँचा सकते हैं।[६६] जिस मनुष्य के अंतरमें श्री नमस्कार महामंत्र रमण करता हो, जिसमें भाव से उसकी शरण स्वीकार की हो उसे इस संसार के दु:ख लेशमात्र भी स्पर्श नही कर सकते। नमस्कार महामंत्ररूप नौकामें बैठकर आत्मा निर्विघ्नरूप से संसार सागर पार पहूँच सकती है।

नवकारमंत्ररूपी केसरी सिंह जिसके चित्तमें क्रीड़ा कर रहा हो, उसे संसार के उपद्रवरूप हाथी कुछ भी पीड़ा नहीं पहुँचा सकते,चारों गतियों के भयानक दु:ख उससे दूर दूर भागते हैं। चौदह पूर्वधर महर्षि भी जीवन की अंतिम बेला में जब शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है एवं

चौदह पूर्व का स्वाध्याय करने में असमर्थ बन जाते हैं, तब श्री नमस्कार महामंत्र की शरण स्वीकार कर अंतीम श्वास तक उसका स्वाध्याय करते रहते हैं, क्यों कि यह प्रभावक मंत्र भवांतर में उर्ध्व गति प्रदान करता हैं। ऐसा प्रभावक मंत्र श्रावक कूल में जन्मे हुए लोगोंको जन्म से ही मिल गया हैं, इसलिए कभी कभी ऐसा भी देखने को मिलता है कि - इस महामंत्र का यथार्थ मूल्य हम नहीं समझ सकते हैं। अत: उसकी सच्ची आराधना के लाभ से वंचित रह जाते है।

नमस्कार महामंत्र मंत्राधिराज हैं। सभी शास्त्रोंमें इसे प्रथम स्थान प्राप्त है। संसार रूपी रणक्षेत्रमें कर्मरूपी शत्रुओं के समक्ष लड़कर उन पर विजय प्राप्त करने का यह अमोघ अस्त्र है। नवकार मंत्र साधकोंको आत्मशत्रुओं पर विजय दिलाता है। इस महामंत्र की उत्तमताका पार नहीं है। देव, मनुष्य तिर्यंच एवं नारकी में उत्तम जीवों को इसकी प्राप्ति होती है। अयोग्य आत्मा के लिए यह मंत्र लाभप्रद नहीं होता। दु:खमय संसार से मुक्त होकर शाश्वत सुख प्राप्त करनेके लिए नमस्कार महामंत्र की, शरण लेना आवश्यक है। असार संसार में नमस्कार महामंत्र सार हैं परंतु इस सारभूत नवकार को साधने के हेतु अपनी पापात्मा पर तिरस्कार प्रगट होना चाहिए। नवकार के नवपदोमे और अडसढ अक्षरोंमे मनको गूंथ देना चाहिए।

ऐसा कहा जाता है कि - अमृत सुवर्ण पात्र में ही रह सकता है - वैसे ही नवकार मंत्ररूपी अमृत, स्वर्णपात्र के समान उत्तम आत्मामें ही निवास कर सकता है। नवकार मंत्र के अक्षरों को जगतमें प्रकाश प्रदान करनेवाले रत्नज्योति के समान मानकर स्मरण करना चाहिए इस मंत्रमें स्थित पंचपरमेष्ठियों के स्वरूप को पहचानकर उनके गुणों को अपने स्वरूप के साथ तुलना करनी चाहिए।

सर्व मंगलोंमें प्रथम मंगल, सर्वकल्याण का परम कारण देव, दानव और उत्तम पुरूषों को सदैव स्मरणीय नमस्कार महामंत्र यदि हमारे हृदय में सदैव रमण करता रहे, तो हम शीघ्र ही आत्मस्वरूप को पहचानकर उसे प्राप्त कर सकते है।

शास्त्रकारोंने आदेश दिया है कि - संक्लेश, कष्ट, तथा चित्त की असमाधिके समय नवकारमंत्रको पुन: पुन: याद करना चाहिए असमाधि एवं अशांति को दूर करनेका शीघ्रगामी एवं अमोघ उपाय नमस्कार मंत्र है। इस मंत्र का विधिपूर्वक आश्रय लेनेवाले को अपूर्व शांति प्रदान करता है, अनंत कर्मोंका नाश करता है और अनंत सुखोंका भागी बनाता है। नमस्कार मंत्र शारीरिक बल, मानसिक बुद्धि, आर्थिक वैभव, राजकीय सत्ता, ऐहिक संपत्ति तथा दूसरे भी अनेक प्रकार के ऐश्वर्य प्रभाव एवं उन्नति को प्रदान करता है, क्यों कि वह

चित्त की मलीनता एवं दोषों को दूर कर निर्मलता को प्रगट करता है। चित्तकी निर्मलता नमस्कार महामंत्र से सहज सिद्ध होती है।

जैन परंपरा या धर्मका अंतिम लक्ष्य आत्मस्वरूपोपलब्धि है। उसका मार्ग कृत्स्न-कर्म-क्षय है।[६७] समग्र कर्मोंका क्षय या नाश हो जाने से आत्मा की वैभाविक दशा अवगत हो जाती है।

भावमंगल श्री नवकार :

मंगलके मुख्य तीन अर्थ शास्त्रकारोंने दर्शाये है। १) हित का साधन २) धर्मका उपादान ३) संसार के परिभ्रमण का मूल से नाश। सुखसाधक एवं दु:खनाशक पदार्थ को मंगलरूप मानने की रूढी, संसारमें प्रसिद्ध है। कष्ट निवारण अथवा सुख प्रदान करनेमें समर्थ पदार्थ भी मंगलरूप माने जाते है। जैसे दही, *अक्षत, कुमकुम, श्रीफल, स्वस्तिक आदि* पदार्थ जगतमें मंगलरूप गिने जाते है।

अहिंसा, संयम, एवं तपरूप धर्म तथा स्वाध्याय, ध्यान-ज्ञानादि गुण ये सभी सुखसिद्धि के निश्चित साधन हैं, अत: ये भाव मंगल गिने जाते हैं। द्रव्य मंगलसे भावमंगलका मूल्य बहुत अधिक है। धर्म उत्कृष्ट मंगल है। उस धर्म का लक्षण है - अहिंसा, संयम और तप। जिसका मन सदा धर्म में लीन रहता है, उसे देव भी नमस्कार करते है।[६८]

जैन शास्त्रके भाव मंगलोंमें पंचमरमेष्टि नमस्कार को प्रधान मंगल कहा गया है। उसके मुख्य दो कारण हैं। १) श्री पंचपरमेष्टि नमस्कार स्वयंगुण स्वरूप है। २) गुणों के बहुमान स्वरूप है। पंच परमेष्टि नमस्कार सभी सद्‌गुणों में शिरोमणिभूत विनयगुणके पालन स्वरूप है। विनय मोक्षका मूल है, विनय के बिना ज्ञान नहीं, ज्ञान के बिना दर्शन नहीं, दर्शन के बिना चारित्र नही, एवं चारित्र के बिना मोक्ष नही।[६९]

योग्य के प्रतिविनय सद्‌विनय है। पंचमरमेष्टि नमस्कार करने योग्य व्यक्तियों की सर्वोत्कृष्टता होने के कारण उन्हें किया गया नमस्कार सभी विनयोंमें प्रधान विनय स्वरूप बन जाता है। प्रधान, विनयगुण के पालन से यथार्थ ज्ञान, यथार्थ दर्शन, श्रेष्ठ चारित्र एवं प्रधान सुख की प्राप्ती होती है। श्री पंचपरमेष्टि नमस्कार में ये तीनों वस्तुएं नीहित है। मन से नमस्कार का भाव, वचन से नमन का शब्द एवं काया से नमन की क्रिया होनी चाहिए। इस प्रकार ज्ञान, शब्द एवं क्रियारूप, विविध क्रिया युक्त श्री पंचपरमेष्टी नमस्कार पापध्वंस एवं कर्मक्षय का अनन्य कारण बन जाता है। अत: वह सर्वोत्कृष्ट भाव मंगलस्वरूप है।

यह नमस्कार मंत्र महामंत्र इसलिए है कि - इसके साथ कोई भी मांग जुड़ी हुई नही है। इसके पीछे कोई कामना नही हैं। इसके साथ केवल जुड़ा हुआ है - आत्माका जागरण, चैतन्यका जागरण, आत्म स्वरूपका उद्‌घाटन और आत्माके आवरणों का विलय । जिस व्यक्ति को आत्म जागरण उपलब्ध हो गया, उसे सब दु:ख उपलब्ध हो गया। कुछ भी शेष नहीं रहा। सोया हुआ प्रभु, जो अपने भीतर है, वह जाग जाए, अपना परमात्मा जाग जाए। वहाँ सचमुच वह मंत्र महामंत्र बन जाता है।

इस महामंत्र में भूतकालमें अनेक जीवों के जीवन को उज्ज्वल बनाया है और भविष्य में भी उन्नति के इच्छुक आत्मा के लिए इस महामंत्र का शरण आवश्यक है। भौतिकवाद के इस युगमें अध्यात्मवाद का अमीपान कराने के लिए नमस्कार महामंत्र के समान कोई साधन नही है। कोई निर्मल और सरल मंत्र नहीं है। नमस्कार महामंत्र के विधिपूर्वक जापसे, कुविकल्पोंसे मनका रक्षण होता है। विकल्पों से मनका रक्षण करना महत्त्वपूर्ण है। वर्तमानयुग में धन, सत्ता, और वैभव और रक्षण के लिए देहबल और आरोग्य के रक्षण के लिए अनेक साधनों की शोध हुई है, परंतु संकल्प-विकल्प से मनके रक्षण के लिए कोई शोध हो नही पाई है। उसके लिए यह महामंत्र ही समर्थ साधन है। पूर्व महर्षियोने मन के रक्षण के लिए अनेकविध मंत्र बतलाए हैं। उनमें नमस्कार महामंत्र का स्थान सर्वोच्च है।

धन, वैभव, और सत्ता की प्राप्ति में मानव जीवन का सच्चा पुरूषार्थ नहीं है किंतु अपने मनको जीतना यही परम पुरूषार्थ है और उस पुरुषार्थ की सिद्धि नमस्कार मंत्र से प्राप्त हो सकती है।

नवकारमंत्र स्वरूप मंत्र और विश्व का उत्तम मंत्र

जैनदर्शन[७०] विश्वके प्रत्येक जीव के कल्याण और मांगल्यमें विशेष रूचि रखता है और साधकों की साधना और आराधना के लिए भिन्न भिन्न साधना पद्धतिका उल्लेख भी मिलता है। साधनामें मंत्रशक्ति का भी विनियोग किया जाता है। जैनों का नवकार मंत्र अमर मंत्र है। सारे विश्व के कल्याण की शक्ति इस मंत्रमें समाहित है। देव, गुरू और धर्म [७१] इन तीन तत्त्वोंकी सहायता से विश्वका कोई भी मानव मोक्ष प्राप्त कर सकता है। नवकारमंत्र के अंतिम चार पदोंमें - चूलिकामें इस मंत्र की फलश्रुति या प्राप्ति का वर्णन मिलता है। साधकके मात्र इस जन्म के नही, पूरे के अनेक जन्मोंका, पुरे कर्मोंका नाश करनेकी शक्ति, व्यक्ति को सभी पापोंसे मुक्त करने की ताकद नवकारमंत्र में है। "सव्व पाव पणासणों"

नवकारमंत्र में अलौकिक या लोकोत्तर शक्ति भरी पड़ी है। विषय, कषाय आदि विभाव भावों का नाश होकर आत्मिक गुणोंकी उन्नति वृद्धि नवकार मंत्र के स्मरण मात्र से होती है। नवकारमंत्र के चिंतन-मनन और ध्यान से प्रमोदभावना जागृत होती है। यह परम मांगलिक शांति प्रदान करता है।

अनादि कालके मिथ्यात्व आदिभावोंको दूर करके सम्यक् भावोंमें लीन करने की शक्ति नवकार मंत्र में है। इस मंत्र की कोई बुरी असर होती ही नही है। यदि कोई आराधक दुष्ट उद्देश्य से भी इस नवकार मंत्र का जाप करता है तो भी बहुत जल्दी उसका दुष्ट आशय दूर हो जाता है। ऐसा गुण प्रधान यह मंत्र है और नवकार मंत्र का चिंतन स्मरण आदि आराधक के उत्तम आत्मिक गुणोंको प्रगट करता है। गुण पूजा का फल बहुत प्रभावशाली होता है। किसी भी एक पद से किसी एक परमेष्ठि को वंदन करने से अतीत, वर्तमान और अनागत तीनों काल के परमेष्ठि को नमस्कार हो जाता है। एक पद से ही अनंता गुणी जनों को नमस्कार करनेकी सुविधा नमस्कार महामंत्र के प्रत्येक पद में हैं और इसका फल भी हमें अनंत मिलता है। इस प्रकार की विशेषता विश्व की किसी भी और मंत्र में नहीं है।

नमस्कार महामंत्रको पंचपरमेष्ठी मंत्र भी कहा जाता है। पंचपरमेष्टि का अर्थ यह है कि - संसारके अनंता अनंत आत्माओं में से आध्यात्मिक दृष्टि से दर्शाये गये पांच प्रकार की आत्मायें सबसे श्रेष्ठ है, सबसे महान है, सबसे उच्च दशा को प्राप्त कर चूके हैं। मानव आत्मा के विकासकी चरम सीमा इन पवित्र आत्माओं ने प्राप्त कर ली है। अरिहंत और सिद्ध पूर्ण रूप से रागादि से रहित और ज्ञान से परिपूर्ण है। राग और द्वेष से परे होने से अरिहंत और सिद्ध त्रिकाल वंदनीय है। आचार्य, उपाध्याय और साधु, वीतराग धर्म का संपूर्ण पालन करते है वे मोक्षमार्ग आराधक है। संसार के किसी प्रकार के भोगोपभोग की जराभी तृष्णा नहीं रखतें; इसलिए इन तीनों को भी पंचपरमेष्टि मंत्र में बहुत आदरणीय स्थान दिया गया है - देव भी उनको वंदन नमस्कार करते है।[७२]

पांच परमात्माओंके उत्तम गुणोंका समन्वय नमस्कार महामंत्रमें हुआ है। इससे इस महामंत्र को पंचपरमेष्टि मंत्र भी कहा गया है। सारे विश्व के किसी और मंत्रमें इस प्रकार की पांच महान शक्तियोंका समन्वय नहीं मिलता है और विश्व की उत्तम और मांगलिक शक्तियोंका एक साथ समन्वय मिलनेसे नवकार मंत्रका स्थान विश्वमें अजोड़ बन जाता है। आत्म उन्नति के सोपान परंपरायें इस मंत्र में आलेखित हुई है। भक्ति, ज्ञान और कर्म इन तीनों का संगम इस महामंत्र में हुआ है।[७३]

संसारके सभी जीवों की एकमात्र इच्छा आत्मस्वरूप प्राप्त करने की है -आत्मगुणों के विकास की है। जीवात्मा परमात्मा बने यह जैन दर्शन की शुभ भावना है। जैनधर्म की

मान्यतानुसार जीवमात्रमें शुभ गुणोंका भंडार भरा है। विषय और कषाय से उन गुणोंको जीव पहचान नहीं सकता। किसी भी तरह का आवरण हमें सच्चाई का दर्शन करानेसे रोकता है। अंधकार से प्रकाश की ओर जाने की प्रवृत्ति नवकारमंत्र की सहायतासे सरलतासे कर सकते हैं। अरिहंत और सिद्ध की शरण लेने से मानव का जन्म सार्थक हो जाता है और वह सिद्ध गतिभी प्राप्त कर सकता है। नवकार मंत्र हमें स्वरूप को पहचानने की अनोखी शक्ति प्रदान करता है और इस धरती पर का हमारा आगमन सार्थक हो जाता है। समता, शुद्धि, समृद्धि , शांति और समाधि प्राप्त करने के लिए नवकारमंत्र से बढ़कर और कोई मंत्र है ही नहीं।[७४]

●●●

महामंत्र का उपकार

श्री पंचपरमेष्टि नमस्कार महामंत्र गुणानुराग का प्रतिक है। यदि किसी के जीवनमें गुणानुराग गुण न हो तो, इस मंत्र से प्रगट होता है और हो तो उसमें वृद्धि होती है। अंतरात्मा भावको लानेवाला उसे टीकानेवाला, बढ़ानेवाला और अंतमें परमात्मा भावतक पहुँचानेवाला परमेष्टि नवकार है, इसलिए मार्गानुसारी की भूमिका से लेकर सम्यक दृष्टि, देशविरति और सर्व विरति धर्म तमाम जीवों की आराधना में परमेष्टि नमस्कार परम अंग है।

श्री नमस्कार महामंत्र का स्मरण, अज्ञान आदि से उपार्जन किये गये अशुभ संस्कारो को सरलतासे बदलकर आत्मशक्ति के विकास के मौलिक कार्य में उपयोगी बनाता है। इसलिए श्री नवकार लोकोत्तर महामंत्र है।

श्री नवकार के प्रभाव से आत्मामें उच्चकोटिका वीतराग भाव धीरे धीरे अवश्य विकसीत होता है। इसके द्वारा आत्मशक्तियाँ स्वतंत्ररूप से कार्य करती हुई जगत् के उत्तम महामूल्य पदार्थोंकी ओर स्वत: आकर्षण पैदा करती है, इसलिए सर्वमंगलोंमें श्रेष्ठ मंगल श्री नवकार महामंत्र है।

इस महामंत्र के वर्णो की संयोजना किसी अद्भूत गणित, विज्ञान के गूढ़ सिद्धांत पर मालूम होती है कि - जिससे अल्प प्रयत्न से साधक की वृत्तियों में उर्ध्वमूखता आ जाती है। साधक ने जितनी परिणाम शुद्धि जापद्वारा प्राप्त की हो, उतनी ही मंत्र सिद्धि शीघ्र होती है। अन्य मंत्रों के जाप से होनेवाली परिणाम की शुद्धि की अपेक्षा श्री नवकार के जाप से परिणाम की विशुद्धि अल्प प्रयत्न से अधिक प्राप्त होती है। इस कारण श्री नवकार मंत्र मंत्राधिराज गिना जाता है।

श्री नमस्कार महामंत्र पापरूपी पर्वत को भेदने के लिए वज्र के समान है, दु:खरूपी बादलों को बिखेरने के लिए प्रचंड पवन के समान है, मोहरूपी दावानल को शांत करने के लिए आषाढ़ी मेघ समान है। अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करने के लिए सूर्य के समान है। दारिद्र रूप कंद को मूल से उखाड़ने के लिए वराह की दाढ़ के समान है। सम्यक्त्व रत्न को पैदा करने के लिए रोहनाचल पर्वत के समान है, कल्पवृक्ष, चिंतामणी, कामधेनु, कामकूंभ आदि से भी विशेषरूप से अधिक सब कामनाओं को पूरी करनेवाला है।

मनुष्य सोते, जागते, बैठते, उठते या चलते फिरते श्री नवकार मंत्र को याद करते है, क्यों कि असमाधि और अशांति को शीघ्र दूर करनेके लिए अमोघ उपायरूप, परमपावन श्री नवकार मंत्र, उसके पद और उसके प्रत्येक अक्षर का अवलंबन लेने को ज्ञानिओंने कहा है।

शारीरिक तथा मानसिक दुखोंसे और राग-द्वेषादि संताप से तप्त चारों गति के भव्य जीवों के लिए श्री नवकार सर्वत्र सहायक और परमार्थ बंधुके समान है। श्री नवकार द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के विष को दूर करनेवाला होने से गरूड आदि अन्य मंत्रोंमें प्रधान मंत्र है।

श्री नवकार मंत्र अप्राप्त गुणोंको प्राप्त कराता है। ज्ञानादि प्राप्त गुणों का रक्षण कराता है और सर्व अर्थ का साधन होने से सब ध्येयोंमें परम ध्येय है। कर्ममलको दूर करनेवाला होनेसे सर्वतत्त्वों तथा परमार्थ भूत पदार्थोंमे अतिशय पवित्र तत्त्व है।

यदि साधक एकाग्र चित्तसे हाथकी अंगुलियाँ द्वारा श्री नवकार महामंत्र का जाप करें तो उसे भूत, प्रेत, पिशाच, आदि परेशान करनेमें कभी समर्थ नहीं होते। यह नवकार मंत्र जन्म के समय गिना चाए, तो जन्म के बाद बहुत ऋद्धि को देनेवाला है और मृत्यू के समय गिना जाए तो सेंकड़ो आपत्तियाँ दूर हो जाती है - मृत्यू मंगल बन जाती है।

श्री नवकार महामंत्र का जाप करनेवाला संसारमें कभी दु:खी नहीं होता। इस जन्ममें विधि पूर्वक भाव और चित्त की एकाग्रता से जो व्यक्ति नवकार महामंत्र की आराधना करता है वह आत्मा भवांतर में उच्च जाति, कूल, रूप, आरोग्य, और संपत्ति प्राप्त करती है। यदि साधक श्रद्धा, भक्ति और एकाग्रता से - समर्पण भाव से श्री पंचपरमेष्टि की शरण जाता है तो उसकी बुद्धि, मन, वाणी तथा देह सब पवित्र बन जाते है।

श्री नमस्कार महामंत्र को समझने के लिए केवल तर्क, युक्ति या बुद्धि पर्याप्त नहीं है। नवकार का घनिष्ट परिचय प्राप्त करने के लिए सर्व समर्पण की आवश्यकता है क्योंकि इस मंत्र में पंचपरमेष्टि की अनुमोदना है। श्री पंचपरमेष्टि और उसके सुकृतों की अनुमोदना मोक्ष का द्वार खोल देती है।

श्री नवकारमंत्र के प्रत्येक अक्षर के जाप से अज्ञान, कषाय और प्रमाद कम होते है, पुनः पुनः जाप करने से मन और बुद्धि, शुद्ध होती है। इस मंत्र के प्रत्येक अक्षरमें अचिंत्य शक्ति छिपी हुई है, परंतु यह प्रकाश क्रमशः प्रयत्न करने से प्राप्त होता है।[७५]

पंचपरमेष्ठिमें तीन तत्व :

नमस्कार मंत्र को महामंत्र कहा गया है। इतनाही नहीं, जैन दर्शनमें इसे चौदह पूर्व का सार कहा गया है। इस मंत्रमें इसे विभूति या व्यक्ति विशेष की बात नहीं कही गई है, लेकिन विश्वके उत्तम गुण का इस मंत्रमें उल्लेख किया गया है और इस संसार के सभी जीवोंका गुण प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करने का आदर्श प्रगट किया है। साधक के जीवनसे दोष दूर हो और उत्तम मानवीय गुण की प्राप्ति हो ऐसी मंगल भावना नवकारमंत्रमें मिल सकतही है।

नवकार मंत्र सांप्रदायिक मंत्र नहीं। इस मंत्र से जैनों का ही नहीं, संसार के सभी जीवों की मांगल्य और कल्याण की प्रार्थना की गई है। शक्ति जागृति का यह महामंत्र है। शब्द से अशब्दकी ओर, बहिर्मुख से अंतर्मुख की ओर ले जाने की क्षमता इस मंत्रके जाप से प्रगट होती है। सरलता नवकार मंत्र की सबसे बड़ी प्रधानता है। ज्ञानिओं ने इस मंत्र के प्रत्येक वर्ण पर अनेक विद्याओंका निवास होने की बात बताई है। नवकारमंत्रका प्रत्येक वर्ण साधक के कर्म निर्जराका उत्तम साधन बन सकता है। सारे विश्वका कल्याण मंत्र नवकार मंत्र है।

नवकारमंत्रमें तीन तत्व निहीत होने की बात ज्ञानियोने प्रगट की है। जैन दर्शन के मुताबिक देव, गुरु, और धर्म यह तीन तत्व शाश्वत तत्व है, परम मांगलिक है, आत्मा को परमात्मापद पर स्थापित करने की क्षमता नवकार मंत्रमें ही मिल सकती है। प्रारंभ के दो पद देव तत्वका, अविष्कार करता है। अरिहंत और सिद्ध ये दोनों जैनों के देव हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीन गुरु हैं।[७६] गुरु की कृपा और आशीर्वाद से किसी भी व्यक्ति को धर्म की यथार्थ समझ प्राप्त होती है और साधक अपने पुरुषार्थ से जप, तप, त्याग से धर्म का वास्तविक स्वरुप समझ सकता है। जैन दर्शन में यह भी दिखाया गया है कि - जब तक आत्मा की शुद्धि नहीं हो सकती है तब तक आत्म सिद्धि की कोई संभावना नहीं है। सिद्धि प्राप्त करने के लिए नवकार मंत्र महान उपकारक हो सकता है।

"परम पदे तिष्ठति इति परमेष्ठी" 'इति परमात्मा' जो पदमें, रहता है, स्थित है, वह परमेष्ठी परमात्मा होता है।[७७]

पंचमरमेष्ठी पद में देव, गुरू और धर्म ये तीनों शाश्वत तत्वों का इसमें उत्तम रुप से संयोजन किया गया है और उन तत्वोंकी सहाय से साधक सिद्ध पद प्राप्त कर सकता है। इन तीनों तत्वों को हम भलीभाँति समझने की, उसके मुताबिक हमारा जीवन जीने की प्रवृत्ति करें, यह नवकार मंत्र की सच्ची सफलता है। इसमें ही हमारे जीवन की धन्यता है। नवकार मंत्र सबका कल्याण करें यही मंगल भावना।

भारतीय विद्या का क्षेत्र तथा मंत्रों का क्षेत्र बहुत विशाल है । इसमें ज्ञान- विज्ञान की विविध शाखाओं पर गहन, चिंतन, मनन, अनुशीलन और विश्लेषण हुआ है, वह वास्तव में विलक्षण है। भारतीय मनीषियोंने जीवन के हर पक्ष को बहुत ही गहराई से, सूक्ष्मतासे देखा और परखा है। उनकी दृष्टि केवल बहिरंग ही नहीं रही, उन्होने सूक्ष्मतम अंतर्गत का संस्पर्श भी किया।

भारतीय विद्या के अंतर्गत जैन विद्या का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन मनीषि ज्ञान और चारित्र के परम आराधक थे। ज्ञान भी स्वाध्याय और चिंतन के रुप में साधना या चारित्र का अंग बन जाता है। जैन - विद्या और साधना के क्षेत्र में मंत्र -विद्या का भी बहुमुखी विकास हुआ। नवकार मंत्र के पदों की आराधना को साथ भी मंत्रात्मक पद्धति को संलग्न किया गया है।

आर्य देश में मंत्र-शास्त्र, विद्या-शास्त्र तत्वज्ञान के युग जितने ही प्राचीन है इसके समर्थन में जैन शास्त्रोंके अनुसार इस अवसीपर्णी काल में असंख्य वर्ष पूर्व हुए, प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेवद्वारा अपने प्रथम गणधर शिष्य श्री पुंडरीक स्वामी को दिया गया मंत्र प्रस्तुत किया जा सकता है, उसी प्रकार उन प्रभुद्वारा दी गई त्रिपदी के आधारपर श्री पुंडरिक साधु रचित द्वादशांगी के बारहवे अंग दृष्टिवाद के एक विभाग - दशवें पूर्व "विद्या प्रवाद" को भी विद्या और मंत्र की प्राचीनता का पूरक कहा जा सकता है।[७८]

गहन चिंतन एवं आत्मानुभव पूर्वक सूक्ष्मतक शब्दों में निक्षिप्त रहस्यात्मक भाव, जिसके मननद्वारा ज्ञात हो सके वह मंत्र है।

सिद्ध होने पर मंत्र वास्तवमें एक अक्षय कवचका काम देता है। जिस प्रकार योद्धाको कवच, उसपर होनेवाले आघातों से बचाता है, उसी प्रकार नवकार मंत्र अपने आराधक को सभी विघ्नों, संकटों और बाधाओं से रक्षा करता है। वह एक आध्यात्मिक कवच है।

●●●

भारतीय विद्याओंमें मंत्रशास्त्र -

भारतवर्ष एक ऐसा देश है, जिसमें प्राचीन काल से गहन चिंतन तथा मनन की परंपरा

रही है । यहाँ के मनीषियों और विद्वानों ने केवल अपने चिंतन को बाह्य जीवन तक ही सीमित नहीं रखा, ज्ञान की गहराई में जाने में उनकी विशेष रुचि और प्रवृत्ति रही । संस्कृत में एक बहुत प्रसिद्ध श्लोक है -

आहार-निद्रा-भय- मैथुनानि,
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो ही तेषा मधिको विशेषः ।
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।

इस श्लोक के अंतिम दो चरणों को इस प्रकार भी बोला जाता है ।

ज्ञानं हि तेषामधि विशेषः ,
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥

आहार, निद्रा, भय, सांसारिक भोग आदि तो पशुओं और मनुष्यों में एक समान हैं। मनुष्यों में धर्म, अध्यात्मिक ज्ञान और साधना की विशेषता है। पशुओं में वैसा नहीं होता ।जो मनुष्य इस गुण से हीन है, वे पशुओं के तुल्य हैं। आहार, भय, आदि को संज्ञायें कहा हैं। संज्ञायें प्राणियों की स्वाभाविक देहगत वृत्तियों की सूचक है । भारतीय प्रबुद्ध मानस सदैव इस उदात्त भाव से प्रेरित रहा। इसलिए ज्ञान, विज्ञान की विविध शाखाओं में भारतीय मनीषी - बुद्धि ने जो नवभिनव सर्जन किया, वह संसार में महत्त्वपूर्ण हैं।

ईशावस्योपनिषद् में विद्या और अविद्या - इन दो शब्दों का प्रयोग हुआ है । वहाँ अविद्या शब्द का अर्थ विद्या का अभाव नहीं है किंतु उस ज्ञान को अविद्या कहा गया है, जो सांसारिक कर्ममय जीवन से संबंधित है । उसके विपरीत विद्या वह ज्ञान है, जिससे मनुष्य अपनी आध्यात्मिक शक्तियों का विकास कर नर से नारायण बन सकता है । विद्या और अविद्या का जीवन में समन्वय होना चाहिए। जो इन दोनों को समन्वित करता है, वह अमृत का आस्वाद करता है, परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है ।[७९]

उपनिषद्कार का यह कथन है कि मनुष्य विद्या और अविद्या दोनों के रहस्य को समझें। लौकिक कर्ममय जीवन के लिए उस ज्ञान की आवश्यकता है, जिससे जीवन के कार्य भलिभाँति चल सकें । सांसारिक अवस्था में उनका त्याग नहीं किया जा सकता, क्योंकि जब तक शरीर विद्यमान है, तब तक कर्म करना आवश्यक है। गीता में भी कहा गया है - कोई भी अकर्मकृत - कर्म न करता हुआ नहीं रह सकता। प्रकृति के गुणों के परिणाम स्वरुप उसे कर्म करना ही होता है ।[८०]

कर्म का सर्वथा परित्याग नहीं किया जा सकता । गीता में यह भी बताया है कि जो

कर्मों के फल की आसक्ति का त्याग कर देता है, सदा आत्मा तृप्त और आत्माश्रित रहता है, वह कर्म करने में प्रवृत्त रहता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता।[८१]

इस तथ्य को समझता हुआ साधक अनासक्त भाव से कर्म करें। इससे संबंधित ज्ञान को आध्यात्मिक दृष्टि से अविद्या कहा है।

जैन दर्शन में भी ज्ञान और अज्ञान दो शब्दों का प्रयोग हुआ है। ज्ञान उसे कहा जाता है, जिसके साथ सम्यक् दृष्टि, सत्यनिष्ठा या श्रद्धा का संयोग हो। जहाँ सम्यक्दृष्टि नहीं हो, वहाँ ज्ञान को अज्ञान कहा जाता है। वहाँ अज्ञान शब्द अभाव मूलक नहीं है। लोक - निर्वाह मूलक है अथवा आत्मनिष्ठाविहीन केवल भौतिक कर्मों के साथ जुड़ा है।

इस प्रकार भारतीय चिंतनधारा में जीवन के बाह्य और आंतरिक सभी पक्षों पर बहुत गंभीर चिंतन, मनन हुआ, जिसके परिणाम स्वरुप विभिन्न विषयों से संबंद्ध विशाल वाङ्.मय का सर्जन हुआ, जो युग - युग तक मानव जाति को सत्यान्मुख प्रेरणा देता रहा और आज भी दे रहा है। इसका महान् लक्ष्य मानव को परम शांति प्रदान करना है। उसे भारतीय विद्या (Indology) के नाम से अभिहित किया जाता है।

भारतीय विद्या में अध्यात्म, धर्म, दर्शन, इतिहास, पुराण, व्याकरण, काव्य, कोश, न्याय, आयुर्वेद, ज्योतिष, भूगोल, खगोल, गणित आदि अनेक विषय समाविष्ट हैं। इनका ज्ञान व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास में सहायक बने,आत्मा के कल्याण, प्राणीमात्र के श्रेयस और सुख का हेतु बने, यह वांछित है। इनका ज्ञान केवल भौतिक जीवन के निर्वाह तक ही सीमित न रह जाये। इस पर यहाँ के ज्ञानी पुरुषों ने बहुत जोर दिया।

मंत्र की परिभाषा

गहन चिंतन, मनन, निदिध्यासन एवं स्वानुभूति के परिणाम - स्वरुप स्वल्पतम शब्दों में निक्षिप्त सूक्ष्मतम, अतिगंभीर एवं रहस्यमय भाव मंत्र कहा जाता है।

मंत्र शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा गया है। जो मनन मात्र से आराधक का त्राण - रक्षण करे, वह मंत्र है।[८२]

कोई योद्धा जब संग्राम में जाता है तो वह अपने शरीर पर कवच धारण करता है। वह लोह-निर्मित सुदृढ़ कवच उसे शत्रुओं द्वारा किये जाने वाले आघातों से बचाता है। मंत्र साधक के लिए एक अक्षय - कभी नहीं टूटने वाला कवच है। वह सब प्रकार के विघ्नों, बाधाओं और परिषहों से साधक को बचाता है।

यह सारा जगत् तरंगों से आंदोलित है। विचारों की तरंगे, कर्म की तरंगे, भाषा की तरंगे, पूरे आकाश में व्याप्त हैं। व्यक्ति का मस्तिष्क और स्नायविक प्रणाली भी आंदोलित होती रहती है। इस स्थिति में मंत्र क्या है और उसके द्वारा क्या किया जा सकता है, यह भी सोचने का अवसर मिलता है।

मंत्र एक प्रतिरोधात्मक शक्ति है। मंत्र एक कवच है। मंत्र एक प्रकार की चिकित्सा है। संसार में होनेवाले प्रकंपनों से बचने के लिए, उनके प्रभावों को कम करने के लिए प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करें। मंत्र की भाषा में कवचीकरण का विकास करें।[८३]

मंत्र की यह विशेषता है, वह केवल वर्तमान काल में ही लाभप्रद नहीं होता, उसका प्रभाव त्रैकालिक होता है। मंत्र सत्य है। सत्य त्रिकालवर्ती होता है। मंत्र की सत्ता सर्वोपरि है। उसका प्रभाव स्थायी होता है, किंतु यह दु:ख का विषय है कि आजकल हमारी वर्तमान पीढ़ी के लोग मंत्रों की उपयोगिता और महत्त्व को स्वीकार नहीं करते, क्योंकि जब तत्काल फल नहीं होता तो उन्हें संशय होता है। मंत्र सच्चे गुरु से प्राप्त कर मूल ध्वनि के साथ सिद्ध करें तभी वह फलप्रद होता है। लोगों में ऐसा करने का धैर्य नहीं है। तब कैसे फल मिले।[८४]

मंत्र शब्द की अनेक प्रकार से व्युत्पत्ति की जा सकती है जैसे -

"मन्यते - ज्ञायते आत्मादेशोऽनेनेति मन्त्र:"

जिसके द्वारा आत्मा के आदेश या आत्मस्वरुप का ज्ञान होता है, वह मंत्र है।

"मन्यन्ते - सत्क्रियन्ते परमपदे स्थिता आत्मान:,

यक्षादिशासन देवता वा अनेन इति मंत्र:"

परम पद में स्थित उच्च आत्मा अथवा यज्ञ आदि शासन देवताओं का जिसके द्वारा सत्कार किया जाता है, सम्मान किया जाता है, वह मंत्र है।[८५]

इन व्युत्पत्तियों में मंत्र शब्द का अर्थ ज्ञापित किया गया है। तात्विक दृष्टि से नवकार मंत्र ही वह मंत्र है, जिसकी आराधना से समग्र दुष्कर्म और पाप नष्ट हो जाते हैं क्योंकि नवकार में वैसा करने की विलक्षण शक्ति है।[८६]

त्रैलोक्य दीपक में मंत्र की तात्विक दृष्टि से व्याख्या करते हुए बतलाया गया है - मंत्र विशिष्ट मनन के साथ संबद्ध है। वह सम्यक् ज्ञान का हेतु बनता है। जब आत्मा में सम्यक् ज्ञान निष्ठित होता है, तब शुभ भावों का जागरण होता है। जीव अशुभ या पाप से बचता है। मंत्र जीव को अयोग्य मार्ग से पृथक् कर योग्य मार्ग पर गतिशील करता है।

सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चरित्र में विभ्रांत रहना अयोग्य मार्ग है। मंत्र जीव को रत्नत्रय की आराधना की ओर प्रवृत्त करता है।[८७]

मंत्र बहुत व्यापक है। यह समग्र ब्रह्माण्ड - लोक मंत्र से आबद्ध है। जीवन की प्रत्येक गतिविधि मंत्र द्वारा संचालित है। व्यक्ति का छोटे से छोटा कार्य मंत्र से संबद्ध है।

प्राणी के अस्तित्व के साथ मंत्र का अस्तित्व जुड़ा हुआ है। इस ब्रह्माण्ड का अणु-अणु मंत्र से संपृक्त है। जीवन को सम्यक् ज्ञान करने के लिए, समझने के लिए मंत्र के तत्व को, रहस्य को जानना, प्रत्येक मानव का सबसे पहला कर्तव्य हैं।[८८]

यहाँ मंत्र की ब्रह्माण्ड तक सर्वव्यापकता का विद्वान् लेखक ने जो वर्णन किया है, वह विशेष रुप से मानव की मननात्मक सूक्ष्म प्रक्रिया से संबद्ध है। मनन की अंतर्व्याप्ति सर्वत्र स्वीकार की जाती है। कहा गया है -आम्नाय - अपनी विशिष्ट धार्मिक, आध्यात्मिक परंपरा के अनुसरण से, अत्याधिक विश्वास से तथा तन्मयता से मंत्र की शुद्धि में बहुत सहायता मिलती है। मंत्र में शब्द, अर्थ और प्रत्यय का समावेश है, जिनका परस्पर संबंध हैं। शब्द से अर्थ ज्ञात होता है। जो पदार्थ सामने नहीं है, वह भी शब्द के माध्यम से मानसिक आकृति के रुप में उपस्थित हो जाता है। पद का पदार्थ के साथ वाच्यवाचक भाव संबंध है। पद वाचक है, पदार्थ वाच्य है। जब पद का उच्चारण करते हैं, उसे स्मरण करते हैं या उसका ध्यान करते हैं तो उस द्वारा वाच्य पदार्थ की प्रतीति होती हैं। शब्द के अनुसंधान से अर्थ का अनुसंधान तथा अर्थ अनुसंधान से तत्व का अनुसंधान होता है। तत्व के अनुसंधान से आत्म स्वरुप का अनुसंधान होता है। मंत्र की यह तात्विक प्रक्रिया है।[८९]

मंत्र के भेद

मंत्र दो प्रकार के हैं - कूट तथा अकूट। जो संयुक्ताक्षर युक्त होता है, उसे कूट कहा जाता है। जो संयुक्ताक्षर युक्त नहीं होता, उसे अकूट कहा जाता है। कूट मंत्र में अक्षर अधिक होते हैं, किंतु उनमें मंत्रका तो एक ही अक्षर होता है। बाकी के अक्षर मंत्र के परिकर रुप या परिवार रुप होते हैं।

कूट मंत्र में बहुत अक्षरों होते हुए भी एक ही अक्षर के मंत्र रुप होने से ''वर्णाव्यायात् कार:'' इस सूत्र से क्षकार, ॐकार आदि शब्दों को विशिष्ट विद्वान सिद्ध करते हैं, क्योंकि इस सूत्र का अर्थ यह है कि जो एक - एक वर्ण होता है, तो उसके पीछे (तथा अव्यय के पीछे)कार प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे - अ, इ, उ के पीछे कार लगाने से आकार, इकार,

उकार होते हैं किंतु यहाँ तो कूट मंत्र में बहुत अक्षर हैं। इसलिए किस प्रकार लगाया जाये ? *ऐसे होते हुए भी विशिष्ट ज्ञानी पुरुष क्षकार (क+ष्+ अ) आदि शब्दों में कार प्रत्यय लगाते* हैं। इसका कारण यह है कि इन कूट मंत्रों में अधिक अक्षर दिखाई देते हुए भी वस्तुत: उनमें एक ही अक्षर मंत्र स्वरुप होता है। बाकी के अक्षर उसके परिवारभूत होते हैं। इसलिए ऐसे कूट मंत्रों को भी एकाक्षरी मंत्र ही मानकर विशिष्ट विद्वान 'कार' प्रत्यय लगाते हैं। उसी न्याय से अर्हं शब्द अनेकाक्षरी दिखाई देता है, तो भी उसमें मंत्राक्षर तो एक 'ह' होने के कारण हम् ''अक्षराणि'' के रुप में बहुवचन का उपयोग नहीं कर सकते। अक्षरम् के रुप में एक वचन का ही उपयोग किया गया है।

एक प्रश्न उपस्थित होता है। कूट मंत्र में अनेक अक्षर होते हुए भी मंत्र तो एक अक्षर जितना ही है, तो बाकी के अक्षरों की क्या आवश्यकता है ? इसका समाधान करते हुए कहा गया है -

परिकार - परिवार सहित वर्ण ही मंत्र का कार्य कर सकते हैं। अकेला वर्ण कोई भी कार्य नहीं कर सकता। इसलिए परिकर या परिवार के रुप में अक्षरों की आवश्यकता है।[९०]

मंत्र की उपयोगिता

जैसे ही हम शब्द का उच्चारण करते हैं, वैसे ही वातावरण में एक आंदोलन तथा उत्तेजन उत्पन्न होता है। उसके अनुसार हमारा मन भावोन्दोलित होता है। हम पुन: पुन: जिस भाव को याद करते हैं, उसी के अनुरुप भाव हमारे अंत:करण में उत्तरोत्तर प्रस्फुटित होते रहते हैं। मंत्र के साथ यही तत्व जुड़ा हुआ है, किंतु एक बात विशेष रुप से ध्यान में रखनी होगी। मंत्र को सुयोग्य गुरु से शुद्धतापूर्वक प्राप्त किया जाये। तभी वह अनुभव सिद्ध होगा, प्रभावशाली और कार्यकारी होगा।

मंत्र विद्या के सिद्धांतानुसार प्रत्येक अक्षर एक गुप्त शक्ति का संवहन करता हैं। अक्षरों से संबद्ध विद्या को मातृका विद्या कहा जाता है। महापुरुष अपनी साधनाद्वारा, योगाभ्यास द्वारा अपनी संकल्प शक्ति को एकाग्र करते हैं, तथा अमुक शब्दों में आरोपित करते हैं। इसके परिणाम स्वरुप उन शब्दों के अक्षरों में सहज रुप से वह शक्ति प्रतिष्ठापित हो जाती है। उन परस्पर सम्मिलित भिन्न - भिन्न अक्षरों के सामीप्य के कारण शक्ति बाहुल्य प्राप्त करती जाती है।[९१]

मंत्र-जप का अभ्यास रजोगुण और तमोगुण से उत्पन्न मालिन्य को दूर करता है। इड़ा और पिंगला नाड़ी को स्थिर करता है। सुषुम्ना नाड़ी का यह उद्घाटन करता है। इससे प्राण शक्ति जागृत होती हैं। इसके कारण मंत्र शक्ति उर्ध्वगामिनी बनती है। इससे अनाहतनाद का अनुभव होने लगता है। यह मंत्र शक्ति के चैतन्य का उन्मेष है।[९२]

करोड़ गायोंका दान, समुद्रवलयांकित पृथ्वीका दान, काशी, प्रयाग जैसे अत्यंत पुण्यक्षेत्रोंमें करोड़ों माईल प्रवास तथा यज्ञसहित मेरुतुल्य सुवर्ण का दान - इनकी भगवान के नामस्करण के पुण्यसेभी तुलना नहीं की जा सकती, अर्थात् नामस्मरणका पुण्य इन सबसे बढ़कर है।[९३]

मंत्र जप के दो रुप : लौकिक और आध्यात्मिक

सांसारिक वैभव और उन्नति लौकिक जीवन में अपेक्षित हैं; किंतु वह जीवन का परम साध्य नहीं है। लौकिक समृद्धि का संबंध परिग्रह से है। परिग्रह सांसारिक जीवन में आवश्यक अवश्य हैं किंतु वही सर्वस्व नहीं है। जीवन का लक्ष्य नहीं है। सांसारिक उपलब्धियों को लक्ष्य में रखकर मंत्राराधना करना लौकिक पथ है। वह आराधना का वास्तविक ध्येय नहीं हो सकता क्योंकि सांसारिक वैभव, संपत्ति अधिकार एवं सत्ता सभी नश्वर है। इसलिए प्रबुद्ध पुरुष को मंत्र का आध्यात्मिक दृष्टि के साथ सदुपयोग करना चाहिए। जीवन का अंतिम लक्ष्य तो आत्मा के नितांत शुद्ध स्वरुप को प्राप्त करना है। इसलिए नवकार मंत्र की सबसे अधिक उपयोगिता आत्मकल्याण की सिद्धि है।[९४]

साधुओं के लिए नवकार मंत्र की आराधना अत्यंत समुपादेय हैं क्योंकि उनके लिए तो सांसारिक वैभव, धनादि का कुछ भी महत्त्व नहीं है। वे तो अपरिग्रही होते हैं। उनके लिए परिग्रह निश्चित रुप से एक विघ्न या बाधा रूप हैं, इसलिए उनकी साधना सर्वथा आध्यात्मिक होती है। गृहस्थों को भी लक्ष्य ऐसा ही रखना चाहिए। लौकिक सिद्धि तो धर्माराधना से बिना चाहे भी मिलती है क्योंकि आराधना के अंतर्गत जो शुभात्मक पुण्य- संचय होता है, उससे सांसारिक सुख प्राप्त होते ही हैं।

मंत्र और अन्तर्जागरण

अंतश्चेतना से अनुप्रणित होकर ही मंत्र फलद्रुप, समर्थ तथा सिद्ध होता है। मानव शरीर कितना रहस्यमय हैं, सैंकड़ों, हजारों वर्षों से वैज्ञानिक, चिकित्सक, योगी एवं साधक इसके रहस्यों को ज्ञात करने का प्रयत्न कर रहे हैं किंतु अभी तक इस रहस्य को कोई कोई ही जान सके हैं। फिर भी मानव का वह जिज्ञासामूलक प्रयत्न आज भी गतिशील है, जो भावी पीढ़ी के लिए हितप्रद सिद्ध होगा।

कहा गया है - मंत्र शब्द का मूल अर्थ है - गुप्त परामर्श। श्रद्धा से जब मंत्राक्षर अंतर्दशन में प्रवेश कर, एक दिव्य हलचल उत्पन्न करते हैं, तब ज्वलंत, जीवंत और जागरित रुप चमक उठता है और दिव्य रुप होकर सिद्धि में परिणत हो जाता है।[९५]

सूक्ष्मत: मानव मन दो भागों में बँटा हुआ है। एक को अंतर्मन या अंतश्चेतना तथा दूसरे को बाह्यमन या बहिश्चेतना कहा जा सकता है। इसमें अंतश्चेतना सर्वदा शुद्धता एवं निर्मलता के साथ सक्रिय रहती है। मनुष्य में असत्य, छल, प्रपंच आदि जो उत्पन्न होते हैं, कार्यशील होते हैं, उसका कारण बहिश्चेतना है, अंतश्चेतना नहीं है।

अंतश्चेतना विशुद्धिपरक होती है। बहिश्चेतना पर अज्ञान, अहंकार, काम, क्रोध, मोह आदि का सघन आवरण पड़ सकता है। वह मनुष्य को उसके वैयक्तिक और सामाजिक मूल्यों से नीचे गिरा सकती है। अंतश्चेतना इससे परे विमुख रहती है। उस पर किसी भी प्रकार की विकृतियों का असर नहीं होता और वह भ्रांत भी नहीं होती, क्योंकि उसमें पूर्णत: दिव्यता बनी रहती है। वही मानव को सही अर्थ में मानव बनाये रखती है। आगे वह उसके देवत्व का साक्षात्कार करा सकती है। [९६]

ऋषि, महर्षि, साधु- संत, योगी आदि सभी अपने परम लक्ष्य - सिद्धत्व, ब्रह्मत्व या मुक्तत्व को प्राप्त करने हेतु इसी अंतश्चेतना को विकसित करने में संलग्न रहते हैं। मंत्र इस अंतश्चेतना से अनुप्राणित होते हैं। इसलिए इनमें एक विस्मयकारी विशेषता उत्पन्न हो जाती है। मंत्र -शक्ति अपार है। उस शक्ति को बढ़ाने के लिए आसन, प्राणायाम, यम, नियम, ध्यान और धारणा आदि का अभ्यास आवश्यक है।

''मंत्र - विज्ञान अने साधना रहस्य ''नामक पुस्तक में मंत्र - जप के अधिकार के संबंध में एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है -

एक समय किसी जिज्ञासु साधकों ने श्रीरामकृष्ण परमहंस से प्रश्न किया - महाराज ! मंत्र क्या है ? कोई व्यक्ति किसी ग्रंथ आदि में से मंत्र को ग्रहणकर उसका रटन या साधना करे तो क्या उससे उनको लाभ होगा ?

रामकृष्ण परमहंस ने उत्तर दिया - नहीं, मंत्र तो तभी फलप्रद होता है, जब योग्य गुरु से योग्य अधिकारी ग्रहण कर उसकी साधना करे। [९७]

जप का जितना एकाग्रता के साथ संबंध है, उतना ही गंभीरता के साथ भी है। बीज को जैसे धरती में बोना पड़ता है, उसी तरह णमोक्कार मंत्र के प्रत्येक अक्षर को उच्च भावपूर्वक मन द्वारा प्राणों में पहुँचाना चाहिए। अक्षर में स्थित चैतन्य, प्राण का योग पाकर प्रकट होता है, जिससे जप करने वाले पुण्यशाली की भावना अधिक उज्ज्वल बनती है तथा स्वभावत: सर्वोच्च आत्मभावना संपन्न भगवंतों की भक्ति की तरफ अग्रसर होती हैं। [९८]

सुप्रसिद्ध जैन लेखक शतावधानी पंडित श्रीधीरजलाल टोकरशीशाह ''जिनोपासना ''नामक ग्रंथ में नाम- स्मरण का महत्त्व बतलाते हुए लिखते हैं -

उपास्य देव को याद करना, उनके **नाम को रटना**, जप करना, नाम - स्मरण कहा जाता है। कई उसको भगवत् - स्मरण या प्रभु - स्मरण भी कहते हैं। नाम - स्मरण सहज साधन हैं, क्योंकि वह बहुत सहजता से हो सकता है। अरिहंत, वीतराग, परमात्मा इन जिन सूचक शब्दों को मन द्वारा स्मरण किया जाये या मुखद्वारा बोला जाये तो क्या कष्ट होता है ? चाहे मनुष्य छोटा हो या बड़ा हो अथवा वह चाहे जिस स्थान में स्थित हो, चाहे जैसी अवस्था में विद्यमान हो तो भी उन नामों को बोल सकता है।[९९]

नमस्कार - मीमांसा में पूज्य श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर मंत्र - चैतन्य के उन्मेष का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं -

आम्नाय का अनुसरण, विश्वास का बाहुल्य और ऐक्य का भावन - ये तीन मंत्र सिद्धि में सहकारी कारण हैं। शब्द, अर्थ और प्रत्यय का परस्पर संबंध है। शब्द से अर्थ की प्रतीति होती है अर्थात् दूर विद्यमान पदार्थ भी शब्द के बल द्वारा विकल्प के रुप में अथवा मानसिक आकृति के रुप में प्रतीत होता है, उपस्थित होता है।

पद का पदार्थ के साथ वाच्य - वाचक संबंध है। पद के उच्चारण, स्मरण अथवा ध्यान द्वारा वाच्य पदार्थ की प्रतीति होती हैं। शब्दानुसंधान द्वारा अर्थानुसंधान एवं अर्थानुसंधान द्वारा तत्वानुसंधान होता है। तत्वानुसंधान से स्वरुपानुसंधान होता है। [१००]

नवकार मंत्र में निर्विकल्प आस्था -

जैन शासन में आज तक अनेक संप्रदाय बने, शाखा-प्रशाखाएँ निकलीं। उत्तरकालीन जैन साहित्य में पक्षापक्ष की झलक आई तथापि नमस्कार महामंत्र की निर्विकल्प आस्था पर कोई असर नहीं आया।

हिन्दू धर्म में जो स्थान 'गायत्री-मंत्र' का है और बौद्ध- संप्रदाय में जो स्थान 'त्रिशरण' का है, वही स्थान जैन शास्त्र में 'णमोक्कार' महामंत्र का है।

इस महामंत्र में किसी व्यक्ति विशेष को नमस्कार न करके संसारवर्ती सभी वीतराग तथा त्यागी आत्माओं को नमस्कार किया गया है। इस मंत्र में प्रयुक्त सभी आत्माएँ पवित्र जीवन की प्रतिमूर्तियाँ हैं। जो लोग इन निष्काम विभूतियों के स्वभाव से कुछ लौकिक अभिसिद्धियाँ पाना चाहते हैं, वे भूल करते हैं,क्योंकि कुछ मंत्र जहाँ कामना करने से आवश्यकतापूर्ति करते हैं, वहाँ यह मंत्र निष्काम भाव से जप करने वालों की मनोभावनाएँ पूर्ण करता है।[१०१]

नवकार मंत्र की तीन शक्तियाँ :

मंत्र साधना, जपसाधना, या ध्यान साधनामें मुख्य रुपमें तीन शक्तियाँ काम करती है

। १) शब्दशक्ति - मंत्ररुप शब्दों की शक्ति, २) मन:शक्ति - मनका संकल्प, इच्छाशक्ति ३) भगवत् शक्ति - अनंत गुणों के धारक, अनंत शक्ति संपन्न, इष्टदेवता का स्मरण और उनके अनंत गुणों को चित्तमें साकार देखना ये तीनों शक्तियाँ एक साथ मिलती है। तभी मंत्रमें, जपमें, ध्यानमें इष्ट सिध्दि होती है। [१०२]

णमोक्कार मंत्र की शक्ति साक्षात् शुद्ध आत्मद्रव्य की शक्ति है। एक आत्म - द्रव्य की नहीं किंतु तीनों काल के सर्व अरिहन्त, सर्व सिद्ध भगवन्त, सर्व आचार्य, उपाध्याय और साधु भगवंतों की एकत्रित बनी हुई विराट आत्म शक्ति है।

जिनके हृदय में पंच परमेष्ठियों के प्रति, णमोक्कार के प्रति गहरा आदर हो जाता है, उनके पुण्य-पाप के प्रश्न सुलझ जाते हैं। साधक के हृदय में ऐसी प्रक्रिया का निर्माण होता है, जो पुण्य का सर्जन एवं पाप का विसर्जन करती है।

णमोक्कार मंत्र जो कुछ भी देता है, वह कभी कम नहीं होता, उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहता है। पुण्य का छोटा सा कण, जो णमोक्कार ने दिया, वह अंततोगत्वा विराट् ज्योति बनकरही रहता है और साधक को मुक्ति के द्वार तक पहुँचा देता है। [१०३]

मंत्र : ध्वनि - तरंग एवं प्रकाश

मंत्र - जप प्रत्यक्षत: ध्वनि - तरंगात्मक है। यदि जप ध्वनि के अभ्यास में क्रमबद्धता, लयबद्धता और तालबद्धता हो तो एक गति चक्र बनता है। वह ध्वनिमय तरंग - युक्त होता है। यदि निरंतर जप-ध्वनि-मूलक शब्दोच्चारण हो तो देह के आकाश तत्व में घर्षण उत्पन्न होता है, जिससे प्रकाश का उद्भव होता है। जब तक वह प्रकाश विद्यमान रहता है, जप करनेवाले को असीम आनंद की अनुभूति होती रहती है।

णमोकार मंत्र की ध्वनियों में ओज है, बल है, आत्मविश्वास है। बीजाक्षरों के रुपमें इसमें जो अग्नि-बीज निहित हैं, उनकी उर्जा / निश्चितरुपसे आत्मजागृति के लिए फलदायी है। [१०४]

मंत्र-जपमें शब्दों के उच्चारण में, श्वासोच्छ्वास का आवागमन, एक लयबद्धता, एक तालबद्धता होती है। प्राणवायु की गति में भी विशिष्टता होती है, रक्त आंदोलित होता है। उससे शरीर में एक उष्मा उत्पन्न होती है। फलत: दिव्य - चेतना के केन्द्र उत्तेजित और जागरित होते हैं, घर्षण उत्पन्न होता है, जिससे प्रकाश तथा उष्णता का उद्भव होता है।

वहाँ धीरे - धीरे ध्वनि - तरंगे शब्द से अशब्द में चली जाती हैं। यह अजपा - जाप की अवस्था है। जब जप- ध्वनि बंद होती है, तब भीतर से स्वयं जप की एक आवाज अनवरत आती रहती है, सुनाई देने लगती है और मन के भीतर एक प्रकार का विलक्षण

आनंद अनुभूत होने लगता है। देह का हिलना - डुलना बंद हो जाता है। उस तप, जप को अजपाजाप कहा जाता है। अर्थात् जप करने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता ,स्वयं ही जप होने लगता है। जप की एक धारा प्रवाहित होने लगती है। वहाँ मंत्र की अपनी विशेष सार्थकता सिद्ध होती है।[१०५]

शब्दब्रह्म रुप मंत्र-

तत्व द्रष्टाओं और विद्वानों ने शब्द पर बहुत सूक्ष्म और गहन, चिंतन, मनन किया। शब्द केवल लिखने, पढ़ने और बोलने की ही वस्तु नहीं है। वह तो ब्रह्म या परमात्म स्वरुप है। मंत्र रुप शब्द की आराधना द्वारा ब्रह्म - परमात्मा की आराधना सिद्ध होती है। भर्तृहरि नामक महान वैयाकरण ने "वाक्यपदिय" नामक ग्रंथ लिखा है।

शब्द तत्व अनादि है, अनंत है। वह सब प्रकार के विकारों से रहित है। संसार की भिन्न - भिन्न रुपों में दृष्टिगोचर होनेवाली, प्रतीत होनेवाली प्रक्रियाएँ शब्दरुपी ब्रह्म का ही विवर्त, विस्तार है।[१०६]

इस दृष्टि से विचार करें तो नवकार मंत्र शब्द ब्रह्म रुप हैं। उसमें, उसकी साधना में जो तत्पर हो जाता है, जो निष्णात हो जाता है, वह ब्रह्म-स्वरुप हो जाता है। शब्द ब्रह्म रुप श्रुत - ज्ञान का समुद्र है। वह अत्यंत गहरा है। उसमें परब्रह्म रुप महारत्न है। नवकार मंत्र के अक्षरों के बिना परब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता। नवकार मंत्र परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैरवरी वाणी रुप है। परावाणी शब्दब्रह्म का बीज है। वही परब्रह्म है। नवकार मंत्र के माध्यम द्वारा परावाणी तक पहुँचा जा सकता है। ब्रह्म साक्षात्कार या परमात्मानुभाव किया जा सकता है। ब्रह्म पर ब्रह्म याने आत्मा समझना !

परब्रह्म का साक्षात्कार निर्विकल्प अनुभव द्वारा होता है। जहाँ किसी भी प्रकार का विकल्प नहीं रहता, उसे निर्विकल्प कहा जाता है। वहाँ अभिन्नानुभाव की स्थिति होती है। उसके द्वारा कैवल्य का साक्षात्कार होता है। अभिन्नानुभाव का अभिप्राय आत्मा और परमात्मा की अभेदानुभूति है। नवकार मंत्र की आराधना से अभिन्नानुभूति निष्पन्न होती है।

डॉ. नेमीचंद जैन ने लिखा है - मंत्र में हम केवल किसी शब्द के अर्थ तक ही सीमित नहीं रहते वरन् उससे काफी आगे निकल आते हैं। अर्थ के आगे शब्द की जो शक्ति है, वह भाषा की सामान्य परिधि में प्राय: नहीं आती। जब हम किसी शब्द का इस्तेमाल सतह पर करते हैं, तब हम उसका बहुत ही मामूली, काम चलाऊ उपयोग करते हैं। चिंतन शब्द का काफी गहरा तल है किंतु इसके आगे भी एक तल है, जिसे अनुभूति कहा जाता है। शब्द जब अभिव्यक्ति से हटकर अनुभूति ही रह जाता है, तभी उसका सम्यक्त्व प्रकट होता है। मंत्र की सत्ता का सूत्रपात तब होता है, जब हमे उसे कंटेनर / बर्तन से आगे कंटेटस् के रुप में

पहचान लेते हैं। जिसे अब तक हम पात्र मानते रहे हैं, वह वस्तुतः *स्वयं परोसी हुई कोई* वस्तु होती है। पात्र से आगे की जो धरती है, वह मंत्र की धरती है और यही धरती वह धरती है जो हमारे अनुभव जगत् से संबद्ध है और अत्याधिक सूक्ष्म है।[१०७]

नवकार की महिमा श्लोक :

यदि विशाल उच्च भवन का निर्माण किया जाता है तो सबसे पहले उसकी नींव को सुदृढ बनाना आवश्यक हैं, क्योंकि वह नींव ही भवन के भार को झेलती है। यदि नींव दृढ हो तो भवन दीर्घकाल तक टिका रहता है। उसमें जो लोग निवास करते हैं, उनको कोई भय या खतरा नहीं होता। यही बात नवकार महामंत्र के साथ संलग्न है। उसमें चित्त को स्थिर करने के लिए उसकी पृष्ठभूमि को दृढ़ बनाने का प्रयत्न करना आवश्यक है।[१०८] नवकार मंत्र के गुणों को समझना, उनपर चिंतन करना तथा उन्हें जीवन में उतारने का अहर्निश प्रयत्न करना वांछित है। जप करने से पूर्व नवकार मंत्र की महिमा का बोध होना भी उपयोगी है। बोध होने पर मंत्र के प्रति श्रद्धा होती है। विश्वास में दृढ़ता आती है।

किसी वस्त्र को किसी रंग से रंगने से पूर्व उसे भलीभांति धोकर स्वच्छ करना आवश्यक है। स्वच्छ होने पर ही उस पर दूसरा रंग चढ़ सकता है। उसी प्रकार नवकार मंत्र का आत्मा पर रंग चढ़ाने के लिए आंतरिक शुद्धि अपेक्षित है।[१०९]

नवकार मंत्र के जप की साधना प्रारंभ करने से पूर्व साधक को ऐसे श्लोकों का, गाथाओं या स्तोत्रों का शुद्ध भावना पूर्वक शांत चित्त से पाठ या उच्चारण करना चाहिए। उनके भाव को समझना चाहिए तथा हृदय में स्थापित करना चाहिए। उदाहरण के लिए प्राकृत की कुछ महत्त्वपूर्ण गाथायें प्रस्तुत की जा रही है।

''धन्नोऽहं जेण मए अणोरपारम्मि भवसमुद्दाम्मि।
पंचण्ह नमुक्कारों अचिंत - चिंतामणी पत्तो ॥

१) साधकवृंद ऐसा चिंतन करे - मैं धन्य हूँ। मुझे पंचपरमेष्ठियों का नमस्कार मंत्र प्राप्त हुआ है, जो अनादि, अनंत संसार- सागर में एक ऐसा उत्तम चिंतामणि है, जिसकी विशेषताओं को हम सोच भी नहीं सकते अर्थात् जिसके गुणों का कोई पार नहीं है।[११०]

''जिण सासणस्स सारो, चउदसपुव्वाण जो समुद्वारो।
जस्स मणे नमुक्कारो, संसारो तस्स किं कुणइ।''

२) नवकार मंत्र जिन शासन का सार है। यह चतुर्दश पूर्वो के ज्ञान से सम्यक् उद्धृत है। जिसके मन में नवकार स्थिर हो जाता है, संसार उसका क्या कर सकता है अर्थात् उसका संसार में कोई भी कुछ बिगाड़ नहीं सकता, हानि नहीं कर सकता।[१११]

"सेयाणं परं सेयं, मंगल्लाणं च परममंगलं।
पुन्नाणं परमपुन्नं, फलं फलाणं परमरम्मं ॥"

३) नवकार मंत्र श्रेयस्करों - कल्याणकारी पदार्थों में परम श्रेयस्कर है। समस्त मंगलों में मांगलिक पदार्थों में परम मंगलमय है। समस्त पुण्यों में - पवित्र पदार्थों में परम पुण्य, परम पवित्र हैं। समस्त फलों में परम सुन्दर फल है।[११२]

"हरइ दुहं कुणइ सहुहं, जणइ जसं सोसए भव-समुद्दं।
इहलोय - पार लोइय - सुहाण मूलं नमुक्कारो ॥"

४) नवकार दु:ख का हरण करता है। वह सुख प्रदान करता है। यशस्वीता प्राप्त कराता है। संसाररुपी सागर को वह सूखा डालता है - जन्म मरण को मिटा देता है। इस लोक और परलोकके सुखों का यह मूल है।

"इक्को वि नमुक्कारो, परमेट्ठीणं पगिट्ठभावाओ।
समलं किलेसजालं, जलं व पवणो पणुल्लइ ॥"

५) उत्कृष्ट भाव पूर्वक पंचपरमेष्ठियों को उद्दिष्ट कर किया गया एक नमस्कार उसी प्रकार समस्त क्लेशों को दूर कर देता है, जिस प्रकार पवन जल को सूखा देता है।[११३]

"एसो मंगल - निलओ, भव - विलओ सयलसघं - सुहजणओ।
नवकार - परममंत्र, चिंतियमित्तो सुहं देइ ॥"

६) परम मंत्र नवकार मंगल का निलय है, आवास स्थान है। वह राग - द्वेष मूलक संसार का विलय करने वाला है। समस्त संघ को, मानव समुदाय को सुख उपजाने वाला है। चिंतन करने मात्र से सुख देने वाला है।

" भोयण-समए, सयणे, विवोहणे पवेसणे भए वसणे।
पंच नमुक्कारं खलु, समरिज्जा सव्व कालम्भि ॥"

७) भोजन के समय, शयन के समय, विबोध - उठने के समय, घर आदि में प्रवेश के समय, भयोत्पादक स्थिति के समय, कष्ट के समय, सभी समय पाँच नवकार मंत्र का स्मरण करना चाहिए।[११४]

नवकार के महात्म्य के सूचक निम्नांकित संस्कृत श्लोकों का उच्चारण, स्मरण और चिंतन करना साधक के लिए बहुत उपयोगी है।

त्वं मे माता पिता नेता, देवो धर्मो गुरु: पर:।
प्राणा: स्वर्गोऽपवर्गश्च, सत्वं तत्वं मतिर्गति: ॥

८) साधक श्रद्धा और भक्ति पूर्वक नवकार को संबोधित कर कहता है - तुम मेरे लिए

मातापिता के तुल्य हो, नेता - मार्गदर्शक हो, मेरे परमदेव हो, परमगुरु हो। मेरे प्राण स्वरुप हो। मेरे लिए स्वर्ग रुप हो, अपवर्ग - मोक्षवत हो। सत्व हो, तत्व हो, मति हो एवं गति हो।

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिता: सिद्धाश्च सिद्धिप्रदा:,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकरा: पूज्या उपाध्यायका: ।
श्री सिद्धान्त सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रया राधका:,
पंचैते परमेष्ठिन: प्रतिपदिनं कुर्वन्तु नो मंगलम् । [११५]

९) इन्द्रों द्वारा पूजित अरिहन्त प्रभु, सिद्ध-स्थान में अवस्थित सिद्ध भगवान जिनशासन के उन्नायक आचार्य भगवान्, आगम सूत्रों के उत्तम पाठक - साधु - साध्वियों को वाचना देनेवाले, अभ्यास करानेवाले उपाध्याय भगवान् तथा सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र रुप रत्नत्रय को धारण करनेवाले मुनिवर - ये पांचों परमेष्ठी भगवान् प्रतिदिन मंगल करें।

संसार में नवकार ही सारभूत मंत्र है। तीनों लोकों में वह अनुपम है। उसके समान अन्य कोई नहीं है। वह समस्त पापों का नाश करता है। राग द्वेषात्मक संसार का, जन्म मरण का, आवागमन का उच्छेद करता है। विषम विष का हरण करता है। वह कर्मों कीं निर्मूलन करता है, विध्वंस्त करता है। वह सिद्धिप्रदायक है।मोक्ष के सुख को अविर्भूत करता है तथा केवलज्ञान की प्राप्ति कराता है। जन्म-मरण के जंजाल से मुक्त करानेवाले इस परमेष्ठि मंत्र का बार - बार जप करो, जिसका सत् पुरुष जप करते रहे हैं। [११६]

नवकार मंत्र की महिमा और प्रशस्ति के संबंध उपर जो प्राकृत - गाथाओं और संस्कृत श्लोक उद्धृत किये गये हैं, वे जपाभ्यासी साधकों के मन में इस महामंत्र के प्रति श्रद्धा भक्ति का भाव जागृत करते हैं। हृदय में मंत्र - जप के प्रति विशेष आकर्षण उत्पन्न होता है। आंतरिक स्फूर्ति उल्लासित होती है। ऐसी मनोदशा में जो जप होता है, वह बहुत फलप्रद सिद्ध होता है।

अभयकुमार चरित में नवकार महिमा -

श्री अभयकुमार चरित श्रीचंद्रतिलक उपाध्याय की संस्कृत रचना है। वे श्रीजिनेश्वर सूरि के शिष्य थे। उन द्वारा रचित श्री अभयकुमार चरित १०३७ श्लोक प्रमाण है। इसकी रचना विक्रम संवत् १३१२ में हुई। इसके ग्यारहवें सर्ग में पंचपरमेष्ठी संबंधी वर्णन है। वहाँ नवकार मंत्र की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है -

दिन में, रात में, सुख में, दु:ख में, शोक में, हर्ष में, क्षुधा में या तृप्ति में तथा गमन में या स्थान में - चलते समय या ठहरते समय परमेष्ठियों का ध्यान करना चाहिए।

जिस प्रकार दही में मक्खन तथा कविता में ध्वनि [११७] *सारभूत है, जिनेश्वर द्वारा* प्ररुपित धर्मानुष्ठानों में उसी प्रकार परमेष्ठी - नमस्कार सारभूत है ।[११८]

श्रेष्ठभाव पूर्वक पंचपरमेष्ठी महामंत्र का स्मरण करने से अग्नि जल बन जाती है, सर्प पुष्प माला बन जाता है, विष अमृत बन जाता है, तलवार हार का रुप ले लेती है । सिंह हरिण बन जाता है । शत्रु मित्र हो जाता है । दुर्जन सज्जन हो जाता है । वन महल बन जाते हैं । चोर भी रक्षक बन जाते हैं । क्रूर कष्टप्रद ग्रह भी शीघ्र अनुग्रह - कृपा करनेवाले बन जाते हैं । अपशकुन भी उत्तम शकुनों जैसा फल देते हैं । दुष्ट स्वप्न भी तत्क्षण उत्तम स्वप्नों जैसे बन जाते हैं । शाकिनी - पिशाचिनी [११९] अत्यंत वात्सल्य भाव दिखलानेवाली माता के समान बन जाती है । विकराल वैताल पिता के समान प्रेम युक्त बन जाते है । दुष्ट मंत्र, तंत्र और यंत्र आदि प्रयोग असमर्थ हो जाते हैं । सूर्य का उदय हो जाने के बाद उल्लू कहाँ तक क्रीड़ा कर सकता है अर्थात् सूर्योदय हो जाने पर उल्लू को दीखना बंद हो जाता है, इसलिए उसके क्रिया कलाप रुक जाते हैं ।

ज्ञानी पुरुष जागृत स्थिति में, शयन काल में, स्थिरता में, गमन में, तथा छींक आने के बाद भी नवकार महामंत्र का स्मरण करते हैं ।

नवकार के प्रभाव से इसलोक में अर्थ, काम आदि की प्राप्ति होती है तथा परलोक में उच्च कुल में जन्म आदि तथा स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति होती है । [१२०]

सुकृत सागर में नवकार

सुकृत-सागर, जिसका दूसरा नाम पेथड़ चरित्र है, श्रीसोमसुन्दर सूरि के शिष्य श्रीरत्नमंड नगणि द्वारा रचित हैं । उन्होंने पंद्रहवीं विक्रम शताब्दी में इसकी रचना की । उनका 'जल्प - कल्पलता' नामक एक और कवित्व पूर्ण ग्रंथ सुप्रसिद्ध है ।

सुकृत सागर की पाँचवी तरंग में नवकार की महिमा का वर्णन है । वहाँ उल्लेख है -पंच नमस्कार मंत्र कल्पवृक्ष से भी अधिक प्रभावशाली है । उसके प्रत्येक अक्षर में एक हजार आठ महा विद्याएँ विद्यमान हैं । इनके प्रभाव से चोर मित्र बन जाते हैं । सर्प माला बन जाती है, अग्निजल बन जाती है । जल स्थल बन जाता है । घोर वन नगर बन जाता है तथा सिंह शियार बन जाता है ।

पंच नवकार मंत्र का भलीभाँति ध्यान करने से लोक में सब आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं । समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा जन्मांतर में राज्य, स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होता है । [१२१]

पंच नमस्कृति दीपक में परमेष्ठी मंत्र

"पंचपरमेष्ठी दीपक " नामक ग्रंथ की रचना दिगंबर जैन परंपरा के भटट्ारक श्रीसिंहनंदीने की। यह ग्रंथ क्रमश: साधन अधिकार, ध्यान अधिकार, कर्म अधिकार, स्तव अधिकार तथा फल अधिकार के रुप में पाँच अधिकारों में विभक्त है। प्रत्येक अधिकार में मंत्र विषयक अनेक विवरण दिये गये हैं।

इसमें पंचपरमेष्ठी के ध्यान के संबंध में लिखा है कि इससे समस्त विघ्न नष्ट होते हैं, उन्होने ॐ नम: सिद्धिम् के नाम से एक मंत्र का उल्लेख किया है। इसकी साधना से सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। फिर आगे लिखा है कि परम गुरुओं का पंचपरमेष्ठियों का मंत्र भी सब कार्यों की सिद्धि करता हैं।

"ॐ नमो अर्हद्भ्य:" यह इस मंत्र का प्रथम पद है, "ॐ नम: सिद्धेभ्य: " यह इसका दूसरा पद है। "ॐ नमो आचार्येभ्य:" यह तीसरा पद है। "ॐ नम: उपाध्यायेभ्य:" यह चौथा पद है। "ॐ नम: सर्व साधुभ्य:" यह पॉचवा पद है। इस प्रकार इस संस्कृत मंत्र से सब कार्य सिद्ध होते हैं।[१२२]

यह संस्कृत में प्रणीत मंत्र बहुत संक्षिप्त और सरल है। इसका अभ्यास साधारण, विशिष्ट सभी साधक कर सकते हैं। अक्षर चाहे कम हो, पर मंत्र में अद्भूत शक्ति होती है। यथावत् रुप में विधिपूर्वक पवित्र भावना के साथ मंत्र की यदि आराधना, साधना की जाती है तो वह बहुत ही फलप्रद होता है। यह मंत्र बहुत उपयोगी है। सुपरिचित शब्दों से निर्मित है। अत: अभ्यास में सुगम है।

उसी ग्रंथ में ॐ का विश्लेषण करते हुए लिखा है -

अरिहंता असरीर, आयरिया तह उवज्झाया मुणिणो।
पढमक्खरानिप्पणो, ॐकारो पंचपरमेट्ठी ॥

अरिहंत, अशरीर-सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनि - इन पाँचों पदों के प्रथम अक्षरों के मिलने से ॐ बनता है। ये पद समस्त मंत्रवाद के पदों में सारभूत है। इस लोक और परलोक के इष्ट - इच्छित फल प्रदान करने में समर्थ है। इसलिए यह जानकर इसके अनंत ज्ञान आदि गुणों को भलीभाँति स्मरण करते हुए वाणी से उच्चारण करते हुए जाप करें। शुभोपयोग रुप तीन गुप्तियों में अवस्थित होते हुए मौन पूर्वक ध्यान करें। पुनश्च अरिहंत पद द्वारा सूचित अनंतज्ञानादि गुण युक्त परमेश्वर है, ऐसा चिंतन और ध्यान करें। [१२३]

पंच नमस्कृति दीपक में रक्षा मंत्र का उल्लेख हुआ है , जो इस प्रकार है -

"ॐ ऱ्हीं नमो अरिहंताणं पादौ रक्ष रक्ष ।"

"ॐ ऱ्हीं नमो सिद्धाणं कटिं रक्ष रक्ष ।"

"ॐ ऱ्हीं नमो आयरियाणं नाभिं रक्ष रक्ष ।"

"ॐ ऱ्हीं नमो उवज्झायाणं ऱ्हदयं रक्ष रक्ष ।"

"ॐ ऱ्हीं नमो लोए सव्व साहूणं कण्ठं रक्ष रक्ष ।"

"ॐ ऱ्हीं एसो पंच नमस्कारो (णमोक्कारो) शिखा रक्ष रक्ष ।"

"ॐ ऱ्हीं सव्वप्पावपणासणो आसनं रक्ष रक्ष ।"

"ॐ ऱ्हीं मंगलाणं च सव्वेसिं पढ़मं होइ [१२४]

मंगलं आत्मवक्षः परवक्षः रक्ष रक्ष ।"

इति रक्षामन्त्रः ॥

शरीर विषयक रक्षा मंत्रों में जिनदेवों से मंत्र पदों द्वारा रक्षा की अभ्यर्थना की जाती है, उनको संबोधित कर रक्षा की मांग की जाती है। "ॐ ऱ्हीं नमो अरिहंताणं " पद पैरों की रक्षा करो, रक्षा करो। "ॐ ऱ्हीं नमो सिद्धाणं "पद कटि - कमर की रक्षा करो। रक्षा करो। " ॐ ऱ्हीं नमो आयरियाणं " पद नाभि की रक्षा करो, रक्षा करो । " ॐ ऱ्हीं नमो उवज्झायाणं " पद ह्दय की रक्षा करो, रक्षा करो। "ॐ ऱ्हीं नमो लोए सव्व साहुणं " पद कंठ की रक्षा करो, रक्षा करो। "ॐ ऱ्हीं एसो पंच नमोक्कारो " पद शिखा की रक्षा करो, रक्षा करो।[१२५] " ॐ ऱ्हीं सव्वप्पाव पणासणो।" आसन की रक्षा करो, रक्षा करो। "ॐ ऱ्हीं मंगलाणं च सव्वेसि, पढमं होइ मंगलं " वक्ष-स्थल की तथा दूसरों के वक्ष-स्थल की रक्षा करो, रक्षा करो। [१२६]

इस रक्षा मंत्र में शरीर के अंगोपांगो की रक्षा का उल्लेख है। [१२७] यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है, जैन धर्म तो आत्मा के उत्थान और विकास का धर्म है। देह की रक्षा को इतना महत्त्व क्यों दिया गया ? देह तो नश्वर हैं। उसमें आसक्ति होना धर्म के विपरीत है। जब आसक्ति होती है, तब देह की रक्षा की माँग की जाती है। इसका गहराई से चिंतन करना अपेक्षित है। जब तक साधना में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो जाती, तब तक आत्मा और देह का संबंध बना रहता है। एक धार्मिक आराधक के लिए देह धर्म का उपकरण है। देह युक्त आत्मा द्वारा विविध प्रकार के तपश्चरण आदि किये जाते हैं, जो आत्मा के कल्याण के साधक हैं, सहायक है। अतः उनकी रक्षा का, स्वस्थता का अपना महत्त्व है।

महाकवि कालिदास ने कुमारसंभव के पाँचवे सर्ग में लिखा है -

"शरीरमाद्यम् खलु धर्म - साधनम् "

अर्थात् शरीर धर्म का आद्य - पहला या मुख्य साधन है।

शारीरिक स्वस्थता पर ही मानसिक स्वस्थता का आधार रहा है। अंग्रेजी में एक प्रचलित कहावत है -

"sound mind in a sound body.[१२८]" अर्थात स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रह सकता है। अस्वस्थ शरीर में मन को स्वस्थ रखना आसान काम नहीं है।

नवकार मंत्र का प्रभाव

नवकार मंत्र का बड़ा अद्भुत प्रभाव है। इस मंत्र की साधना से ऋद्धि सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। इससे आध्यात्मिक शक्ति का विकास होता है किंतु इसे सिद्ध करने के लिए सच्ची श्रद्धा और दृढ़ विश्वास की परम आवश्यकता है। आधुनिक काल के वैज्ञानिक भी यह स्वीकार करते हैं कि आस्तिक्य भाव के बिना कार्य में भी सफलता प्राप्त करना संभव नहीं है। अमेरिका के डॉक्टर होवार्ड रस्क Reader Digest में कहा है कि रोगी तब तक स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकता जब तक वह अपने आराध्य में विश्वास नहीं करता। आस्तिकता ही समस्त रोगों को दूर करने वाली है। जब कोई रोगी चारों ओर से निराश हो जाता है, उस समय आराध्य के प्रति की गई प्रार्थना उसके लिए प्रकाश का काम करती है। प्रार्थना का फल इतना होता है कि हम उसके संबंध में सोच तक नहीं सकते हैं। दृढतायुक्त हृदय के कोने से निकली हुई सशक्त भावों की अंतर्ध्वनि महान् से महान् कार्य सिद्ध करने में सफल हो जाती है।[१२९]

अमेरिका के न्यायाधीश हेरोल्ड मेडिना Reader Digest का मंतव्य है कि आत्म-शक्ति का विश्वास तभी होता है जब मनुष्य यह अनुभव करता है कि मानवीय शक्ति से परे भी कोई वस्तु है। अत: श्रद्धा के साथ की गई प्रार्थना बड़ा चमत्कार उत्पन्न करती है। प्रार्थना में एक अद्भुत शक्ति अनुभूत की जा सकती है। जीवन शोधन - के लिए आराध्य के प्रति की गई विनययुक्त प्रार्थना अत्यंत फलप्रद होती है।

नेशनल एसोसिएशन फॉर मेंटल हॉस्पिटल ऑफ अमेरिका के भूतपूर्व मेडिकल डायरेक्टर का अभिमत है कि समस्त रोग शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक क्रियाओं से संबंधित हैं, अत: जीवन में जब तक धार्मिक प्रवृत्ति का उदय नहीं होता, रोगी को स्वास्थ्य लाभ होना कठिन है। प्रार्थना धार्मिक प्रवृत्ति को उत्पन्न करती है। आराध्य को उद्दिष्ट कर की गई प्रार्थना बहुत बड़ा आत्म संबल है। अब तक मानव को अदृश्य तत्वों की रहस्यपूर्ण शक्ति का पता लगाना नहीं आता। जितने भी मानसिक रोगी दृष्टिगोचर होते हैं, किसी

आंतरिक अज्ञात वेदना से पीड़ित होते हैं। इस वेदना का प्रतिकार आस्तिकता की ही भावना है। उच्च तथा पवित्र आत्माओं की आराधना जादू का सा चमत्कार करती है। १३०

नवकार मंत्र की निष्काम भाव से साधना करना समुचित है। इससे लौकिक एवं पारलौकिक सभी कार्य सफल होते हैं। इस संबंध में यह आवश्यक है कि आराधक जप करने की विधि को यथावत समझें, जप करने के स्थान के औचित्य को भी जाने क्योंकि इनकी भिन्नता से फल में भी भिन्नता होती है। जप करने वाला साधक सदाचरणशील, शुद्धात्मा, सत्यभाषी, अहिंसक तथा प्रामाणिक हो, तो उसे मंत्र - आराधना का उत्तम फल प्रदान करती है। उसी प्रकार नवकार मंत्र भी दृढ़ श्रद्धापूर्वक निष्काम भाव से फलासक्ति के बिना समुचित विधिपूर्वक जप करने से पूर्ण फल प्रदान करता है। मंत्र जप में स्थान शुद्धि भी आवश्यक है। उचित समय का भी महत्त्व है। कुसमय में अशुद्ध स्थान पर किया गया जप अभिष्ट फलप्रद नहीं होता। इसलिए मंत्र का जप समुचित समय में शुद्ध मानसिक, वाचिक एवं कायिक शुद्धि पूर्वक विधि सहित करना चाहिए। वैसे तो सामान्यत: जप किसी भी अवस्था में करने से फल देता ही है, जैसे मिश्री को कोई भी व्यक्ति किसी भी अवस्था में खायें, मुँह में मिठास तो आयेगा ही, किंतु विधि के साथ जप करने से उसका विशिष्ट फल होता है, आत्मशुद्धि होती है।

नवकार मंत्र की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें समस्त मातृका ध्वनियाँ विद्यमान हैं। यह समस्त बीजाक्षरों से युक्त मंत्र है। इसमें मूल - ध्वनि रुप बीजाक्षरों का संयोजन शक्ति के क्रमानुसार किया गया है, इसलिए यह सर्वाधिक शक्तिशाली है।

यद्यापि इस मंत्र का यथार्थ लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है किंतु लौकिक दृष्टि से भी यह समस्त कामनाओं को सिद्ध करता है। कहा गया है कि उपसर्ग, पीड़ा, क्रूर ग्रह, दुर्लभ, भय तथा शंका आदि न भी हो तो भी शुभ ध्यान पूर्वक नवकार मंत्र का जप करना चाहिए उससे परम शांति और सुख प्राप्त होता है।[१३१]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह मंत्र आत्मा का कल्याण तो करता ही है, सभी प्रकार के अरिष्ट, रोग, व्याधि, विघ्न एंव बाधाओं को दूर करता है। समस्त सिद्धियाँ प्रदान करता है। यह कल्पवृक्ष के सदृश है जो श्रद्धा और विश्वास के साथ जिस प्रकार की भावना से नवकार मंत्र की साधना करता है, वह उसी प्रकार का फल प्राप्त करता है। सभी मंत्रोंमें नवकार मंत्र श्रेष्ठ मंत्र है। उसके बहुत उपकार है जिसका वर्णन नहीं किया सकता।[१३२]

नवकार मंत्र : शांति का स्त्रोत

संसार में प्रत्येक प्राणी शांति चाहता है। सुख चाहता है । वह संसार के अनेक पदार्थों,वैभवों और संपदाओं में सुख की आशा लिए रहता है किंतु आशाएँ निराशाओं में बदल जाती है, क्योंकि ये सभी बाह्य आकर्षण शाश्वत नहीं है, नश्वर है । अपने सच्चिदानंद स्वरुप की अनुभूति और प्राप्ति में ही शांति और सुख है । ज्ञानी महापुरुषों ने अपने जीवन में ऐसा साक्षात् अनुभव किया है । अतएव शांति और सुख चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का सबसे पहला कर्तव्य यह है कि वह सच्चिदानंद स्वरुप का निश्चय करे । इसे आत्मावबोध कहा जाता है। एक जिज्ञासु प्रयत्नद्वारा ऐसा कर लेता है किंतु जब तक उसके सामने ऐसे आदर्श निश्चित नहीं होते, जिनका अनुकरण कर वह अपने साधना - पथ पर आगे बढ़ सके, तब तक उसकी प्रगति नहीं होती । साधक के लिए सर्वोत्तम आदर्श सच्चिदानंद - *स्वरुप विशुद्ध आत्मा, परमात्मा ही हो सकते हैं । कोई भी विकारयुक्त जीव उन्हीं आदर्शों* को अपने समक्ष रखकर अपने अंत:करण में उत्साह, प्रेरणा और शक्ति संचित कर सकता है जो विकार रहित या दोष वर्जित हो । जिन्होंने राग और द्वेष को जीत लिया है, जिनका ज्ञान दिव्य है, जो अपरिमित, अध्यात्मिक आनंद से आप्लावित है, अनंत शक्तिशाली है, ऐसी महान आत्माओं को आदर्श के रुप में अपने समक्ष रखने से मिथ्या बुद्धि का नाश होता है, दृष्टि परिष्कृत और परिमार्जित होती है । राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोहयुक्त भाव हृदय से निकल जाते हैं । अंत:करण में आध्यात्मिक चेतना का उद्भव होता है ।[१३३]

अरिहंत - *भगवंत्, सिद्ध - भगवंत, आचार्य उपाध्याय तथा साधु - इनमें से प्रत्येक* का प्रथम अक्षर लेने से 'असिआउसा ' ऐसा महत्त्वपूर्ण वाक्य, मंत्र निर्मित होता है, जिससे ॐ के रुप में योगबिन्दु का स्वरुप निष्पन्न होता है, इसलिए इस मंत्र का शुद्ध भावपूर्वक जप करना चाहिए । [१३४]

नवकार में पंचपरमेष्ठियों के रुप में ऐसे ही आदर्श विद्यमान हैं। नवकार उनका सर्वोत्तम रुप हैं। उसके श्रवण, स्मरण, चिंतन, मनन, रटन से साधक अंतर्विकारों से छूट जाता है । वासनाओं के कारण विभ्रांत बना हुआ मन जो अनाश्रित की तरह इधर-उधर भटकता रहता है, नवकार मंत्र के उच्चारण और जप द्वारा वासना रहित, शुद्ध और स्वस्थ बन सकता है । नवकार मंत्र में जिस भाव का संग्रथन हुआ है, वह सामान्य से सामान्य साधक से लेकर अत्यंत उच्चकोटि के साधक के लिए भी कल्याणकारी है ।

यहाँ एक बात पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है - मंत्र या मंगल वाक्य के प्रति मन में सुदृढ़ श्रद्धा एवं निष्ठा का होना अत्यंत आवश्यक है । सभी दार्शनिकों की यह मान्यता है कि जब तक मन में आस्तिकता का भाव उत्पन्न नहीं होता, मंत्र के प्रति, जप के प्रति श्रद्धा नहीं

होती, तब तक उसके अभ्यास से जितना चाहिए उतना लाभ नहीं होता। जिस साधक के *मन में अपने आराध्य महापुरुषों के प्रति* आस्था और विश्वास होता है, वन [illegible], उनके *मंत्र की आराधनाद्वारा शांति प्राप्त कर सकता है। आस्था के साथ* - साथ आराधक के मन में यह भाव रहे कि जिन सर्व दोष विवर्जित विशुद्ध आत्माओं का आदर्श मेरे समक्ष है, मैं भी उन राग-द्वेष-विजेता आत्माओं के सदृश अपने आपको दोष रहित, पवित्र बनाने का प्रयास करूँ, यह मेरा परम कर्तव्य हैं।

नवकार में वर्णित शुद्ध आत्मओं के सदृश राग द्वेषादि आत्म दुर्बलताओं को जीतने का साधक मन में भाव उद्दीप्त करें। जिस प्रकार उन शुद्ध एवं निर्मल आत्माओं ने राग-द्वेषादि को जीता, कर्म के आस्त्रवों को अवरुद्ध किया, संचित कर्मो को क्षीण किया, उसी प्रकार उन आत्माओं को स्मरण कर साधक मनन करे, चिंतन करे। वह कर्मास्त्रवों का निरोध करें। पूर्व संचित कर्मावरणों का तप द्वारा निर्जरण करे - नाश करे।[१३५]

नवकार मंत्र में वर्णित महान् आत्माओं की शरण ले। शरण लेने का उद्देश्य उन्हीं की तरह अपने शुद्ध स्वरुप को प्राप्त करना है। जैसा लोहा पारस के स्पर्श से सुवर्ण बन जाता है, उसी प्रकार परमात्मा के स्मरण से, उनका आलंबन लेने से, जिस मार्ग को प्राप्त कर के शुद्धात्म स्वरुप तक पहुँचे, उस मार्ग का आलंबन लेने का भाव साधक में उदित होता है, उत्साह जागता है, प्रेरणा उत्पन्न होती है। वह उस ओर प्रयत्नशील होता है। अपने प्रयत्न में साधक अग्रसर होता जाता है। जहाँ भी विघ्न या बाधायें आती है , परमेष्ठी भगवंतों के स्मरणसे, ध्यान से वे नष्ट हो जाती हैं।

जैसे जलते हुए एक दीपक की ज्योति से अन्य दीपक प्रज्वलित हो जाते हैं, वैसे ही महान् आत्माओं के सान्निध्य से, सांसारिक विषय, कषाय, दोष आदि से साधक रहित हो जाते हैं। नवकार एक महान् मंगल सूत्र हैं। वह मंगल जीवन के उत्थान का, अभ्युदय का और उन्नयन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण आधार है।

नवकार महामंत्र से ज्ञातृत्व - भाव

निश्चय-दृष्टि से आत्मा ज्ञाता है, द्रष्टा है। वह अपने स्वभाव का ही स्वामी है।वह परभाव का कर्ता नहीं है। अपने में परभाव का कर्तृत्व मानना अज्ञान-प्रसूत मोह है। ज्ञायक भाव आत्मा का स्वभाव है, राग, द्वेष, आदि विभाव है। सांसारिक जीव बहुलतया विभावों पर आश्रित रहते हैं, विभावोन्मुख होते हैं। नवकार मंत्र जीवों को स्वभावोन्मुख होने की प्रेरणा देता है। नवकार मंत्र में अर्हम् तत्व परिव्याप्त हैं। यह वर्णमाला का एवं शब्द ब्रह्म

संक्षिप्त स्वरुप है। तात्विक दृष्टि से शब्द - ब्रह्म परब्रह्म का वाचक है। परब्रह्म विशुद्ध ज्ञानस्वरुप है। वही साधक के लिए उपास्य और आराध्य है। आराध्यता या उपास्यता का भाव- हेतु वीतरागत्व आदि गुण है। जहाँ वीतरागत्व है, वहाँ सर्वज्ञत्व है, अत: वीतराग एवं सर्वज्ञ जैसे सर्व - दोष - शून्य ज्ञान स्वरुप की आराधना, उपासना ही परम पद - सिद्धावस्था या मुक्तावस्था को प्राप्त करने का मूल हेतु है।[१३६] नवकार मंत्र उसका अमोघ साधन है। वह शब्द ब्रह्मात्मक है। उसी का सिद्धिपरक स्वरुप परब्रह्म है। नवकार रुप शब्द-ब्रह्म आत्मोपासना, आत्माराधनाद्वारा पर-ब्रह्म के रुप में परावर्तित हो जाता है, क्योंकि उससे ज्ञायक भाव उदित होता है। वह आत्मा की शुद्धावस्था है। उसके प्राप्त हो जाने पर समस्त कर्मों की कालिमा मिट जाती है। आत्मा निर्मल बन जाती है।

●●●

द्रव्यात्मक - पर्यायात्मक दृष्टि से नवकार का निरुपण

नवकार मंत्र शब्दात्मक है। द्रव्यत्व की अपेक्षा से शब्द नित्य माना जाता है।[१३७] पर्याय की अपेक्षा से वह अनित्य है। इसके अनुसार नवकार मंत्र को द्रव्यात्मक दृष्टि से नित्य तथा पर्यायात्मक दृष्टि से अनित्य माना जाता है। द्रव्य भाषा के अपने पुद्गल होते हैं।[१३८] पुद्गल के पर्याय अनित्य होते हैं। तदनुसार भाषा के पुद्गल भी अनित्य है। भाव-भाषा आत्मा का क्षयोपशमात्मक रुप है, अपौद्गलिक है। जिस प्रकार आत्म-द्रव्य नित्य है उसी प्रकार भाव भाषा भी नित्य है ।[१३९]

नवकार मंत्र द्रव्यात्मक दृष्टि एवं भावात्मक दृष्टि की अपेक्षा से शाश्वत है। शब्द की तथा अर्थ की अपेक्षा से नित्य है। जैन शास्त्रों के अनुसार नवकार मंत्र शाश्वत और अनादि है। सर्व संग्राही नैगमनय की अपेक्षा से यह विवेचन है। विशेषग्राही नैगम, ऋजुसूत्र तथा शब्द आदि नयों की अपेक्षा से नवकार मंत्र उत्पन्न माना जाता है।[१४०]

जैन सिद्धातांनुसार श्रुत या ज्ञान की परंपरा तत्वभाव का अर्थ के रुप में अनादि है, नित्य है। भिन्न - भिन्न युगों में तिर्थंकर उन्हीं तत्वों की अपने अपने शब्दों में देशना देते हैं। नवकार मंत्र श्रुत का प्रतीक है इसलिए वह अनादि है, अनादि की उत्पत्ति नहीं होती। इसलिए भाव की दृष्टि से वह अनुत्पन्न है, नित्य है। शब्दात्मक रुप द्रव्य - दृष्टि से भी नित्य है। पर्याय क्षण - प्रतिक्षण बदलते हैं, इसलिए वे अनित्य होते हैं।

उदाहरणार्थ एक व्यक्ति किसी शब्द का उच्चारण करता है। उसके मुख से शब्द निकलता है, वह आकाश में लीन हो जाता है। जो लीन हो जाता है, वह शब्द का पर्याय है, अवस्था है।

●●●

नवकार मंत्र और जप - अष्ट शुद्धियाँ

नवकार मंत्र बहुत पवित्र है। इस का जप फलप्रद है। उसके जप के विधिक्रम में द्रव्य, क्षेत्र, काल, आसन, विनय, मन, वचन, तथा भाव की शुद्धि आवश्यक है।[१४१] कोई भी उत्तम कार्य बाह्य एवं आभ्यंतरिक शुद्धि के साथ किया जाये तो उसका फल अवश्य होता है। साधक के मन में पवित्र भाव और उत्साह बढता रहता है। वह जप-साधना में अशांति अनुभव नहीं करता।

इन आठ प्रकार की शुद्धियों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

१) द्रव्य- शुद्धि :

द्रव्य शुद्धि का संबंध अपनी इन्द्रियों और मन को वश में करना आत्मबल के अनुसार क्रोध, माया, मान एवं लोभ रुप कषायों का त्याग करना तथा चित्त में ऋजुता, मृदुता एवं करुणा का भाव जगाना आदि के साथ है। यह साधक की आंतरिक शुद्धि का विषय है। जब साधक जप करने में तत्पर हो तो वह अपने अंत:करण के विचारों को दूर करने का प्रयत्न करे। द्रव्य और भाव से नवकार मंत्र के साथ संबंध जोड़े बिना अपना भाव भ्रमण रुकनेवाला नहीं है। जब तक भाव से नवकारमंत्र की प्राप्ति न हो जाएं, तबतक भाव-प्राप्ति के लक्ष्य हेतु द्रव्य से भी प्रयास चालू रखने होंगे।[१४२]

जब तक मन में मोह अहंकार कामना आदि के मलिन भाव मनमें रहेंगे तब जप का शुद्ध क्रम घटित नहीं होगा। आंतरिक शुद्धि या द्रव्य शुद्धि को साधने में लंबे समय तक अभ्यास करना आवश्यक है। जप के समय साधक सर्वथा सावधान रहे, उसके मन में कलुषित, मोहाविष्ट भाव उत्पन्न न हों। मन को प्रतिक्षण नियंत्रित करना आवश्यक हैं क्योंकि वह बहुत दुर्बल हैं, चंचल है। जब विकारग्रस्त भावों का प्रवाह आने लगता है तो उसे रोक पाना बहुत कठिन होता है। निरंतर दृढ़ता बनी रहे, तभी वे रोके जा सकते हैं। ऐसा करते हुए क्रमश: जप के अभ्यास में लगे रहने से सफलता प्राप्त होती है।

२) क्षेत्र - शुद्धि

क्षेत्र का अर्थ स्थान है। जहाँ नवकार मंत्र का जप किया जाये, वह स्थान ऐसा हो, जिसमें, कोलाहल, शोर न होता हो। ऐसे उपद्रव न होते हों, जो चित्त में उद्वेग उत्पन्न करें। मच्छर, डास आदि कष्ट उत्पन्न करनेवाले जीवजन्तु आदि न हो। एकांत हो, लोगों का जहाँ आवागमन न हो। वहाँ का वातावरण शुद्ध हो, उत्तम हो।

गृहस्थ साधक अपने घर के किसी एकांत भाग का भी जप - साधना में उपयोग कर सकता है। यद्यपि जप का मूल संबंध तो साधक की अपनी आत्मा के साथ है, किंतु बाहर के स्थान की अनुकूलता का भी प्रभाव पड़ता है। जो स्थान कोलाहल आदि से पूर्ण होता है, वहाँ जप में बाधा उत्पन्न होती है। जब अभ्यास परिपक्व हो जाये, तब कोई अंतर नहीं आता किंतु प्रारंभ में प्रतिकूल वातावरण का दुष्प्रभाव होता है। अत: समुचित स्थान का चयन करना वांछित है।

३) काल शुद्धि -

नवकार का जप तो एक ऐसा पवित्र कार्य है कि जब चाहे तब उसे किया जा सकता है। जब भी मन में स्थिरता और तल्लीनता हो, तब जप किया जा सकता है। किंतु, फिर भी जप के लिए सुबह का, दोपहर का तथा शाम का समय अधिक उचित माना गया है। जितनी देर पर कर सकें, परिश्रांति न हो साधक जप करता रहे।

जिस समय वह जप करे, उसके मन में सांसारिक भाव और चिंताएँ न रहें। प्राय: ऐसा होता है, जब जप में, सामायिक आदि में संलग्न होते हैं, तब मन में भिन्न- भिन्न प्रकार के सांसारिक विचार आते रहते हैं। इसका कारण व्यक्ति की सांसारिक पदार्थों में अत्यंत आसक्ति है। मन में यदि वैसे भाव रहते हैं तो जप औपचारिक हो जाता है। जप से जो आत्म-शक्ति स्फुरित होनी चाहिए, वह नहीं होती। इसलिए, समुचित- उपयुक्त स्थान में निश्चिंत और निराकुल भाव से जप करना अपेक्षित है। यदि जप का काल प्रतिदिन के लिए निश्चित रहे, तथा उसी के अनुसार जपाभ्यास चले तो उसमें स्थिरता और परिपक्वता आती है।

४) आसन -शुद्धि -

आसन का अर्थ बैठना या स्थित होना है। बैठने के लिए काष्ट पट्ट, चटाई, वस्त्र आदि में से किसका उपयोग किया जाये - इस संबंध में भी विद्वानों ने चिंतन किया है। यद्यपि आसन के लिए यह कोई अत्यावश्यक नियम नहीं है कि अमुक वस्तु का ही प्रयोग किया जाये, परंतु जपाभ्यासी साधकों का ऐसा अनुभव है कि श्वेत ऊन का आसन उत्तम होता है क्योंकि ऊन का पौद्‌गलिक परमाणु - संचयन, संघटन ऐसा होता है कि दूसरी वस्तु का ऊन पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है।

योग में विरासन, वज्रासन, पद्मासन, भद्रासन आदि अनेक आसनों का वर्णन आया है। आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र में ध्यान या जप के समय किस आसन में स्थित होना चाहिए, इस संबंध में उल्लेख किया है कि किसी विशेष आसन का ही ध्यान में प्रयोग किया

जाये, ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है। जिस आसन का प्रयोग करने से मन में स्थिरता तथा प्रशांतता रहे, उसी का जप या ध्यान में प्रयोग करना समुचित है। [१४३]

आचार्य हेमचन्द्र ने ध्यान में आसन प्रयोग के साथ - साथ कुछ और भी सूचनाएँ दी है, जो जप या ध्यान के अभ्यासार्थी के लिए बहुत ही उपयोगी है। उन्होने लिखा है - ध्यान में तत्पर साधक सुखासन में बैठे। उसके दोनों ओष्ठ परस्पर मिले हुए हों। दोनों नेत्र नासिका के अग्रभाग पर संस्थित हो। अपने मुँह के भीतर दांतों को इस प्रकार रखें कि ऊपर के तथा नीचे के दाँतों का आपस में स्पर्श न हो। मुख प्रसन्नता युक्त हो। पूर्व या उत्तर दिशा में हो। प्रमाद या असावधानी से रहित हो। उसका मेरुदंड सीधा और सुव्यवस्थित हो। [१४४]

जपाभ्यासी को उस प्रकार के आसन में स्थित नहीं होना चाहिए, जिससे देह के अंगों में खिंचाव हो, बैठे रहने में कठिनाई या असुविधा हो। वैसा होने से मन जप या ध्यान से हटकर देह पर चला जायेगा, जिससे जप की निरंतरता भग्न होगी। जप में बाधा उपस्थित होगी। जप करते समय मुख पूर्व दिशा या उत्तर दिशा की और रहे, यह अपेक्षित है। साथ ही साथ जपाभ्यासी को जप प्रारंभ करते समय मन में यह संकल्प करना चाहिए कि मैं इतने समय तक जप करुंगा। इससे जप की क्रीया में दृढ़ता एवं स्थिरता का समावेश होता है।

५. विनय -शुद्धि :

विशेषेण नय: विनय: विशेष रुप से नत होना झुकना विनय है। आराध्य या पूज्य के प्रति विनितभाव विनय कहलाता है। साधक जब नवकार मंत्र का जप करे, उस समय उसके मन में पंचपरमेष्ठी भगवंतों के प्रति निरंतर विनयभाव रहे। उसके मन में हिंसा और अविनय युक्त विचार न आये, ऐसा वह ध्यान रखें। मन में जप के प्रति श्रद्धा, अनुराग और उत्साह रहे। वैसा होने से जप में प्रगति होती है। जिस आसन पर वह बैठे, उसका सावधानी पूर्वक प्रतिलेखन करें। गमनागमन में हिंसा न हो, इसका पूरा ध्यान रखें। जिस भूमि पर आसन लगाये, उसका भलीभांति अवलोकन करे। यह विनय का विशेष आकलन है।

६) मानसिक शुद्धि :

मन विचारों का केन्द्र है। विचार जिस ओर उसे ले जाते हैं, वह उधर ही चला जाता है। पुनश्च: वैसी ही क्रियाओं में संलग्न हो जाता है। साधारणत: जब कोई व्यक्ति जप में बैठता या ध्यानस्थ होता है तो मन जप और ध्यान के लक्ष्य से हट जाता है। जिनका जप या ध्यान करता है, वे मन से निकल जाते है। मंत्राक्षरों का मुखद्वारा उच्चारण मात्र होता है। चिंतन धारा कहीं की कहीं चली जाती है। पुन: पुन: अपने लक्ष्य पर मन को केन्द्रित रखने का सतत प्रयास करते रहने से मन का विचलन कहीं बंद हो सकता है।

गीता में एक प्रसंग है - अर्जुन ने योगिराज श्रीकृष्ण से कहा भगवन् ! यह मन बहुत चंचल है, प्रमथनशील है, बड़ा दृढ और बलवान है। जिस प्रकार वायु को निगृहीत करना - रोकना दुष्कर है, उसी प्रकार मन को वश में करना बहुत कठिन है।

इस पर श्रीकृष्ण ने उसे उत्तर दिया कि अर्जुन ! वास्तव में मन को वश में करनाबहुत कठिन है। यह सही है कि मन चंचल है किंतु अभ्यास से और वैराग्य से उसको वश में किया जा सकता है। [१४५]

गीता में आये हुए इस प्रसंग से यह स्पष्ट है कि साधक यदि वैराग्य पूर्वक जप के साधन में संलग्न रहे, अपने अभ्यास में स्खलित न हो तो वह मन को जीतने में समर्थ हो सकता है।

७) वचन - शुद्धि :

मानव के दैनंदिन व्यवहार में वाणी या वचन का अत्यंत महत्त्व है। वचन का अर्थ बोलना या उच्चारण करना है। मंत्र का उच्चारण शुद्ध रुप में किया जाये, यह आवश्यक है। शास्त्रों में, पाठ में, मंत्र के उच्चारण में स्वर, ध्वनि आदि की शुद्धता पर बहुत बल दिया गया है। मंत्र में अक्षरों, मात्राओं आदि की दृष्टि से एक सामंजस्य होता है। उसमें एक अद्‌भुत शक्ति सन्निहित होती है। यदि उसके उच्चारण में जरा भी अशुद्धि हो तो वह सामंजस्य विकृत हो जाता है। मंत्र अशुद्ध उच्चारण करने से उसका यथेष्ट फल नहीं होता।

कुछ लोग इस संबंध में ऐसा कहते हैं कि यदि मंत्र का जप करने वाले व्यक्ति के मन में भाव ठीक हो तो शुद्ध-अशुद्ध जैसा भी मंत्र का उच्चारण किया जाये, अच्छा है। यह मान्यता यथार्थ नहीं है, क्योंकि शब्द का अपना विज्ञान है।

न्यायशास्त्र में 'शब्दगुणमाकाशम्' ऐसा कहा गया है, जिस का अर्थ है कि शब्द आकाश का गुण है। ज्यों ही उसका उच्चारण किया जाता है वह अपने स्वरुप या कलेवर के अनुसार वातावरण में तरंगें उत्पन्न करता है। आकाश में उठी हुई, फैली हुई तरंगों का अपना विशेष प्रभाव है। शब्दों का तरंगों के साथ वैज्ञानिक संबंध है। शुद्ध उच्चारण से जो तरंगे उत्पन्न होती है, उनकी फल - निष्पत्ति आत्मा के लिए श्रेयस्कर होती है। अशुद्ध उच्चारणद्वारा उत्पन्न होनेवाली तरंगों का फल श्रेयस्कर नहीं होता।

यहाँ और एक विशेष बात ज्ञातव्य है। जप करते समय यदि मंत्र का उच्चारण मन के भीतर ही किया जाये, मुँह द्वारा शब्दों के बाहर न निकाला जाये तो और भी उत्तम फल-निष्पत्ति होती है। ऐसा अनुभवी साधकों का मत है।

८) देह- शुद्धि :

मंत्र जप में यह भी आवश्यक है कि शरीर शुद्धि युक्त हो। शौच आदि शारीरिक शंकाओं से निवृत्त होकर साधक को जप के अभ्यास में संलग्न होना चाहिए। आयुर्वेद में कहा गया है -

"न वेगान् धारयेत् धीमान्" अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष शरीर के वेगोंको - शौच, प्रस्रवण आदि को रोके नहीं। ऐसा करने से शरीर में व्याधि उत्पन्न होती है तथा मन भी विकारग्रस्त होता है इसलिए मंत्र, जप में संलग्न होने से पूर्व इन से निवृत्त होना आवश्यक है। शरीर को यतनापूर्वक शुद्ध करना चाहिए। जब जप में सक्रिय हो जाये ,तब देह को स्थिर रखना चाहिए। हाथ-पैर अंगुली आदि शरीर के किसी भी भाग को चंचल नहीं होने देना चाहिए, हिलाना - डूलना नहीं चाहिए। शरीर तथा उसके अंग-प्रत्यंग सुस्थिर अविचल रहे, इस हेतु अनवरत प्रयत्नशील रहना वांछनीय है।[१४६]

इन आठ प्रकार की शुद्धियों में देह, मन और आत्मा - तीनों की परिशुद्धि आवश्यक है। वैसा होने से मंत्र जप का बहुत उत्तम फल होता है।

नवकार के आराधक -

जो नवकार मंत्र की आराधना, जप,ध्यान, स्मरण आदि करने में विश्वास रखते हैं, उस दिशा में प्रयत्नशील रहते हैं वे नवकार के आराधक कहे जाते हैं। नवकार मंत्र का उच्चारण करने से शुभोपयोग निष्पन्न होता है। जब अंत:करण में इस महामंत्र के प्रति आस्था जागृत होती है और इस महामंत्र में वर्णित महान् पवित्र आत्माओं का स्मरण किया जाता है, साधक की मनोवृत्ति आत्मस्वरुप की परिणति की और झुकती है। ज्यों - ज्यों भावनाओं में पवित्रता आती-जाती है, आराधक की आराधना प्रबल बनती जाती है और वह शुभोपयोग से शुद्धोपयोग की दिशा में आगे बढ़ता है।

शुभोपयोग शुभ कर्म या पुण्य बंध का हेतु हैं। जब साधक की साधना उच्च स्थिति पा लेती है तब शुभ का स्थान शुद्ध ले लेता है। शुद्धोपयोग में शुभ बंधन भी नहीं होता। वह आत्मा की शुद्धावस्था से संबद्ध है। कर्मबंध तो अशुभोपयोग और शुभोपयोग में ही होता है। शुद्धोपयोग में आ जाने पर पाप और पुण्य के बंधन अवरुद्ध हो जाते हैं।[१४७]

आराधक के लिए प्रयोजनभूत ज्ञान -

नवकार मंत्र के जप की सिद्धि के अभिलाषी साधक को जप में अत्यंत प्रयोजनीय ज्ञान रुचि पूर्वक अर्जित करने का प्रयास करना चाहिए। उसे यथाशक्ति जीवन में उतारने की भावना रखनी चाहिए। ऐसा हुए बिना साधना के मार्ग में आगे नहीं बढ़ा जा सकता।

साधक को परमेष्ठी भगवंतों का स्वरुप गुरुजनों के सान्निध्य से, शास्त्रों के अध्ययन से समझना चाहिए। समझकर उसका पुन: पुन: चिंतन, मनन करना चाहिए। उसको अपने नाम की तरह आत्मसात करना चाहिए। जैसे अपना नाम लेते ही अपना समस्त स्वरुप ध्यान में आ जाता है, उसी प्रकार जप करते समय मंत्राक्षरों का अर्थ अपने मन के समक्ष प्रकट होना चाहिए।

जप करनेवाले साधक को यह विचार करते रहना चाहिए कि परमेष्ठी भगवंतों का हमारे उपर कितना उपकार है, कितना ऋण है। परमेष्ठी भगवंतों का आलंबन, आश्रय न मिलने से अतीत में अनंत भवों में भ्रमण करना पड़ा। उनका आलंबन प्राप्त होने से उन भवों का अंत हो रहा है। यह सोचकर मन में प्रसन्न होना चाहिए।

नवकार साधना की सच्ची प्रक्रिया :

नवकार साधना करने के लिए निम्नलिखित बातें जीवन में उतारनेसे नवकार साध्य होता है। १) नवकार इष्टदायक है ऐसी दृढ़ श्रद्धा रखना। २) सभी के साथ हृदयपूर्वक क्षमापना करना और मैत्र्यादि भावनासे शुद्ध बनना। ३) अरिहंतका रातदिन रटन करना। ४) मन का रात-दिन निरीक्षण करना ५) नवकार के प्रति समर्पण भाव रखना और कर्तृत्वभाव को छोड़ना। साधनामें उपर्युक्त बातों का बहुत बड़ा महत्त्व है।[१४८]

जप का लक्ष्य स्पष्ट और निश्चित कर लेना चाहिए। इस संबंध में चिंतन करना चाहिए कि संसार के सब जीवों का हित हो। सभी जीव अरिहंत देव के धर्म शासन में अभिरुचिशील बनें। भव्य आत्माओं को मोक्ष की प्राप्ति हो। धर्मसंघ का कल्याण हो। विषयों और कषायों की परतंत्रता से मुझे शीघ्र मुक्ति प्राप्त हो। मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, माध्यस्थ्य आदि भावनाओं से मेरा हृदय सदैव अनुभावित रहे। जप करते समय इस प्रकार के उच्च महान उद्देश्य स्वीकार करने चाहिए। जप करते समय चिद्वृत्ति में यदि चंचलता आये तो थोड़ी देर के लिए जप बंद कर देना चाहिए तथा निम्नांकित भावों के चिंतन में अपने चित्त को लगाना चाहिए।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभागभवेत्॥

संसार के सभी प्राणी सुखी हों, सभी प्राणी स्वस्थ हों, सभी प्राणी कल्याण प्राप्त करें, कोई भी दुःखी न बने।[१४९]

इस प्रकार के और भी उत्तम भावों का अनुचिंतन करना चाहिए। जैसे विश्व के समस्त दोषों का नाश हो, समस्त जीवों को सद्बुद्धि प्राप्त हो, बोधिबीज प्राप्त हो, विश्वमैत्री का भाव उत्तरोत्तर वृद्धिगंत हो।

चित्त में इस प्रकार के उत्तम विचारों के लाने से चंचलता दूर होती है। चित्त पुनः स्वस्थ हो जाता है। जप के उत्तम भाव में पुनः संलग्न हो जाता है। तब फिर जप को चालू कर देना चाहिए। चित्त में समता युक्त भाव रखना चाहिए। समता से जप में सहज तथा प्रगति होती है। चित्त में शांति का साम्राज्य स्थापित होता है। जिससे नवकार का स्मरण

चित्त में स्थायित्व प्राप्त करता है, शांति, समता और समर्पण - इन तीनों को साधक अपने जीवन में जितना उतारेगा, उतनी ही उसकी उन्नति और प्रगति होगी।

सात्विक भाव से की गई साधना कभी निष्फल नहीं होती। इसलिए उसके परिणाम या फल के लिए कदापि अधीर नहीं होना चाहिए। मन में धैर्य रखना चाहिए। नवकार की आराधना में व्यतीत होने वाले प्रत्येक क्षण का जीवन में अमोघ प्रभाव होता है। नवकार अपनी सूक्ष्म भूमिकाओं में अव्यक्त रुप में शुद्धि का कार्य करता है। उसका प्रभाव तत्काल ज्ञात नहीं होता, किंतु शनैः शनैः समुचित समय पर वह बाहर आता है। अपने समग्र रुप में वातावरण में उसके प्रभाव का अनुभव होता है। जब तक साधक के मन में चंचलता, अस्थिरता, श्रद्धाहीनता एवं संदिग्धता आदि भाव होते हैं, तब तक वह अपनी साधना में उन्नति नहीं कर सकता। इसलिए चित्त की इन वृत्तियों का अभाव होना आवश्यक है। उनके स्थान पर अचंचलता, स्थिरता, श्रद्धा, असंदिग्द्धता, दृढता तथा विश्वस्तता आदि को अपने चित्त में स्थापित करना अपेक्षित है।

मन को वश करने जैसा कठीन काम दूसरा नहीं है। ज्ञानी पुरुषोंने कहा है कि - कोई शायद सात समुद्र को अपने बाहुबलसे तैरकर पारकरे, समस्त वायु मंडलको सोखसके पर्वतोंको गेंद बनाकर खेल सके, लेकिन चंचल मन को वश करना यह सबसे असाध्य है। कठीन कार्य है।

साधक के मन में यह दृढ निश्चय रहना चाहिए कि जप के प्रभाव से ही उसका उद्देश्य सफल होगा। जैसे - जैसे उसे सफलता प्राप्त होती जाये, वैसे - वैसे उसे अपने चित्त में समर्पण भाव को अधिकाधिक बढ़ाना चाहिए।[१५०]

जप करते समय उसकी संख्या कितनी हुई, माला आदि के कितने आवर्तन हुए, इसका ध्यान रखने के साथ - साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जप में चित्त की एकाग्रता कहाँ तक हुई। एकाग्रता लाने हेतु भाव- विशुद्धि को बढाते रहना चाहिए। ज्यों - ज्यों भाव विशुद्धि बढती जाती है त्यों - त्यों एकाग्रता बढती जाती है। उसके फल स्वरुप हृदय का उल्लास बढता जाता है। कर्म - निर्जरण अधिकाधिक होता जाता है।[१५१]

मन में पुनः पुनः यह चिंतन करना चाहिए कि जप से निश्चित रुप में हृदय की शुद्धि होती है। उसके परिणाम स्वरुप बुद्धि में निर्मलता आती है। बुद्धि का मल या कालुष्य अपगत हो जाता है तो समस्त पुरुषार्थ - प्रयत्न सिद्ध सफल हो जाते हैं।

जपाभ्यासी साधक विषयों को, विष-वृक्ष के समान समझे। संसार के संबंधों को, समागमों को स्वप्नतुल्य देखे। अपनी वर्तमान अवस्था को नाटक के एक अंक या अंश के समान माने। अपने शरीर को बंदीगृह या कारावास समझे तथा घर को अतिथिशाला या

मुसाफिर - खाना माने। इस प्रकार अनित्यत्व आदि भावनाओंद्वारा अपनी आत्मा को अनुभावित करे।

नवकार मंत्र की जपाराधना से अनेकानेक गुणनिष्पन्न होते हैं। उससे आत्मा के शुभ कर्म का आस्रव होता है तथा अशुभ कर्म का संवर - निरोध होता है। पूर्वकृत कर्मों की निर्जरा होती है। लोकस्वरुप का बोध प्राप्त होता है। सुलभ बोधित्व प्राप्त होता है तथा भव-भव में सर्वज्ञ देव भाषित धर्म की प्राप्ति करानेवाला पुण्यानुबंधी पुण्य कर्म उपार्जित होता है। इस प्रकार की शुभ वासनाएँ साधक के चित्त में निरंतर आते रहने से साधक की जपाराधना को बल प्राप्त होता है।

आज के भौतिकवादी युग में आध्यात्म का अमृतपान करने के लिए नवकार महामंत्र के समान कोई भी निर्मल सरल मंत्र नहीं है। यह मंत्र कुत्सित विकल्पों से मन की रक्षा करता है। दूषित विचारों से मन का पार्थक्य एक बहुत बड़ा लाभ है। आज के विश्व की स्थिति यह है कि धन, सत्ता एवं वैभव की रक्षा हेतु बल का, प्रहरियों का सैनिकों का आयोजन किया जाता है। स्वास्थ्य की रक्षा हेतु अनेकानेक चिकित्सा केंद्रों का संचालन होता है किंतु संकल्प-विकल्पों से मन की रक्षा करने हेतु, उसे पवित्र रखने हेतु, उसे दुर्विचारों से विमुक्त रखने हेतु, एक भी समर्थ, सक्षम, साधन आयोजित होता हो, ऐसा दृष्टिगोचर, श्रवणगोचर नहीं होता। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि नवकार मंत्र ही इसका एक मात्र समर्थ साधन है। समस्त मंत्रों में नवकार महामंत्र आत्मा के उत्कर्ष, शांति और सुख की प्राप्ति की दृष्टि से सर्वोपरि है। आराधक के मन में सदैव यह भाव उद्वेलित होता रहे। इससे उसकी जपाराधना में शक्ति-संचय होगी।

आराधक के लिए उपयोगी शिक्षा

नवकार के आराधक की भाव भूमिका अत्यंत पवित्र और उच्च हो, यह आवश्यक है। इसलिए उसे अपने जीवन व्यवहार को सदा पवित्र, शुद्ध और निर्दोष रखना चाहिए। इस संबंध में उच्च कोटि के साधकों तथा ज्ञानि पुरुषों के अनुभव से लाभ लेना चाहिए। उससे जीवन में अंत:स्फूर्ति का जागरण होता है। इस संबंध में कतिपय भावोद्गार यहाँ उपस्थित किये जा रहे हैं।

साधक को किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए। पापियों के संबंध में भी केवल भवस्थिति का ही चिंतन करना चाहिए। उनसे घृणा नहीं करनी चाहिए। जो मनुष्य गुण गौरव युक्त हो, पूजनीय हो, उनकी सेवा करनी चाहिए। जिनमें अत्यंत गुण का लव मात्र भी हो, उनके प्रति गुणानुरागिता का व्यवहार रखना चाहिए।

हितयुक्त वचन बालकद्वारा भी कहा जाये तो उसे ग्रहण करना चाहिए। दुर्जन के प्रलाप को सुनकर उसके प्रति अपने मन में द्वेष भावना नहीं लाना चाहिए। दूसरों से आशा करने का त्याग करना चाहिए तथा समस्त संयोगों को बंधन रुप समझना चाहिए।

दूसरे यदि स्तुति या प्रशंसा करें तो गर्व नहीं करना चाहिए। यदि वे निंदा करें तो क्रोध नहीं करना चाहिए। धर्माचार्यों की सेवा करनी चाहिए तथा तत्वों के संबंध में जिज्ञासा करनी चाहिए एवं तत्व बोध प्राप्त करने का उद्यम करना चाहिए।

शौच-आंतरिक पवित्रता, स्थिरता, दंभ-शून्यता तथा वैराग्य का सेवन करना चाहिए। अभ्यास करना चाहिए। आत्म निग्रह करना चाहिए। आत्मा को अशुभ प्रवृत्तियों से, सावद्य कार्यों से बचाना चाहिए तथा शरीर आदि के वैरुप्य का - विकार या नाश का चिंतन करना चाहिए। [१५२]

उपर्युक्त शिक्षायें एक आराधक के लिए उसके जीवन का मूल मंत्र है। जिन का अनुसरण करने से वह आत्म स्थिरता और प्रशांतता प्राप्त करता है। ऐसे साधक को पंचपरमेष्ठी भगवंतों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है क्योंकि श्रद्धा को विचलित करनेवाले दुर्गुणों को वह समाप्त कर देंता है। श्रद्धा ज्यों -ज्यों उत्कर्ष प्राप्त करती है वैसे - वैसे साधक में पंचपरमेष्ठी के साथ तादात्म्य भाव निष्पन्न होता है। नमस्कार महामंत्र की वास्तविकता का उसे परिचय प्राप्त होता है और वह अनुभव करता है कि नवकार मंत्र आध्यात्मिक समृद्धि का शब्दात्मक प्रतीक है।

समुचित योग्यता संपन्न आराधक यह समझ लेता है कि जिस प्रकार भोजन का प्रत्येक कण देह की पुष्टी करता है। इन्द्रिय शक्ति की वृद्धि करता है। क्षुधा को दूर करता है, उसी प्रकार नवकार मंत्र का एक बार भी स्मरण करने से अज्ञान, कषाय और प्रमाद शांत होते हैं, बार - बार जप करने से मानसिक एवं बौद्धिक शुद्धि होती है।

अभ्यास और अनुभव से साधक यह चिंतन करता है कि नवकार मंत्र में निरुपित, वंदित पंचपरमेष्ठी भगवंतों में मन लगाना, यद्यपि पर्वत पर आरोहण करने जैसा दुष्कर कार्य है, किंतु पर्वत पर चढ जाने के पश्चात् सुंदर स्वास्थ्यप्रद मनोज्ञ वायुमंडल की प्राप्ति से मन आह्लादित हो जाता है। उसी प्रकार नवकार मंत्र में मन लगाना, तन्मय होना, कोई सरल कार्य नहीं है। बहुत ही कठिन है किंतु प्रयत्न और लगन से वह कठिनाई दूर हो जाती है। नवकार मंत्र में मन तन्मय हो जाता है। आत्मा आध्यात्मिक आनंद की अनुभूति करता है।

यह तभी होता है जब साधक अपने आप को बाहरी और भीतरी दुर्गुणों और दोषों से अपने को दूर कर देता है। आत्म-सूचिता या भवसिद्धि प्राप्त कर लेता है। वैसे आराधक द्वारा निष्पादित नवकार की आराधना बहुत ही फलप्रद सिद्ध होती है। साधक को परमात्म

प्राप्ति के प्रशस्त पथ पर प्रगतिशील बनाती है। अंततोगत्वा आराधक की आराधना सिद्ध सफल हो जाती है।

नवकार से विनय का उद्‌बोध :

विनय आत्मा का मूल गुण है। उससे जीवन में ऋजुता, मृदुता और सहृदयता आती है। अहिंसा आदि समस्त धर्मों में विनय का प्रमुख स्थान है। नमस्कार से विनय का उद्‌भव होता है।

धर्म को समझने हेतु कर्मो के स्वरुप के समझना आवश्यक हैं, जो कर्म - सिद्धांत को जान लेता है, उसमें अवश्य ही नम्रता आती है, क्योंकि वह समझता है कि इस संसार में जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है वह सब कर्मों की फल-निष्पत्ति का ही विस्तार है। उसे देखते हुए कौन किस बात का गर्व करे। ऐसा चिंतन सहजरुप में अंत:करण में विनम्रता की भावना को उजागर करता है, विकसित करता है। नम्रता से संयम का भाव उदित होता है। नवकार मंत्र विनयभाव को उत्तरोत्तर बल प्रदान करता है। विनयशील पुरुष नये कर्मों के निरोध और पुराने संचित कर्मों के निर्जरण का, तपश्चरण का मार्ग अपनाता है। वह उसमें परिश्रांत नहीं होता। वह सदा उल्लसित, हर्षित एवं प्रफुल्लित रहता है। आध्यात्मिक साधना उसके लिए सहज बन जाती है, जो धर्माचरण करता हुआ अहंकार करता है, उसकी धर्माराधना वास्तव में आराधना नहीं है। वह तो बाह्य क्रिया मात्र है। धर्म का आभास मात्र है। कर्मों की भयानकता एवं दु:खजनकता को जानने से जो नम्रता उद्‌भुत होती है। वह वास्तविकता नम्रता है।

जब तक कर्मों के स्वरुप का बोध न हो तब तक कर्म रुपी कचरे को आत्मा से निष्कासित करने की तथा उसे रोकने की वृत्ति ही उत्पन्न नहीं होती। नम्रता को उत्पन्न करनेवाला तत्वज्ञान यदि प्राप्त न हो तो आत्मा कर्मो को क्षीण करने वाला तत्वमूलक धर्म को पा नहीं सकता।

दशवैकालिक सूत्र में प्रारंभ में ही कहा गया है -

धर्म उत्कृष्ट मंगल है। वह अहिंसा, संयम एवं तप रुप है। जिसका मन सदा उस धर्म में संलग्न रहता है, देव भी उनको नमस्कार करते हैं। वह इस धर्म के कारण अत्यंत पूज्य, पवित्र और देव-वंद्य हो जाता है। [१५३]

अहिंसा, संयम तथा तप मूलक धर्म को प्राप्त करने के लिए कर्म की सत्ता, बंध,उदय उदीरणा आदि जिनका सर्वज्ञ जिनेश्वर देव ने निरुपण किया है, जानना आवश्यक है। जानने से ही अहिंसा आदि धर्मो को साधक अंगीकार कर सकता है।

आठ प्रकार के कर्म बतलाये गये हैं - १) ज्ञानावरण २) दर्शनावरण ३) वेदनीय ४) मोहनीय ५) आयुष्य ६) नाम ७) गौत्र और ८) अंतराय - ये आठ कर्म है।[१५४] विनय में ऐसी शक्ति है कि वह इन आठों कर्मो को दूर करने में समर्थ है। इसका भाव यह है कि आठ कर्मो के बंधने के मुख्य कारण - १) जातिमद, २) कुलमद ३) बलमद ४) रुप मद ५) तप मद ६) श्रुत मद ७) लाभ मद ८) ऐश्वर्य मद [१५५] - ये आठ प्रकार के मद हैं। विनय ऐसा गुण है जो आठों मदों का मूलच्छेद कर सकता है।

यह आत्मा अनादिकाल से चले आते कर्म संबंध के कारण परतंत्र, परवश और क्षुद्र दशा में विद्यमान हैं। सर्वज्ञ देव के वचनद्वारा ऐसा ज्ञान होता है, उसका चिंतन करने से जाति, कुल, रुप, बल, लाभ एवं ऐश्वर्य आदि से उत्पन्न होने वाले मद अभिमानयुक्त भाव नष्ट हो जाते हैं तथा साधक में विनम्रता उदित होती है। [१५६] नवकार मंत्र साधक के अंत:करण में ऐसे भाव उत्पन्न करते है और आत्मा को धर्म से संयोजित करता है।

क्रोध, मान, माया, लोभ - चार कषाय [१५७] तथा आहार, भय, मैथुन एवं परिग्रह - चार संज्ञाएँ [१५८] श्रोतेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, इन पाँचों इन्द्रियों को [१५९] पाँचों विषय, आठ कर्मो के कारण-भूत है, जो जीव इनके कठोर परिणामों से, भव भ्रमण से भयभीत होता है, वह सद्धर्म को प्राप्त करने का वास्तविक अधिकारी या पात्र होता है।

जिन जीवों ने धर्म को प्राप्त किया, जो धर्म के पथ पर प्रगतिशील हुए, जिन्होने साधना में उत्कर्ष प्राप्त किया, उनके प्रति नवकार के आराधक के मन में भक्ति एवं प्रमोद भाव उदित होता है। जो धर्म को प्राप्त नहीं कर सकते हैं, उनके प्रति उनके मन में करुणा, माध्यस्थ भाव आता है। वह सोचता है कि ये लोग कितने अभागे हैं जो इतने उत्तम धर्मोको भी स्वीकार नहीं कर सके। ये बेचारे दया के पात्र हैं। जब जीवन में विनय भाव परिव्याप्त हो जाता है। तभी इसप्रकार के उत्तम भाव मन में आते हैं, वैसा व्यक्ति किसी को छोटा यातुच्छ नहीं मानता। वह यही सोचता है कि किसी व्यक्ति में जो निम्नता, हीनता या तुच्छता है वह उसके अपने कर्मोका फल है। उसके अध्यवसाय, हीनता का परिणाम है। इसलिए न उसके मन में क्षुब्धता, क्रुरता आती है और न घृणा ही उत्पन्न होती है। वह अपने मन में तटस्थता बनाये रखता है, वैसा करनेवाला साधक अपनी साधना पथ से विचलित नहीं होता।

विनीतता या विनम्रता नवकार मंत्र की एक ऐसी अनुपम अमूल्य देन है, जो साधक को आत्मा के उर्ध्वगामी पथ पर सदा अग्रसर बनाती रहती है।

नवकार मंत्र में वर्णित परमेष्ठी भगवान् जो सबके लिए नमस्करणीय है, इसी भाव का स्पर्शकर वे वैसे बनते हैं। वास्तव में जो नमस्करणीय - नमस्कार करने योग्य है-उनको नमस्कार करने से जीवन में सच्चा नमस्कार भाव, विनय भाव अवतरित होता है।[१६०]

नवकार मंत्र की अपरिवर्तनशीलता -

जो तत्व शाश्वत होते हैं, नित्य होते हैं, उनका मूल स्वरुप कभी भी परिवर्तित नहीं होता। वह सदैव अपरिवर्तनशील रहता है। नवकार मंत्र एक ऐसा ही शाश्वत सत्य है, परम तत्व है। नवकार भी एक आध्यात्मिक विधान का द्योतक है। वह सद्गुण निष्पन्न आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के आधार पर अवस्थित है। संसार के सब प्रकार के विधानों की तुलना में नवकार मंत्र का विधान सर्वोत्तम और सर्वोपरि है क्योंकि वह सब अपेक्षाओं से परीपूर्ण है।

नवकार मंत्र की शब्दावली अपनी सूक्ष्म तत्वगर्भिता के कारण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अनादिकाल से नवकार अपने एक ही रुप में चला आ रहा है। उसका अपना शाश्वत स्वरुप अनादि अनंत है। वह त्रैकालिक सत्य पर आधारित है। वह सदैव अतीत में इसी रुप में रहा है। वर्तमान में इसी रुप में विद्यमान है और भविष्य में भी वह ऐसा ही अपरिवर्तनशील रहेगा।

नवकार मंत्र जैन शासन का अनादिकालिन एकमात्र मूल मंत्र है। कोटिकोटि श्लोक परिमित दृष्टिवाद द्वारा जो साधा जा सकता है, वह नवपद युक्त छोटे से नवकार मंत्र में विद्यमान, विशाल अर्थ के चिंतनद्वारा सहजही प्राप्त किया जा सकता है।इस कारण नवकार मंत्र को चौदह पूर्वो का सार कहा गया है तथा समग्र स्मरणों में यह प्रथम सर्वोत्तम स्मरण माना गया है।

यह संसार परिवर्तनशील है। आज तक अनंत पुद्गल परावर्तों के अंतर्गत यह अनंत रुपों में परिवर्तित होता रहा है। आज जो जीव जिस पर्याय में है, अपनी कर्मबद्धता के कारण इससे पहले न जाने कितनी गतियोंमें, कितने रुपोंमें, कितनी पर्यायों में परिणत, परिवर्तित होता रहता है।

एक जीव संसार के समस्त पुद्गलों को जब एक बार किसी न किसी रुप में भोग लेता है, काम में ले लेता है उसे एक पुद्गल परावर्तन को जाता है।

जैन दर्शन में पुद्गल शब्द भौतिक परमाणु पूंज के लिए प्रयुक्त हुआ है।

जीव अनंत पुद्गल परावर्तन करता है। देह रुप आदि की दृष्टि से उसमें अनंती बार परिवर्तन होता रहता है किंतु नवकार मंत्र सदैव अपरिवर्तनशील रहता है।

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल चक्रों के अंतर्गत तीर्थंकरों की अनंती चौबीसियाँ परिवर्तित होती रहती है किंतु नवकार मंत्र कभी भी कदापि परिवर्तित नहीं होता, सदा एक ही रुप में होता है।

भिन्न-भिन्न तीर्थकर अपने-अपने काल में जो धर्मदेशना देता हैं उनमें ये नवकार मंत्र अपरिवर्तित रुप में ही उद्देशित होता है। वह किंचित मात्र भी नहीं बदलता। नवकार मंत्र की

अपरिवर्तनशीलता का मुख्य कारण यह है कि इस मंत्र में जिन पंचपरमेष्ठियों को नमन किया गया है। वे किसी काल विशेष के साथ संबद्ध नहीं है। उनमें व्यक्ति विशेष की सूचन नहीं है, वे तो उन नित्य, शाश्वत एवं सत्य गुणों के सूचक है जो त्रिकालवर्ती है। अनंत चौबीसियों में जितने भी अरिहंत, वीतराग सर्वज्ञ हुए है, वर्तमान में है, भविष्य में होंगे, उन सबका अरिहंत पद में समावेश हैं। उसी प्रकार सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधुपद पर भी यही बात लागू होती है।

वे महापुरुष सदैव नमस्करणीय रहे हैं, वर्तमान में भी वे नमस्कार योग्य है तथा भविष्य में भी नमस्करणीय रहेंगे, क्योंकि उनमें नमस्कार योग्यत्व का आधार आत्म स्वभाव मूलक संवर निर्जरामय मोक्ष रुप धर्म है।

धर्म का मूल स्वरुप कभी बदलता नहीं, संवर, निर्जरा और मोक्ष भी कभी परिवर्तित नहीं होते। ये सभी शाश्वत सत्य के द्योतक है। नवकार इन्हीं पर टिका हुआ है। इसलिए वह न कभी परिवर्तित हुआ है और न कभी परिवर्तित होगा।

यह सदा अपरिवर्तनशील रहता हुआ अनंत भव्यात्माओं को आत्मशुद्धि, आत्मकल्याण और कर्म मुक्ति का पथ दिखलाता है। इससे प्रेरणा प्राप्त अनेकानेक भव्य जीवों ने अपने जीवनको सफल बनाया है और बनाते रहेंगे। नवकार मंत्र विश्वजनीन, सार्वजनीन एवं सार्वकालिन है।

●●●

जप और जप के प्रकार -

विद्वानों एवं साधकों ने शास्त्रावगाहन एवं अनुभव के आधार पर जप के अनेक विधिक्रम बतलाये हैं। उनमें तीन मुख्य है -

कमल-जाप्य, हस्तांगुली-जाप्य तथा माला-जाप्य। जप में निर्मलता और स्थिरता रहे इस हेतु ज्ञानी पुरुषों ने अनेक प्रकार की परिकल्पनाएँ की है, जो जप की पवित्रता में सहायक बनती है। इन तीन प्रकार के जपों का संक्षेप में निम्नांकित विश्लेषण है।

कमल-जाप्य -

साधक अपने हृदय में एक श्वेत कमल की कल्पना करे, जिसके आठ पत्र - पखुंड़िया हैं। उस कल्पना को यों आगे बढाये - उस कमल के प्रत्येक पत्र पर पीत वर्णयुक्त बारह - बारह बिन्दु हैं। कमल के बीच में जो कर्णिका है, उस पर भी उसी प्रकार के बारह बिन्दुओं की परिकल्पना करे। इस प्रकार कर्णिका सहित पत्रों पर कुल १०८ बिन्दु होते हैं।

साधक प्रत्येक बिन्दु पर पूरे नवकार मंत्र का जप करे। बिन्दुओंकी गणना और क्रम को ध्यान में रखता जाये। इस प्रकार उन सब पर १०८ नवकार मंत्र का जप संपन्न होता है।

साधक के मन को एकाग्र एवं सुस्थिर रखने में वह कमल, उसके पत्र, उसकी कर्णिका तथा उन पर परिकल्पित पीत वर्णमय बिन्दु बड़े सहायक सिद्ध होते हैं। उन पर मन टिका रहता है। वे नवकार जप के आलंबन बन जाते हैं। आलंबन के बिना जप करने से मूल लक्ष्य पर ध्यान टिकना कठिन होता है। इसलिए कमल-जाप्य की कल्पना बड़ी मनोवैज्ञानिक और हितप्रद है। [१६१]

आचार्य हेमचंद्र ने भी योगशास्त्र में कमल के आधारपर नवकार मंत्र के चिंतन का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है -

साधक आठ पत्रयुक्त श्वेत कमल की कल्पना करे। कमल के मध्य कर्णिकापर वह नवकार मंत्र के प्रथम पद ''णमो अरिहन्ताणं'' के सात अक्षरों को भावना के रुप में अंकित करे, फिर उस कमल के पूर्व दिशा के पत्र पर णमो सिद्धाणं दक्षिण दिशा के पत्र ''णमो आयरियाणं'' पश्चिम दिशा के पत्र पर ''णमो उवज्झायाणं'' तथा उत्तर दिशा के पत्र पर ''णमो लोए सव्व साहूणं'' का चिंतन करे। ततूपश्यात आग्नेय कोन में एसो पंच णमुक्कारो, नैऋत्य कोन में ''सव्व पावप्पणासणो'' वायव्य कोन में ''मंगलाणं च सव्वेसिं'' तथा ईशान कोन में ''पढमं हवइ मंगल'' की परिकल्पना करे। उन पर चिंतन, जप और ध्यान करे। [१६२]

मंत्र का एक सौ आठ बार जप क्यों किया जाता हैं ? इस संबंध में बतलाया गया है कि मनुष्य हर रोज १०८ प्रकार के पाप करता है। पाप की उत्पत्ति में आरंभ, समारंभ तथा समरंभ ये तीन हेतु है। मानसिक, वाचिक एवं कायिक भेद से ये तीन-तीन प्रकार के होते हैं। करना, कराना, अनुमोदन करना - इनके अनुसार फिर इनके तीन-तीन भेद होते हैं। तदनुसार ३ X ३ X ३ X ३ =२७ भेद होते हैं। क्रोध, मान, माया तथा लोभ - इन चार कषायों का २७ से गुणन करने से २७ X ४=१०८ गुणनफल होता है। प्रतिदिन मनुष्यद्वारा होनेवाले पाप यों एक सौ आठ प्रकार के होते हैं। इन पापों का नाश करने हेतु १०८ बार नवकार मंत्र का जप किया जाता है। इस प्रकार यह क्रम सदा से चलता आ रहा है। यहाँ प्रयुक्त आरंभ शब्द का अर्थ हिंसा है, हिंसा को चालू रखना समारंभ कहा जाता है। समारंभ के अनेक अर्थ है जिनमें विक्षोभ, उत्तेजना, क्रोध, रोष एवं अहंकार भी है। [१६३] विक्षोभ, क्रोध आदि से हिंसा को बल मिलता है। इसलिए वह रुकती नहीं है। इसी कारण तीनों को पाप के उद्‌भव का हेतु माना गया है।

एक सौ आठ की संख्या का एक और भी आधार माना जाता है। नवकार मंत्र में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, तथा साधु - ये पांच पद है। इनमें अरिहंत के १२, सिद्ध के ८, आचार्य के ३६ उपाध्याय के २५ और साधु के २७ गुण होते है। [१६४]

ये कुल मिलाकर १०८ होते हैं। इन्हें दृष्टि में रखते हुए १०८ बार मंत्र जप का क्रम चलता आ रहा है।

हस्तांगुली जाप्य

जब तक साधक की साधना परिपक्व नहीं होती, तब तक उसे जप आदि धार्मिक क्रियाओं में आलंबन की आवश्यकता रहती है। कमल-जाप्य में जिस प्रकार कमल, उसके पत्र, कर्णिका एवं उन पर परिकल्पित बिन्दुओं के आधार पर जप चलता है, उसी प्रकार अंगुलियोंके आधार पर भी जप करने की विधि है। इसको करमाला भी कहा जाता है। मनकों की माला की अपेक्षा इसे श्रेष्ठ माना गया है। प्राचीन काल में करमाला पर ही प्राय: जप किया जाता था, क्योंकि मानसिक एकाग्रता में इससे अधिक सहायता मिलती। करमाला के अनेक आवर्त है। साधारण आवर्त, पटनावर्त, सिद्धावर्त, नवपदावर्त, ह्रीं आवर्त, नंदावर्त तथा ॐ आवर्त मुख्य है, उदाहरणार्थ प्रारंभ में तीन आवर्तो के स्वरुप निम्नांकित है।

साधारण आवर्त -

साधक अपने दाहिने हाथ की कनिष्ठा अंगुली के नीचे के पोरवे से जप प्रारंभ करें, क्रमश: कनिष्ठा के तीनों पोरवे, चौथा अनामिका के ऊपर का, पाँचवा मध्यमा के ऊपर का, छठा तर्जनी के ऊपर का, सातवां तर्जनी के मध्य का, आठवाँ तर्जनी के नीचे का, नौवां मध्यमा के नीचे का, दसवाँ अनामिका के नीचे का, ग्यारहवाँ अनामिका के मध्य का तथा बारहवां मध्यमा के मध्य का - इस प्रकार बारह जप होते हैं। यों नौ बार गिन लेने से एक माला पूर्ण हो जाती है।

पटनावर्त -

पटनावर्त में पाँच परमेष्ठी पदों का जप किया जाता है। नवकार मंत्र के प्रथम पद णमो अरिहंताणं का ब्रह्मरंध्र में, दूसरे पद णमो सिद्धाणं का ललाट में, तीसरे पद णमो आयरियाणं का कंठ में, चौथे पद णमो उवज्झायाणं का हृदय में तथा पाँचवे पद णमो लोए सव्व साहूणं का नाभि कमल में ध्यान करे।

पटनावर्त का एक अन्य प्रकार भी है, जिसके अनुसार प्रथम पद ब्रह्मरंध्र में द्वितीय पद, ललाट में , तृतीय पद चक्षु मे, चतुर्थ पद श्रवण में तथा पंचम पद मुख में स्थापित करके ध्यान करे।

सिद्धावर्त-

सिद्धावर्त में वर्तमान काल में चौबीस तीर्थकरों का जो मोक्ष या सिद्ध-पद प्राप्त कर

चुके हैं, ध्यान किया जाता है। दोनों हाथों को मुख के सामने खुले रखकर, दोनों हथेलियों की आयुष्य रेखा मिलावें, सिद्धशिला की आकृति की कल्पना करे, दोनों हाथों की आठों अुंगलियों पर चौबीस तीर्थंकरो का ध्यान करे। जप करते समय प्रत्येक तीर्थंकर का जप इस प्रकार करें - ऊँ ऱ्हीं श्रीऋषभदेवाय नम:। इसी प्रकार सभी तीर्थकरों के नाम के पूर्व ऊँ ऱ्हीं श्री और अंत में नम: जोड़े। तीर्थंकरों मे नाम में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग करे।[१६५]

माला जाप्य

जप के आधार के रुप में माला का भी प्राचीन काल से प्रयोग होता रहा है। माला में १०८ मनके होते हें।[१६६] १०८ की संख्या का कारण ऊपर उल्लेखित किया जा चूका है। माला के प्रत्येक मनके पर एक जप किया जाता है। पूरी माला का आवर्तन करने से १०८ नवकार मंत्र का जप होता है। जिस प्रकार कमल-पत्र, कर्णिका आदि को आधार मानकर जप करने से मन में स्थिरता आती है, वैसे ही मन को मंत्र पर टीकाने में माला भी सहायक सिद्ध होती है।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि माला तो बाह्य साधन है, मंत्र का मुख्य संबंध तो साधक की अंतरात्मा के साथ है। इसलिए जप करते समय साधक का मन मंत्र के भाव के साथ संयुक्त रहना चाहिए। यदि मन मंत्र के आशय से सर्वथा पृथक् रहे तो माला फेरने से उतना लाभ प्राप्त नहीं होता, जितना होना चाहिए। माला के साथ - साथ अंत:करण भी जुडना चाहिए।

"माला फेरत जुग भया, मिटा न मनका फेर। करका मनका डारिके, मनका मनका फेर॥"

संत कबीर के कथन का अभिप्राय यह है कि माला - फेरनेवाला यदि मनको भी उसमें लगादे तो माला फेरना सार्थक हो जाए।[१६७]

"महामंत्रनां अजवाला" नामक पुस्तक में श्री उपदेश प्रसाद, श्राद्धविधि आदि के आधार पर जप के संबंधमें उल्लेख हुआ है। - मेरु का उल्लंघन करते हुए अंगुलिके अग्रभाग से व्यग्रचित्तपूर्वक यदि जप किया जाय तो प्राय: अल्प फलप्रद होता है।

इससे यह ध्वनित होता है कि - अंगुलिसे जप करना उचित नहीं है। यहाँ कुछ लोग अंगुली के अग्रभाग का अर्थ नख करते हैं। अत: नख को सटाकर जप नहीं करना चाहिए। अंगूठे से निरंतर जप करें तो मोक्ष - पद की प्राप्ति होती है। तर्जनी द्वारा जप करें तो शत्रु का नाश होता है। मध्यमाद्वारा जाप करे तो सभी दास वशगत हो जाते हैं। अत: अनामिकाद्वारा जप किया जायें।[१६८]

मालाएँ सूत, चंदन, स्फटिक, विद्रुम (मूंगा) रुद्राक्ष, वैजयंती आदि अनेक प्रकार की प्रयोग में ली जाती है। इनमें से साधक अपनी रुचि के अनुरुप माला का प्रयोग कर सकता है।

इन तीन प्रकार के जप के क्रमों में कमल - जाप्य को उत्तम माना जाता है। वहाँ मन का उपयोग अधिक स्थिर रहता है। कर्मों के बंधनों को क्षीण करने में यह विधि अधिक लाभप्रद है। इसमें जप के साथ - साथ ध्यान भी सिद्ध होता है। मन को एकाग्र करने में इस विधि से विशेष प्रेरणा तथा शक्ति प्राप्त होती है किंतु यह जप भलीभाँति समझकर अभ्यास करने से सिद्ध होता है, क्योंकि यह मन की शुभ्र परिकल्पनाओं पर आधारित है। कल्पनाद्वारा मंत्र के पदों का कर्णिका पर एवं पत्रों पर भावात्मक रुप में अंकन करना, चिंतन करना सरल नहीं है। किंतु सतत प्रयत्न और अभ्यास से यह हो सकता है।

जप का त्रिविध क्रम

आध्यात्मिक साधना के मार्ग में जप का वास्तव में बहुत महत्त्व है। वह अपने आराध्य देव के पावन शुद्ध स्वरुप को प्राप्त करने में बहुत सहायक सिद्ध होता है। महर्षि पंतजलि ने योगसूत्र में जप की परिभाषा करते हुए लिखा है -

"तज्जपस्तदर्थभावनम् "

जिनका जप किया जाये, उनके अर्थ की मन में भावना की जाये। वैसा करने से जप सार्थक और सफल होता है। [१६९]

जप के सूक्ष्म गहन स्वरुप पर विद्वानों ने अनेक प्रकार से व्याख्याएँ की है। उनका एक ही लक्ष्य रहा कि जप में लोगों की प्रवृत्ति हो, उसके रहस्य का उन्हें ज्ञान हो तथा अभ्यास में उनकी अभिरुचि बढे। अनेक अपेक्षाओं से जप के अनेक भेद किये गये हैं। जप का मूल स्वरुप, तत्व एक ही है। उसे अधिकृत करने में साधक को अनुकूलता और सुविधा हो, अतएव विवेचन में विविधता का अवलंबन किया गया है। उनके अनुशीलन से ज्ञान की वृद्धि होती है। बुद्धि में निर्मलता आती है तथा भावनाओं में पवित्रता का संचार होता है। मंत्रात्मक विवेचनों और व्याख्याओं का गहन अध्ययन स्वाध्याय का महत्त्वपूर्ण विषय है। ज्ञान तथा विवेक के साथ की गई साधना की फलवता विलक्षण होती है।

विद्वदज्जनों ने एक अपेक्षा से भाष्य, उपांशु तथा मानस- जप को तीन भेदों में विभक्त किया है। उन्होंने बतलाया है कि ये जप क्रमश: उत्तरोत्तर अधिक श्रेष्ठ है अर्थात् भाष्य जप से उपांशु जप एवं उपांशु जप से मानस जप अधिक फलप्रद है। भाष्य जप अभ्यास का प्रारंभ है जो उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ उपांशुजप में परिणत हो जाता है

। यह जप का क्रम साधारण साधकों की दृष्टि से है, जो पूर्व जन्म के उच्च संस्कारों से युक्त होते है, उनके लिए इस क्रम को स्वीकार करना आवश्यक नहीं है। वे भाष्य तथा उपांशु जप के अभ्यास के बिना ही मानस जप प्राप्त कर लेते हैं। इन तीनों जपों का संक्षिप्त वर्णन निम्नांकित है।

भाष्य जप

''भाषितुं योग्यं भाष्यम्'' जो भाषा द्वारा उच्चारित होने योग्य होता है, बोला जाता है, उसे भाष्य कहा जाता है अथवा ''यस्तु परैः श्रुयते स भाष्यः'' जो दूसरों के द्वारा सुना जा सके, वह भाष्य है। इन दोनों शाब्दिक व्युत्पत्तियों का यह अभिप्राय है कि जो जप ओष्ठ हिलाकर स्पष्टउच्चारणपूर्वक किया जाता है, वह भाष्य जप कहलाता है। वह वैरवरी वाणी ख से संबद्ध होता है। साधक मधुर स्वर से ध्वनियों का स्पष्ट उच्चारण करता हुआ उसका अभ्यास करे। भाष्य जप से चित्त में नीरवता, शांतता आती है। यह वचन-प्रधान है। इसलिए इसे वाचक जप या मुखर जप भी कहा जाता है। यह जप जब भलीभाँति सिद्ध हो जाता है तब साधक उपांशु जप के अभ्यास में तत्पर होता है।

उपांशु जप -

उपांशु जप के लिए कहा गया है - उपांशुस्तु परैरश्रुयमाणोऽन्तर्जल्पः [१७०] जप करते समय दूसरे न सुन सके, जो अंतर्जल्प रुप या आभ्यांतरिक रटन रुप हो, वह उपांशु जप कहा जाता है। इन जप में ओष्ठ, जिव्हा आदि मुख के अंगों का व्यापार तो गतिशील रहता है किंतु व्यक्त रुप में ध्वनि या आवाज नहीं होती। इसमें वाचिक प्रवृत्ति निवृत्त हो जाती है, कायिक प्रवृत्ति अभिव्यक्त रहती है। सावधानी के साथ साधक इसका अभ्यास करता जाये तो वह आगे मानस जप में पहुँच जाता है, जो पश्यंती वाणी से संबद्ध हैं।

मानस जप -

मानस जप का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है -

मानसो मनोमात्रवृत्तिर्निवृत्तः स्वसंवेद्यः[१७१]

जो केवल मन की वृत्ति द्वारा होता है, जिसमें कायिक और वाचिक प्रवृत्ति निवृत्त हो जाती है, जिसे साधक स्वयं अनुभव कर सकता है, वह मानस जप है। वह सूक्ष्म और सारगर्भित है।

जप करते समय दृष्टि मंत्र के अक्षरों पर रहे। बाह्य रुप में नासिका के अग्रभाग पर टिकी रहे। यदि ऐसा करने का साधक को अभ्यास न हो तो वह अपने नेत्रों को बंद रखें। कल्पना में अक्षरों को लक्ष्य में रखकर जप करता रहे। जब मानस-जप सम्यक् अभ्यस्त या

सिद्ध हो जाता है, तब नाभिगत परावाणी से जप किया जाता है। इसे योग में अजपाजाप कहा जाता है । अभ्यास जब परिपक्व हो जाता है तो इस जाप में चिंतन के बिना भी नवकार महामंत्र का निरंतर रटन होता रहता है । यहाँ तक कि उपयोग न हो तब भी यह श्वासोच्छवास की तरह अपने आप चलता रहता है । इसका कारण दृढ़ संकल्प है । उदाहरणार्थ जैसे कोई व्यक्ति चार बजे उठने का दृढ संकल्प कर सो जाता है तो चार बजे ही स्वयंही उसके नेत्र खुल जाते हैं, उसी प्रकार दृढ संकल्प और दीर्घकालीन अभ्यास के परिणाम स्वरुप अजपाजाप सिद्ध हो जाता है । देह के रोम -रोम से आराध्य देव का स्मरण अपने आप होने लगता है । इस जाप से साधक को एक ऐसे आध्यात्मिक सुख की अनुभूति होती है, जो शब्दोंद्वारा वर्णित नहीं की जा सकती ।

जप के अंतर्गत ॐ - जप, हृदयजप, नित्य जप, काम्य जप, प्रायश्चित जप, अचल जप, चल-जप, वाचिक जप, उपांशु जप, मानस जप, अखंड जप एवं अजपाजप आदि का भी विवेचन हुआ है । [१७२]

पंच विध जप -

शास्त्रों में एक अपेक्षा से जप के पाँच भेदों का वर्णन आया है ।

शाब्दाज्जापान्मौ नस्तस्मात् साथस्ततोऽपि चित्तस्य ।

श्रेयानिह यदि वाऽऽ त्मध्येयैक्यं जापसर्वस्वम् ॥

इस श्लोक के अनुसार शब्द, मौन, सार्थ, चित्तस्थ तथा ध्येयैक्य जप के ये पाँच प्रकार है । [१७३] इनका संक्षिप्त विवेचन निम्नांकित है ।

१) शब्द जाप -

जहाँ जप में शब्दों का उच्चारण व्यक्त रुप में होता है औरों को सुनाई देता है, वह शब्द जाप है । इसे भाष्य जाप या वाचिक जाप भी कहा जाता है , क्योंकि इसमें भाषा या वाणी का स्पष्ट रुप में प्रयोग होता है ।

२) मौन जाप

जिसमें वाणी या शब्द बाहर प्रगट नहीं होते, भीतर मानसिक दृष्टि से मंत्र के पदों का आवर्तन होता है, वह मौन जाप है ।

३) सार्थ जाप -

जहाँ मंत्र का जाप करते समय उसका अर्थ ध्यानमें रखा जाये, वह सार्थ जाप कहा जाता है, जैसे - णमो अरिहंताणं पद का उच्चारण करते ही मन में समवशरण में विराजित,

मुख-चतुष्ट्य द्वारा मालकोश राग में द्वादशविध परिषद के समक्ष, मेघ के सदृश गंभीर ध्वनि से अरिहंत भगवान् देशना दे रहे हैं, ऐसा भाव चित्त में अंकित रहे, यह सार्थ जप हैं।

जिनको मंत्र के अर्थ का ज्ञान नहीं होता, वे वाच्य पदों के अर्थ को ध्यान में नहीं ला सकते। इसलिए ध्येय में जैसी होनी चाहिए वैसी तन्मयता नहीं आती। यदि ध्येय में निरंतर तन्मयता रहे तो जप करने वाले को अपूर्व आनंद प्राप्त होता है। अतएव साधक के लिए नवकार मंत्र का अर्थ भलीभांति जानना आवश्यक है।

णमो सिद्धाणं पद का उच्चारण करते ही लोक के अग्रभाग पर शुद्ध स्फटिक सदृश पैंतालीस लाख योजन प्रमाण सिद्ध शिला पर विराजित अनंत सिद्ध भगवंतों का भाव-चित्र साधक के मन में अंकित हो, वे सिद्ध भगवान् निरंजन, निराकार, वीतराग सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी है, संपूर्ण सुख युक्त एवं सर्व शक्तिमान है, सिद्ध भगवान् की इन विशेषताओं का भाव भी साधक के मन में रहे।

णमो आयरियाणं पद का उच्चारण करते ही भगवान के धर्मशासन के नायक आचार्य भगवंत का भावचित्र मन में अंकित रहे। साथ ही साथ यह भाव भी उद्वेलित रहे कि वे आचार्यप्रवर ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार तथा वीर्याचार - इन पाँच आचारों से सुशोभित हैं एवं अपने शिष्यों से भी इन आचारों का पालन करवाते हैं। णमो उवज्झायाणं पद का उच्चारण करते ही सूत्र के पारगामी उपाध्याय भगवंत का भावचित्र मन में रहे। वे साधुओं को सूत्र सिद्धांत की वाचना दे रहे हैं, यह भाव भी साथ ही साथ में रहें।

णमो लोए सव्व साहूणं पद का उच्चारण करते ही शांत, दांत-धीर, गंभीर, आचार क्रिया में तत्पर तथा स्व पर कल्याण की साधना में संलग्न साधुसंतों का भावचित्र मन में उद्भासित रहे।

ऐसो पंच नमुक्कारो इत्यादि चूलिका के पदों का उच्चारण करते ही साधक अपने मन में ऐसा चिंतन करे कि इन पाँच नमस्कारों से मेरे पापों का नाश हो रहा है, मुझे उत्तम मंगल प्राप्त हो रहा है।

इस प्रकार जप करने से चित्त की चंचलता कम होती है, एकाग्रता बढ़ती है तथा आध्यात्मिक आनंद की वृद्धि होती है।

४) चित्तस्थ जाप-

इसे मानस जाप भी कहा जाता है। इस जप में चित्त की अत्याधिक एकाग्रता की आवश्यकता है। जिनका चित्त इधर-उधर घूमता रहता है, उनसे यह जाप नहीं हो सकता। मन को बंदर की तरह चंचल बतलाया गया है। वह क्षणभर भी कहीं टिकता नहीं कहा गया है।

अभ्यासेन स्थिरं चित्तम्, अभ्यासेनानिल च्युति: ।
अभ्यासेन परानन्दो, अभ्यासेनात्मदर्शनम् ।

अभ्यास से चित्त स्थिर होता है । अभ्यासद्वारा प्राणवायु को नियंत्रित किया जा सकता है । अभ्यासद्वारा परमानंद की प्राप्ति की जा सकती है तथा अभ्यासद्वारा ही आत्मदर्शन प्राप्त हो सकता है । [१७४]

वचनयोग से मनयोग की अधिक विशेषता है । इसलिए मानस जप अत्यंत श्रेष्ठ है । महापुरुषोंने स्तोत्र की अपेक्षा जप को कोटि गुणा अधिक लाभप्रद बताया है । उन महापुरुषों ने योगजनित ज्ञान के बल से यह प्रत्यक्ष अनुभव किया । जप से आंतरिक परिणामों में उज्ज्वलता आती है । जप ध्यान की पृष्ठभूमि है ।

५) ध्येयैकत्व जाप

आत्मा ध्याता है - ध्यान करनेवाला है । परमात्मा ध्येय है । उनका ध्यान किया जाता है । जब ध्याता और ध्येय की भेद - रेखा मिट जाती है, जप करनेवाला ध्याता ध्येय रुप परमात्मा के साथ ऐक्य साध लेता है तब यह जप सिद्ध होता है । यह जप का सर्वोत्तम रुप है ।

ये पाँच भेद जप द्वारा आत्मा को उत्कर्ष के उच्चतम भावतक पहुँचाने के सफल सौपान है ।

त्रयोदश विध जप -

एक बहुत प्रसिद्ध उक्ति है -

"जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्नसंशय: "

जप से सिद्धि होती है, जप से सिद्धि होती है, इसमें कोई संशय नहीं है । [१७५] यह जप की महत्ता का शास्त्र वाचन है । इसी कारण जप की विविध प्रकार से व्याख्याएँ की गई है तथा भिन्न-भिन्न प्रकृति तथा रुचि युक्त व्यक्तियों की भूमिका के अनुसार जप के अनेक प्रकार बतलाये गये हैं । उन्हें जानकर अपनी - अपनी अभिरुचि के अनुसार साधक -साधना में प्रगति एवं उन्नति कर सकता है । एक विशेष अपेक्षा से जप के तेरह भेद भी बतलाये गये हैं, जो इस प्रकार है -

"रेचक-पूरक-कुम्भा: गुणत्रयं स्थिरकृतिस्मृति हक्का ।
नादो ध्यानं ध्येयैकत्वं तत्वं च जप-भेदा: ।। "

१) रेचक, २) पूरक ३) कुम्भक ४) सात्त्विक ५) राजसिक ६) तामासिक ७) स्थिरकृति ८) स्मृति ९) हक्का १०) नाद ११) ध्यान १२) ध्येयैक्य १३) तत्त्व - ये तेरह प्रकार के जप हैं । [१७६]

१) **रेचक जप** - प्राणवायु को देह के भीतर से नासिकाद्वारा बाहर निकालना रेचक कहा जाता है। ऐसा करते हुए जो नवकार मंत्र का जप किया जाता है वह रेचक जप कहलाता है।

२) **पूरक जप** - प्राणवायु को नासिकद्वारा शरीर के भीतर ले जाना पूरक है। ऐसा करते हुए नवकार मंत्र का जो जप किया जाता है, वह पूरक जप है।

३) **कुम्भक जप** - प्राणवायु को देह के भीतर ले जाकर स्थिर करना, रोकना, कुम्भक कहा जाता है। वैसा करते हुए जप करना कुंभक जप है।

रेचक, पूरक, कुं भक का अष्टांग योग के चतुर्थ अंग प्राणायाम से संबंध है। ये प्राणायाम के तीन क्रम है। प्राणवायु का शरीर में सबसे अधिक महत्त्व है। सारे शरीर के संचालन में उसका मुख्य भाग है। इसलिए नवकार मंत्र को रेचक, पूरक और कुंभक के साथ जोड़ा गया है , जिसका अभिप्राय यह है कि वह व्यक्ति के श्वास - प्रश्वासन के साथ जुड़कर उसके जीवन का एक अंग बन जाये।

४) **सात्विक जप** - जो जप शांति और सुख हेतु किया जाता है वह सात्त्विक जप है।

५) **राजसिक जप** - जो जप रागात्मक कार्य के हेतु किया जाता है, वह राजसिक जप है।

६) **तामसिक जप** - जो जप क्रोध आदि के वश होकर तद्नुरुप कार्य हेतु किया जाता है, वह तामसिक जप है।

सात्विक, राजसिक और तामसिक जप का आधार सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण है। इनमें सत्त्व गुण सात्विक भाव प्रधान है। वह उत्तम धार्मिक कार्यों के साथ संबद्ध है। रजोगुण रागप्रधान लौकिक कार्यें से संयुक्त होता है। तमोगुण अज्ञानप्रधान होता है। जिस प्रकार अंधकार प्रकाश को रोकता है उसी प्रकार तमोगुण अज्ञान प्रधान होता है। जिस प्रकार अंधकार प्रकाश को रोकता है उसी प्रकार तमोगुण आत्मा के उद्योत को आवृत करता है। क्रोध, रोष, उत्तेजना के रुप में प्रगट होता है। इन तीनों प्रकार के जपों में सात्त्विक जप आदेय है, मुमुक्षु जनों के लिए स्वीकार करने योग्य हैं किंतु राजसिक और तामसिक जप अशुभ बंध हेतु हैं अत: वे मुमुक्षओं के लिए परिहेय - त्यागने योग्य है। यहाँ उनकी लोक प्रचलितता को ध्यान में रखते हुए उन्हें जप के भेदों में लिया गया है। जैसे आर्तध्यान और रौद्रध्यान दोनों पाप बंध के हेतु है, फिर भी ध्यान के भेदों में उनको गृहीत किया जाता है , वही बात राजसिक और तामसिक जप के साथ है।

७) **स्थिरकृति जप** - जहाँ साधक किसी भी प्रकार के विघ्नों के आने पर भी जप से विचलित नहीं होता, अत्यंत स्थिरता पूर्वक जप में संलग्न रहता है, वह स्थिर कृति जप है।

८) **स्मृति जप** - दृष्टि को नेत्रों के दोनों भौओं के मध्य से नासिका के अग्रभाग पर स्थिर कर, मंत्र का मन से जप करना स्मृति जप है।

९) हक्का जप - जिस मंत्र के अंत के पद क्षोभोत्पादक हो, उसका जप करना हक्का जप कहलाता है। अथवा हक्का जप की व्याख्या एक और प्रकार से भी की जाती है - जिस जप में श्वास को भीतर ले जाते समय और बाहर निकालते समय हकार का विशेष रुप से उच्चारण किया जाता है, वह हक्का जप है।

यह एक विशेष विधि है जिसका मंत्र के अनुसरण किया जाता है। इस विधि का आध्यात्मक दृष्टि से विशेष उपयोग नहीं होता।

१०) नाद जप - जप करते समय मन में भंवरे की तरह गुंजार की ध्वनि हो, वह नाद जप है। तन्मयता की दृष्टि से इस जप की विशेष उपयोगिता है। इसका विशेष बोध गुरु गम्य है।

११) ध्यान जप - मंत्रो के पदों का वर्ण आदि पूरक ध्यान करना ध्यान जप है अर्थात् साधक जप करे, तब मंत्र के प्रत्येक वर्ण पर क्रमश: ध्यान करता जाए। जैसे णमो का उच्चारण करते समय तत्क्षण ण का तत्पश्चात् मो का, इसी प्रकार क्रमश: आगे के वर्णों का ध्यान करते रहना इस जप में समाविष्ट हैं।

१२) ध्येयैक्य जप - जिस जप में ध्याता का ध्येय के साथ ऐक्स हो जाये, इतनी तन्मयता आ जाये कि ध्येय और ध्याता का भेद ही न रहे, वह धेयैक्य जप है।

१३) तत्व जप - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश - ये पाँच तत्व है। इनके आधार पर जप करना तत्व जप है।

ये तेरह भेद योगविधि, गुणत्रय, चित्र की स्थिरता, ध्यान-सम्मतता, तन्मयता तथा तत्वानुसारिता पर आश्रित है। इनमें राजसिक, तामसिक एवं हक्का जाप की लौकिक उपयोगिता है। उनका ग्रहण अध्यात्मिक नहीं है।

नामजपके साथ ध्यान जरुर होना चाहिये। वात्सवमें नाम के साथ नामी की स्मृति होना अनिवार्य भी है। मनुष्य जिस-जिस वस्तुके नाम उच्चारण करता है, उस वस्तुके स्वरुप की स्मृति उसे होती है। उसीके अनुसासर भला-बुरा परिणाम भी अवश्य होता है। [१७७]

आनुपूर्वी जप

मंत्र जप के साथ मानसिक एकाग्रता अतिआवश्यक है। उसे प्राप्त कराने हेतु जैनाचार्यों ने मंत्रों के विविध रुप अविष्कृत किये। अनेक अपेक्षाओं से उनके भेद-प्रभेद किये, क्योंकि ज्ञान का लक्ष्य आचार, साधना और स्वरुपोपलब्धि है, ऐसा वे मानते थे। जैन आगमों में आत्मा, परमात्मा, व्रत, आचार, ज्ञान तत्व आदि अनेक विषयों का अत्यंत सूक्ष्म गंभीर और विशद विवेचन है। गणित का, गणित के आधार पर पदार्थोंका, लोकादि का, नक्षत्रोंका, उन्होंने विस्तृत विवेचन किया है। आगमों में गणित का एक स्वतंत्र विषय है।

चरणकरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, धर्मकथानुयोग एवं गणितानुयोग के रुप में आगम चार भागों में विभक्त है। जंबूद्वीपप्रज्ञाप्ति तथा सूर्यप्रज्ञाप्ति आदि आगम गणितानुयोग में समाविष्ट है। अन्य आगमों में भी गणितिक विषयों का यथाप्रसंग विवेचन हुआ है।

जैनाचार्यों ने नवकार मंत्र के जप में मन की विशेष रुप से स्थिर करने हेतु आनूपूर्वी की रचना की, जो गणना के रुप पर आश्रित है। आनुपूर्वी में नवकार मंत्र के पाँच के पाँच पदों का व्यतिक्रम से जप किया जाता है , जिसका प्रयोजन मन को उसी में जोड़े रखना है। आनुपूर्वी गणित के भंगों की तरह अनेक प्रकार से उल्लिखित की जा सकती है। अनुयोगद्वार सूत्र में आनुपूर्वी का विषय विस्तार से चर्चित हुआ है। वहाँ उसके दस भेद बतलाये गये हैं - १)नामानुपूर्वी २) स्थानानुपूर्वी ३) द्रव्यानुपूर्वी ४) क्षेत्रानुपूर्वी ५) कालानुपूर्वी ६) उत्कीर्तनानुपूर्वी ७) गणनानुपूर्वी ८) संस्थानानुपूर्वी ९) समाचार्यानुपूर्वी १०) भावानुपूर्वी [१७८]

गणना के आधार पर रचित आनुपूर्वियों में एक सर्वतोभद्र आनुपूर्वी है। इसमें पाँच - पाँच अंकों के पाँच - पाँच प्रकोष्ठों की पाँच पंक्तियाँ होती है।उन अंकों को चाहे जिस और से जोड़ा जाये, योगफल पन्द्रह आता है। उदा. - उसका स्वरुप निम्नांकित है -

५	१	२	३	४
२	३	४	५	१
४	५	१	२	३
१	२	३	४	५
३	४	५	१	२

आनुपूर्वी जाप की विधि इस प्रकार है। उसे पहली पंक्ति से प्रारंभ किया जाये। जैसे ऊपर लिखित सर्वतोभद्र आनुपूर्वी की पहली पंक्ति के प्रथम प्रकोष्ठ में पाँच का अंक है अत: वहाँ नवकार मंत्र के पाँचवे पद णमो लोए सव्व साहूणं का उच्चारण किया जाये। दूसरे प्रकोष्ठ में एक का अंक है।अत: वहाँ प्रथम पद णमो अरिहंताणं का उच्चारण किया जाये। तीसरे प्रकोष्ठ में दो का अंक है, वहाँ दूसरे पद णमो सिद्धाणं का उच्चारण किया जाये। चौथे प्रकोष्ठ में तीन का अंक है वहाँ णमो आयरियाणं पद का उच्चारण किया जाये। पाँचवे प्रकोष्ठ में चार का अंक है, वहाँ चौथे पद णमो उवज्झायाणं पद का उच्चारण किया जाये। यों व्यतिक्रम पूर्वक एक नवकार मंत्र का जप होता है। इसी प्रकार आगे अंकों के अनुरुप नवकार मंत्र के पदों का उच्चारण करना होता है। यह क्रम आगे से चलता रहता है। [१७९]

इस पद्धति के आधार पर अनेक प्रकार की आनुपूर्वीयों की रचनाएँ हुई। नवकार मंत्र को सिद्ध करने में नि:संदेह अनुपूर्वियों का क्रम बड़ा ही लाभप्रद सिद्ध हुआ है। आज भी

अनेक साधक इनके आधार पर नवकार मंत्र की जपसाधना में संलग्न है, जो आध्यात्मिक शांति का अनुभव करते हैं।

श्री पंच परमेष्ठी नमस्कार मंत्रकी आनुपूर्वीको जो भावपूर्वक गिनता है वह आत्मा सिद्धि सुख को प्राप्त करता है। छह महिने, या एक वर्ष तक तीव्र तप करने से जो पाप नष्ट होते हैं वे पाप नवकार मंत्र की आनुपूर्वी गिननेसे थोड़े समयमें नष्ट होते हैं।[१८०]

●●●

नवकार मंत्र और ध्यान

जैन दर्शनमें ध्यान का भी बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है।ध्यान तो (को) तपभी कहा गया है। ध्यान तपके माध्यमसे साधक अपने चित्त की चंचलता को रोककर किसी एक विषयमें चित्त को केंद्रित करता है और आत्मशक्ति का विकास करके मुक्तिपथ पर प्रयाण कर सकता है। मुक्ति प्राप्ति के लिए - समाधि के लिए ध्यान अनिवार्य आवश्य है। समवायांग सूत्र, ठाणांगसूत्र, भगवती सूत्र और तत्वार्थ सूत्रमें ध्यानके बारे में अच्छी चर्चा मिलती है। तत्वार्थ - सूत्रमें आचार्य उमास्वातीजीने लिखा है कि - किसी एक विषय में चित्तवृत्तिका निरोध करना उत्तम संहननवालों के लिए ध्यान है।[१८१]

सामान्यत: मानवी का मन एकसाथ भिन्न भिन्न विषय पर घूमता रहता है। मनको किसी एक विषय पर केंद्रित करना अत्यंत आवश्यक है। ध्यानशतक में लिखा है कि - जो स्थिर अध्यवसाय है वही ध्यान है। [१८२] लोकप्रकाश ग्रंथ में लिखा है कि - मन, वचन, काया की स्थिरता को ध्यान कहते है। समाधि प्राप्त करने के लिए ध्यान बहुत उपयोगी है। साधक जबतक मनोनिग्रह नहीं करता है - मन पर अंकुश प्राप्त नहीं कर सकता है तब तक ध्यान और समाधि असंभव है। योगदृष्टि समुच्चय में भी लिखा है कि - समाधि प्राप्त करने के आठ क्रमिक सोपान है। इसमें से एक महत्त्व का सोपान ध्यान है। साधक के लिए यह सरल कार्य नहीं है। जितने समय के लिए किसी एक विषय पर मन की एकाग्रता टीक सकती है। उस एकाग्रताकोही ध्यान कहते है। एकाग्र चिंतनात्मक ध्यान की दृष्टिसे दशवैकालिक सूत्र में भगवान महावीरने ध्यान के मुख्य चार प्रकार प्ररुपित किये हैं। १) आर्तध्यान २) रौद्रध्यान ३) धर्मध्यान और (४) शुक्लध्यान , समाधि और शांति की इच्छा रखनेवाले साधक के लिए आर्त और रौद्र ध्यानका त्याग करना चाहिए और धर्म और शुक्ल ध्यान का चिंतन करना चाहिए।[१८३] धर्म और शुक्ल ध्यानको ही ध्यान तप की संज्ञा दी गई है।

नवकार मंत्रमें धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान की संपत्ति सबसे बड़ी मूल्यवान रुपमें प्राप्त होती है।[१८४] साधक क्रमश: धर्मध्यान और शुक्लध्यान की ओर आगे बढ़ता जाता है। [१८५] मन,

वचन और काया से एकाग्रता प्राप्त करनेका पुरुषार्थ कर सकता है। प्रत्येक पदकी शक्ति से और प्रत्येक वर्णमें नीहित विद्याओंसे उसकी ध्यानसाधना उत्तरोत्तर पवित्र और विशुद्ध बनती है। साधक यदि संकल्प करे तो आर्त और रौद्रध्यानसे मुक्ति पाकर धर्म और शुक्ल ध्यान में रत होकर सिद्धत्व की प्राप्ति कर सकता है।[१८६] नवकारमंत्रके ध्यान का योग मानवको पवित्र जीवनकी अनुपम सामग्री प्रदान कर सकता है। [१८७]

पंचपरमेष्ठी नवकार स्तव में ध्यान -

पंचपरमेष्ठी नवकार स्तव खरतर गच्छीय आचार्य श्री जिनप्रभसूरि की रचना है। इसमें पाँच अनुष्ठुप श्लोक है। उनमें पंचपरमेष्ठियों का संस्तवन किया गया है। कहा गया है - विवेक पुरुषों को श्रीअरिहंतदेव स्वर्ग की लक्ष्मी, सिद्ध भगवंत, सिद्ध पद, आचार्य पाँच प्रकार का आचार, उपाध्याय श्रेष्ठ ज्ञान तथा साधु सिद्धि प्राप्ति में सहायता प्रदान करे। इन पाँच परमेष्ठियों को किया गया नमस्कार सब मंगलोंमें प्रथम मंगल है।

ॐ ऱ्हीं अर्हं रुप ध्येय का योगी ज्ञान स्वरुप में ध्यान करते हैं।

हृदय में सोलह पंखुड़ियों के कमल की कल्पना करें। उनमें प्रत्येक पंखुड़ी पर "अ-रि-हं-त-सि-द्ध-आ-य-रि-य-उ-व-ज्झा-य-सा-हु" इन अक्षरों को क्रमशः स्थापित करे। उस कमल के मध्य में मोक्ष प्रदायक श्रीपरमेष्ठी - बीज ॐ अथवा अर्हं की स्थापना करें और उसका ध्यान करे। यह बीज सब मंत्रों में प्रथम मंत्र है तथा विघ्नों के समूह का नाश करने वाला यही महानमंत्र है, जो इसका सदा ध्यान करते हैं, वे श्रीजिनेश्वर देव की कांति के समान कांतिवाले होते है। [१८८]

मंत्र मे ंजप, भक्ति और ध्यान का सामंजस्य है। मंत्र का प्रादुर्भाव शब्दोंसे होता है, परंतु मंत्र - जप का उद्देश्य और परिणाम शब्दसे अशब्द की ओर जाने का है, क्योंकि मंत्र शब्दमय तभी तक रहेगा, जब तक वह चेतना में साकार न हो जाए।[१८९]

●●●

नवकार मंत्र और चत्तारि मंगलं -

णमोकार मंत्र के साथ चत्तारि (मंगलं) सर्वोत्तम शरणपाठ है।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पंच णमोकारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलणाणं च सव्वेसिं पढमं हवाइ मंगलं।

पंचपरमेष्ठी को नमस्कार "सव्व पावप्पणासणो"- सब पापों के नाश में फलित होता है। मंगलाणं च सव्वेसिं याने मंगलेषु-सर्वेषु, जितने भी मंगल है, उन सबमें पढमं हवइ मंगलं याने यह सब मंगलोंमें पहला मंगल है। जब श्रावक-श्राविका साधु-साध्वी से मंगल पाठ का श्रवण करते हैं, तब उन्हें ऐसा लगता है कि - विश्व की सारी संपदा शायद उन्हें मिल गई हों।

नवकार मंत्र की श्रृंखलामें तीन बातें है। पहली बात यह है कि - इसे महामंत्र कहते है, नवकार /नमस्कार मंत्र भी कहते हैं। दूसरी बात - फल की है कि - यह सारे पापों का नाश करनेवाला है - सव्व पाव पणासणो। ये सारे पापोंको नाश करनेवाला तभी हो सकता है कि - जब हमारी अंतरात्मा उसके साथ जुड़ गई हो। ऐसा कभी नहीं हो सकता है कि, हम मंत्र से जुड़े न हो, और फल मिल जाएँ यह कैसे संभव हो सकता है ? वास्तवमें सारे मंत्रोंका आयोजन संगीतमय, भक्तिमय हो और जीवन से जुड़ा हुआ हो। तीसरी बात यह है कि - इसमें ये तीन शब्द आते हैं। चत्तारि मंगलं में मंगल, चत्तरि लोगुत्तमा में लोकोत्तम और चत्तारि शरणमें शरण।

अब हम इन पर थोड़ा विचार करेंगे। मंगल शब्द शिव और समृद्धिका प्रतीक है। मंगल शब्द की उत्पत्ति के अनुसार 'मंगमलाति' - मनमें उत्साह उत्पन्न करता है उसे मंगल कहते हैं। जो पाप को गलाता है - उसे भी मंगल कहते हैं। कुल मिलाकर इसे हम मंगलाचरण कहते हैं और इसके माध्यमसे सब जीवों के प्रति मंगल कामना व्यक्त करते हैं। जो भी पापमय व्यक्ति, हमारे आसपास है, उनसे बचना चाहते हैं अथवा ऐसा कोई कवच हम अपने चारों ओर पैदा कर लेना चाहते हैं जिससे विपदा आए ही नहीं।

"चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पन्नत्तो, धम्मो मंगलं, " इसमें ऐसा क्यों किया गया कि - अरिहंत, सिद्ध के बाद एक छलांग लगाकर साधुओंको लिया गया। आचार्य और उपाध्याय को क्यों नहीं लिया गया ? हो सकता है - समास के कारण या संक्षिप्ति के कारण ऐसा किया गया हो। या ऐसा हुआ कि साधु जो है, उनकी व्याप्ति ज्यादा हैं। साधुमें आचार्य और उपाध्याय सम्मिलित है, क्योंकि ये सिढ़ियाँ हैं। ऐसी सीढ़ी नहीं है जो अरिहंत की ओर जाति है। अरिहंत में जाने के लिए आचार्य को काफी कुछ करना होता है लेकिन साधु से उपाध्याय और आचार्य में जो रुपांतर हुआ है वह इतना बड़ा रुपांतर नहीं है कि साधु कहने से उपाध्याय या आचार्य की प्रतीति न हो।

साधु एक बुनियाद है और इस बुनियाद पर ही तो यह सारी इमारत खड़ी हैं। साधु की महत्ता इसकी बुनियाद या नींव के कारण है। नींव का स्मरण करने पर इन दोनों का अपने आप स्मरण हो जाता है। इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि साधु को ही महत्त्व दिया गया है। प्राकृतमें

साहु एक वचन है और साहू बहुवचन है। यहाँ साहू शब्द का उपयोग किया गया है। ऐसा लगता है कि - इस तरह इसमें उपाध्याय और आचार्य को सम्मिलित कर लिया है।

'चत्तारि मंगल' में चार की संख्या क्यों ली गई ? ऐसे देखे तो चार बहुत सी चीजें हैं, जैसे दिशाअें चार हैं। इससे बढ़कर दिशा क्या हो सकती है कि - "अरिहंता मंगलं - सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवली पन्नतो धम्मो मंगलं।" अरिहंत से हमारा नवकार शुरु हुआ है। अरिहंतमें 'अ' से 'ह' तक सारी वर्णमाला आ गई हैं। चार की जो संख्या है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जैसे अनंत चतुष्ट्य हैं, चार गतियाँ हैं, चार धाम है, चार वेद हैं, चार आश्रम है, चार कषाय है। चार की संख्या बहुत व्यापक हैं। इसलिए चत्तारि मंगलं में चार की संख्या रखी गई हैं। लगता तो यह है कि - नवकार मंत्र में अरिहंत के १२ गुण, सिद्ध के ८ गुण आचार्य के ३६ गुण, उपाध्याय के २५ गुण और साधु के २७ गुण हैं। जो कुल मिलाकर १०८ गुण होते हैं और ये १०८ की संख्या भी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। जब हम जाप करते हैं तो चार अंगूलियोंसे करते हैं, जिनमें से हर एक में तीन - तीन पौर बने हुए हैं। इस प्रकार १२ पौर हो जाते हैं। १२ को ९ बार जाप करें तो १०८ हो जाते हैं, इसमें चारका योग हैं। यदि १०८ में चार का भाग दें तो २७ गुण आ जाते हैं जो साधुके हैं।

यह मंगलोत्तम पाठ है, यह नवकार मंत्र के उपसंहार के रुप में दिया गया है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है, यह नवकार मंत्र अरिहंत से शुरु होता है, परंतु अरिहंत से सिद्ध बड़े है। अरिहंत -सिद्ध की पूर्व स्थिति है। पहले नमो सिद्धाणं आना चाहिये था, बाद में णमो अरिहंताणं आना चाहिये था, परंतु अरिहंत उपदेश देते हैं, दिशा निर्देश करते हैं इसलिए अरिहंत का प्रथम नंबर आता है, सिद्धका दूसरा नंबर आता है। एक तो अरिहंत सिद्धवाला तट है और दूसरा तट साधू का है, जिसमें आचार्य और उपाध्याय भी सम्मिलित हैं।

चत्तारि मंगलं में जो मंगल शब्द आया है, इसमें एक तरह से विश्वमैत्री शामिल है, हम किसी के साथ वैर नहीं रखना चाहते, किसी के साथ शत्रुता रखना नहीं चाहते, हम सबके साथ शुभ कामना रखना चाहते हैं। और शुभकामना हम केवल इसलिए रखना चाहते है कि - वह हमारा आदर्श हैं। यह अरिहंत का आदर्श है, सिद्ध का आदर्श है, साधु का आदर्श है और इसी प्रकार धर्म का भी आदर्श है। हमारे धर्म की परिभाषा हो जाती है। इन चारोंमें से जब हम अरिहंता मंगलं, सिद्धमंगलं, साहू मंगलं कहते हैं, तब अरिहंत, सिद्ध और साधु - इन तीनों का स्मरण करते हुए इन तीनों की व्याख्या करें, तो यह धर्म का स्वरुप बन जाता हैं। धर्म का स्वरुप कोई अलग चीज नहीं है। मनुष्य मात्र मुक्त होना चाहता है, उसका आयोजन इसमें है। केवलीद्वारा प्रणीत धर्म ऐसा होगा कि - हम आत्माको पाने के लिए प्रयत्न करें, इसलिए इसे धर्मनाम दिया गया हैं। आगे इस प्रकार कहा गया है कि -

"चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धालोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपन्नतो धम्मो लोगुत्ततमों।" जो लोक में सबसे उत्तम हो, लोक में सर्वोत्तम हो ऐसे अरिहंत सिद्ध, साधु और धर्म ही लोक में उत्तम हैं। सच बात तो यह है कि - जैनों की दृष्टि उत्तमता की ओर रही है। दशधर्म उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव इत्यादि में उत्तमता पर ध्यान दिया गया है। जैन धर्म में उत्तमता से नीचे की कोई श्रेणी है ही नहीं, उस पर ध्यान ही नहीं गया है। जहाँ भी ध्यान गया है, तो वह शीर्ष पर, शीखर पर ध्यान गया है। [१९०]

इस तरह चत्तारि मंगलमं में एक तो शुभकामना है, दूसरी उत्तमता है और तीसरी में शरण है। सरण यह शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। सरण याने समर्पणता। हम पूरी तरह से अपने आपको सोंप रहे हैं। चत्तारि शरणं पवज्जामि, अरिहंते शरणं पवज्जामि, सिद्धे शरणं पवज्जामि, साहु शरणं वपज्जामि, केवलि पन्नत्तंधम्मं, शरणं पवज्जामि। तो पवज्जामिका सीधा अर्थ यह है कि - मैं शरणमें जाता हूँ। इसमें त्याग भी भूमिका है। आत्मा की खोज में अपने आपको समर्पित करना है। जिन्होने आत्मा की खोज की है, उनकी शरण में जाना है। जिन्होने धर्म विकसीत किया है उनकी शरण में जाना है।

शरणमें जाने का विचार ही अपनेआपमें निर्मलता की ओर यात्रा करने का एक शुभ संकल्प है। चत्तारि मंगलं का जो पाठ है उसके बिना नवकार मंत्र अधूरा रह जाएगा। नमो अरिहंताणं बोलते ही हम चत्तारि शरणं तक - केवलि पन्नतंधम्मं शरणं तक पहुँच जाते हैं। सच पूछा जाए तो नवकार मंत्र सभी आगमों का सार है। उसका नवनीत है। अतः जितनी बार भी उसका स्मरण करते हैं, तो हमें उसकी व्यापकता का भव्य दर्शन होता है।

नवकार मंत्र के पाँच पदोंमें अरिहंत का रंग सफेद, सिद्ध का रंग लाल, आचार्य का रंग पीला, उपाध्याय का रंग हरा और साधु का रंगकाला है। विचार होता है कि - साधु का रंग काला क्यों ? गंभीरता पूर्वक सोचने पर हम जान सकेंगे के काला रंग अवशोषक है। साधु को सोखनेवाला बनना चाहिए। साधुको क्रोध को रोकना चाहिए। यदि कोई उससे वैर करे, तो भी उसे सोखना चाहिए। साधु वह है जो जितनी भी बुराइयाँ हो, उन सबको समुद्र की तरह सोख लें। उसे इस तरह का अवशोषक बन जाना चाहिये कि - वह जो भी अनुकूल - प्रतिकूल हो उसे आत्मसात् कर लें। इसलिए साधुका काला रंग माना गया है। अरिहंत का श्वेत रंग है। श्वेत रंग में सभी रंग निहित है। इसका अर्थ यह हुआ कि - अरिहंतों में साधु भी मौजूद है। अरिहंतमें साधुत्व, उपाध्यायत्व, आचार्यत्व भी मौजूद हैं।

रंग विज्ञान को इसमें काफी सोच समझकर गंभीरता और दूरदर्शीता पूर्वक चिंतन, मनके साथ जोड़ा गया है। या ये वर्ण पंचपरमेष्ठीमें जुड़ गए हैं। रंगों की अपनी निराली

दुनिया है। अंत में मैं इतना ही कहना चाहती हूँ कि - यह जो मंगलपाठ है - चत्तारि मंगलं यह एक उत्कृष्ट और उन्नत मंगलपाठ है। भले ही यह मंगलपाठ नवकार मंत्र का उत्तरवर्ती अंश हो, फिर भी पूर्ववर्ती अंश से कम वजनदार नहीं है। इसका अपना विशिष्ट महत्त्व है। [१९१]

नवकार मंत्र और कथा का महत्त्व

नवकार मंत्र के महत्त्व को और फल को प्रगट करनेवाली अनेक कथाएँ जैन साहित्य में आई हैं। दृष्टांत यह सिद्धांत है। कथा के माध्यमसे छोटा बच्चा भी बात को समझ जाता है। चार-अनुयोग में धर्मकथानुयोग का भी बड़ा महत्त्व है। जो माता अथवा दादी माँ अपने बच्चों को महापुरुषों की कथा सुनाती है। ये बच्चे आगे जाकर महान बनते हैं। संस्कारी बनते हैं।

दिगंबर और श्वेतांबर दोनों संप्रदायोंके धर्मकथा साहित्यमें इस महामंत्र नवकार का बड़ा भारी फल बताया गया है। पुण्याश्रव और आराधना कथाकोष के अतिरिक्त अन्य पुराणों में भी इस महामंत्र को प्रगट करनेवाली कथाएँ हैं। एक बार जिसने भी भक्तिभाव पूर्वक इस महामंत्र का उच्चारण किया वही उन्नत हो गया। अनेक संकटोंसे पार करनेवाला यह नवकार मंत्र हैं। नवकारमंत्र के प्रभाव से अनेक आत्माएँ भवसागर तीर गई हैं। इसीके प्रभावसे जीवोंका उद्धार हो गया है।

नवकार मंत्र के प्रभाव से अग्निका पानी हुआ है, सूलिका सिंहासन हो गया हैं। विष का अमृत हो गया है।

ऐसे प्रभावशाली श्री नवकार मंत्रकी सर्वश्रेष्ठताका क्या वर्णन करें - उस नवकार मंत्र की श्रेष्ठता का वर्णन प्रकीर्णक में इस प्रकार आया है।

'किं तप: श्रुतचरित्रौश्चिरमाचरितैरपि।
सखे ! यदि नमस्कारे, मनो लेलीयते न ते ॥'

दीर्घकाल तक तप, श्रुत और चरित्र का आचारण करने से क्या फल ? हे मित्र ! श्री नमस्कार महामंत्रमें चित्त लीन न बना तो दीर्घकालतक किये हुए तप, श्रुत और चरित्र निष्फल है। नवकार मंत्रमें चित्त ध्यानस्थलयलीन बने तो ही सफल हैं। [१९२]

ऐसे प्रभावशाली, सर्वश्रेष्ठ नवकार मंत्र की प्रभावशाली कथाओंमेंसे निम्नलिखित कुछ कथाएँ यहाँ वर्णित की है।

नाग-नागिन का उद्धार : जब सुना नवकार

धरणेंद्र - पद्मावती

लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व की घटना है। वाराणसी (बनारस) नगरी पर राजा अश्वसेन राज्य करते थे। उनकी रानी वामादेवी। राजकुमार का नाम था - पार्श्वकुमार।

एक बार युवक पार्श्वकुमार, घोड़े पर चढ़कर घूमते हुए नगर के बाहर चलें गए। वहाँ एक मेला - सा लगा था। राजकुमार नजदीक आए, देखा कि एक संन्यासी पंचाग्नि तप कर रहा है। चारों दिशाओं में चारों तरफ अग्निजल रही है, ऊपर आकाश में प्रचण्ड सूर्य तप रहा हैं, बीच में वह तापस बैठा है। सैंकड़ो लोग उसके चारों तरफ खड़े हैं।

राजकुमार को अपने दर्शन के लिए आया समझकर कमठ संन्यासी का अहंकार आसमान छूने लगा। प्रजाजन भी तपस्वी की महिमा गाने लगे। तभी राजकुमार ने अपने अंगरक्षक सेवकों को इशारा करके कहा, देखो, इस धुनी में वह जो बड़ा लक्कड़ जला जा रहा है उसके भीतर एक जीवित नाग का जोड़ा भी जल रहा है। तुम तुरन्त उसे बाहर निकालो, बचाओ।

राज कर्मचारी धुनी से लक्कड़ खींचने आगे बढ़े। तो संन्यासी ने उन्हें टोक दिया - ठहरो ! यह मेरा पंचाग्नि तप है, इसमें बाधा मत डालो, वरना तुम्हें भी भस्म कर दूँगा।

राजकुमार ने गंभीरतापूर्वक कहा - संन्यासी जी ! यह आपका कैसा तप है ? तपस्या का अर्थ किसी को जलाना तो नहीं, तपस्या में तो दया और करुणा होनी चाहिए।

कमठ संन्यासी क्रोध में लाल पीला होकर राजकुमार पार्श्व को घुरने लगा। किन्तु निर्भिक और दयालु राजकुमार ने अपने सेवकों से कहा - यह विवाद का समय नहीं है, जलते नाग को पहले बचाओ। उन्हें अग्नि की लपटों से बाहर निकालों।

सेवकों ने लक्कड़ को बाहर खींचा, धीरे से चीरा तो भीतर एक लम्बा काला नाग - नागिन का जोड़ा निकला। आग की लपटोंमं उनका आधा शरीर झुलस गया था। तड़प कर मिट्टी में लोटने लगे।

तड़पते उधजले नाग जोड़े को देखकर संन्यासी की आँखें फटी सी रह गईं। सभी लोग राजकुमार के अद्भुत दिव्य ज्ञान, साहस और दयालुता की प्रशंसा करने लगे। धन्य है करुणामूर्ति राजकुमार ! आप न आते तो यह नाग देवता आज इस धुनी में जलकर भस्म हो गये होते ...

राजकुमार घोड़े से नीचे उतरकर नाग के जोड़े के पास आये। धीर गंभीर स्वर में बोले - हे नागराज ! अब यह तुम्हारा अंतिम समय है। शान्त मन से इस पीड़ा को सहन करो। मैं

णमोकार महामंत्र सुनाता हूँ, शांति के साथ सुनो। तुम्हारा जन्म सुधर जायगा।.. और णमो अरिहंताणं णमो सिद्धांणं की मधुर ध्वनि गूँजने लगी।

नाग-नागिन ने राजकुमार की मधुर वाणी सुनी, जैसे झुलसते शरीर पर चन्दन का लेप लगा दिया हो। उनकी आत्मा को बड़ी शांति मिली। णमो अरिहंतांण.. महामंत्र की ध्वनि सुनते - सुनते ही शुद्ध भावनापूर्वक दोनों ने देह त्याग दिया।

अंतिम समय में पंच परमेष्ठी मंत्र सुनते - सुनते इन दोनों की आत्मा नागकुमार जाति के देवों के इन्द्र एवं इंद्राणी बने। नाग धरणेंद्र बना, नागिन पद्मावती देवी बनी। दोनों ने जब अपने महान उपकारी पार्श्वकुमार को जाना तो वहीं से कृतज्ञभाव पूर्वक नमस्कार किया। उनके रोम - रोम से जैसे मुखरित हो उठा णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं ...

कुछ समय बाद राजकुमार पार्श्व दीक्षा ग्रहण कर जंगल में ध्यान-साधना करने लगे। उधर कमठ संन्यासी जनता में अपमानित होने पर क्रोध आवेश में भर्रा उठा। दुर्भावों के साथ देह त्याग कर वह मेघमाली नाम का राक्षस बना।

भगवान पार्श्वनाथ को जंगल में ध्यान करते देखकर पूर्व जन्मका वैर जाग गया। प्रतिशोध की आग में जलते हुए राक्षस ने भगवान को अनेक प्रकार के भीषण उपसर्ग दिए। उन्हें जल में डूबाने के लिए घनघोर वर्षा शुरु कर दी। पार्श्वनाथ जिस स्थान पर ध्यानस्थ खड़े थे वहाँ चारों तरफ जल-प्रलय-सा मच गया। पानी का भयानक वेग बढ़ता गया। पार्श्वनाथ की छाती तक पानी आ गया।

तभी स्वर्ग में धरणेंद्र देव का आसन काँपने लगा। वे तुरंत ध्यानलीन भगवान पार्श्वनाथ की सेवा में पहुँचे। भगवान के चरणों के नीचे कमल सिंहासन बना दिया। जैसे - जैसे जल बढ़ता गया, कमल सिंहासन जल में ऊपर उठता गया। ऊपर से पंच फणी नाग का छत्र बना दिया। धरणेंद्र पद्मावती दोनों भगवान की सेवा में खड़े हो गए। धरणेंद्र ने मेघमाली दैत्य को ललकारा, वह भयभीत होकर भाग छूटा। उपसर्ग शान्त हो गया। [१९३]

अपने महान उपकारी प्रभु पार्श्वदेव की सेवा करेनवाले धरणेंद्र - पद्मावती आज भी भगवान पार्श्वनाथ की भक्ति करनेवालों के उपसर्ग दूरकर मनोवांछित कार्य सिद्ध करने में सहायक होते हैं।

●●●

नवपद मय नवकार जीवन में जय जयकार

मैनासुंदरी

प्राचीन समय में अवन्ती (उज्जयनी) में राजा पुण्यपाल राज्य करते थे। उनकी दो सुन्दर सुशील कन्याएँ थीं। बड़ी का नाम सुरसुन्दरी था, छोटी का नाम था मैना सुंदरी !

मैना सुन्दरी बहुत ही सुसंस्कारी, सुशिक्षित और स्वावलंबी विचार की थी। एक बार राजा पुण्यपाल ने उसकी प्रतिभा और समझदारी पर प्रसन्न होकर कहा - पुत्री ! हम तुझपर बहुत प्रसन्न हैं। जो मन चाहे वर माँग लों।

मैनासुन्दरी ने हाथ जोड़कर कहा - पिताजी, वर या सुख-दुख कोई भिक्षा है, जो माँगने से मिल जाये ? यह तो प्राणी के अपने ही कर्म या भाग्य के अनुसार स्वत: मिलते हैं। फिर मैं एक क्षत्रिय कन्या हूँ, मैने माँगना कब सीखा है ?

राजा पुण्यपाल बड़े क्रोधी अहंकारी स्वभाव के थे। मैनासुन्दरी की स्वाभिमानपूर्ण बातें उनके अहंकारी हृदयमें तीर - सी चूभ गई। मन ही मन निश्चय किया, मैना को अपने भाग्य पर बड़ा घमंड है तो अब इसे सीख देना है कि सुख-दुख देनेवाला भाग्य नहीं है, राजा पुण्यपाल है।

एक दिन राजा पुण्यपाल नगर के बाहर घूमने निकला। सामने ही कुष्ट शेगियों का एक झुण्ड आता दिखाई दिया। एक कुष्टी युवक घोड़े पर बैठा है। अनेक कुष्टी पीछे - पीछे चल रहे हैं। सब उम्बर राणा की जय बोलते हुए उधर ही आ रहे हैं।

राजाने पूछा - "तुम लोग कौन हो ? कहाँ से आ रहे हो ? यह युवक कौन है ?" तब एक कुष्टी व्यक्ति आगे आया, वह बोलने में चतुर था। राजा को प्रणाम कर बोला, "महाराज ! हम सात सौ कुष्टियों का यह दल गाँव - गाँव घूमता हुआ आज यहाँ आपके नगर में आया है। घोड़े पर बैठे ये उम्बर राणा हमारे दल के राजा है। कुष्टरोगी होने के कारण किसी एक गाँव में हमें टिकने नहीं दिया जाता इसलिए हम गाँव - गाँव भटकते हुए आज यहाँ आए हैं।"

राजा पुण्यपाल ने उम्बर राणा के विषय में पूछा, तो पता चला, वह अभी कुँवारा है। उसने सोचा, मैना सुन्दरी को अपने भाग्य पर बड़ा अहंकार है। उम्बर राणा के साथ यदि विवाह कर दिया जाय तो उसे भी पता चल जायेगा.. सुख-दुख देनेवाला कर्म है या राजा, मंत्री, पुरोहित, महारानी आदि सभी ने पुण्यपाल के इस विचार का विरोध किया, परंतु राजा तो बड़ा जिद्दी था। उसने उम्बर राजा के साथ, लक्ष्मी-सरस्वती जैसी मैनासुन्दरी का विवाह कर दिया।

मैना ने इसे ही अपना भाग्य समझा, न रोयी, न क्रोध किया। प्रसन्न मनसे मातापिता से विदा लेकर कुष्टी पति उम्बर राणा के साथ नगर के बाहर एक तंबू में आ गई।

उम्बर राणा की माता कमलप्रभा ने इतनी सुंदर सुशील बहू को पाकर अपने भाग्य को सराहा। उसे दुख व निराशा के महासागर को तैरने के लिए जैसे उसे यह सुख और आशा की एक दैवी - नौका ही मिल गई।

रात के समय उम्बर राणा की माता ने दोनों को अपने पास बिठाकर कहा - बेटी ! तू घबराना मत। हम भी क्षत्रिय हैं, तुम्हारा पति चम्पानगरी का राजकुमार श्रीपाल है। यह जन्म से कोढ़ी नहीं हैं,किंतु उसके चाचा ने हमारा राज्य छीन लिया, इसके पिता महाराज सिंहरथ वीरगति को प्राप्त हो गये। श्रीपाल के चाचाने हमारे साथ छल किया, तब हम अपनी जान बचाके भागकर वन में छुप गए। वन में कुष्टियों का यह दल हमें मिल गया। वर्षों इनके साथ रहने को कारण श्रीपाल को भी कुष्ट रोग हो गया है। किंतु अब तू आ गई है, तो हमारा भाग्य जग गया है। सब आनंद होगा।

मैना सुन्दरी पति और सास की सेवा के साथ ही सभी सात सौ कुष्टियों की व्यवस्था का भी ध्यान रखती । कुष्टी दल को तो एक देवी मिल गई।

एक दिन नगर के बाहर उद्यानमें एक प्रभावशाली आचार्य मुनिचन्द्रसुरी पधारे। मैनासुंदरी को पता चला तो वह पति उम्बरराणा को साथ लेकर आचार्यश्री के दर्शनार्थ गई। ऐसी सुशील सुंदर राजकन्या को एक कुष्टी की पत्नी के रुप में देखकर आचार्यश्रीने जिज्ञासा व्यक्त की, तो मैनासुंदरी ने सारी कहानी सुना दी। मैनासुंदरी का धैर्य, दृढ़ता और आत्मविश्वास देखकर आचार्य श्री ने कहा -

वत्से ! तुम नवकार महामंत्र के नवपद की आराधना करो, सब रोग, शोक, दुख दूर हो जायेंगे। निश्चित ही यह अचिंन्त्य फलप्रदायी महामंत्र है। इसकी आराधना से तुम्हारे सौभाग्य का सूर्योदय होगा।

आचार्यश्री के निर्देशानुसार चैत्र सुदी सप्तमी के शुभदिन से श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी ने आयम्बिल तप करके अनन्य भक्ति भाव तथा दृढ़ विश्वास पूर्वक णमोकार महामंत्र के नवपद की साधना, आराधना प्रारंभ की। इस आराधना के प्रभाव से श्रीपाल में आश्चर्य जनक परिवर्तन आ गया। उसका कोढ़ मिट गया। उसका शरीर सुन्दर तो बना ही। साथ - साथ करोड़ो योद्धा जैसा बल, पराक्रम जाग उठा।

णमोकार मंत्र का अभिमंत्रित जल छिड़कने से सभी कुष्टियों का कोढ़ दूर हो गया श्रीपाल के प्रबल पुण्य का उदय हुआ, वहा जहाँ भी गया बिना माँगेही विशाल वैभव, राज्य संपदा उसके चरणोमें आने लगी। सभी प्रकार की विपत्तियाँ टलती गई। वह भारतवर्ष का महान

प्रतापी राजा बना। णमोकार महामंत्र उन दोनों के हृदय में सदा बसा रहता था। णमोकार मंत्र की आराधना के फलस्वरुप उन्हें जीवन में सर्वत्र आनन्द और जयजयकार प्राप्त हुआ। [११४]

सबका रक्षक : महामंत्र नवकार

अमरकुमार

मगध नरेश महाराज बिम्बिसार श्रेणिक ने बड़ी उमंगों के साथ एक नया महल बनावाया। किंतु दिन में जितना बनता, रात्री के समय वह गिरकर ध्वस्त हो जाता। इससे महाराज श्रेणिक चिंतित हो उठे। अनेक उपाय किए, परंतु कोई भी उपाय काम नहीं आया। कुछ अंधविश्वासु पंडितों ने कहा -किसी असुर शक्ति का प्रकोप है, अत: बत्तीस शुभ लक्षणोंवाले एक मनुष्य की बलि देकर देवता को प्रसन्न करना चाहिए।

शुभ लक्षणोंवाले पुरुष की खोज शुरु हुई। राजाने उद्घोषणा करवाई - बत्तीस शुभ लक्षणोंवाला जो पुरुष अपनी बलि देने को तैयार होगा उसे, उसके वजन के बराबर तोलकर सोना दिया जायेगा।

एक गरीब दरिद्री ब्राह्मणी के चार पुत्र थे। उसका एक पुत्र था अमरकुमार। लगभग १२ वर्ष का होगा वह, बत्तीस शुभ लक्षणों से युक्त था। उसकी माता ने सोचा, यदि इसके बराबर सोना मिल जाएगा तो बाकी पूरे परिवार का पालनपोषण हो जायेगा। सोने के लोभ में उसने अपना पुत्र बलिदेने के लिए राज पुरुषों को बेच दिया। राजा के सामने अमरकुमार को लाया गया, ब्राह्मणी (माता)को अमरकुमार के बराबर तोलकर सोने की मोहरें दे दी गई।

अमरकुमार ने राजा, मंत्री, पुरोहित आदि सभी के पाँव पकड़े, आँसु बहाकर बड़ी दीनतापूर्वक प्रार्थना की, मुझे मत मारो, मुझे मरने से बहुत डर लगता है। मुझे छोड़ दो। परंतु किसी को भी उसके गिड़गिड़ाने पर दया नहीं आयीं। राजा को तो अपना स्वार्थ था। वह कैसे छोड़ देता ?

पुरोहितों के आदेश से अमर कुमार को स्नान आदि कराकर फूलमाला पहनाई, फिर सैनिकों के पहरे में यज्ञ वेदी पर लाया गया। मंत्रों से शुद्ध करके यज्ञ-कुण्ड में होम ने की तैयारी की गई।

अग्निकुंड की ज्वाला देखकर अमरकुमार का रोम-रोम काँप गया। उसने पुरोहितों आदि से बहुत प्रार्थना की "मुझे मत मारो ! मुझे मत मारो !" परंतु किसी का हृदय नहीं

पसीजा। अमरकुमार एकदम असहाय भाव से इधर-उधर देखने लगा। उसे बचानेवाला कोई नहीं था।

अग्नि ज्वाला के रुपमें मृत्यु को सामने अट्टहास करते देखकर अमरकुमार को बचपन में सीखा हुआ नवकार मंत्र याद आया। मंत्र सीखानेवाले गुरुजीने बताया था - यह मंत्रराज सबकी सहायता करता है। इसके प्रभाव से जल-अग्नि-सर्प आदि का प्रकोप शांत हो जाता है।

अमरकुमार के सामने अब वही एक मात्र शरण था। वह अनन्यभाव पूर्वक णमोकार मंत्र का स्मरण करने लगा। मन ही मन पुकारने लगा - हे मंत्रराज, महामंत्र ! आज आप ही मेरी रक्षा कर सकते हैं। संसार में आपके सिवा कोई भी मेरा रक्षक नहीं है। मैं आपकी शरण में हूँ।

मंत्र स्मरण करते - करते अमरकुमार भय-मुक्त हो गया। उसका मुख प्रसन्नता से दमकने लग गया। तभी याज्ञिकों ने उसे पकड़कर धधकती अग्निज्वाला में होम दिया। उसके मुख से तो बस णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं ... की ध्वनि निकल रही थी।

चमत्कार ! अद्भूत चमत्कार ! धधकती अग्नि ज्वालाएँ पानी का कुंड बन गई। उसपर सुन्दर सिंहासन बन गया। अमरकुमार सिंहासन पर आसीन था उसका शरीर सुन्दर वस्त्र आभुषणों से सज्जित हो गया ! वह अभी भी अनन्यभाव के साथ नवकार मंत्र के ध्यान में लीन था।

राजा श्रेणिक, मंत्री, पुरोहित आदि सभी चकित तथा भ्रमित से देखते ही रह गए। बालक में उन्हें दैवी शक्ति दिखाई दी। आनेवाली घोर विपत्ति की आशंका से उनका हृदय धकधक करने लगा। हाथपैर काँपने लगे। हाथ जोड़कर विनयपूर्वक सब ने अमरकुमार को नमस्कार किया।

हे देवकुमार ! हमारा अपराध क्षमा करो ! हमारी रक्षा करो। हमसे बड़ी भूल हो गई है।

अमरकुमार का हृदय करुणासे द्रवित हो गया। उसने अभय मुद्रामें हाथ ऊपर उठाया उसका स्वर निकला

'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं..'

यह महामंत्र आपको सद्बुद्धि दें, सबकी रक्षा करे।

इस घटना के बाद राजा श्रेणिक जैनधर्म के अनन्य श्रद्धालु बन गए। णमोकार महामंत्र पर सबकी आस्था दृढ़ हो गई। [१९५]

विषघर बना फूलों की माला

श्रीमती

सैंकडों वर्ष पुरानी घटना है। धनगुप्त नाम के सेठ की एक कन्या थी। श्रीमती उर्फ सोमा। वह सुंदरता में चाँद का टुकडा थी। गुणों में लक्ष्मी और सरस्वती से कम नहीं थी। माता ने बचपन से ही उसमें धार्मिक संसार कूट-कूट कर भर दिए थे। जबसे उसने बोलना सीखा, सबसे पहले णमोकार मंत्र बोला।

श्रीमती कोई भी काम करने से पहले एक क्षण रुकती, और मन ही मन णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं. णमो आयरियाणं.. आदि बोलकर अपने इष्ट देवों का स्मरण कर लेती। इस प्रकार उसके हृदयमें एक नई स्फूर्ति और शक्ति भर जाती। उसका प्रत्येक काम सफल हो जाता। णमोकार मंत्र उसे प्राणों से प्यारा था। उसके जीवन का सहारा था।

उसी नगर का एक युवक बुद्धप्रिय श्रीमती की सुंदरता, शालीनता और सुघडता पर मुग्ध हो उठा। उस के साथ विवाह करने के लिए उसने पापड बेलने शुरू किए।

धनगुप्त सेठ की सबसे पहली शर्त थी - लडका धर्मप्रेमी और सदाचारी हो। बुद्धप्रिय ने धार्मिकता का ऐसा ढोंग रचा कि धनगुप्त उसपर निछावर हो गया और बुद्धप्रिय एक दिन श्रीमती को एक दिन पत्नी बनाकर घर ले आया।

ससुराल की दहेली पर गाँव धरते ही श्रीमती का माथा ठनका। उसने देखा सास, ससुर और पति तो जिनधर्म के तो कट्टर द्वेषी है। उसकी धर्म क्रिया और णमोकार मंत्र से भी द्वेष है। सामायिक व जप करते समय वे उसे घूर-घूर देखते किंतु श्रीमती घबराई नहीं। उसे अपनी धार्मिकता पूरा विश्वास था।

दूसरे दिन सुबह उठते ही उसने सबसे पहले णमोकार मंत्र जपा, सामायिक की। सास-ससुर को यह फूटी आँख नहीं सुहाया। बुद्धप्रिय भी श्रीमती को धार्मिक क्रिया करने और णमोकार मंत्र जपने से बार - बार टोकता, रोकता रहता, परंतु अपने धार्मिक जीवन में पूरी स्वतंत्र निष्ठा रखनेवाली श्रीमतीने णमोकार मंत्र का जप नहीं छोड़ा। इससे चिढ़कर कुटिल सास ने श्रीमती को मार डालने की योजना बनाई। बेटे को भी उल्टी पट्टी पढ़ाई।

बुद्धप्रिय एक कालबेलिये - सपेरे के पास गया और एक काला नाग घड़े में रखकर ले आया। घड़ा चौकी पर रख दिया। श्रीमती को कहा -

“प्रिये ! देखो, मैं तुम्हारे लिए सुन्दर फूलों का हार लाया हूँ। उस घड़े में रखा है। जरा पहनकर तो देखो।

श्रीमती की आदत थी कोई भी काम करने से पहले तीन बार णमोकार मंत्र गुन लेती।

एक क्षण रुककर उसने णमोकार मंत्र गुना और प्रसन्न मन से घड़े में हाथ डाला। ताजे फूलों का एक सुन्दर महकता हार ! वाह बहुत सुंदर ! उसने पति से कहा - "स्वामी ऐसा सुंदर हार तो पहले आप पहनिए।" वह हार लेकर पति के पास आई। पति को फूलों का हार में काला नाग फुंकारता दिखाई दिया, उसकी घिग्धी बँध गई। डरकर पीछे हटता गया - "ना ! ना ! यह हार मुझे मत पहनाओ। तुम ही पहनो।" सास, ससुर और ननंद भी दरवाजे की ओट में छिपकर यह दृश्य देख रहे थे। "अरे, यह क्या जादू है ? बहू के हाथ में तो यह फूलों का हर बन जाता है और बेटे के पास आते ही काला नाग ! "

श्रीमती पति देव को हार पहनाने के लिए आग्रह करने लगी, परंतु बेचारा पति देवता इस नाग देवता से डरकर पसीना - पसीना हो गया।

आखिर सास, ससुर सामने आये। बोले-बहूरानी ! यह हार तुमही पहनलो !

श्रीमती ने णमोकार मंत्र गुना और उस जहरीले फुफकारते नाग को फूलों का हार समझकर गले में पहन लिया। सब चकित थे। सचमुच यह कोई महामानवी है। सास, ससुर, ननंद और पति ने हाथ जोड़कर कहा -

"बहू, हमें क्षमा कर दो। हमने तो तुझे मारने के लिए इस घड़े में काला नाग रखा था। परंतु तुम्हारे भाग्य से यही फूलों का हार बन गया। तुम महान हो, सचमुच तुम कोई देवी हो, लक्ष्मी हो ! !"

श्रीमती ने कहा - "अवश्य ! तो सब मिलकर बोलिए - णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।" उस दिन से बुद्धप्रिय सचमुच धर्मप्रिय बन गया। सभी ने णमोकार महामंत्र को जीवन मंत्र बना लिया। [११६]

●●●

वर्तमान में सत्य घटित घटना नवकार महामंत्र चमत्कार और प्रत्यक्ष अनुभव की कसोटी पर - श्री. गुलाचन्दभाई

आज के वैज्ञानिक युग में चिकित्सा विज्ञान अपनी उन्नति की चरम विकास का दावा कर रही है, इस युग में भी कुछ ऐसे रोग हैं जिनका इलाज अभी विज्ञान के पास नहीं है। डॉक्टर स्पष्ट कह देते है - रोगी को अब दवा की नहीं दुआ की जरूरत है।

श्री गुलाबचन्द भाई के साथ भी ऐसा ही हुआ। छः माह तक गुलाबभाई को सरदर्द

पीड़ा दे रहा था। कई डॉक्टरों से इलाज करवाया। पर सरदर्द क्यों होता है ? कोई भी डॉक्टर डायग्नोसिस नहीं कर पाया। सिरदर्द तो बढ़ता ही जा रहा था।

एक दिन गुलाबचन्द भाई को कफ में रक्त आया इसलिए कई प्रकारकी चिकित्सा करवाई, तब पता चला कि शायद यह कैंसर की बिमारी है। गुलाबचन्द भाई कैंसर का नाम सुनकर बहुत चिंतित हो गए। डॉ. कपूर से मिले। उन्होंने भी जाँच की। उन्होंने कहा आप पैनिसिलिन के इंजेक्शन का एक कोर्स कीजिए उसके बाद अन्य उपचार हो सकेगा।

गुलाबचन्दभाई की हालत दिन - ब - दिन बिगड़ती जा रही थी। गला अन्दर-बाहर से सूज गया था। बहुत चिंताजनक स्थिति हो गई। गला सिकुड़ गया था। पानी भी पीना मुश्किल हो गया। दूसरे दिन डॉ. मोदी से मिले, उन्होंने सभी प्रकार के टेस्ट करके बताया। गुलाबचन्द भाई अपकी बीमारी तो आखिरी स्टेजपर पहुँच गई है।

इसके बाद डॉ. मोदी ने अकेले में उनके फॅमिली डॉक्टरसे कहा - मरीज अब एक - दो दिन का ही मेहमान है। शांति से इनके प्राण निकले, इसके लिए नशे का इंजेक्शन दे दीजिए। यह सुनकर सभी निराश हो गये।

गुलाचन्द भाई को जीभ और गले का कैंसर था। उन्होंने अपने डॉक्टर से कहा - ऐसा कोई उपाय कीजिए, जिससे मैं पानी तो पी सकूँ। गला सूख रहा हैं किसी तरह रात बीती श्री गुलाबचंद भाई घर आए। निराश हो चुके थे।

जब मनुष्य का पुरुषार्थ थक जाता है, कहीं से आशा की किरण भी नहीं दिखाई दे तब मनुष्य धर्म की ओर मुड़ता है। धर्म सभी प्रकार से उसकी रक्षा करता है।

गुलाबचन्द भाई ने सोचा अब जिंदगी का कोई भरोसा तो है नहीं तो नवकार मंत्र का स्मरण ही करता रहूँ। अब वही एक सहारा है।

इस समय संध्या के साड़ेसात बज चुके थे। एक कमरे में बैठ गए।पहले सभी परिवारजनों

से खमत-खामणा की, संसार के सभी जीवों से क्षमा माँगी। ततपश्चात् भावना की - सभी जीव सुखी रहें , निरोगी रहें, सभी का कल्याण हो।

बादमें नवकार मंत्र के जप और साधना में तल्लीन हो गए। नवकार में चित्त रम गया तो शारीरिक पीड़ा की अनुभूति धीरे-धीरे कम होती चली गई। सारी इच्छाएँ समाप्त हो गई। सिर्फ एक ही इच्छा थी - सद्‌गति प्राप्त हो।

ऐसी अत्यन्त निराशा की स्थिति में मनुष्य धर्म की शरण में आता है तो अनन्य आस्था के साथ उसी में खो जाता है। यह अनन्य भाव ही साधना में शीघ्र सफलता दिलाता है।

रात्री के ग्यारह बजे जोरदार वमन हुआ और मूर्च्छित हो गए। अनन्य भावपूर्वक नवकार मंत्र के जप ने अपना प्रभावा दिखाया, कैन्सर के विषैले किटाणु तथा विषाक्त रक्त वमन के रास्ते निकल गया, रोग समाप्त हो गया।

अशक्ति के कारण बेहोश हो गये थे पर परिवारों को लगा चले गए। रोना - पीटना शुरू हो गया। पर आश्चर्य, गुलाबचन्दभाई को होश आ गया। उन्होंने पानी माँगा। दो-तीन लोटे पानी पी गए। माँने थोडा दूध दिया वह भी वे पी गए फिर वे गहरी नींद में सो गए। प्रात:काल उठे तो एकदम स्फूर्ति अनुभव की। चाय पी।धीरे-धीरे स्फूर्ति बढ़ने लगी।

श्री गुलाबचन्द भाई ने साक्षात् नवकार मंत्र के प्रभाव का अनुभव किया। अब तो नवकार मंत्र उनके हृदय में बस गया और रातदिन मनमें नवकार मंत्र का जप करने लगे और यही भावना करते - सभी सुखी हों, निरोगी हों।

अब सप्ताह के बाद वे अपने फॅमिली डॉक्टरसे चेकअप् करवाने गए। डॉक्टर तो आश्चर्य से अवाक् हो गये। पूछा, आपने किस डॉक्टर या वैद्य का इलाज करवाया ?

उन्होंने कहा - सिर्फ नवकार मंत्र की आराधना की और कुछ भी नहीं।

नवकार मंत्र के जप से उनका जीवन सुखी हो गया। यह कहानी नहीं आज के विज्ञान युग में भी प्रभुनाम का प्रभाव अमिट छाप छोड़ता है। यह सत्य घटना है। [१९७]

निष्कर्ष :

"जैन धर्म में नवकार मंत्र और भारतीय मंत्र विद्याओं में नवकार मंत्र का स्थान"

इस द्वितीय प्रकरण के प्रारंभ में नवकार मंत्र की उत्पत्ति, नवकार मंत्र का अर्थ, नवकार मंत्र का बाह्य और आंतरिक स्वरुप, नवकार मंत्र यह महामंत्र क्यों ? नवकार महामंत्रका महत्त्व आदि का संक्षेप में विवेचन किया गया है।

तत्पश्चात् भारतीय विद्यामें मंत्रशास्त्र की परंपरा, मंत्र की परिभाषा, मंत्र जप की उपयोगिता, मंत्रजप के लौकिक और आध्यात्मिक रुप, मंत्र का शब्द ब्रह्मात्मक स्वरुप, मंत्र और अंतर्जागरण आदि का संक्षेप में निरुपण किया गया है।

मंत्राराधना का जप से विशेष संबंध है। जप किस प्रकार किया जाए, उसकी साधारण प्रक्रिया उसके भिन्न-भिन्न विधि क्रम इत्यादि विषयोंको भी सामान्यरुपमें व्याख्यात किया गया है ताकि मंत्राराधना के क्षेत्रमें रुचिशील साधकों को आराधना की पृष्ठभूमि प्राप्त हो सके।

मंत्र और उसका अभ्यास या आराधना करनेवाले व्यक्ति का परस्पर अत्याधिक संबंध है। आराधक को मंत्राराधना करने से पूर्व मंत्रविषयक मंत्राभ्यास का प्रयोजन ज्ञान होना चाहिए।इस संबंधमें भी उल्लेख किया गया है। साथ ही साथ जैन परंपरामें प्रचलित आनुपूर्वी जपका स्वरुप भी बतलाया गया है।

इस प्रकरण में नवकार आराधना की साधारण पृष्ठभूमिका वर्णन किया गया है, जो उस दिशामें अध्ययन करनेवाले और साधना करनेवाले व्यक्तियों के लिए मार्गदर्शक है। नवकारमंत्र के चिंतन का ज्ञान यहाँ संक्षेप में दिया गया है। नवकार मंत्र का ज्ञान, उसका स्वरुप समझने के बाद उसपर अटूट श्रद्धा जीवमें उत्पन्न होती है। साधक उसका जप करने को तैयार होता है। साधक एक आसन पर स्थिर होकर बैठता है। मनको एकाग्र कर श्वास का निरीक्षण कर, नवकार मंत्र का जाप करते हुए उसका चिंतन करता है। ऐसा करने से अशुभ विचार दूर होते हैं और शुभ विचारोंका निर्माण होता है।

नवकार मंत्र के जप से साधक के मन में निश्चित परिवर्तन होता है। इसमें विश्वास और आस्था की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। विश्वास की शक्ति, नवकार मंत्र पर श्रद्धा, विश्वाससे साधक के पाप, ताप धूल जाते हैं। यह जन्मोजन्मांतर के पाप धोने की आध्यात्मिक वॉशिंग मशीन है। इस प्रकार इस प्रकरण में उल्लेख हुआ है। इस प्रकरण में नवकार मंत्र के प्रभावकी कहानियोंका उल्लेख किया गया है।

तृतीय प्रकरण में नवकार मंत्र का विशेष विश्लेषण और विश्वमैत्री शुभो-पयोग और शुद्धोपयोग, षड्ावश्यक और नवकार मंत्र, नवकार मंत्र और नवतत्व, लेश्या विशुद्धि आदि के ज्ञान की प्राप्ति साधक को आवश्यक है। लेश्या विशुद्धि से भाव और भवकी विशुद्धि होती है। आदि का विश्लेषण आगे के प्रकरण में दिया जाएगा।

●●●

संदर्भ

द्वितीय प्रकरण

१) **क) त्रैलोक्य दीपक** (ले. भद्रंकर विजयजी गणिवर्य) पृ. ४४, ४५

ख) नमस्कार - महामंत्र (ले. भदंकर विजयजी गणिवर्य) पृ. ९५, ९६

२) **नवकार महामंत्र** : (ले. पं. कन्हैय्यालाल द.क.) पृ. ५

३) **मंत्राधिराज :** भाग ३ (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ६४७

४) **मंत्राधिराज :** भाग ३ (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ६०४

५) **भावना भवनाशिनी** (ले. अरुण विजयजी) पृ. १

६) **यशस्तिलक :** चम्पु धर्मभावना - श्लोक १४५,१४६, पृ. २७३, २७४

७) **ज्ञानार्णव** : सर्ग -२ , श्लोक ४

८) **ज्ञानार्णव :** सर्ग -२, श्लोक ११

९) **योगशास्त्र** : श्लोक - ९६-९९- पृ. १३८,१३९

१०) **मानवता के पथ पर** (ले. मुनिश्री लाभचंद जी महाराज) पृ. १०२

११) **जैन ज्ञान कोश** : खंड ३, पृ. ३१

१२) **व्याख्याप्रज्ञाप्ति सूत्र :** १ उदे. १ पृ. ३१

१३) **अध्यात्म पत्र सार** (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ३

१४) **नमस्कार महामंत्र** (ले. जयानंद विजयजी महाराज)पृ. २

१५) **क) पंच परमेष्ठि प्रभाव** (ले. माणिकचंदजी स्वामी) पृ. २१

ख) जैन धर्म महामंत्र नवकार (उपाध्याय, अमरमुनि) पृ. ४

१६) क) **भगवती सूत्र** - मंगला चरण पृ. ७

ख) **धवला टीका -** प्रथम पुस्तक, पृ. ४२-४४

ग) **सप्तस्मरणानि,** पृ. २

घ) **नाम मालाका भाष्य** - (अमरकीर्ति विरचित) पृ. ५८, ५९

ड) **मंगल मंत्र णमोकार - एक अनुचिंतन :** (डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री) पृ. ११

च) **नवकार महामंत्र :** (ले. वाणीभूषण श्री. रतन मुनि) पृ. ११

१७) **नमस्कार महिमा :** (ले. विजयलब्धिसूरिजी महाराज) पृ. ६५

१८) **अखंड ज्योत** : (ले. शीलगुण विजयजी महाराज) पृ. ६२

१९) **जीवनधर्म :**(आ. नानालालजी महाराज) पृ. १४८

२०) **आकारदिक्षकारान्ता वर्णा :** प्रोक्तास्तु मातृकाः ।

सृष्टिन्यास - स्थितिन्यास - सिंहतिन्यासतस्त्रिधा ॥
जयसेन प्रतिष्ठा पाठ, श्लोक - ३७६

२१) हलो बीजानि चोक्तानि स्वरा: शक्तय ईरिता:
- जयसेन प्रतिष्ठा पाठ, श्लोक - ३७७

२२) क) **नवकार महामंत्र :** (ले. कन्हैयालाल दक) पृ. ३,४
ख) **नमस्कार चिंतामणि** : (ले. कुंदकुंद विजयजी) पृ. २८-२९

२३) **मंगल मंत्र णमोकार एक अनुचिंतन** (डॉ. नेमिचंदजी शास्त्री) पृ. १०-१३

२४) पंचाद्वौ यत्पदानि त्रिभुवनपति भर्व्याहता पंचतीर्थी ।
तीर्थान्यवाष्टषष्टि - जिनसमय रहस्यानि यस्याक्षराणि ॥
यस्त्राष्टौ संपदश्चानुपमत महासिद्धयोऽद्वैतशक्ति ।
जीयाद् लोकद्वयस्या भिलषित फलद: श्री नमस्कार मंत्र : ॥
नमस्कार चिंतामणी, (ले. कलापूर्ण सूरिजी महाराज) पृ. २९,३०

२५) क) **नमस्कार महिमा** : (कुंदकुंद विजयजी) पृ. ७६, ७७
ख) **नवकार सिद्धि** : (ले. गोविंदजी लोढाया) पृ. १६
ग) **तमसो मा ज्योतिर्गमय** : (आ. देवेंद्रमुनि) पृ. ३

२६) **महामंत्र की अनुप्रेक्षा :** (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. १९

२७) संजोगा विप्पमुक्कस्स, अण-गारस्स भिक्खुणो ।
विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ॥
उत्तराध्ययन सूत्र : (युवाचार्य, मधुकर मुनिजी महाराज) अ.१, गा. १

२८) **समाधि सोपान :** (ले. मनोहर मारवडकर) पृ. १९२

२९) काय - वाड्मन: कर्म योग : ।
तत्वार्थ सूत्र (उमास्वाति) अ.६, सू. १

३०) क) **भगवतीजी सूत्र नां व्याख्यानो -** भा. ३
(ले. आ.विजयलब्धि सूरिजी महाराज) पृ. १६२
ख) **प्रवचन रत्नाकर - भाग** ५ : (ले. कानजीस्वामी) पृ. २८७
ग) **अरिहंत** - (डॉ. दिव्यप्रभाजी) पृ. ३१

३१) **देव दर्शन** : (भद्रंकर विजयजी) पृ. १७७

३२) क) **तीर्थंकर मासिक** : (सं. डॉ. नेमीचंद्र जैन) पृ. ६३

ख) **अरिहंत ध्यान** : (ले. मुनिश्री चंद्रशेखर विजयजी) पृ. १३

३३ क) **जिनतत्त्व** - भा.६ : (ले. रमणलाल ची.शाह) पृ. ५४

ख) **अनुप्रेक्षानां अजवाळां** : (ले भद्रंकर विजयजी) पृ. ५८

ग) **जैन -ज्ञानकोश** - भाग ४ (सं. अज्ञात) पृ. ३७०

घ) **नमस्कार स्वाध्याय - संस्कृत विभाग :** (सं. धुरंधर विजयजी) पृ. ८७

३४) **णमो अनंत सिद्धाणं** : (ले. गौतम मुनि प्रथम) पृ. ३

३५) **नवपद प्रकाश :** (ले. विजय भुवन भानु सूरि) पृ. २१

३६) NavkarMaha Mantra (By - R. B. Prawat) Page 12

३७) क) सिद्धा सिद्धयंति सेतस्यान्ति ये जीवा भुवनत्रये।
सर्वेऽपि ते नवपदाराधने नैव निश्चितम् ॥
श्रीपाल चरित्र - गाथा १२०

ख) **नमस्कार महामंत्र महात्म्य** : (सं. चंदनमल नागोरी) पृ. ४७

ग) **नमस्कार स्वाध्याय - प्राकृत विभाग** : (ले. तत्वानंद विजयजी) पृ. ३

घ) **आचार्य कुंदकुंद और उनके पंच परमागम** : (ले. हुकुमचंद भारिल्ल) पृ. ६७

३८) जैन -ज्ञानकोश - खंड १ (संग्राहक - अज्ञात) पृ. २२५

३९) आचिनोति च शास्त्रार्थमाचरे स्थापयत्यपि।
स्वयमाचरते यस्मादावचार्यस्तेन कथ्यते ॥
आवश्यक निर्युक्ति, पृ. ५

४०) **नवपद महात्म्य** : (सं. अकलंक विजयजी) पृ. २६

४१) **नवपद प्रकाश** : (ले. भुवनभानु सूरिजी) पृ. २३

४२) **पंचसूत्र** : (ले. विजय हेमरत्नसुरिश्वरजी) - पृ. २०

४३) **नमस्कार - चिंतामणि** : (ले. कुंदकुंद विजयजी) पृ. ४०,४१

४४) **जैन ज्ञानकोश** भा. ४ (सं. अज्ञात) पृ. ३६०

४५) **जैनेंद्र सिद्धांत कोश भाग - ४ :**(ले. जिनेंद्रवर्णी) पृ. ४०२

४६) **नमस्कार चिंतामणि :**(कुंदकुंद विजयजी) पृ. ४२

४७) **सहज समाधि :** (ले. कलापूर्ण सुरिजी) पृ. ५९

४८) विषयाशावशतीतो निरारम्भोडपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यान तपोरकनस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥
णमोकार महामंत्र (ले. पं. रतनचंद भारिल्ल) पृ. ३९

४९) क) **अनुप्रेक्षा** (ले. भद्रंकर विजयजी महाराज) पृ. १३८
ख) **जैन प्रकाश** - मासिक पत्रिका - अंक सन् २३-७-१९९४

५०) **धर्मश्रद्धा -** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ३

५१) सव्वे - जीवा वि इच्छन्ति, जीवर्ष्रिउंन मरिज्जिउं ।
तम्हा पाण - वहं घोरं, निग्गन्था वज्जयन्ति णं ॥
दशवैकालिक सूत्र (युवाचार्य मधुकर मुनि) अ. ६, गा. ११

५२) सुत्ता अमुणी, मुणिणो सया जागरंति ।
जैन धर्म - जीवन धर्म - (मुनि. श्री. सुशीलकुमारजी शास्त्री) पृ. ४८

५३) ओमकार एक अनुचिंतन पृ. २७

५४) **नवपद आराधना** : (ले. आ. हस्तीमलजी महाराज) पृ. १९,२०

५५) **नमस्कार महामंत्र :** (म. राजीमती) पृ. १

५६) **एसो पंच नमोक्कारो :** (महाप्रज्ञजी) पृ. ३४,३५

५७) क) **तत्वार्थ सूत्र** : अ. ९, सूत्र १९,२०
ख) **उत्तराध्ययन सूत्र :** अ- ३०, गाथा ८-३०
ग) **तत्वार्थ राजवार्तिक भाग** - २, अ. ९, सू. १९,२०, पृ. १८४

५८) **उत्तराध्यायन सूत्र :** अ. २०

५९) क) **नामजपाचे महत्त्व :**(ले. रामचंद्र कृष्ण कामत)- पृ. १७, १८
ख) **श्री जिन भक्ति कल्पतरू :** (ले. पं. धीरजलाल शाह) पृ. ९०-९३
ग) **श्री नवकार साधना :** (ले. मफतलाल संघवी) पृ. ६१८

६०) **ओमकार एक अनुचिंतन :** (ले. पुष्कर मुनिजी महाराज) पृ. २४

६१) क) **भगवान श्री, महावीर स्वामीजी :** (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ३८३
ख) **मंत्राधिराज भाग १** : (ले. मुनि श्री. रत्नसेन विजयजी महाराज) पृ. १३

६२ क) **जैनेंद्र सिद्धांत कोश भाग - २** (जिनेंद्रवर्णी) पृ. ५०५

ख) मणसा गुण - परिणामो, वाया गुण - भासणं च पंचण्हं।
काएण संपणामो, एस पयत्थो नमुक्कारो ॥
श्री नमस्कार निर्युक्ति(श्रीमद् भद्रबाहु स्वामीजी)

६३) जण्णं इमें समणे वा समणी वा सावए..... उभओकालं आवस्सयं करोंति।
अनुयोगद्वार सूत्र (युवाचार्य मधुकर मुनि) पृ. २७

६४) यथा नक्षत्रमालायां स्वामी पीयूष दीधितिः
तथा भावनमस्कारः सर्वस्यां पुण्यसंहतौ ॥ १॥
जीवेनाकृतकृत्यानि, विना भावनमस्कृतिं
गृहीतानि विमुक्तानि, द्रव्यलिंगान्यनन्तशः ॥२॥

मंत्राधिराज भाग - १ : (ले. भद्रंकर विजयजी गणिवर्य) गा. १,२, पृ. १७

६५) **चूंटेलुं चिंतन :** (ले. भद्रंकर विजयजी गणिवर) पृ. ७,८

६६) क) **मदनवैराग्य सिंधु** (संकलन कर्ता - अेम मदनलाल गोठी - जैन)पृ. ८,९
ख) **ओमकार एक अनुचिंतन :** (ले. पुष्करमुनिजी महाराज) पृ. २४

६७) **तत्वार्थ - सूत्र अध्ययन -** १०, सू. ३

६८) धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥
दशवैकालिक सूत्र (युवाचार्य मधुकर मुनि) अ.१, गा. १

६९) क) **अनुप्रेक्षा** - किरण १-२-३ : (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. १२१
ख) **णमोकार मंत्र साहित्य -** एक अनुशीलन (अमरचंद नाहटा) पृ. २

७०) **जिण धम्मो :** (आ. नानेश) पृ. ६

७१) **भारतीय दर्शन** : (ले. स्वामी सच्चिदानंद) पृ. ९५

७२) **जैन तत्व रहस्य :** (भद्रंकर विजयजी)पृ. ६६

७३) **जैन ज्ञान कोश** - खंड ३ (संपादक - अज्ञात) पृ. ३७०

७४) **पंच परमेष्ठि नमस्कार :** (ले. पन्नालालजी गांधी) पृ. २३

७५) **त्रैलोक्यदीपक :** (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ.१२५ - १२७

७६)　**आत्मोत्थान :** (ले. विश्व हितेच्छु) पृ. ६६, ६७

७७)　क) **जैनेंद्र सिद्धांत कोश -** भाग . ३ (जिनेंद्र वर्णी) पृ. २२
　　ख) **मंत्राधिराज भाग ३** (मुनि रत्नसेन) पृ. १२७

७८)　क) **भुवनभानुनां अजवाळां** - पृ. १६
　　ख) **नवपद साधना** (वीरभान जैन.) पृ. १९

७९)　विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयँ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥
- ईशावास्योपनिषद् ११ पृ. ११

८०)　न हि कश्चित् क्षणमपि, जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्
कार्य नवरा: कर्म, सर्व: प्रकृतिजैर्गुणै: ॥
- श्रीमद् भगवद्गीता अध्याय ३, श्लोक ५

८१)　त्यकत्वा कर्म फलासंग, नित्यतृप्तो निराश्रय: ।
कर्मण्यभिप्रवत्तोऽपि, नैव किंचित् करोति स: ॥
श्रीमद् भगवद् गीता, अध्याय ४, श्लोक २०

८२)　मननात् त्रायते इतिमंत्र: ।
श्री नवकार महामंत्र पृ. १०

८३)　**ऐसो पंच नमोक्कारो :** (ले. आ. महाप्रज्ञजी) पृ. १२

८४)　**मंत्र रहस्य :** (ले. डॉ. नारायण दत्त श्रीमाली) पृ. २२, ८३

८५)　**मंगल मंत्र नमोक्कार :** एक अनुचिंतन, पृ. ८

८६)　**अनुप्रेक्षा :** (भद्रंकर विजयजी महाराज) पृ. ८३

८७)　**त्रैलोक्य दीपक :** (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ३८०,३८१

८८)　**मंत्र रहस्य :**(ले. नारायदत्त श्रीमाली) दो शब्द, पृ. ३

८९)　क) **नमस्कार मीमांसा** - (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ३,४
　　ख) **भागवत सुधा** (ले. रमेशभाई ओझा) पृ. १४६
　　ग) **अखंड ज्योत** - पृ. ५४

९०)　क) **नमस्कार स्वाध्याय, संस्कृत विभाग** :(ले. धुरंधर विजयजी,) पृ. २७,२८
　　ख) **जिनोपासना** - पृ. १५०

९१) **नवकार यात्रा :** (ले. सर्वेश वोरा) पृ. १

९२) **चिंतनधारा :** भद्रंकर विजयजी - पृ. ११२,११३

९३) **नाम जपाचे महत्त्व** - पृ. १८

९४) **नित समरो नवकार :**(ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ७४

९५) क) **मंत्र विज्ञान अने साधना रहस्य भाग** - ४ पृ. १५९
ख) **मंत्र रहस्य -** पृ. १५९

९६) क) **मंत्र - विज्ञान अने साधना रहस्य भाग ४** - पृ. १००
ख) **मंत्र रहस्य** - पृ. १००

९७) **मंत्र विज्ञान अने साधना रहस्य भाग ४** - पृ. ११६

९८) **अखंड ज्योती** - पृ. ५४

९९) **जिनोपासना :**(ले. पं. धीरजलाल टोकरशी शाह) पृ. १५०

१००) क) **नमस्कार - मीमांसा :**(ले. भद्रंकर विजयजी गणिवर) पृ. ३, ४
ख) **भक्ति योग** (स्वामी विवेकानंद) पृ. २९,३०

१०१) **नमस्कार महामंत्र :**(साध्वी राजीमतिजी) पृ. १

१०२) क) **महामंत्र नवकार** :(ले.उपाध्याय केवलमुनि) पृ. ५९
ख) **आत्मोत्थान :**(ले. विश्वहितेच्छु) पृ.७६,७७
ग) **आत्मोत्थान :**(ले. विश्वहितेच्छु) पृ. ८०

१०३) **जपयोग** :(ले. कलापूर्णसुरिजी)- पृ. ५,६

१०४) **तीर्थंकर (मासिक)** वर्ष १०, अंक ९, पृ. ७८

१०५) क) **आलोक स्तंभ** - पृ. ७
ख) **अनुप्रेक्षा** - (भद्रंकर विजयजी) पृ. ८३

१०६) क) अनादिनिधनं ब्रह्म, शब्दतत्वं तदक्षरम् ।
विवर्तते र्थभावेन, प्रक्रिया जगतो यत: ॥
वाक्यपदीय - १.१

ख) **सर्वदर्शन संग्रह** - पृ. ५९१

१०७) **बहुआयामी महामंत्र णमोकार :** (ले. डॉ. नेमीचंद जैन) पृ. ९५

१०८) **चिंतन सुवास :** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ५७

१०९) **मंत्राधिराज भाग ३ :** (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ७६७-७६९

११०) **ज्येष्ठ पंचनमस्कार - बृहन्न नमस्कार फल स्तोत्रम् :** (ले. भद्रंकर विजयजी) श्लोक १२

१११) **श्री लघुनमस्कार फलं सगाथार्थ :** नवकार फल प्रकरणम् : (ले. भद्रंकर विजयजी) श्लोक २५

११२) **मंत्राधिराज** भाग ३ (सं. विजयसेनजी महाराज) श्लोक - ९७ पृ. ७५९

११३) **बृहन्नमस्कार फल स्तोत्रम्** गाथा - ८२

११४) **नमस्कार चिंतामणि** : (भद्रंकर विजयजी गणिवर) पृ. ४ - ७

११५) क) **जीवन श्रेयस्कर पाठमाला** - पृ. ८

ख) **मंगलवाणी** (संपादक - मुनिश्री अमोलक चंद्रजी अखिलेश) पृ. २१९

ग) **भगवान श्री. महावीर :** (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ६ - ८

११६) **नमस्कार चिंतामणि :** (ले.भद्रंकर विजयजी) पृ. ९

११७) क) ध्वन्यालोक आलोक - १, श्लोक -१

ख) काव्यानु शासनंच समीक्षात्मक अनुशीलनम् (ले. आ.हेमचंद्र) पृ.८२

११८) क) **जिनोपासना** : (ले. धीरजलाल शाह) पृ. १६५

ख) **श्री नवकार माहत्म्य** : (ले. वाणीभूषण रतनमुनिजी महाराज)

ग) **नमस्कार स्वाध्याय संस्कृत विभाग** : (धुरंधर विजयजी) पृ. २३७

११९) **संस्कृत हिन्दी कोश :** (ले. वामन शिवराम आपटे) पृ. १००९

१२०) **अभयकुमार चरित :** सर्ग ११, श्लोक ४२-५१ नमस्कार स्वाध्याय (संस्कृत विभाग) पृ. २३८, २३९

१२१) **सुकृत सागर तरंग** - ५, श्लोक - ७६-८०-नमस्कार स्वाध्याय - (संस्कृत विभाग) पृ. २३९, २४०

१२२) **पंचनमस्कृति दीपक श्लोक -** ४०-४३ नमस्कार स्वाध्याय (संस्कृत विभाग) पृ.१९८

१२३) **पंचनमस्कृति दीपक** - नमस्कार स्वाध्याय (संस्कृत विभाग) पृ. २०३

१२४) 'हवइ' पाठान्तरम्

१२५) **पंचनमस्कृति - दीपक, नमस्कार - स्वाध्याय** (संस्कृत विभाग) पृ. २१०

१२६) **पंचनमस्कृति दीपक-रक्षा मंत्र** ७४, नमस्कार स्वाध्याय (संस्कृत विभाग) पृ. २१०

१२७) **सचित्र णमोकार महामंत्र :** (सं. श्री चंद सुराणा)

१२८) जीवन धर्म पृ. १३

१२९) Readers Digest Feb - 1960

१३०) Reader's Digest Feb - 1958

१३१) ननु उवसग्गे पीड़ा कूरग्गह दंसण भओ संका।
जइ वि न हवंति ए ए, तह वि सगुज्झं भणिज्जासु ॥
नवकार-सार- **थ**वणं, गाथा - ३२

१३२) सवी मंत्र मां सारो, भाख्यो श्री नवकार।
कह्या न जायरे एहना, जे छे बहु उपकार ॥
नवकार यात्रा (संकलन - सर्वेश वोरा) - पृ. ९२

१३३) **महामंत्र की अनुप्रेक्षा :**(ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ३७

१३४) क) **त्रैलोक्य दीपक महामंत्राधिराज :** (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ५७१
ख) **णमोक्कार महामंत्र** : (दिनेशभाई मोदी) पृ. २९

१३५) **भारतीय दर्शन :** (ले. पंडित बलदेव उपाध्याय) पृ.१११

१३६) **मंत्राधिराज** भाग २ : (भद्रंकर विजयजी) पृ. ३४८

१३७) **आगम युगका जैन दर्शन** : (ले. दलसुख मालवणीया) पृ. २१०

१३८) **प्रवचनसार** : (ले. कुंदकुंदाचार्य) पृ. १९२

१३९) **सचित्र गणधरवाद, भाग २ :** (ले. अरुण विजयजी गणिवर्य) पृ. २०८,२१०

१४०) **नाम चिंतामणि :** (ले. रामचंद्र कृष्ण कामत) पृ. २५,२६

१४१) **त्रैलोक्य दीपक : महामंत्राधिराज** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ४४-४५

१४२) **मंत्रधिराज :** भाग ३, पृ.८१३

१४३) जायते येन येनेह, विहितेन स्थिरं मन:
तत्तदेव विधातव्यभासनं ध्यान-साधनम् ॥
योगशास्त्र प्रकाश - ४, श्लोक १३४

१४४) सुखासन समासीन: सुशिलष्टाधरपल्लव:
नासा ग्रन्यस्तद्दगद्वण्द्वो, दन्तैदन्तान संस्पृशन् ॥
प्रसन्नवदन: पूर्वाभिमुखो, वाप्यदङ्.मुख: ।
अप्रमत्त: सुसंस्थानों, ध्याता ध्यानोपतो भवेत ॥
योगशास्त्र-प्रकाश-४, श्लोक १३५, १३६

१४५) चंचल हि मन: कृष्ण ! प्रमाधि बलवद्दढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्यें, वायोरिव सुदुष्करम् ॥
असंशयं महाबाहो ! मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कोन्तेय ! वैराग्येण च गृहयते ॥
श्रीमद् भगवत् गीता (ले. कृष्णकृप श्रीमूर्ति)
अ. ६, श्लोक ३४, ३५

१४६) **मंगलमय नमोक्कार मंत्र एक अनुशीलन** - पृ. ४०-४९

१४७) **श्री नवकार मंत्र अे सर्व धर्म नो सार**
(संग्राहक - श्रीकांति ऋषिजी महाराज) पृ. ८९

१४८) **जेने हैये श्री नवकार तेने करशे शुं संसार ?**
(सं. गुणसागर सूरिश्वरजी महाराज) पृ.४०

१४९) **नमस्कार चिंतामणि :** (भद्रंकर विजयजी) श्लोक ४ पृ. १५

१५०) **आत्मोत्थान :** (ले. विश्वहितेच्छु) पृ. १९३

१५१) **आत्मोत्थान :** (ले. विश्वहितेच्छु) पृ. ७९, ८०

१५२) निन्द्यो न कोऽपि लोक: पापिष्ठष्वपि भवस्थितिश्चिन्त्या ।
पूज्यागुणगरिमादया, धार्यो रागो गुणलवेऽपि ॥
नमस्कार चिंतामणि - श्लोक - ५, पृ. १८

१५३) **दशवैकालिक सूत्र :** (युवाचार्य मधुकर मुनिजी) अ.१गा. १

१५४) क) **कर्म प्रकृति** - (मलगिरिकृत) टीका - पृ. २
ख) **जैन तत्वप्रकाश** (अमोलक ऋषिजी महाराज) पृ. ३६५- ३७१
ग) **जैन विद्या गोष्ठी** (संयोजक श्री दुलिचंदजी जैन) पृ. ९५
घ) **दशवैकालिक सूत्र** (युवाचार्य मधुकर मुनि) ८/४०

ड) **प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास** : (ले. डॉ. नेमीचंदजी शास्त्री) पृ. २३८

च) **जैन ज्ञानकोश** - खंड २ (संग्राहक - अज्ञात) पृ. २२

छ) **भावना योग :** (आ. आनंदऋषीजी महाराज) पृ. २४९

१५५) **आवश्यक सूत्र** : (युवाचार्य मधुकर मुनिजी) श्रमण सूत्र पृ. ५०

१५६) क) **जैन लक्षणावली** (सं. बालचंद सिद्धांत शास्त्री) पृ. १८७

ख) **इशादि नौ उपनिषद** (व्याख्याकार हरिकृष्णदास गोयंदका) पृ. ११

ग) **छान्दोग्योपनिषद** - खंड - ३ (गीता प्रेस गोरखपूर) पृ. ५१३

१५७) क) **जैन तत्व प्रकाश :** (पू. अमोलक ऋषिजी महाराज) पृ. १७३-१८१

ख) **आवश्यक सूत्र** : (मधुकर मुनिजी) पृ. १३६, १३७

१५८) **श्री बृहद् जैन धोक संग्रह,** पृ. ४८८

१५९) **श्री बृहद् जैन थोक संग्रह,** पृ. ७९

१६०) **त्रैलोक्य दीपक :** (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ४०९, ४१०

१६१) **मंगलमय णमोकार एक अनुचिंतन :** (डॉ. नेमिचंद शास्त्री) पृ. ४१-४२

१६२) अष्टपत्रें सिताम्भोजे, कर्णिकायां कृत स्थितम् ॥
आद्यं सप्ताक्षरं मंत्र पवित्रं चिन्तयेत्ततः ॥
सिद्धादिकं चतुष्कंच, दिक् पत्रेषु चिन्तयेत् ॥
- चूलापाद चतुष्कंच, विदिक् पत्रेषु चिन्तयेत् ॥
योगशास्त्र प्रकाश -८, श्लोक ३३-३४

१६३) क) **संस्कृत हिन्दी कोश :** (वामन शिवराम आपटे) पृ. १०४६

ख) **मंगलमय नवकार** - पृ. ४१

१६४) क) बारस गुण अरिहंता, सिद्धा अट्ठेव सुरि छत्तीसा ॥
उवज्झाया पणवीसा, साहू सगवीस अट्ठसयं
नमस्कार चिंतामणि (भद्रंकर विजयजी) पृ. ४२

ख) सचित्र नमोक्कार महामंत्र श्लोक पृ. २०

१६५) **मंगल वाणी,** पृ. ३८१, ३८२

१६६) क) **समरो मंत्र भलो नवकार :** ले. कुंदकुंद विजयजी - पृ. १५

ख) **जैन साधना योग** - पृ. ८२-८४

१६७) **कबीर पदावली** पृ. १२५

१६८) **महामंत्र नां अजवाळा** - पृ. १२०,१२१

१६९) **योगसूत्र समाधि पाद** - सूत्र - २८

१७०) **नमस्कार - चिंतामणि :** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ८०

१७१) **नमस्कार चिंतामणि :** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ८०

१७२) **मंत्र विज्ञान अने साधना रहस्य :** (विश्वशांति चाहक) पृ. १४०-१४७

१७३) **नमस्कार चिंतामणि :** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ८३

१७४) **नमस्कार चिंतामणि :** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ८५

१७५) **जपयोग** : (आ. कलापूर्णसुरि) पृ. ९

१७६) **नमस्कार चिंतामणि :** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ८७-८९

१७७) **नामजप :** (जयदयाल गोयन्दका) पृ. १४, १५

१७८) **अनुयोगद्वार सूत्र** : (युवाचार्य मधुकर मुनि) सूत्र ९३, पृ. ५७

१७९) क) **श्री नवपद आराधना** (उपदेष्टा - आ: हस्तीमलजी म.सा) पृ. ७

ख) **मंगलमंत्र णमोकार : एक अनुचिंतन** - पृ. ११०,१११

ग) **नमस्कार चिंतामणि** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ८१

१८० क) **आराधनानो मार्ग** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ९५

ख) **जिण धम्मो** (आ. नानेश) पृ. ७५५

१८१) **जैन दर्शन आधुनिक दृष्टि :** (ले. डॉ. नरेंद्र भानावत) पृ. ८३

१८२ क) उत्तम संहनन स्यैकाग्रचिन्ता निरोधो ध्यानम् ॥
तत्वार्थ सूत्र : अध्याय ९, सूत्र २७

ख) **जैनेंद्र सिद्धांत कोश -** भाग ४ (जैनेंद्र वर्णी) पृ. ४०२

१८३) क) **आलोक स्तंभ** : संचालक - कमलजैन - पृ. ८,९

ख) **ज्ञानसार** : ले. भद्रंकर सूरिश्वरजी महाराज - पृ. २५८

१८४) क) अट्टरूदाणि वज्जा झाएज्जा सुसमाहिए ।
धम्मसुक्काइं झाइं झाणं तं तु बुहा वए ।

दशवैकालिक सूत्र (मधुकर मुनि) अ.१ वृत्ति

ख) वीतरागनी द्दष्टिअे (ले. आप्तपुत्र डॉ. शैलेष मेहता) पृ. १७

१८५) **नमस्कार मंत्र सिद्धि :** (ले. धीरजलाल शाह) पृ. २४४

१८६) क) **ज्ञानार्णव :** (डॉ. स्वाधी दर्शनलता) पृ. १६३

ख) **जैन धर्म में तप :** (मरूधर केसरी मिश्रीमलजी महाराज) पृ. ४७१,४७२

ग) **ठाणांक सूत्र - सूत्तागमें :** (सं. पुष्पभिक्खु) भाग १, ३,१ पृ. २२४

१८७) **नमस्कार निष्ठा** - पृ. ७९

१८८) **पंच परमेष्ठी नमस्कार स्तव -श्लोक** - १-५ नमस्कार स्वाध्याय (संस्कृत - विभाग) पृ. १८३

१८९) क) **अरिहंत: स्वरुप - साधना आराधना** - पृ. ५५

ख) **योग प्रयोग आयोग** : (ले. डॉ. मुक्तिप्रभाजी) पृ. २०७

ग) **समीक्षण ध्यान एक मनोविज्ञान** : (ले. आ. नानेश) पृ. १०६

घ) **मंत्राधिराज भाग ३** : (ले. भद्रगुप्त विजयजी) पृ. ६९७-६९९

१९०) **जिणधम्मो** (आ. नानेश) पृ. ७७२

१९१) क) **आवश्यक सूत्र :** (युवाचार्य मधुकरमुनि) प्रथम अध्याय - पृ. ८ - १०

ख) **गुरुदेवनी गोद :** (उत्तमकुमार मुनि) पृ. ९१

१९२) **तीर्थंकर मासिक** - णमोकार मंत्र - विशेषांक - २ जनवरी पृ. ८१

१९३ क) **युवाचार्य श्री मधुकर मुनि स्मृति ग्रंथ** - पृ. २६

ख) **कथाशिल्प एक समीक्षा** : (श्री. मधुकर मुनिजी) पृ. २७

ग) **जैन कथाएँ :** (पू. आ. देवेंद्र मुनिजी शास्त्री) भाग १-२-३

१९४) क) **प्रकीर्णक** - धर्मदूत - मासिक सन् १९९९

ख) **जैन कथामाला भाग १ :** (सं. श्री.मधुकर मुनिजी) पृ. १२

१९५) क) **सचित्र नमोकार महामंत्र** : (श्री चंदसुराणा)

ख) **बड़ी साधु वंदना :** (डॉ. पद्ममुनि) पृ. ८४-८७

ग) **मंत्राधिराज** भाग ३ : (भद्रंकर विजयजी - पृ. ३०३

१९६ क) **सचित्र णमोकार महामंत्र** : (श्रीचंद सुराणा)

ख) **श्रीपाल चरित्र :** ले. पू. चोथमलजी महाराज

१९७ क) **सचित्र णमोकार महामंत्र** (श्रीचंद सुराणा)

ख) **णमोकार मंत्र के चमत्कार**

ग) **मंत्राधिराज** भाग - ३ पृ. ४०१

१९८ **सचित्र णमोकार महामंत्र** - (श्रीचंद सुराणा)

१९९ क) जेने हैये श्री नवकार ... तेने करशे शुं संसार (सं. श्री. गुणसागर सूरि) पृ. २८-४०

ख) **सचित्र णमोकार महामंत्र** - पृ. ११-१३

तृतीय प्रकरण

नवकारमंत्रका विशेष विश्लेषण और विश्वमैत्री

नवकार महामंत्र और विश्वमैत्री

विश्वके मांगलिक मंत्रोमें नमस्कार महामंत्र परम मांगलिक और परम कल्याणकारी है। नवकार मंत्र के प्रत्येक शब्दमें साधक के अनेक जन्मों के कर्मों को नाश करनेकी शक्ति है। इस मंत्रमें विश्वमैत्री और विश्व के सभी जीवोंकी आत्मोन्नतिका वर्णन किया गया है। इस महामंत्र में धर्म या सांप्रदायिकता का जरा भी उल्लेख नहीं मिलता। नमस्कार महामंत्र के प्रथम पांच पदमें विश्वकी उत्तम पांच (परमेष्ठी) शक्ति को ही वंदन किया गया है और पंच परमेष्ठी से प्रार्थना की गई है कि - साधक में भी उत्तम गुणों का आविष्कार हो, संसार के सभी प्राणि हमारे मित्र है, किसी के साथ हमारा बैर नहीं है और न तो हम किसीका अमंगल चाहते है। वास्तव में किसीके अमंगलकी इच्छा करना हमारे अमंगलकी इच्छा करने बराबर है। जैन दर्शन स्पष्ट दर्शन है कि - यहाँ कोई किसीका मित्र नहीं है, और कोई किसी का शत्रु भी नही है। हे साधक ! आज, इसी भव में जिसे, तु मित्र समझता है, तो शायद वह तेरा शत्रु भी हो सकता है, और जिसे तू शत्रु समझता है, अगले जनम में वह तेरा मित्र भी हो सकता है। इसलिए किसी के साथ बैर रखना या तो उसके अमंगल की प्रवृत्ति करना यह महाअनर्थकारी सिद्ध हो सकता है। नवकार मंत्र के प्रत्येक पदमें विश्वमैत्री के, मंगल भाव का भंडार भरा है, और मैत्री भावका विकास करना ही साधक का कर्तव्य हो जाता है।

"Computer of Cosmic Communication"

विश्व के साथ समत्त्वयोग साधने की महान प्रक्रिया नवकार मंत्र है। जैसा परमात्मा का स्वरूप है वैसा स्वरूप विश्व के जीवमात्रका है। ऐसा विश्वमैत्री का भाव नमस्कार महामंत्र नवकार में उत्पन्न होता है।

नवकारमंत्रमें पूर्ण सामायिकवान, समता भावमें रमण करनेवाले को नमस्कार किया जाने के कारण नवकार मंत्र यह -Lesson of Livingness है।

"जारिस सिद्ध सहावो तारिस भावो हु सव्वजीवाणं।"

"सिद्ध भगवान का जैसा स्वरूप है, वैसा ही स्वरूप विश्वके जीव मात्र में है।"[१]

विश्वके अगम्य, अकल्पनीय, अवर्णनीय, अचिंतनीय गुप्त रहस्योंको प्राप्त करनेकी दिव्य कला श्री नवकार मंत्र है।

(Navkar is the supermost Secret Art to Cosmos.)

नवकार मंत्र जैन धर्म का सर्वोत्तम मंत्र तो है ही जैन दार्शनिकों ने इस महामंत्र को चौदह पूर्वोका सार कहा है, अर्थात्, इस महामंत्र में इतनी ताकत है कि - पूरा जैनदर्शन यह एक ही मंत्रमें समाविष्ट हो जाता है। पूरी श्रद्धा से इस महामंत्र का स्वाध्याय, ध्यान या

चिंतन किया जाए तो सभी संकट दूर करनेकी, साधक के अनेक जन्मों के कर्मो को नाश करने की और सर्वोत्तम मंगलकी प्राप्तिकी विशेषता इस मंत्र में है।[२]

नमस्कार महामंत्र केवल जैनों के लिए ही कल्याणकारी नहीं है, संसार के किसीभी व्यक्ति के कल्याणका महान उद्देश्य इस मंत्रमें दर्शाया गया है। यदि विश्वका कोई भी प्राणी इस मंत्र का रटन करें तो उसकी उन्नति अवश्य होगी। इस महामंत्र के जाप या स्मरण से मनमें उठनेवाले विकारी भावों एवं किसी दूसरों के अकल्याण का विचार मात्र भी नष्ट हो जाता है। दु:ख को दूर करनेवाला सुख को प्राप्त करनेवाला, भवसमुद्र से पार करनेवाला और अनेक जन्मों के कष्टों को दूर करनेवाला यह महान कल्याणकारी मंत्र है।

ज्ञानियोंने दर्शाया है कि - नमस्कार महामंत्र इस संसार का श्रेष्ठ मंत्र है, तीनों जगत में अनुपम है। सभी पापों को क्षय करनेवाला है और सिद्ध गति को प्राप्त करनेवाला है। भवभ्रमण से मुक्ति प्रदान करनेवाला नमस्कार महामंत्र संसार के सभी साधकों के लिए परम उपकारी है, परम कल्याणकारी है।

आत्मरक्षा के लिए नमस्कार महामंत्र महान उपकारी है। संसार की आधि-व्याधी और उपाधी से मुक्ति देनेवाला मंत्र सबके लिए महान हितकारी है। नवकार मंत्र के ध्यान से आत्मा-प्रकाशित होती है। अंधकार दूर होता है और उत्तरोत्तर प्रकाश की वृद्धि होती है, दोषों का परिहार होता है और गुण का विकास होता है। अखिल विश्वके कल्याण और मांगल्यका उत्तम उद्देश्य इस महामंत्र में मिल सकता है, इसलिए हम अवश्य कह सकते हैं कि यह महामंत्र विश्वजनीन है अर्थात् विश्व का कोई भी प्राणी इस की सहायता लेगा, उसका अवश्य कल्याण होगा और उसे परम शांति होगी। वर्तमान विश्वकी अशांतिको दूर करनेका महान कल्याणकारी मंत्र यह सिद्ध हो सकता है।

नमस्कार महामंत्र किसी भी साधकके भीतर के अशुभ भावोंको नाश करता है। इस संसार में - जैन दर्शन के मुताबिक कहे तो चौदह राजुलोक में एक भी जगह ऐसी नहीं है कि - जहाँ जीव का जन्म और मृत्यु न हुआ हो। इस सत्य को ख्याल में रखकर हमारी साधना ऐसी होनी चाहिये कि - संसार के सभी प्राणी मेरे मित्र है। मेरा किसी से बैर नहीं है। सारा विश्व एक विशाल परिवार है। "मैं सबका कल्याण चाहता हूँ, मेरे लिए कोई विदेशी नही है, पराये नहीं है। विश्वनागरिक की मंगलभावना प्रत्येक व्यक्ति को परम शांति और परमआनंद प्राप्त करनेमें सहायक बनी रहे, यही नवकार मंत्र की भावना है। मेरी प्रार्थना है। स्नेह, मैत्री और क्षमा विश्वकी समस्त मानव जाती का कल्याण करें यही नवकारमंत्र का प्रथम उद्देश्य है और इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हम सब सम्यक् पुरुषार्थ करें यही हमारी शुभभावना है।"[३]

नवकार के आराधक अधिकारी

भव्य जीव सांसरिक भोगों को नश्वर और परिणामविरस मानते है। वे आत्मकल्याण को जीवन का परम लक्ष्य समझते हैं। वे अनुभव करते है कि आत्मा में अनंत शक्ति है। आत्मा ही अपने उद्यम द्वारा परमात्मा स्वरूप बन सकती है। उनके मन में प्राणीमात्र के प्रति समत्वभाव होता है। वे मिथ्या विश्वास से सदा दूर होते हैं। उनकी सत्य में अविचल श्रद्धा होती हैं। उनका जीवन अहिंसा और करूणा से ओतप्रोत होता है, ऐसे पुरुष नवकार के अधिकारी है।[४]

नामस्मरण कम से कम १०८ बार प्रतिदिन करना चाहिए। नवकार मंत्र अहंकार आदि आत्मा के रोगों को नष्ट करनेवाली एक अमोघ औषधी हैं। औषधी सेवन करते समय पथ्य और अपथ्य दोनों का ध्यान रखना आवश्यक है।[५] जो रूग्ण व्यक्ति पथ्यसेवन का ध्यान नहीं रखता, उसके लिए औषधी गुणकारी नहीं होती। वह कभी - कभी विपरीत प्रभाव भी करती हैं। जो रोगी पथ्य का विवेक रखता है, उसे औषधी सेवन से बहुत लाभ होता है, वह निरोगी हो जाता है, उसी प्रकार नवकार के आराधक को पथ्य-अपथ्य, हित अहित का ध्यान रखना आवश्यक है। साधना में अनेक विघ्न आते हैं। उस समय आत्मबल का सहारा लेकर साधना में दृढ बने रहना आवश्यक है। बाह्य और आंतरिक रूप में विघ्न दो प्रकार के होते है।

बाह्य विघ्न :-

कुत्सित जनोंका संसर्ग या संगति बाह्य विघ्न हैं। बुरे लोगों की संगति जिस प्रकार हानिप्रद है, उसी प्रकार दूषित साहित्य का पढ़ना भी अत्यंत हानिप्रद है। बुरे दृश्य देखना अश्लील संगीत सुनना, दुर्वचन बोलना, तथा मन में बुरे विचार लाना भी कुसंसर्ग के समान ही है। साधक वैसा कभी न करें।

कुत्सित कार्य दूषित तथा कलुषित विचार से बचने के लिए साधक अपने में वैराग्य भाव को विकसित करें। वीतराग देव की सात्त्विक शांतरसमय भावमुद्रा का चिंतन करें। उनकी वाणी का स्मरण करें। धार्मिक कथा वार्ता करें, ऐसा संगीत सुने और गायें, जो उत्तम एवं सात्त्विक भाव उत्पन्न करता हो।

आचार्य हेमचंद्र ने योगशास्त्र में लिखा है -

कुतुहल वृत्ति से भी साधक असत् आलंबनों का परिचय न करें। मुझ पर इनका कोई प्रभाव होता है या नहीं ऐसी परीक्षा करने के लिए भी आत्म विपरीत पदार्थों कार्यों एवं विचारों का सेवन न करें, क्यों कि उनका सेवन करने से स्वयं का नाश हो जाता है।[६]

मानव के मन को तरल जल की उपमा दी गई है। जल जिसके संसर्ग में आता है, वैसा ही बन जाता हैं। उसी प्रकार मन बुरे संसर्ग से बुरा और उत्तम संसर्ग से उत्तम बनता है, इसलिये यह आवश्यक है कि मन को सदैव कुत्सित संसर्ग से बचाते रहना चाहिये।

अपराधों, बुराईयों या असत् क्रियाओं की श्रृंखला छोटे रूप से शुरू होकर आगे बढ़ती जाती है। कहा गया हैं, जो सांसारिक विषयों का ध्यान करता है, उसके मन में उनके प्रति आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। आसक्ति उन्हें प्राप्त करने की कामना में परिणत हो जाती हैं। जब कामना पूरी नहीं होती, तब मनुष्य में क्रोध व्याप्त हो जाता हैं। क्रोध से उन्मत्त बना हुआ मनुष्य मोहमूढ़ हो जाता हैं। मोह से स्मृति नष्ट हो जाती हैं। स्मृति का नाश हो जाने पर बुद्धि का नाश हो जाता हैं। बुद्धि का नाश हो जानेपर मनुष्य सभी उत्तम कर्मोंसे भ्रष्ट हो जाता है। उसका जीवन नष्ट हो जाता हैं।[७]

काम, क्रोध आदि दुर्गुण तथा विविध कर्मों के परिणाम प्रत्येक के भीतर होते हैं। जैसे वायु, अग्नि को प्रज्वलित कर देती है, उसी प्रकार बुरा संसर्ग काम, क्रोध आदि को उत्तेजित कर देता है। बुरी बातें सुनना, बुरी वस्तुयें देखना, अपशब्द बोलना, दूषित संकल्प-विकल्प करना आदि ऐसे कार्य हैं, जो दोषों और विघ्नों की वृद्धि करते है। तीर्थंकर भगवंतो को भी अपने आत्मगत शत्रुओं के साथ घोर युद्ध करना पड़ा तो औरों की तो बात ही क्या ? तभी तो कहा गया है -

अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध करों। बाहर के युद्ध से क्या होगा ? जो अपने द्वारा अपनी आत्मा के दोषों को नष्ट कर देता हैं, वही सच्चा सुख प्राप्त करता है।[८] इसलिए साधक सदैव यह प्रयत्न करता रहे कि उसके दोष, विकार वृद्धि न पायें। वह उन्हें जीतने का, नियंत्रित करने का, मिटाने का प्रयास करें। कुत्सित जनों का संसर्ग इसमें बाधक होता हैं। उत्तम पुरूषों को संसर्ग आत्मा के लिये बहुत दुष्कर होता हैं। सदाचारी पुरुषों की संगति में रहने से, दुर्गुण नष्ट होते है। सत् संगति मनुष्य के दोषों को, दुर्गुणों को दूर करने में बहुत हितकर हैं। नवकार के आराधक को कदापि कुसंगति नहीं करना चाहिए। सत् संगति के बारें मे कहा गया है -

"सत् संगति बुद्धि की जड़ता को मिटाती है। वाणी में सत्य का सींचन करती है। सम्मान एवं उन्नति बढ़ाती है। पाप का अपाकरण करती हैं, उसे दूर करती है। चित्त में प्रसन्नता उत्पन्न करती है। कीर्ति का प्रसार करती हैं। सत् संगति क्या नहीं करती ?"[९]

आंतरिक विघ्न :

आंतरिक विघ्नों में काम सबसे बड़ा विघ्न है। काफी व्यक्तियों में जुगार, शिकार, मदिरापान, परनिंदा आदि अनेक दुर्गुण उत्पन्न हो जातें हैं। सदैव सदाचारी एवं उत्तम

पुरुषोंके मध्य विनय पूर्वक रहना चाहिए। तथा ब्रह्मचर्य का भलिभाँति दृढ़ता पूर्वक पालन करना चाहिये। इसमें समस्त विश्वके प्रति मैत्री, नारी जाति के प्रति मातृत्व भावना रखना उचित हैं। इससे विचारोंमें पवित्रता आती है। उससे साधक को यह मानना चाहिये कि यह शरीर आत्मा का मंदिर है। इसलिए उसे पवित्र रखना है। ब्रह्मचर्य आदि उत्तम गुण आत्मा की पवित्रता के हेतु हैं।

साधक को मादक और उत्तेजक भोजन नहीं करना चाहिए। आसन, प्राणायाम आदि करना चाहिये, उससे बुरे विचारों का दमन होता है।

पदार्थों के प्रति मन में जो राग या प्रेम है, उसको वीतराग प्रभु की ओर लगाना चाहिये। ऐसा करने से वह भक्ति का रुप ले लेता है।

आंतरिक विघ्नों में क्रोध भी एक भयंकर, विघ्न है। वह व्यक्ति का मानसिक संतुलन मिटा देता है। जिससे क्रोधोन्मत्त पुरुष बुरे से बुरा कार्य करते हुए भी नहीं सकुचाता। क्रोध के साथ द्रोह, ईर्षा, कटुवचन, असत्य आदि और भी अनेक दुर्गुण आ जाते हैं। उनमे लोभ, मोह, मद, इर्षा आदि मुख्य हैं। लोभ तृष्णा के साथ जुड़ा हुआ है। तृष्णा का कभी अंत नहीं आता। मोह का कारण अविद्या या अज्ञान है। मद का अर्थ गर्व मिथ्या अभिमान है। प्रवंचना, छल या कपट को माया कहा जाता है।

दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है -

"क्रोध, प्रीति का नाश करता है, मान या मिथ्या अभिमान विनय को मिटा देता है। माया मित्रता का नाश करती है। तथा लोभ सब कुछ नष्ट कर देता है।"[१०]

उत्तराध्ययन सूत्र में मोह आदि के नष्ट होने पर जीवन में क्या - क्या फलित होता है, इस पर प्रकाश ड़ालते हुए लिखा है - जिसके मोह नहीं होता, उसके दु:ख का नाश हो जाता है। जिसके तृष्णा नहीं होती, उसके मोह का नाश हो जाता है। जिसके लोभ नहीं होता, उसकी तृष्णा का नाश हो जाता है। जिसके पास कुछ भी नहीं है, जो निष्परिग्रह है, उसके लोभ का नाश हो जाता है।[११]

नवकार के आराधक के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि वह उपर वर्णित बाह्य और आंतरिक विघ्नों से अपनी रक्षा करें। यह रक्षा तभी हो पाती है, जब इन दुर्गुणों को अपने भीतर न आने दे। ये विघ्न अपने स्वभाव को विचलित करते हैं, जो अत्यंत हानिप्रद हैं।

णमोकार मंत्र जीवनके इस साध्य को पूर्ण करने में सर्वाधिक सहायक होता है। यह महामंत्र समग्र जैन शासन में समान रूप से प्रतिष्ठा प्राप्त है। इसलिए नित्य प्रति णमोक्कार मंत्र के जप पर धार्मिक क्षेत्र में बहुत जोर दिया है। जिसने आत्मा को जाना उसने सबकुछ जान लिया है।[१२]

"अरिहंतोमह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिण पण्णतं तत्तं, इस सम्मत्तं मएगहियं ।।"

अरिहंत मेरे देव हैं। सच्चे साधु मेरे गुरु है। जिनद्वारा निरुपित ही तत्व है। [१४]

नवकार मंत्र और शुभोपयोग - शुद्धोपयोग

नवकार मंत्र की शक्ति अजोड़ है। इस मंत्र के बारेमें जो कुछ भी लिखा जाये वह कम है। इस मंत्र के बारे में अनेक ज्ञानियोंने बड़े आदर और पूज्यभाव से इतना लिखा है कि - उसका संक्षिप्त विवरण करना मेरे लिए अशक्य है। जो भव्य जीव इस नवकार मंत्र की आराधना करता है, उसके मनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करने में यह कल्पवृक्ष और कामधेनु के समान है। दु:ख, दुर्गति, दुर्भाग्य और दरिद्रता का नाश करनेवाला यह मंत्र सिद्ध पद प्राप्त करनेमें भी अनिवार्य है।

एक दूसरी मान्यता के अनुसार नवकार मंत्रमें नवपद हैं और नवपद का प्रभाव अचिंत्य है। प्राचीन से प्राचीन शास्त्र इसकी महिमाका गान करते आयें हैं। नौ का अंक अक्षय अंक है। अर्थात् यह संख्या कभी क्षय नहीं होती, टूटती नहीं है। गणितशास्त्र में नौ की संख्या एक अत्यंत चमत्कारी संख्या मानी गई है। गणितकार, चमत्कार बतानेवाले कहते हैं कि - "आप अपनी मन इच्छित संख्याको सीधी जोड़कर, उसका जो अंक उसमें घटा लें। फिर जो संख्या आपके पास रहें उसमेंसे कोई भी एक अंक गुप्त रखलें और बाकी अंक हमें बता दें।" हम बिना पूछे ही आपका गुप्त अंक प्रगट कर सकते हैं। इसका रहस्य यह है कि - पूरी संख्या को जोड़ने पर नौं में जितना कम होगा वही गुप्त अंक माना जाएगा। इसे गुप्तांक शोधनें भी कहते हैं।

नौ की संख्यासें संबंध रखनेवाले तत्वोंपर यदि हम विचार करें तो बहुत सी ऐसी बातें हम नौ की संख्या के संदर्भ में दिखा सकेंगे। तत्व नौ हैं। पुण्य के भेद नौ हैं। चक्रवर्ती की निधियाँ नौ है। ब्रह्मचर्य साधना की वाड नौ हैं। लोकांतिक देव नव हैं। इस अवसर्पिणी काल में बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव नौ हैं। साहित्य की परिभाषामें काव्य से रस नौ हैं। भक्ति संप्रदायवाले नवविधा भक्ति बताते हैं। हिंदु मान्यतानुसार नवरात्रीमें नौ दुर्गाकी पूजा होती है। जैन मान्यता के अनुसार नवकार मंत्र के आरंभ के दो पदमें देव तत्वका, बादके तीन पदोंमें गुरुतत्व का और चूलिकाके चार पदोंमें धर्म तत्वका निरुपण मिलता है। तीनों तत्वोंको मिलाकर नवपद होता हैं और ये नवपद अक्षयपद की प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम है।

आत्मा तो ज्ञेयत्व भी है और ज्ञानत्व ज्ञायक भी है। [१५]

सिद्ध, साधक और साधन - तीनों का नवपदमें संगम :

नवकार के नवपद के बारे में चिंतन करते हुए आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी लिखते हैं कि- इस नवपदमें अरिहंत और सिद्ध ये दो निर्वाणयोगी हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीन निर्वाण योग के साधक हैं। ये तीनों निर्वाणयोग की साधना करते हैं इसलिए इन तीनों को साधु या साधक कहते हैं। ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप ये चार निर्वाण योग के साधन है। मोक्षप्राप्ति के साधन हैं।[१६] नवकार मंत्र के अंतिम चारों पद हमें साधना की ओर ले-जाकर साध्य और लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रेरणा देता है। नवकार मंत्र में इतनी महान शक्ति है - परम मांगलिक शक्ति है। इसका हमें यथार्थ परिचय करवाता है और हमारी आत्माके अनंत गुणोंको जागृत करनेका उत्तम कार्य नवकार मंत्र करता है। नवकार मंत्र में साध्य और सिद्ध एक हो जाते हैं। सर्व दु:खोंसे मुक्ति अर्थात् आत्माकी पूर्ण शुद्ध अवस्था- निजस्वरुप की प्राप्ति है। भक्त और भगवान दोनों एक हो जाते हैं। भक्त भगवान के रुपमें प्रतिष्ठित हो जाता है। इसलिए हमने सिद्ध, साधक और साधन की जो भेद रेखा खींची है वह केवल वर्तमान दृष्टिसे है। वास्तवमें इन तीनों के रुप - स्वरुपमें कोई मौलिक अंतर नहीं है।

महान अध्यात्म योगी उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज वासुपूज्य भगवान की स्तुतिमें मस्त होकर गाते हैं - प्रभु ! आप ध्येय है, मैं ध्याता हूँ और आपका चिंतन ध्यान है। इन तीनों का भेद मिटाकर मैं आपके साथ एकाकार हो जाऊँ, तन्मय हो जाऊँ, एकरस हो जाऊँ ! जैसे दूधमें पानी मिल जाता है तो वह दूध जैसा ही बन जाता है। इसी तरह मैं भी आपमें लीन होकर एकरस बन जाऊँ, यही मेरी तमन्ना है।[१७]

उपयोग जीवका अबाधित लक्षण है। उपयोग जीव के अलावा किसी भी द्रव्य अथवा तत्वमें नहीं रहता। जीव को भिन्न समझने के लिए उपयोग को जीवका लक्षण बताया गया है। आगम साहित्यमें जगह-जगह जीवका लक्षण उपयोग ही बताया गया है। जिस जीव को आत्मा अथवा चैतन्य कहते है वह अनादि सिद्ध तथा स्वतंत्र द्रव्य है। उपयोग को जीव का लक्षण बताया गया है।[१८]

जिसमें उपयोग नहीं होता वह जड़ है। उपयोग के मुख्य दो भेद हैं। १) दर्शनोपयोग और २) ज्ञानोपयोग। शुभोपयोग से शुद्धोपयोग की प्राप्ति करना जीवका कर्तव्य बन जाता है। जैन दर्शन जीवकी शुभ प्रवृत्तिमें भव्य पुरुषार्थ करने की प्रेरणा देता है। शुभोपयोग से ही विकास करके शुद्धोपयोग तक हम पहुँच सकते हैं। जीव नववें ग्रैवेयक तक चला जावें ऐसा विशिष्ट शुभराग भी इस जीवने अनंत बार किया किंतु शुद्ध चैतन्यस्वरुप आत्माका भान किये बिना लेशमात्र भी सुख नहीं मिला।[१९]

मुझे शुद्ध आत्मा की अनुभूति हुई है, वही मैं हूँ। शुद्धस्वरुप का मुझे आनंदमय

अनुभव हुआ है। अनुभुति से अलग मेरा आत्मा नहीं है।[२०]

नवकार मंत्र सबसे पहले हमें अशुभपयोग से बचाता है। शुभभाव या उपयोग में प्रवृत्त करके शुद्ध में हमें स्थित करता है। जीवका यह स्वाभाविक क्रमिक विकास है। नवकार मंत्र के स्मरण और जाप से अशुभोपयोग से हमारी निवृत्ति होती है। शुभमें हम प्रवृत्त होते हैं और शुद्ध में लीन होकर परमतत्व की प्राप्ति कर सकते हैं और परमात्मा पद की गौरवान्वित स्थिति प्राप्त कर सकते हैं।

उपयोग के भेद

जीव का जो बोध व्यापार है उसे उपयोग कहते हैं। जीवमें चेतना शक्ति होने से उसे बोध होता है। आत्मा में अनंतगुण पर्याय है, परंतु उनमें उपयोग मुख्य है। वह स्व-पर प्रकाशक है। इसलिए आत्मा का लक्षण बताया गया है।[२१] ज्ञान के आठ और दर्शन के चार ये सब मिलाके उपयोग के बारह प्रकार होते हैं।

अ) ज्ञान के पाँच प्रकार :

१) मतिज्ञान, २) श्रुतज्ञान ३) अवधिज्ञान ४) मन: पर्याय ज्ञान और ५) केवल ज्ञान

ब) अज्ञान के तीन प्रकार :

१) मति अज्ञान, २) श्रुत अज्ञान और ३) विभंग ज्ञान

क) दर्शन के चार प्रकार :

१) चक्षुदर्शन २) अचक्षुदर्शन ३) अवधिदर्शन और ४) केवलदर्शन [२२]

उपयोग के बारह प्रकारोंमेंसे पाँच प्रकार का सम्यक् ज्ञान और तीन प्रकार का अज्ञान साकार उपयोग है। चार प्रकारका दर्शन अनाकार उपयोग है। उपयोग जीव का अबाधित लक्षण है।[२३] जिसे जीव, आत्मा अथवा चैतन्य कहते हैं। वह अनादि, सिद्ध तथा स्वतंत्र द्रव्य है। जीवके अरुपी होने से इंद्रियोंद्वारा उसका ज्ञान नहीं होता। संसार जड़ और चेतन पदार्थोंका मिश्रण है। उसमेंसे जड़ और चेतन का विवेकपूर्वक निश्चय उपयोग सेही होता है। जिसमें उपयोग नहीं होता वह जड़ है। [२४] उपयोग के भेद की विस्तृत चर्चा यहाँ आवश्यक नहीं है, फिर भी हम कह सकते है कि तीर्थंकर जन्मसेंही तीन ज्ञानों को प्राप्त करके स्व- पर कल्याण के लिए ज्ञान का उपयोग करते हैं। स्वयम दीक्षा अंगीकार करने के बाद मन: पर्यवज्ञान की प्राप्ति उन्हें होती है और तप आदि साधना से केवल ज्ञान की प्राप्ति उनका अंतिम लक्ष्य होता है। केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद ही वे तीर्थकी स्थापना करते हैं, देशना देते हैं और निर्वाण पद प्राप्त करते हैं।

साधक को कैसा उपयोग रखना चाहिये :

जिसमें चैतन्य है उसे जीव कहते है। उपयोग लक्षण और चैतन्य लक्षण में कोई भेद नहीं है। ज्ञान का अर्थ है जानने की शक्ति और दर्शनका अर्थ है देखने की शक्ति। जो अपने इन गुणों को किसी भी अवस्थामें नहीं छोड़ता, अर्थात्, चाहे निद्रावस्था हो, चाहे जागृत अवस्था हो, या तो स्वप्नावस्था हो। जीव का यह कर्तव्य है कि - हमेंशा के लिए इन गुणों से युक्त रहना चाहिए। जिसमें ज्ञान शक्ति नहीं है वह जड़ अथवा अजीव है। जो भिन्न - भिन्न प्रकार के कर्म करनेवाला, कर्मों के फल भोगनेवाला, कर्मोंके कारण भिन्न- भिन्न गतियोंमें जानेवाला है और समस्त कर्मों को नष्ट कर, परम पद को प्राप्त करनेवाला है वह आत्मा जीव है।[२५] संक्षेपमें ऐसा कहना चाहिए कि- जीव को अपना ज्ञानोपयोग अच्छी तरह से करना चाहिए। जीव और चैतन्य अभिन्न है। जीव के अलावा अन्य पदार्थ स्वपर का ज्ञान और हिताहित का विवेक नहीं कर सकते, इसलिए जीव का लक्षण चैतन्य बताया गया है। जीवसुख की अभिलाषा करता है और दु:खसे डरता है। जीव - अहितकारी क्रिया करता है और उसका फल भोगता है। जीवका उपयोग शुभ होना चाहिए। शुभ से शुद्ध की ओर गति करना उसका कर्तव्य बन जाता है, और अंतमें सिद्ध पद की प्राप्ति के लिए उपयोग की प्रवृत्ति करना उसका लक्ष्य होना चाहिये।

व्यक्ति पदार्थोंका परित्याग करके हिमालय की गुफाओंमें जा पहुँचे तो भी उसके मन से पदार्थोंके विषयमें राग-द्वेष, आसक्ति, ममत्व और मोह नहीं छूटते, तबतक वह संसार से मुक्त नहीं हो सकता। विकारों और विकल्पों से यह संसार भरा हुआ है। इन दोनोंका परित्याग करना संसार से मुक्त होना है। संसार का अंत करना है। तो जीव का यह कर्तव्य है कि अपने ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग का संसार से मुक्त होने के लिए कार्यान्वित करना चाहिए। अपनी चेतना को जागृत रखके आत्म साक्षात्कार या तो परम पद की प्राप्ति के लिए भव्य पुरुषार्थ करना चाहिए।

मनीषीयों और ज्ञानियों का उपयोग के प्रति आदर -

ज्ञानियोने शुभोपयोग का बड़ा महत्त्व दिखाया है। जीव अपने शुभोपयोग को जितनी जागृति से अपने जीवन, व्यवहार में प्रयोग करेंगे उतनी ही तीव्र गतिसे उसे शुभ फल की प्राप्ति होगी। संसारियों को शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की प्रवृत्ति करनी पड़ती है , मगर शुभ प्रवृत्ति की ओर उसका विशेष लक्ष्य होना चाहिए।[२६]

चेतना के तीन प्रकार का शास्त्रकारोंने वर्णन किया है। १) कर्मफल चेतना २) कर्म चेतना ३) ज्ञान चेतना इन तीनों प्रकार की चेतनामें ज्ञान चेतना को अधिक महत्त्व दिया गया है।

सदेहावस्था के परे पहुँचे हुए सिद्ध जीव केवल शुद्धज्ञान चेतना का अनुभव करते हैं। एक दूसरी मान्यता के मुताबिक संसारी जीव ही ज्ञान चेतना का अपने जीवन में प्रयोग कर सकते हैं और प्रारंभिक कर्मफल की मर्यादाओंको दूर करके उत्तम पद की प्राप्ति का पुरुषार्थ कर सकते हैं।

आत्मा के सारे पर्याय एक जैसे नहीं होते। पर्यायोंकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को भाव कहते हैं और शास्त्रकारोंने कर्मबद्ध जीव की पाँच भावोंमें विशेषता दिखाई है। तत्वार्थ सूत्रमें भी औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदायिक और पारिणामिक - जीव के ये पाँच भाव बताये गये हैं। [२७]

एक दूसरी मान्यता के अनुसार जीव के तीन भाव हैं। १) शुभ २) अशुभ ३) शुद्ध। इनमें से किसी भी भाव के रुपमें वह परिणमन करता है। अगर आत्मा अपरिणामी होता तो यह संसार बिल्कुल नहीं होता। किसी भी पदार्थ का अस्तित्व द्रव्य, गुण, पर्यायमय है। आत्मा जब शुद्धभाव रुपमें परिणत होता है तब वह निर्वाण सुख प्राप्त कर लेता है। जब वह शुभभाव रूपमें परिणमन करता है तब वह स्वर्गसुख प्राप्त कर सकता है और जब अशुभभावमें परिणमन करता है तब हीन मनुष्य, नारकी या पशु बनकर- चिरकाल तक इस संसारमें बड़े कष्टोंसे भ्रमण करता है। [२८]

तीनों भावोंको दर्शाकर ज्ञानियोंने स्पष्ट संकेत दिया है कि जिस जीव के भाव शुभ होते हैं, जो दयालु होता है वह जीव पुण्यशाली माना जाता है। अरिहंत, सिद्ध और साधु की भक्ति, धार्मिक वृत्ति, नवकार मंत्र का जप, ध्यान और आदर करना यह शुभ भाव हैं। अनुकंपा और प्रेम से मैत्री और क्षमासे यह संसारके सभी प्राणियों के साथ शुभ व्यवहार रखनेसे शुभोपयोग होता है और यही सच्चा उपयोग है। इस शुभोपयोग से क्रोध, मान, माया और लोभ आदि मंद करने में सहायता मिलती है और मनुष्यत्व की प्राप्ति होती है। उत्तम मानवीय गुणोंका विकास होता है। [२९]

षड़ावश्यक और नवकार मंत्र

षड़ावश्यक और नवकार मंत्र :

आगम ग्रंथ आवश्यक सूत्रमें श्रावकाचार का संपूर्ण आलेखन किया गया है। भगवान महावीर ने चतुर्विध संघकी स्थापना करके साधु-साध्वि के लिए समाचारी और श्रावक-श्राविका के लिए श्रावकाचार का विगतपूर्ण निरुपण किया है। इस निरुपण का प्रधान उद्देश्य

यह है कि - साधक प्रतिदिन षड़ावश्यक में प्रगति करें और मानव जीवन को सार्थक करें। कर्म-बंधन से मुक्ति पाने के लिए और स्वस्वरुप की यथार्थ अनुभूति के लिए षड़ावश्यक महान उपकारी सिद्ध हो सकते हैं। षड़ावश्यक में सामायिक तक पहुँचने के लिए साधक को पूरी जागृति और परम पुरुषार्थ करना अनिवार्य बन जाता है

जैन दर्शनमें षड़ावश्यक निम्न लिखित हैं।

१) सामायिक २) चतुर्विंशतिस्तव ३) गुरुवंदन

४) प्रतिक्रमण ५) कार्योत्सर्ग और ६) प्रत्याख्यान

सामायिक यह सबसे पहला आवश्य है। [३०] प्रत्येक जैन के लिए प्रतिदिन सामायिक करना नितांत जरूरी है। सामायिक की प्रतिष्ठा के बारेमें जितना भी लिखा जाये उतना कम है। सामायिक से समता भावमें वृद्धि होती है। सामायिक क्रिया दरम्यान साधक पाप कर्मोंसे मुक्त होकर आत्मचिंतन करके आत्म समाधि की ओर प्रगति कर सकता है। [३१] सामायिक को आत्मसाक्षात्कार की अनुभूति का साध्य और साधन दोनों कहा गया है।

जिस तरह शरीर के पोषण के लिए खुराक की जरुरत होती है ठिक उसी तरह आत्मा के पोषण के लिए खुराक की जरुरत होती हैं। यदि शरीर को खुराक न मिलें तो शरीर निर्बल और तेजहीन हो जायेगा, उसी तरह आत्मा भी खुराक के अभाव में तेजहीन हो जायेगी। आत्मा खुराक के अभाव में उसका आत्मबल कमजोर हो जाएगा। जिस तरह शरीर की खुराक अन्न है वैसेही आत्मा की खुराक - सामायिक है। सामायिक समभाव और सत्यकी उपासना है। सामायिक जीवन के अंधेरे को दूर कर जीवन को उजाला प्रदान करती है। सामायिक आकुलता रहित जीवन जीनेका मूलमंत्र है। संसारमें जितने भी दु:ख-दर्द,क्लेश रगड़े-झगड़े और विषमतायें है वे सब समभाव धारण करने सेही दूर होते है। सामायिक समभावकी ही साधना है। जैसे जैसे जीवनमें समभाव बढ़ता है वैसे-वैसे जीवन के दु:ख, सुखोंमें बदलने शुरु हो जाते हैं। इस तरह सामायिक से जीवनकी विषमताएँ समतामें बदल जाती है। इस तरह सामायिक जीवन के उत्थान का अमोघ उपाय है।

सर्वज्ञ प्रभुद्वारा प्रतिपादित सामायिक मोक्ष का अंग-प्रधान कारण है। जैस चंदन तो स्वयं को काटनेवाली कुल्हाडी को भी अपनी शीतलता और सुरभि ही देता है, वैसे ही सामायिक व्रती-संत-महात्माओं को भी कोई द्वेषवश कितना ही परिताप, कष्ट, निन्दादिसे दु:खी करें तो भी वे उसे अपने सुहृद्-भावसे सुखी ही बनाते है। [३२]

उपाध्याय श्री अमरमुनीजी सामायिक - सूत्र नामक ग्रंथमें लिखते हैं - सामायिक की साधना हृदय को विशाल बनाने के लिए है। अत: एव जब तक साधक का हृदय विश्व

प्रेमसे परिप्लावित नहीं हो जाता, तब तक साधना का सुंदर रंग निखरही नहीं पाता।[३३]

सामायिक को साध्य और साधन दोनों कहा गया है। सामायिक करने से प्रत्याख्यान आदि की शुद्धि होती है और सामइक के लिए प्रत्याख्यानादि आवश्यक अनिवार्य है। सामायिक की क्रिया नमो - नमस्कार से होती है और नवकार मंत्र में सामायिक का समावेश हुआ है। इतनाही नहीं, शास्त्रकारोने नवकार मंत्र में षड़ावश्यक का भी गौरव से वर्णन किया है।

१) नमो = सामायिक आवश्यक - समभाव, समता

२) अरिहंताणं - चतुर्विंशति स्तव - वीतरागदेवकी स्तुति
सिद्धाणं

३) आयरियाणं
उवज्झायाणं - गुरुवंदन - गुरुदेवोंको वंदन - नमस्कार।
लोए सव्वसाहूणं

४) एसो पंच नमुक्कारो
सव्व पावपणासणो - प्रतिक्रमण - पापसे, अधर्म से धर्म की ओर लौटना।

५) मंगलाणं च सव्वेसिं = कयोत्सर्ग - देहभाव का विसर्जन

६) पढमं हवाई मंगलं = प्रत्याख्यान = गुरुसाक्षीसे स्वेच्छासे प्रतिज्ञा लेना [३४]

श्रावकाचार की प्रत्येक क्रिया के साथ इस महामंत्र का घनिष्ट संबंध है। धार्मिक एवं लौकिक सभी कृत्यों के प्रारंभ में श्रावक इस महामंत्र का स्मरण करता है और स्मरण मात्र से ही उसे आत्मस्वरुप का बोध होता है। संसार की समस्त बाधाओं को दूर करनेवाला यह मंत्र षडावश्यक की परिपूर्ण समझ के लिए और क्रिया के लिए बहुत उपकारी है। नमस्कार सेही व्यक्ति का अहम् और गर्व का खंडन होता है और वह समाधिकी ओर आगे बढ़ सकता है।

आवश्यक सूत्रमें गणधर भगवंतोंने आवश्यक के बारेमें बहुत ही विगतपूर्ण वर्णन किया है। आवश्यक की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि, जो प्रशस्त गुणोंसे आत्माको संपन्न करता है वह आवश्यक है।[३५] आवश्यक जैन साधना का प्राण है। जैन धर्म में दोषों की विशुद्धि के लिए और गुणोंकी अभिवृद्धि के लिए आवश्यक हैं। आवश्यक से आत्मशोधन की प्रवृत्ति वेगवंती होती है। इस साधना और आराधना से आत्मा शाश्वत सुखका अनुभव करें, कर्ममल को नष्ट कर सम्यक्दर्शन, सम्यक ज्ञान और चारित्र से अध्यात्म के आलोक

को प्राप्त करें यह आवश्यक है।[३६] अपनी भूलों को निहारकर उन भूलों के परिष्कार के लिए कुछ क्रिया करना आवश्यक है। आवश्यक का विधान श्रमण हो या श्रमणी हो, श्रावक हो या श्राविक हो - सभी के लिए है।[३७]

अनुयोगद्वार सूत्रमें आवश्यक के आठ पर्यायवाची नाम दिये गये है। १) आवश्यक २) अवश्यकरणीय ३) ध्रुव निग्रह ४) विशोधि ५) अध्ययन षटकवर्ग ६) न्याय ७) आराधना और ८) मार्ग इन नामोंमें किंचित अर्थ भेद होने पर भी सभी नाम समान अर्थ को ही व्यक्त करते हैं। [३८]

प्रथम और अंतिम तीर्थंकर के श्रमणों के लिए यह नियम है कि - वे अनिवार्य रुप से आवश्यक करें। यदि श्रमण और श्रमणियाँ आवश्यक नहीं करते हैं तो श्रमण धर्म से च्युत हो जाते हैं। आवश्यक निर्युक्तिमें स्पष्ट रुपसे लिखा है कि - प्रथम और चरम तीर्थंकरोंके शासनमें प्रतिक्रमणसहित धर्म प्ररुपित किया गया है। [३९] श्रावकों के लिए भी यह दैनिक कर्तव्य है। यही कारण है कि श्वेतांबर परंपरामें बालकों को धार्मिक अध्ययन का प्रारंभ आवश्यक सूत्रसेही कराया जाता है।

अनुयोगद्वार सूत्रमें इनके नाम इस प्रकार दिये गये हैं।

१)सावद्ययोग विरति (सामायिक)

२)उत्कीर्तन (चतुर्विंशतिस्तव)

३)गुणवत् प्रतिपत्ती (गुरुपासना या वंदन)

४)स्खलीत निंदना (प्रतिक्रमण)

५)व्रणचिकित्सा (कायोत्सर्ग -ध्यान-शरीरसे ममत्वका त्याग)

६)गुणधारण (प्रत्याख्यान - नियम ग्रहण)

प्रत्येक आवश्यक का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है -

१) सामायिक -

छः आवश्यक में सामायिक प्रथम आवश्यक है। वह जैन आचार का सार है। सामायिक श्रमण और श्रावक दोनों के लिए आवश्यक है। [४०] श्रमणों के लिए यह प्रथम चारित्र है। तो गृहस्थ साधकोंके लिए चार शिक्षाव्रतोंमें प्रथम शिक्षाव्रत है। आचार्य हरिभद्रने तो स्पष्टरुप से कहा है कि - जो सामायिक करता है और समभावमें स्थित रहता है वह निःसंदेह मोक्ष को प्राप्त करेगा। सामायिक विशुद्ध साधना और इस साधन से जीव घातीकर्मो

को नष्ट कर केवल ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।[४१]

मन, वचन और काय की दुष्टवृत्तियोंको रोककर अपने निश्चित लक्ष्य की ओर ध्यान को केंद्रित कर देना सामायिक है। सामायिक करनेवाला साधक मन,वचन और काय को वशमें कर लेता है। विषय, कषाय और राग-द्वेष से अलग रहकर सदा ही समभावमें स्थित रहता है। आचार्य भद्रबाहु ने कहा है - जो साधक त्रस और स्थावर रुप सभी जीवोंपर समभाव रखता है उसकी सामाईक शुद्ध होती है।[४२] उनका ही दूसरा कथन है कि जिसकी आत्मा संयम में, तपमें, नियममें संलग्न रहती है, उसीकी सामायिक शुद्ध होती है।[४३]

आचार्य जिनभद्र गणि क्षमा श्रमणने सामायिक को चौदहपूर्व का अर्थपिंड कहा है।[४४]

उपाध्याय यशोविजयजीने सामायिक को संपूर्ण द्वादशांगी रुप जिनवाणी का सार रुप बताया है।[४५]

भगवती सूत्रमें वर्णन है कि- कालास्यवेसी अनगार के समक्ष तुंगिया नगरी के श्रमणो पासकोनें जिज्ञासा प्रस्तुत की थी कि - सामायिक क्या है ? और सामायिक का अर्थ क्या है ? कालास्यवेसी अनगारने स्पष्टरुपसे उत्तर दिया -"आत्मा ही सामायिक है और आत्मा ही सामायिक का अर्थ है।"[४६] तात्पर्य यह है कि - जब आत्मा पापमय व्यापरोंका परित्यागकर समभावमें स्थित रहता है, तब समायिक होती है। सामायिक में साधक बाह्य दृष्टि का परित्याग कर अंतरदृष्टि को अपनाता है, विषमभाव का परित्याग कर समभावमें स्थित रहता है, परपदार्थों से ममत्व हटाकर निजभावमें स्थित होता है।

आचार्य जिनदास गणि महत्तरने सामायिक आवश्यकको आद्यमंगल माना है।[४७] जितनेभी विश्वमें द्रव्यमंगल है, वे सभी द्रव्यमंगल, अमंगल रुपमें परिवर्तित हो सकते हैं और सामायिक ऐसा भाव मंगल है जो कभी भी अमंगल नहीं हो सकता। समभाव की साधना मंगलोंका मूलकेंद्र है। अनंतकालसे इस विराट विश्वमें परिभ्रमण करनेवाला आत्मा यदि एक बार भी भाव सामायिक ग्रहण करले तो वह सात, आठ, भवसे अधिक संसारमें परिभ्रमण नहीं करता। सामायिक ऐसा पारसमणि है कि - जिसके संस्पर्श से अनंत काल की मिथ्यात्व आदि की कालिमासे आत्मा मुक्त हो जाता हैं।

सामायिक के पात्र भेद से दो भेद होते हैं।

१) गृहस्थ की सामायिक २) श्रमण की सामायिक [४८]

गृहस्थ की सामायिक परंपरानुसार एक मुहूर्त याने ४८ मिनिट की होती है, अधिक

समय के लिए वह अपनी स्थिरता के अनुसार सामायिक व्रत कर सकता है। श्रमण की सामायिक यावज्जीवन होती है। आचार्य भद्रबाहुने सामायिक के तीन भेद बताये है।

१) सम्यक् सामायिक २) श्रुत सामायिक ३) चारित्र सामायिक [४९]

समभाव की साधना के लिए सम्यक्त्व अनिवार्य है।

१) सम्यक् सामायिक -

मैं आत्मा हूँ, शरीर नहीं, मैं चेतन हूँ, जड़ नहीं। मैं जीव हूँ पुद्गल नहीं ऐसी परम श्रद्धा जगानेवाली सामाईक को सम्यक् सामायिक कहा जाता है। इस सामाईकमें आत्मतत्वका परमश्रद्धा से अनुभव महसूस किया जाता है और देह भाव गौण बन जाता है या विदा ले लेता है।

२) श्रुत सामायिक -

जिसको सम्यक् दर्शन प्राप्त हुआ है वह संपूर्ण श्रद्धा से जैन धर्म का अभ्यास करें और श्रुतज्ञानमें वृद्धि करने का सम्यक् पुरुषार्थ करें, अभ्यास करनेसे उसका ज्ञान निर्मल बन जाए और सम्यकत्व की वृद्धिमें वह अपनी शक्तिकों उपयोग में लावें और सामायिक दरम्यानभी समता गुण की प्राप्ति के लिए वीतराग परमात्मा को पूरी श्रद्धासे प्रार्थना करें, इसे श्रुत सामायिक कहा गया है।

३) चारित्र सामायिक -

ज्ञानियोने चारित्र शब्द का बड़ा ही सुंदर विवरण दिया है और दर्शाया है कि - बाह्य और आभ्यांतर विशुद्धिही सच्चा चारित्र है। शास्त्रकारोने यह भी बताया है कि - बाह्यशुद्धि प्राप्त करना सरल है लेकिन आंतरिक शुद्धि प्राप्त करना कठीन है। "उपर से अच्छा - अच्छा भीतर की राम जाने" ऐसी एक कहावत है। इस कहावत में यह दर्शाया गया है कि - दूसरों के साथ हमारा बाह्य व्यवहार तो बहुत सुंदर हो सकता है, दूसरों को हम अपने व्यवहार से प्रभावित भी कर सकते हैं लेकिन विषय और कषाय से जब तक हमें मुक्ति प्राप्त न हो सके तब तक चारित्र सामायिक की सफलता का संभव ही कहाँ है ? अंतरबाह्य संपूर्ण विशुद्धि विकसित करने को ही चारित्र सामायिक कहा जाता है। [५०]

सामायिक एक आध्यात्मिक साधना है। इसलिए इसमें जातिपाँति का प्रश्न ही नहीं उठता। हरिकेश मुनि-[५१] जाति से अत्यंज थे पर सामायिक की साधना से वे देवोंद्वारा भी अर्चनीय बन गये। अर्जुन मालाकार[५२] जो एक दिन क्रूर हत्यारा था प्रतिदिन वह सात जीवों

की हत्या करता था और सब उससे भयग्रस्त परेशान थे। उसकी क्रूरता को दूर करने का किसी को कोई उपाय नहीं मिलता था, ऐसा हत्यारा सामायिक की साधना के प्रभाव से दयालु बन गया, उसने हिंसा का त्याग किया और कष्ट को उठाकर शेष जीवन सामायिक में व्यतीत करके मुक्ति को प्राप्त कर गया।

सामायिक के द्रव्य सामायिक और भाव सामायिक ये दो मुख्य भेद हैं। सामायिक ग्रहण करने के पूर्व जो विधि विधान किये जाते है - जैसे कि - आसन बिछाना पूंजनी रंजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि धार्मिक उपकरण एकत्रित करके एक स्थान पर अवस्थित होना द्रव्य सामायिक है। द्रव्य सामायिक में आसन, वस्त्र, रजोहरण (गोछा, पूंजनी) मुखवस्त्रिका, माला आदि वस्तुअें स्वच्छ और सादगीपूर्ण होनी चाहिये। वे रंगबिरंगी न होकर श्वेत होने चाहिए। श्वेत रंग शुक्ल और शुभध्यान का प्रतिक है।

भाव सामायिक वह है जिसमें साधक आत्मभावमें स्थित रहता है। सामायिक में द्रव्य और भाव दोनों की आवश्यकता है। सामायिक जैन साधना की विशुद्ध साधना पद्धति है और प्रत्येक जैन के लिए यह एक अनिवार्य साधना है।

समस्त प्राणियों के प्रति समभाव - राग-द्वेष का अभाव सामायिक है। इष्ट-अनिष्ट आदि विषमताओं में रागद्वेष न करना, बल्कि साक्षीभाव से उनका ज्ञाता - द्रष्टा बनकर एक मात्र शुद्ध चैतन्यमात्र (समतास्वभावी आत्मा) में स्थित रहना, सर्व सावद्ययोगोंसे विरत रहना सामायिक है। [५३]

भगवान महावीर स्वामीने अपनी अंतिम देशनामें उत्तराध्ययन सूत्रके उन्तीसवे अध्ययनमें सामायिकसे जीव क्या प्राप्त करता है ? इस प्रश्न के उत्तरमें भगवान ने कहा कि- सामायिक से जीव सावद्य योगोंसे विरती को प्राप्त होता है।[५४]

अधार्मिक प्रवृत्तिका त्याग करके समभावमें स्थित रहना, श्रावकोंको व्रतमें सामाईक, व्रत करने का निर्देश है।[५५]

बौद्ध और वैदिक धर्म की साधना पद्धती :

श्रमण संस्कृतिमें सामायिक विशुद्ध साधना पद्धति है। इस साधना पद्धति की तुलना आंशिक रुप से अन्य धर्मोंकी साधना पद्धति से की जा सकती है। बौद्ध धर्म श्रमणसंस्कृति की ही एक धारा हैं। उस धारामें साधना के लिए अष्टांगिक मार्ग का निरुपण है।[५६]

अष्टांगिक मार्ग में सभी के आगे सम्यक् शब्द का प्रयोग हुआ है जैसे - सम्यक्-संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक्-कर्मांत, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। बौद्ध साहित्यमें जो सम्यक् शब्द का प्रयोग सम के अर्थ में है, क्योंकि पाली भाषामें जो सम्मा शब्द का सम और सम्यक् दोनों रूप बनते हैं। यहाँ जो सम्यक् शब्द का अर्थ राग-द्वेष को न्यून करना है। रागद्वेष की मात्रा कम होगी तभी साधक समत्वयोग की ओर आगे बढ़ सकता है। अष्टांगिक मार्ग का अंतिम मार्ग सम्यक् समाधि है।

संयुत्तनिकाय में तथागत बुद्धने कहा - "जिन व्यक्तियोंने धर्म को सही रुपसे, जान लिय है, जो किसी, मत, पक्ष या वाद में उलझे हुए नहीं हैं वे सम्बुद्ध हैं समदृष्टा हैं और विषम स्थितियों में भी उनका आचरण सम रहता है।"[५७] संयुत्तनिकाय में अन्य स्थान पर बुद्धने स्पष्ट का है -आर्योंका मार्ग सम है। आर्य विषम स्थिति में भी सम का आचरण करते हैं। [५८] मज्झिमनिकाय में राग-द्वेष, मोह के उपशमन को ही परम आर्य उपशमन माना है।[५९] सुत्तनिपात में कहा गया है - जिस प्रकार मैं हूँ वैसे ही संसार के सभी प्राणी हैं। अत: सभी को अपने समान समझकर आचरण करना चाहिए। [६०] बौद्ध दर्शन में माध्यस्थवृत्ति का मूल आधार समत्व ही है। इस लिए बौद्ध धर्म में समभाव को साधना का अंग माना है। बौद्ध ग्रंथोंमें सामायिक का निरुपण नहीं है, पर समायिक का मूल समभाव है, इसका उल्लेख जरुर किया है।

वैदिक परंपरा के ग्रंथोंमें समत्वयोग की चर्चा हुई है। श्रीमद् भगवत् गीता वैदिक परंपराका प्रतिनिधी ग्रंथ है। उसमें समत्व को ही योग कहा है। [६१] ज्ञान, कर्म, भक्ति, ध्यान आदि का उद्देश्य समत्व है। समत्व के बिना ज्ञान, अज्ञान है। जिसमें समत्वभाव है वही यथार्थ ज्ञानी है।[६२]

बिना समता के कर्म अकर्म नहीं बनता, समत्व के अभावमें कर्म का बन्धकत्व बना रहेगा।[६३] समत्व के बिना भक्त भी सच्चा भक्त नहीं है। समत्व से अज्ञान ज्ञान रुपमें परिवर्तित होता है और वह ज्ञान योग के रुपमें जाना जाता है। गीताकार की दृष्टिसे स्वयं परमात्मा ब्रह्म सम है।[६४] जो व्यक्ति समत्वमें अवस्थित रहता है, वह परामात्मभाव में ही अवस्थित है।[६५] नवम अध्याय में श्रीकृष्णने वीर अर्जून को कहा - "हे अर्जुन ! मैं सभी प्राणियोंमें सम रुपमें स्थित हूँ। [६६] गीताकार की दृष्टि से समत्वका क्या अर्थ है ? इसपर चिंतन करते हुए आचार्य शंकर ने लिखा है - समत्व का अर्थ तुल्यता है, आत्मवत्दृष्टि है। सभी को सुखप्रिय है दु:ख अप्रिय है। वह किसीके प्रति प्रतिकूल आचरण नहीं करता हैं। वही समदर्शी है। सभी प्राणियों के प्रति आत्मवत् दृष्टि रखना समत्व है।[६७] समत्वयोगी

साधक चाहे अनुकूल स्थितिमें हो, चाहे प्रतिकूल स्थिति में हो, चाहे सम्मान मिले चाहे तिरस्कार मिले, चाहे सिद्धिके संदर्शन हो, चाहे असिद्धि प्राप्त हो, तो भी वह सभी स्थितियों में सम रहता है।

श्रीकृष्णने अर्जुन से कहा - "जो सुख-दुःखमें समभाव रखता है, जो इंद्रियोके विषय सुखमें आकुल-व्याकूल नहीं होता, वही मोक्ष/अमृतत्व के अधिकारी है।[६८] गीता के अठारहवें अध्यायमें श्रीकृष्णने बहुत ही स्पष्ट शब्दोंमें कहा - जो समत्व भावमें स्थित होता है, वही मेरी परम भक्ति को प्राप्त कर सकता है। [६९] इस प्रकार गीतामें समत्वयोग का स्वर यत्र-तत्र मुखरित हुआ है।

आज विश्व में समत्वयोग के अभावमें विषमता की काली घटाएँ मंडरा रही है। जिससे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र परेशान है। समत्वयोग जीवन के विविध पक्षोंमें इस प्रकार समन्वय स्थापित करता है, जिससे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के संघर्ष नष्ट हो जाते है। यदि समाज और राष्ट्र के सभी सदस्यगण उसके लिए प्रयत्नशील हों। समत्वयोग से वैचारिक दुराग्रह समाप्त हो जाता है और स्नेह की सरिता प्रवाहित होने लगती है। जीवन के संघर्ष समाप्त हो जाते हैं। वैचारिक जगत् के संघर्ष का मूल कारण आग्रह, दुराग्रह है। दुराग्रह के विष से मुक्त होने पर मनुष्य सत्य को सहज रुप से स्वीकार कर लेता है। समत्वयोगी साधक न वैचारिक दृष्टि से संकुचित होता है और न उसमें भोगासक्ति ही होती है। इसलिए उसका आचार निर्मल होता है और विचार उदात्त होते हैं।वह जीओ और जीने दो Live and let live के सिद्धांत में विश्वास रखता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि - समत्वयोग के द्वारा गीताकार ने समभाव की साधना पर बल दिया है।

सामायिक आवश्यक में न राग अपना राग आलापता है और न द्वेष अपनी जादूई बीन बजाता है। वीतराग और वितृष्ण बनने के लिए यह उपक्रम है। यह वह कीमिया है जो भेद विज्ञान की अंगुली पकड़कर समता की सुनहरी धरा पर साधक को स्थित करता है। यह साधना जीवन को सजाने और सँवारने की साधना है।[७०]

२) चतुर्विंशतिस्तव : दूसरा आवश्यक चतुर्विंशतिस्वत है। सामायिक में सावद्ययोग से निवृत्त रहनेका विधान किया गया है। सावद्य योग से निवृत्त रहकर साधक किसी न किसी आलंबन को अवश्य ग्रहण करता है। जिससे वह समभावमें स्थिर रह सके। इसलिए सामायिक में साधक तीर्थंकर देवों की स्तुति करता है। ऋषभदेव से लेकर वर्तमानकालीन चोबीस तीर्थंकरों का स्तव अर्थात् - गुणोत्कीर्तन है। [७१]

तीर्थंकर त्याग और वैराग्य की दृष्टि से, संयम साधना की दृष्टि से महान है। उनके

गुणोंका उत्कीर्तन करने से साधक के अंतर में आध्यात्मिक बल का संचार होता है। उसका अहंकार दूर हो जाता है। संसारमें जो शुभतर परमाणु है उनसे तीर्थंकर का शरीर निर्मित होता है, इसलिए रुपकी दृष्टि से तीर्थंकर महान है। तीर्थंकर अवधिज्ञान आदि तीन ज्ञान के साथ जन्म लेते हैं। दीक्षा अंगीकार करते ही उन्हें मन:पर्यवज्ञान प्राप्त हो जाता है और उसके पश्चात् उनमें केवलज्ञान का दिव्य आलोक प्रकाशित होता है, अत: ज्ञान की दृष्टि से तीर्थंकर महान है। दर्शन की दृष्टि से तीर्थंकर क्षायिक सम्यकत्व के धारक होते हैं। उनका चरित्र उत्तरोत्तर विकसित होता है। ज्ञान, दर्शन और चरित्र के साथ ही दानमें भी उनकी कोई क्षमता नहीं कर सकता। तपके क्षेत्रमें तीर्थंकर कीर्तिमान स्थापित करते हैं और भावनाके क्षेत्रमें भी तीर्थंकरों की भावना उत्तरोत्तर निर्मल होती जाती हैं।

तीर्थंकर बनना आसान नहीं हैं। तीर्थंकर बनने के लिए अनेक भवोंकी साधना अपेक्षित है। तीर्थंकर के गुणोंका उत्कीर्तन करने से हृदय पवित्र होता है। वासनाएँ शांत होती है, संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं। जब हम तीर्थंकरों की स्तुति करते हैं तो प्रत्येक तीर्थंकर का एक उज्ज्वल आदर्श हमारे सामने रहता है।[७२] तीर्थंकरों की स्तुति मानवमें अपने पौरुष को जागृत करने की प्रेरणा देती है। आत्मा ही परमात्मा है। कर्मबद्ध जीव है, तो कर्म मुक्त शीव है। इसलिए यदि मैं भी तीर्थंकर की तरह प्रयत्न करूँ तो मैं भी उनके समान बन सकता हूँ। लेकिन फिर भी जैन दर्शन केवल तीर्थंकर की प्रार्थना करने से साधक को मुक्ति मिले ऐसा स्वीकार नहीं करता है। व्यक्तिका पुरुषार्थ ही उसे मुक्ति की ओर आगे ले जाता है। तीर्थंकरों का पावन स्मरण ही पाप को नष्ट कर देता है।

श्रीकृष्णने अर्जुन को स्पष्ट शब्दोंमें कहा था कि - तुम मेरी भक्ति करो, मैं तुम्हें सभी पापोंसे मुक्त कर दूँगा। [७३] भगवान महावीर ने भी कहा है - मैं भय से रक्षा करने वाला हूँ।[७४] तथागत बुद्ध ने कहा - जो मुझे देखता है, वह धर्म को देखता है।[७५] साधक को अंतर्मानस में जिस प्रकार की श्रद्धा / भावना बलवती होगी, उसी प्रकार का उसका जीवन बनेगा इसलिए गीताकारने कहा है - श्रद्धामयोऽयं पुरुष: यो यच्छ्रद्ध: स एव स:। [७६]

श्री उत्तराध्ययन सूत्रमें - चतुर्विंशतिस्वत करने से किस सद्गुण की उपलब्धि होती है ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान महावीर ने कहा - चतुर्विंशति स्तव करने से दर्शन की विशुद्धि होती हैं। [७७] सम्यक्त्व विशुद्ध होता है।

उपसर्ग और परिषहों को समभाव से सहन करने की शक्ति विकसित होती है और तीर्थंकर बनने की प्रेरणा मनमें जागृत होती है। ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक, वर्तमानकालीन चोबीस तीर्थंकरोंका स्तव अर्थात् गुणोत्कीर्तन है।[७८]

३) वंदना :

तीसरा आवश्यक वंदना है। साधना के क्षेत्रमें तीर्थंकर के पश्चात् दूसरा स्थान गुरु का है। तीर्थंकर देव है। देव के पश्चात् गुरु को नमन किया जाता है। उनका स्तवन और अभिवादन किया जाता है। साधक मन, वचन और शरीर से सद्गुरु के प्रति समर्पित होता है *। जो सद्गुणी है उन्हीं के चरणोंमें वह नत्* होता है। जीवनमें विनय आवश्यक है। जैन आगमोंमें विनय को धर्म का मूल कहा है। भगवान महावीरने कहा है - "मानव, तेरा मस्तिष्क ऐरे - गैरे के चरणों में झुकने के लिए नहीं है।"- नम्र होना अलग बात है , पर हरएक व्यक्ति को परम आदरणीय समझकर नमस्कार करना अलग बात है।

सद्गुणोंको नमन करने का अर्थ है , सद्गुणोंको अपनाना। आचार्य भद्रबाहु ने आवश्यक निर्युक्ति में बहुत ही स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है - कि गुणहिन व्यक्ति को नमस्कार नहीं करना चाहिए, क्योंकि गुणोंसे रहित व्यक्ति अवंदनीय होते हैं। [७९]

अवंदनीय व्यक्ति को नमस्कार करने से कर्मोंकी निर्जरा नहीं होती है और न कीर्ति बढ़ती है। असंयम और दूराचार का अनुमोदन करने से नये कर्म बंधते हैं। अत: उनको वंदन करना व्यर्थ है। एक अवंदनीय व्यक्ति जो जानता है कि - मेरा जीवन दुर्गुणोंका आगार है - यदि वह सद्गुणी व्यक्तियोंसे नमस्कार ग्रहण करता है तो वह अपने जीवन को दूषित करता है। असंयमन की वृद्धिकर अपना ही पतन करता है।[८०]

जैन धर्म की दृष्टि से साधक में द्रव्यचारित्र और भावचारित्र दोनों आवश्यक है। जिसके द्रव्य और भाव दोनों ही चारित्र निर्मल हो वही सद्गुरु वंदनीय है। वंदना आवश्यक में ऐसे ही सद्गुरु को वंदन करने का विधान है। वंदन करने से अहंकार नष्ट होता है, विनय की उपलब्धि होती है। सद्गुरुओंके प्रति अनन्य श्रद्धा व्यक्त होती है। तीर्थंकरों की आज्ञा का पालन करने से शुद्ध धर्म की आराधना होती है। अत: साधक को सतत् जागृत् रहकर वंदना करनी चाहिये। आचार्य मलयगिरिने लिखा है - द्रव्यवंदन मिथ्या दृष्टि भी करती है, भाववंदन सम्यक दृष्टि भी करता है।

धम्मपद में तथागत बुद्धने कहा - "पुण्य की इच्छा से जो व्यक्ति वर्षभर में यज्ञ और हवन करता है, उस यज्ञ और हवन का फल पुण्यात्माओं के अभिवादन के फल के चतुर्थ भाग भी नहीं है। अत: सरल मानस वाले महात्माओं को नमन करना चाहिए।" [८१] सदा वृद्धों की सेवा करनेवाले और अभिवादनशील पुरुष की चार वस्तुएँ वृद्धिंगत होती है - आयु, सौंदर्य, सुख और सौख्य [८२] इस प्रकार बौद्ध धर्म में वंदन को महत्त्व दिया है। वहाँ पर भी श्रमण जीवन की वरिष्ठता और कनिष्ठता के आधारपर वंदन की परंपरा रही है।

वैदिक परंपरामें भी वंदन सद्‌गुणोंकी वृद्धि के लिए आवश्यक माना है। [८३] श्रीमद्‌भागवत में नवधा भक्ति का उल्लेख है। उस नवधाभक्तिमें वंदन भी भक्ति का एक प्रकार बताया गया है। [८४] श्रीमद् भगवद् गीता के अठारहवें अध्यायमें "मा नमस्कुरु" कहकर श्रीकृष्ण ने वंदन के लिए भक्तोंको उत्प्रेरित किया है। [८५]

जैन मनीषीयोने वंदन के संबंध में बहुत ही विस्तार और गहराई से चिंतन किया है। आचार्य भद्रबाहु ने आवश्यक निर्युक्ति में वंदन के बत्तीस दोष बताये हैं। उन दोषों से बचनेवाला साधक ही सही वंदन कर सकता है। [८६]

उत्तराध्यायन सूत्रमें भगवानर महावीर स्वामीने वंदना से जीव को क्या उपलब्ध होता है ? इस प्रश्न के उत्तर देते हुए कहा - वंदना से जीव नीच गोत्र कर्म का क्षय करता है, उच्च गोत्र का बंध करता है। वह अप्रतिहत सौभाग्य को प्राप्त करता है। उसकी आज्ञा अबाधित होती है तथा दाक्षिण्यभाव (जनता के द्वारा अनुकूलभाव) को प्राप्त करता है। [८७]

आवश्यक क्रिया में वंदना आवश्यक का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि अरिहंतों के पश्चात् गुरुदेव ही आध्यात्मिक साम्राज्य के अधिपति है, उनको वंदन करना भगवान को वंदन करने के समान है। इतना ही नहीं है जैन धर्म की यह महत्ता है कि - गुरु को दो बार वंदना करने का उल्लेख किया गया है, गुरू वंदना को उत्कृष्टी वंदना कहा गया है। सबसे पहले वंदना करने के पहले गुरु की आज्ञा लेनी पड़ती है और आज्ञा पाकर शिष्य पंचांग नमस्कार करके गुरुके चरणों का स्पर्श करता है और नम्रता से कहता है कि इस तरह वंदना करने से आपको किसी भी प्रकार का कष्ट पहुँचा हो तो आप मुझे क्षमा करें।

वंदना देव और गुरु को की जाती है। श्रावक और श्राविकाएँ दैनिक क्रिया में तिक्खुत्ता के पाठद्वारा गुरुके श्री चरणोंमें तीन बार वंदना करता है। सभी आवश्यक क्रियाओंके प्रारंभमें भी तीन बार वंदना करने को बताया गया है। लेकिन प्रतिक्रमण आवश्यकमें गुरुवंदना सूत्र के द्वारा दो बार गुरु वंदन पाठ का अध्ययन करने को कहा गया है। ऐसा माना गया है कि - सिर्फ एक बार पाठ करने से गुरू के प्रति हमारा पूज्यभाव या आदर भाव पूर्णरूप से प्रकट नहीं होता है। कभी - कभी तो मन की एकाग्रताका भी अभाव होता है, इसलिए दो बार पाठ करने से मनकी एकाग्रता बढ़ जाती है। संसारिक चिंताओंसे अलग हो जाते हैं और हमारा समर्पण भाव वृद्धिंगत होता है। जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार आध्यात्मिक जगत के हमारे सबसे बड़े उपकारी और सबसे निकट गुरु ही है। गुरुवंदना से विनय और नम्रता का उत्कर्ष होता है और वंदन करनेवाले को परमशांति प्राप्त होती है।

४) प्रतिक्रमण -

चौथा आवश्यक प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण जैन साधना का एक विशिष्ट शब्द है। प्रतिक्रमण का शाब्दिक अर्थ है पुन: लौटना। हम अपनी मर्यादाओंका अतिक्रमण कर, अपनी स्वभावदशासे निकलकर विभाव दशामें चले गये, अत: पुन: स्वभावरुप सीमामें प्रत्यागमन करना प्रतिक्रमण है। जो पाप मन, वचन और काया से स्वयं किये जाते है, दूसरों से करवाये जाते हैं और दूसरोंके द्वारा किये हुए पापोंका अनुमोदन किया जाता है, उन सभी पापोंकी निवृत्ति हेतु, किये गये पापोंकी आलोचना करना, निंदा करना प्रतिक्रमण है। तत्वार्थ में तपके अंतर्गत प्रायश्चित होता है। प्रतिक्रमण यह प्रायश्चित का दूसरा अंग है।[८८] आचार्य हेमचंद्रने लिखा है - "शुभयोगोंसे अशुभ-योगोमें गये हुए अपने आप को पुन: शुभयोगोमें लौटा लाना प्रतिक्रमण है।"[८९] आचार्य आवश्यक हरिभद्रने वृत्तिमें यही कहा है।[९०]

नियमों और मर्यादा के अतिक्रमण से पुन: लौटना ही प्रतिक्रमण है। साधना के क्षेत्रमें मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभयोग ये पांचों भयंकर दोष हैं। आत्मामें अनंत कालसे प्रमाद और असावधानी के कारण विकार और वासनाएँ अपना प्रभुत्व जमाए हुए हैं। यदि ऐसा हुआ तो पुन: सम्यक्त्व, व्रत, अकषाय, अप्रमाद और अशुभयोगमें आना चाहिए। इसी दृष्टि से प्रतिक्रमण किया जाता है।[९१]

आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि, आवश्यक हरिभद्रियवृत्ति, आवश्यक मलयगिरि वृत्ति आदि ग्रंथोंमें प्रतिक्रमण के संबंधमें बहुत विस्तार के साथ चर्चाएँ की गई हैं। प्रतिक्रमण के आठ पर्यायवाची शब्द भी दिये है, जो प्रतिक्रमण के विभिन्न अर्थों को व्यक्त करते हैं।[९२] यद्यापि आठोंका भाव एक ही है किंतु ये शब्द प्रतिक्रमण के संपूर्ण अर्थ को समझने में सहायक हैं। वे इस प्रकार हैं -

१) प्रतिक्रमण: -

प्रतिक्रमण[९३] इस शब्दमें 'प्रति' उपसर्ग है और 'क्रम' धातु है।[९४] प्रति का तात्पर्य है - प्रतिकूल और क्रम का तात्पर्य है - पदनिक्षेप। जिन प्रवृत्तियों से साधक सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान, सम्यक् चरित्ररुप स्वस्थान से हटकर मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम रुप पर स्थानमें चला गया हो, उसका पुन: आपमें लौट आना प्रतिक्रमण या पुनरावृत्ति है।

२) प्रतिचारणा -

प्रतिचारणा[९५] असंयम क्षेत्र से अलग -थलग रहकर अत्यंत सावधान होकर विशुद्धता

के साथ संयम का पालन करना प्रतिचारणा है। अर्थात् संयम-साधनामें अग्रसर होना प्रतिचारणा है।

३) प्रतिहारणा: -

साधक को साधना के पथ पर मुस्तैदी, से अपने कदम बढ़ाते समय उसके पंथमें अनेक प्रकार की बाधाएँ आती हैं। कभी असंयम का आकर्षण उसे साधनामेंसे विचलित करना चाहता है, तो कभी अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है। यदि साधक परिहारणा (प्रतिहारणा) न रखें तो वह पथभ्रष्ट हो सकता है। इसलिए वह प्रतिपल - प्रतिक्षण अशुभयोग, दुर्ध्यान और दुराचरणोंका त्याग करता है। यही परिहारणा है।

४) वारणा -

वारणा का अर्थ निषेध (रोकना) है। साधक विषय, कषायोंसे अपने आपको रोककर संयम - साधना करते हुए ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इसलिए विषय-कषायों से निवृत्त होने के लिए प्रतिक्रमण अर्थ में वारणा शब्द का प्रयोग हुआ है।

५) निवृत्ति -

निवृत्ति[९६] - का जैन साधनामें अत्यंत महत्त्व रहा है। सतत सावधान रहने पर भी कभी प्रमाद के वश अशुभ योगोंमें उसकी प्रवृत्ति हो जाए तो उसे शीघ्र ही शुभमें आना चाहिए। अशुभसे निवृत्त होने के लिए ही यहाँ प्रतिक्रमण का पर्यायवाची शब्द निवृत्ति आया है।

६) निन्दा -

साधक अन्तर्निरीक्षण करता रहता है। उसके जीवनमें जो भी पापयुक्त प्रवृत्ति हुई हो, शुद्ध हृदयसे उसे उन पापोंकी निंदा करनी चाहिए। स्वनिंदा जीवन को मांजने के लिए है। उससे पापों के प्रति मन में ग्लानि पैदा होती है और साधक यह दृढ़ निश्चय करता है कि जो पाप मैंने असावधानी से किये थे, वे अब भविष्यमें नहीं करूँगा। इस प्रकार पापोंकी निंदा करने के लिए प्रतिक्रमण के अर्थ में निन्दा शब्द का उपयोग हुआ है।[९७]

७) गर्हा -

निन्दा अपने आपकी की जाती है, उसके लिए साक्षी की आवश्यकता नहीं होती और गर्हा गुरुजनों के समक्ष की जाती है। गुरुओं के समक्ष नि:शल्य होकर अपने पापों को प्रकट कर देना बहुत ही कठिन कार्य है। जिस साधक में आत्मबल नहीं होता, वह गर्हा नहीं कर

सकता। गर्हा में पापों के प्रति तीव्र पश्चाताप होता है। गर्हा पापरुपी विषको उतारनेवाला गारुड़ी मंत्र है, जिसके प्रयोग से साधक पाप से मुक्त हो जाता है। इसलिए गर्हा को प्रतिक्रमण का पर्यायवाची कहा है।[९८]

८) शुद्धि -

शुद्धि का अर्थ निर्मलता है। जैसे बर्तन पर लगे हुए दाग को खटाई से साफ किया जाता है, सोनेपर लगे हुए मैल को तपाकर शुद्ध किया जाता है, ऊनी वस्त्र के मैल को पेट्रोल से साफ किया जाता है, वैसेही हृदय के मैलको प्रतिक्रमण द्वारा शुद्ध किया जाता है। इसलिए उसे शुद्धि कहा है।

आचार्य भद्रबाहु ने साधक को उत्प्रेरित किया है कि - वह प्रतिक्रमण में प्रमुख रुपसे चार विषयों पर गहराई से अनुचिंतन करें। इस दृष्टि से प्रतिक्रमण के चार भेद बनते हैं।[९९]

१) श्रमण और श्रावक के लिए कम्रश: महाव्रतों और अणुव्रतों का विधान है। उसमें दोष न लगे, इसके लिए सतत् सावधानी आवश्यक है। यद्यपि श्रमण और श्रावक सतत् सावधान रहता है, तथापि कभी-कभी असावधानीवश अहिंसा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह में स्खलना हो गई हो तो श्रमण और श्रावक को उसकी शुद्धि हेतु प्रतिक्रमण करना चाहिए।

२) श्रमण और श्रावकों के लिए एक आचारसंहिता आगम साहित्यमें निरुपित है। श्रमण के लिए स्वाध्याय, ध्यान प्रतिलेखन आदि अनेक विधान है तो श्रावक के लिए भी दैनंदिन साधना का विधान है। यदि उन विधानों की पालनामें स्खलना हो जाए तो उस संबंधमें प्रतिक्रमण करना चाहिए। कर्तव्य के प्रति जरासी असावधानी भी ठीक नहीं है।

३) आत्मा आदि अमूर्त पदार्थों को प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा सिद्ध करना बहुत कठीन है। वह तो आगम आदि प्रमाणों के द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है। उन अमूर्त तत्वोंके संबंध में मनमें यह सोचना कि - आत्मा है या नहीं ? यदि इस प्रकार उनमें अश्रद्धा उत्पन्न हुई हो तो उसकी शुद्धि के लिए साधक को प्रतिक्रमण करना चाहिए।

४) हिंसा आदि दुष्कृत्य, जिनका महर्षियोने निषेध किया है, साधक उन दृष्कृत्यों का प्रतिपादन न करें, यदि असावधानीवश प्रतिपादन कर दिया हो तो शुद्धि करें।

अनुयोगद्वार सूत्रमें प्रतिक्रमण के दो प्रकार बताये गये हैं। द्रव्यप्रतिक्रमण और भावप्रतिक्रमण। द्रव्यप्रतिक्रमण में साधक एक स्थान पर अवस्थित होकर बिना उपयोग के

यश प्राप्ति की अभिलाषा से प्रतिक्रमण करता है। यह प्रतिक्रमण यंत्र की तरह चलता है, उसमें चिंतन का अभाव होता है। पापों के प्रति मनमें ग्लानि नहीं होती। वह पुनः पुनः स्खलनाओं को करता रहता है। वास्तविक दृष्टिसे जैसी शुद्धि होनी चाहिए, वह उस प्रतिक्रमण से नहीं हो पाती।

भावप्रतिक्रमण वह है, जिसमें साधक के अन्तर्मानसमें पापों के प्रति तीव्र ग्लानि होती है। वह सोचता है, मैंने इस प्रकार स्खलनाएँ क्यों की ? वह दृढ़ निश्चय के साथ उपयोगपूर्वक उन पापों की आलोचना करता है। भविष्यमें वे दोष पुनः न लगें, इसके लिए दृढ़ संकल्प करता है। इस प्रकार भाव प्रतिक्रमण वास्तवमें प्रतिक्रमण है।[१००] भावप्रतिक्रमणमें साधक न स्वयं मिथ्यात्व आदि दुर्भावोंमें गमन करता है और न दूसरों को गमन करने के लिए उत्प्रेरित करता है और न दुर्भावों में गमन करने का अनुमोदन करता है।[१०१]

साधारणतया यह समझा जाता है कि - प्रतिक्रमण अतीतकाल में लगे हुए दोषों की परिशुद्धि के लिए है। पर आचार्य भद्रबाहु [१०२] ने बताया कि प्रतिक्रमण केवल अतीत काल में लगे दोषों की ही परिशुद्धि नहीं करता अपितु वह वर्तमान और भविष्य के दोषों की भी शुद्धि करता है। अतीतकाल में लगे हुए दोषों की शुद्धि की आलोचना प्रतिक्रमणमें की ही जाती है। वर्तमानकाल में भी साधक संवर साधनामें लगा रहने से पापोंसे निवृत्त हो जाता है। साथ ही प्रतिक्रमण में वह प्रत्याख्यान ग्रहण करता है। जिससे भावी दोषोंसे भी बच जाता है। भूतकालके अशुभयोगसे निवृत्ति, वर्तमान में शुभ योगमें प्रवृत्ति और भविष्यमें भी शुभ योगमें प्रवृत्ति करूँगा, इस प्रकार वह संकल्प करता है।

कालकी दृष्टि से प्रतिक्रमण के पाँच प्रकार बताये हैं।

१) दैवातिक, २) रात्रिक ३) पाक्षिक ४) चातुर्मासिक ५) सांवत्सरिक

१) **दैवातिक** - दिन के अंतमें किया जानेवाला प्रतिक्रमण दैवातिक है।

२) **रात्रिक** - रात्रिमें जो भी दोष लगे हों - उनकी रात्रिके अंतमें निवृत्ति करना यह रात्रिक प्रतिक्रमण है।

३) **पाक्षिक** - पंद्रह दिन के अंतमें अमावस्या और पूर्णिमा के दिन संपूर्ण पक्ष में आचरित पापोंका विचार कर प्रतिक्रमण करना पाक्षिक प्रतिक्रमण है।

४) **चातुर्मासिक** - चार माह के पश्चात् कार्तिकी पूर्णिमा, फाल्गुनी पूर्णिमा और आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन चार महिनेमें लगे हुए दोषों की आचोलना कर प्रतिक्रमण करना चातुर्मासिक प्रतिक्रमण है।

४) **सांवत्सरिक** - आषाढ़ी पूर्णिमा के उनपचास या पचासवें दिन वर्ष भरमें लगे हुए

दोषोंका प्रतिक्रमण करना यह सांवत्सरिक प्रतिक्र मण है।

यहाँ पर सहज जिज्ञासा हो सकती है कि - जब साधक प्रतिदिन प्रात:, सायं नियमित प्रतिक्रमण करता है, फिर पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सारिक प्रतिक्रमण की क्या आवश्यकता है ? समाधान है - प्रतिदिन मकान की सफाई की जाती है। तथापि पर्व दिनोंमें विशेष सफाई की जाती है। वैसे ही प्रतिदिन प्रतिक्र मण में अतिचारों की आलोचना की जाती है, पर पर्व दिनोंमें विशेष रुप से जागरुक रहकर जीवन का निरीक्षण, परीक्षण और पापका प्रक्षालन किया जाता है।

स्थानांग [१०३] में प्रतिक्रमण के छह प्रकार अन्य दृष्टियों से प्रतिपादित हैं। वे इस प्रकार है -

१) **उच्चार प्रतिक्रमण** - विवेकपूर्वक पुरीषत्याग, मल परठ कर आने के समय मार्ग में गमनागमन संबंधी जो दोष लगते हैं, उनका प्रतिक्रमण करना।

२) **प्रस्रवणप्रतिक्रमण** - विवेकपूर्वक मूत्रको परठने के पश्चात् इर्या का प्रतिक्रमण करना।

३) **इत्वर प्रतिक्रमण** - दैवातिक, रात्रिक आदि स्वल्पकालीन प्रतिक्रमण करना।

४) **यावत्कथिक प्रतिक्रमण** - महाव्रत आदि जो यावत्काल के लिए ग्रहण किये जाते हैं अर्थात् सपूर्ण जीवन के लिए पाप से निवृत्त होने का जो संकल्प किया जाता है, वह यावत्कथित प्रतिक्र मण है।

५) **यत्किंचित् - मिथ्याप्रतिक्रमण** - सावधानीपूर्वक जीवनयापन करते हुए भी प्रमाद अथवा असावधानी से किसी भी प्रकार असंयमरुप आचरण हो जाने पर उसी क्षण उस भूल को स्वीकार कर लेना और उसके प्रति पश्चाताप करना।

६) **स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण** - स्वप्नमें कोई विकार - वासना - रुप कुस्वप्न देखनेपर उसके संबंधमें पश्चाताप करना।

ये जो छह प्रकार प्रतिक्रमण के प्रतिपादित किये हुए हैं, इनका मुख्य संबंध श्रमण की जीवनचर्या से है।

संक्षेपमें जिनका प्रतिक्रमण करना आवश्यक है, उनका संक्षेपमें वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है - २५ मिथ्यात्व, १४ ज्ञानातिचार और अठराह पापस्थानों का प्रतिक्र मण सभी साधकों के लिए आवश्यक है। दूसरी बात पांच महाव्रत, मन, वाणी, शरीरका असंयम, गमन, भाषण, याचना, ग्रहण-निक्षेप एवं मूल-मूत्र विसर्जन आदि से संबंधित दोषों का प्रतिक्रमण भी श्रमण साधकों के लिए आवश्यक हैं। पांच अणुव्रतों, तीन गुणव्रतों और चार

शिक्षाव्रतोंमें लगनेवाले अतिचारों का प्रतिक्रमण व्रती श्रावकों के लिए आवश्यक है। जिन साधकों ने संलेखना व्रत ग्रहण कर रखा हो, उनके लिए संलेखना के पांच अतिचारों का प्रतिक्रमण आवश्यक है।

प्रतिक्रमण जैन साधना का प्राणतत्व है। ऐसी कोई भी क्रिया नहीं जिसें प्रमादवश स्खलना न हो सके। चाहे लघु शंका से निवृत्त होते समय, चाहे शौचनिवृत्ति करते समय, चाहे प्रतिलेखना करते समय, चाहे भिक्षा के लिए इधर, उधर जाते समय साधक को उन स्खलनाओं के प्रति सतत् जागरुक रहना चाहिए। उन स्खलनाओं के संबंधमें किंचितमात्र भी उपेक्षा न रखकर उन दोषों से निवृत्ति हेतु प्रतिक्रमण करना चाहिए क्योंकि प्रतिक्रमण जीवन को मांजने की एक अपूर्व क्रिया है।

Pratikraman means to come back to revert to the truth, retreat from the wordly wrongs, and proceed towards the truth.[१०४]

साधक प्रतिक्रमण में अपने जीवन का गहराई से निरीक्षण करता है, उसके मनमें, वचन में, कायामें एकरुपता होती है। साधक साधना करते समय कभी क्रोध, मान, माया और लोभ से साधनाच्युत हो जाता है, उससे भूल हो जाती है तो वह प्रतिक्रमण के समय अपने जीवनका गहराई से अवलोकन कर एक - एक दोष का परिष्कार करता है। यदि मनमें छिप हुए दोष को लज्जा के कारण प्रकट नहीं कर सका, उन दोषों को भी सद्गुरु के समक्ष या भगवान् की साक्षी से प्रकट कर देता है। जैसे कुशल चिकित्सक परीक्षण करता है और शरीर में रही हुई व्याधि को एक्स-रे आदि के द्वारा बता देता है, वैसे ही प्रतिक्रमणमें साधक प्रत्येक प्रवृत्ति का अवलोकन करते हुए, उन दोषों को व्यक्त कर हलका बनता है।

प्रतिक्रमण साधक-जीवन की एक अपूर्व क्रिया है। यह वह डायरी है जिसमें साधक अपने दोषोंकी सूची लिखकर एक - एक दोष से मुक्त होने का उपक्रम करता है। साधक जब अंतर्निरीक्षण करता है तो उसे अपनी भूल का परिज्ञान होता है। एक सुप्रसिद्ध विचारक फ्रेंकलिन ने अपने जीवनको डायरी के माध्यमसे सुधारा था। उसके जीवनमें अनेक दुर्गुण थे। वह अपने दुर्गुणों को डायरीमें लिखा करता था और फिर गहराई से उनका चिंतन करता था कि इस सप्ताह में मैंने कितनी भूलें की हैं। अगले सप्ताह में इन भूलों की पुनरावृत्ति नहीं करूँगा। इस प्रकार डायरी के द्वारा उसने जीवन के दुर्गुणों को धीरे-धीरे निकाल दिया था और एक महान सद्गुणी चिंतक बन गया था।

प्रतिक्रमण जीवनको सुधारने का श्रेष्ठ उपक्रम है, आध्यात्मिक जीवन की धूरी है। आत्मदोषोंकी आलोचना करने से पश्चात्ताप की भावना जागृत होने लगती है और उस पश्चात्ताप की अग्नि में सभी दोष जलकर नष्ट हो जाते हैं। पापाचरण शल्य के सदृश है, यदि

उसे बाहर नहीं निकाला गया, मन में ही छिपा कर रखा गया तो उसका विष अंदर ही चला जायेगा और वह विष साधक के जीवन को बर्बाद कर देगा।

बौद्ध धर्म में प्रवारणा :

बौद्ध धर्म में प्रतिक्रमण शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, उसके स्थान पर प्रतिकर्म, प्रवारणा और पापदेशना, प्रभृति आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। उदान में बुद्धने कहा जीवन की निर्मलता एवं दिव्यता के लिए पापदेशना आवश्यक है। पाप के आचरण की आलोचना करने से व्यक्ति पाप के भार से हल्का हो जाता है।[१०५] वर्षावासमें क्या - क्या दोष लगे हैं ? यह प्रवारणा है। इसमें दुष्ट, श्रुत, परिशंकित अपराधों का परिमार्जन किया जाता है, जिससे परस्पर विनय का अनुमोदन होता है।[१०६]

बोधिचर्यावतार[१०७] नामक ग्रंथमें इसका वर्णन है। इसमें आचार्यशांतिदेवने लिखा है - रात्रिमें तीन बार, दिनमें तीन बार पाप देशना और बोधिपरिणामना की आवृत्ति करनी चाहिए, जिससे अनजाने में हुई स्खलनाओं का शमन हो जाता है। संघके समक्ष जो प्रवारणा है उसकी तुलना वर्तमानमें प्रचलित सामुहिक प्रतिक्रमण के साथ जैन धर्मने की है।

प्रतिक्रमण और संध्या :

वैदिक परंपरामें प्रतिक्रमण की तरह संध्याका विधान है। यह एक धार्मिक अनुष्ठान है। जो प्रात: और सायंकाल दोनों समय किया जाता है। संध्या का अर्थ है उत्तम प्रकार से ध्यान करना। कृष्णयर्जुवेदमें एक मंत्र है कि मेरे मन, वाणी और शरीर से जो भी दूराचरण हुआ हो मैं उसका विसर्जन करता हूँ।[१०८]

इस प्रकार वैदिक परंपरामें संध्याके द्वारा आचरित पापों के क्षय के लिए प्रभु से अभ्यर्थना की जाती है। यह एक दृष्टि से प्रतिक्रमण से ही मिलताजुलता रुप है।

पारसी धर्म में भी पाप को प्रगट करने का विधान है। खोरदेह अवस्ता पारसी धर्म का मुख्य ग्रंथ है। उसमें लिखा है कि - जो भी पाप मुझसे ज्ञात अथवा अज्ञात रूपसे हुए है, उन दुष्कृत्योंको मैं सरल ह्दय से प्रकट करता हूँ। उन सबसे अलग होकर पवित्र होता हूँ।[१०९]

इसाई धर्म के प्रणेता महात्मा येशुने पाप को प्रकट करना आवश्यक माना है। इस तरह पाप को प्रकट कर दोषोंसे मुक्त होने का उपाय बताया है। यह प्रतिक्रमण से मिलताजुलता है।

प्रतिक्रमण जीवन शुद्धि का श्रेष्ठतम प्रकार है। किसी धर्म में उसकी विस्तार से चर्चा है तो किसी में संक्षिप्त में। पर यह सत्य है कि सभी ने उसको आवश्यक माना है।

कायोत्सर्ग :

पाँचवा आवश्यक कायोत्सर्ग है। भगवान महावीर को गौतमस्वामीने प्रश्न किया - हे भगवान ! कायोत्सर्ग से जीव को क्या लाभ होता है ? भगवान महावीर ने जवाब दिया - हे गौतम ! कायोत्सर्ग से साधक आत्मा पूर्वजन्मों में किये गये और वर्तमान जीवनमें होनेवाले सभी दोषों से रहित होकर विशुद्धि करता है। विशुद्ध बना साधक जैसे उठाये हुए बोझको उतारकर हलका हो जाता है, वैसे वह कर्म भारके बोझको उतारकर भार मुक्त होकर परमशांत हो जाता है। फिर वह ध्यानावस्थामें स्थिर होकर सुखपूर्वक विचरण करता है।[११०] जैन साधना पद्धतिमें कायोत्सर्ग का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान हैं।[१११] श्री अनुयोगद्वार सूत्र में कायोत्सर्ग को व्रण चिकित्सा कहा है।[११२] काय और उत्सर्ग ये दो शब्द हैं। जिसका तात्पर्य हैं। काय का त्याग और जीवीत रहते हुए शरीर का त्याग संभव नहीं है। यहाँ पर शरीर त्याग का अर्थ है - शारीरिक चंचलता और देहासक्ति का त्याग। सतत् सावधान रहनेपर भी प्रमाद आदि के कारण साधनामें दोष लग जाते हैं, भूलें हो जाती हैं। भूलोंरुपी घावों को ठीक करने के लिए कायोत्सर्ग एक प्रकार का मरहम है। वह अतिचार रुपी घावोंको ठीक कर देता है। संयमरुपी वस्त्रपर अतिचारों का मैल लग जाता है, भूलोंके दाग लग जाते हैं। उन दागों को प्रतिक्रमण के द्वारा स्वच्छ किया जाता है। प्रतिक्रमणमें भी जो दाग नहीं मिटते उन्हें कायोत्सर्ग द्वारा हटाया जाता है।

आवश्यक सूत्रमें, कायोत्सर्ग क्यों किया जाता है ? उस पर चिंतन करते हुए लिखा है - संयमी जीवनको अधिकाधिक परिष्कृत करने के लिए, आत्माको माया, मिथ्यात्व और निदान शल्य से मुक्त करने के लिए पाप कर्मों के निर्घात (क्षय) के लिए कायोत्सर्ग किया जाता है।[११३]

कायोत्सर्ग अंतर्मुखी होनेकी पवित्र साधना है। बहिर्मुखी स्थिति से साधक अंतर्मुखी स्थितिमें पहुँचता है और अनासक्त होकर राग-द्वेष से उपर उठ जाता है। कायोत्सर्ग में शरीर की ममता कम होने से साधक शरीर से हटकर आत्मभावमें लीन रहता है। यही कारण है कि - साधक के लिए कायोत्सर्ग दु:खों का अंत करनेवाला बताया गया है। शरीर और वचनके व्यापार को एकाग्रता पूर्वक छोडना, यह व्युत्सर्ग या कायोत्सर्ग है। तत्त्वार्थ में नौ प्रायश्चित मे से एक है।[११४]

षड़ावश्यक में कायोत्सर्ग को स्वतंत्र स्थान दिया गया है। प्रत्येक साधक को यह चिंतन करना चाहिए कि - यह शरीर पृथक है और मैं पृथक हूँ। मैं अजर, अमर, अविनाशी हूँ।[११५]

"सहजानंदी शुद्ध स्वरुपी, अविनाशी हूँ आत्म स्वरुप।"

यह शरीर क्षणभंगुर है, कब नष्ट हो जाए, कहा नहीं जा सकता। कायोत्सर्ग में जब साधक अवस्थित होता है तब वह देह में रहकर भी देहातीत स्थितिमें रहता है। किसी भी उपसर्ग को वह शांत भावसे सहन करता है। आचार्य धर्मदासने उपदेशमाला ग्रंथमें लिखा है कि - कायोत्सर्ग के समय प्रावरण (आवरण) नहीं रखना चाहिए।

कायोत्सर्ग में साधक चट्टान की तरह पूर्णरुप से निश्चल, निष्पंद होता है। जिनमुद्रामें वह शरीर का ममत्व त्याग कर आत्मभाव में रमण करता है। आचार्य भद्रबाहु ने लिखा है - कायोत्सर्ग की स्थिति में साधक को यदि कोई भक्तिभावसे चंदन लगाये या कोई द्वेषपूर्वक लगाये, शरीर छेदन करें, चाहे उसका जीवन रहे अथवा मृत्यु वरण करना पड़े - वह सब स्थितियों में सम रहता है। तभी कार्य विशुद्ध होता हैं। [११६] कायोत्सर्ग के समय, देव, मानव और तिर्यंच संबंधी सभी प्रकार के उपसर्ग उपस्थित होने पर जो साधक उन्हें समभाव पूर्वक सहन करता है, उसीका कायोत्सर्ग वस्तुत: सही कायोत्सर्ग है।[११७]

कायोत्सर्ग में खांसी, छींक, डकार, मूर्छा आदि विविध शारीरिक व्याधियाँ हो सकती है तो भी कार्योत्सर्ग का भंग नहीं होता क्योंकि कायोत्सर्ग का मूल उद्देश्य समाधि है। यदि समाधि भंग होती है तो आर्त और रौद्र ध्यान में परिणत होती है। यह परिणति कायोत्सर्ग को भंग कर देती है। जिस कायोत्सर्ग में समाधि की अभिवृद्धि होती है वह कायोत्सर्ग ही हितावह है।

कायोत्सर्ग का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि - शारीरिक चंचलता का त्याग कर वृक्ष की भाँति या पर्वत की तरह या सूखे काष्ट की तरह साधक निष्पंद खड़ा हो जाए। शरीर के संबंधित निष्पंदता तो एकेंद्रिय आदि प्राणियोंमें भी हो सकती है। उसमें जो स्थैर्य है वह अविकसित प्राणी का स्थैर्य है किंतु कायोत्सर्ग में होनेवाला स्थैर्य भिन्न प्रकार का है। [११८]

आचार्य जिनदासगणि महत्तर ने कायोत्सर्ग के दो प्रकार बताये हैं।

१) द्रव्य कायोत्सर्ग और २) भाव कायोत्सर्ग [११९]

द्रव्य कायोत्सर्ग :

इसमें पहले शरीर का निरोध किया जाता है। शारीरिक चंचलता और ममता का परित्याग कर जिनमुद्रामें स्थिर होना, कायचेष्टा का निरुंधन करना द्रव्य कार्योत्सर्ग है।

भाव कायोत्सर्ग :

इसके पश्चात् साधक धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान में रमण करता है। मन को पवित्र विचार और संकल्प से बांधता है, जिससे उसको किसीभी प्रकार की शारीरिक वेदना का अनुभव नहीं होता। वह तन में रहकर भी तन से अलग आत्मभाव में रहता है। इसे भाव

कायोत्सर्ग कहते हैं। इस प्रकार का कायोत्सर्ग सभी प्रकार के दु:खों को नष्ट करनेवाला है।[१२०]

द्रव्य और भाव के भेद को समझने के लिए आचार्योंने कायोत्सर्ग के चार प्रकार बताये हैं। १) उत्थित-उत्थित २) उत्थित-निविष्ट ३) उपविष्ट -उत्थित ४) उपविष्ट-निविष्ट

१) उत्थित - उत्थित -

इस कायोत्सर्ग मुद्रामें जब साधक खड़ा होता है तो उसके साथ ही उसके अंतर्मानसमें चेतना भी खड़ी हो जाती है। वह अशुभ ध्यान का परित्याग कर प्रशस्त ध्यान में लीन हो जाता है। वह प्रथम श्रेणिका साधक है। उसका तन भी उत्थित है और मन भी उत्थित है।

२) उत्थित-निविष्ट :

कुछ साधक साधना की दृष्टि से आँख मुंदकर खड़े हो जाते हैं। वे शारीरिक दृष्टि से खड़े दिखाई देते हैं किंतु मानसिक दृष्टि से उनमें कुछ भी जागृति नहीं होती उनका मन संसार के विविध पदार्थोंमें उलझा रहता है। आर्त और रौद्र ध्यान की धारामें वह अवगाहन करता है। तनसे खड़े होने पर भी उनका मन बैठा है। अत: उत्थित होकर भी वह साधक निविष्ट है।

३) **उपविष्ट-उत्थित:**

कभी-कभी शारीरिक अस्वस्थता अथवा वृद्धावस्था के कारण कार्योत्सर्ग के लिए साधक खड़ा नहीं हो सकता। वह शारीरिक सुविधा के लिए पद्मासन - सुखासन लगाकर कार्योत्सर्ग करता है। तन की दृष्टि से वह बैठा है, किंतु मनमें तीव्र शुद्ध भाव धारा प्रवाहित हो रही है, जिसके कारण बैठने पर भी वह मनसे उत्थित है। शरीर भले ही बैठा है किंतु साधक का मन उत्थित है। (खड़ा है)

४) उपविष्ट-निविष्ट :

कोई साधक शांरीरिक दृष्टि से समर्थ होने पर भी आलस्य के कारण खड़ा नहीं होता, बैठे - बैठे ही वह कायोत्सर्ग करता है। तन की दृष्टि से वह बैठा हुआ है। और भाव की दृष्टी से उसमें जागृति नहीं है। उसका मन सांसारिक विषय वासना में या राग-द्वेषमें फंसा हुआ है। उसका तन और मन दोनों ही बैठे हुए हैं।

कायोत्सर्ग के इन चारों प्रकारों में प्रथम और तृतीय प्रकारका कायोत्सर्ग ही है। इन कायोत्सर्ग के द्वाराही साधक साधना के महान लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

शारीरिक अवस्थिति और मानसिक चिंतनधारा की दृष्टि से आचार्य भद्रबाहु ने आवश्यक निर्युक्तिमें [१२१] कायोत्सर्ग के नौ प्रकार बताये हैं।

	शारिरिक स्थिति		मानसिक विचारधारा
१)	उत्सृत - उत्सृत	खड़ा	धर्म - शुक्लध्यान
२)	उत्सृत	खड़ा	न धर्म - शुक्ल, न आर्द- रौद्र किंतु चिंतनशून्य दशा
३)	उत्सृत - निषण्ण	खड़ा	आर्त-रौद्र ध्यान
४)	निषण्ण उत्सृत	बैठा	धर्म - शुक्ल ध्यान
५)	निषण्ण	बैठा	न धर्म-शुक्लध्यान, न आर्त-रौद्र किंतु चिंतनशून्य दशा
६)	निषण्ण - निषण्ण	बैठा	आर्त - रौद्रध्यान
७)	निषण्ण - उत्सृत	लेटा	धर्म - शुक्लध्यान
८)	निषण्ण	लेटा	न धर्म - शुक्ल, न आर्त - रौद्र किंतु चिंतन शून्य दशा
९)	निषण्ण - निषण्ण	लेटा	आर्त - रौद्र ध्यान

कायोत्सर्ग खडे होकर, बैठकर, और लेटकर - तीनों अवस्थाओंमें किया जाता है। खड़ी मुद्रामें कायोत्सर्ग करने की रीति इस प्रकार है। दोनों हाथों को घूटनोंकी ओर लटकालें, पैरों को सम रेखामें रखें, एडियाँ, कायोत्सर्ग करनेवाला पद्मासन या सुखासन से बैठे। हाथोंको या तो घूटनोंपर रखें या बाईं हथेली पर दायी हथेली रखकर उन्हें अंक में रखें। लेटी हुई मुद्रामें कायोत्सर्ग करनेवाला सिर से लेकर पैर तक के अवयवों को पहले ताने फिर स्थिर करें। हाथ पैर को सटायें हुए न रखें। इन सभी में अंगोंका स्थिर और शिथिल होना आवश्यक है।[१२२] खड़े होकर कायोत्सर्ग करने की एक विशेष परंपरा रही है क्योंकि, तीर्थंकर प्राय: इसी मुद्रामें कायोत्सर्ग करते है। आचार्य अपराजितने लिखा है कि कायोत्सर्ग करनेवाला साधक शरीर से निष्क्रिय होकर खंभे की तरह खड़ा हो जाए। दोनों बाहुओं को घूटनों की ओर फैला दे। प्रशस्त ध्यानमें लीन हो जाए। शरीर को एकदम अकड़ा कर न खड़ा रखें और न एकदम झुकाकर ही वह सम मुद्रामें खड़ा रहे। कायोत्सर्ग में कष्टों और परिषहोंको समभाव से सहन करें। कायोत्सर्ग जिस स्थानपर किया जाए वह स्थान एकांत, शांत और जीवजंतुओं से रहित हो।[१२३]

द्रव्य कायोत्सर्ग, भाव कायोत्सर्ग की ओर बढ़ने का एक उपक्रम है। द्रव्य स्थूल हैं, स्थूलतासे सूक्ष्मता की ओर बढ़ा जाता है। द्रव्य कायोत्सर्ग में बाह्यवस्तुओं का परित्याग

किया जाता है, जैसे - उपधिका त्याग करना भत्तपान आदि का त्याग करना, पर भाव कायोत्सर्ग में तीन बातें आवश्यक है - कषाय व्युत्सर्ग, संसार व्युत्सर्ग और कर्म व्युत्सर्ग ! कषाय व्युत्सर्ग में चारों प्रकार के कषायों का परिहार किया जाता है। क्षमा के द्वारा क्रोध को, विनय के द्वारा मान को, सरलतासे माया को और संतोष से लोभ को जीता जाता है।

संसार व्युत्सर्ग में संसार का परित्याग किया जाता है। संसार चार प्रकार का है - द्रव्य संसार, क्षेत्र संसार, काल संसार और भाव संसार। [१२४]

द्रव्य संसार - चार गतिरुप है। नारकी, तीर्थंच, मनुष्य और देव ये चार गति हैं। [१२५]

क्षेत्र संसार - अध:, उर्ध्व और मध्य लोकरुप है।

कालसंसार - एक समय से लेकर पुद्‌गल परावर्तन काल तक है।

भावसंसार - जीव का विषयासक्तिरुप भाव है। जो संसार भ्रमण का मूल कारण है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल संसार का त्याग नहीं किया जा सकता है।

आचारांग सूत्र में कहा है - जो इंद्रियों के विषय है वही वस्तुत: संसार है और उनमें आसक्त हुआ आत्मा संसारमें परिभ्रमण करता है। [१२६]

आगम साहित्य में यत्रतत्र 'संसारकंतारे' शब्द का उपयोग हुआ है - जिसका अर्थ है - संसार के चार गतिरुप किनारे हैं। संसार-परिभ्रमण के जो मूल कारण है उन मूल कारणों का त्याग करना। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग का परित्याग करना है। 'संसार व्युत्सर्ग' है।

अष्ट प्रकार के कर्मोंको नष्ट करने के लिए जो कायोत्सर्ग किया जाता है उसे व्युत्सर्ग कहते हैं। प्रयोजनकी दृष्टि से कायोत्सर्ग के दो भेद किये गये हैं। १) चेष्टा कायोत्सर्ग २) अभिभव कायोत्सर्ग [१२७]

चेष्टा कायोत्सर्ग : दोष विशुद्धि के लिए किया जाता है। जब श्रमण शौच, शिक्षा आदि कार्यों के लिए बाहर जाता है तथा निद्रा आदि में प्रवृत्ति होती है। उस में दोष लगने पर उसकी शुद्धि केलिए प्रस्तुत कायोत्सर्ग किया जाता है।

अभिभव कायोत्सर्ग : दो स्थितियों में किया जाता है। प्रथम दीर्घकाल तक आत्मचिंतन के लिए या आत्मशुद्धिके लिए मनको एकाग्र कर कायोत्सर्ग करना और दूसरा संकट आनेपर जैसे - विप्लव, अग्निकांड, दुर्भिक्ष आदि।

चेष्टा कायोत्सर्ग का काल उच्छवास आधारित है। यह कायोत्सर्ग विभिन्न स्थितियोंमें (आठ) सत्ताइस तीन सौ या ५००, और १००८ उच्छवास तक किया जात है।

अभिभव कायोत्सर्ग का काल जघन्य अंतर्मुहुर्त और उत्कृष्ट एक वर्ष का है। उदा. बाहुबलीने एक वर्ष तक यह कायोत्सर्ग किया था। [१२८]

दोष विशुद्धि के लिए जो कायोत्सर्ग किया जाता है वह कायोत्सर्ग दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सारिक रुपसे पाँच प्रकार का है।

षड़ावश्यक में जो कायोत्सर्ग है उसमें चतुर्विंशतिस्तव का ध्यान किया जाता है। चतुर्विंशति स्तवमें सात श्लोक और अठ्ठाईस चरण हैं। [१२९] एक उच्छवासमें एक चरण का ध्यान किया जाता है। एक चतुर्विंशति स्तवका ध्यान २५ उच्छवासोंमें संपन्न होता है। प्रथम श्वास लेते समय मनमें लोगस्स उज्जोयगरे कहा जाएगा और श्वास को छोड़ते समय धम्मतित्थयरे जिणे कहा जाएगा। द्वितीय श्वास लेते समय अरिहंते कित्तईसं और छोड़ते समय चउविसंपि केवली कहा जाएगा। इस प्रकार चतुर्विंशतिस्वत का कायोत्सर्ग होता है।

'प्रवचन सारोद्धार' [१३०] में और विजयोदयावृत्ति में [१३१] कायोत्सर्ग का ध्येय परिमाण और कालमान इस प्रकार किया गया है।

प्रवचनसारोद्धार -

		चतुर्विंशतिस्तव	**श्लोक**	**चरण**	**उच्छवास**
१)	दैवासिक	४	२५	१००	१००
२)	रात्रिक	२	१२ १/२	५०	५०
३)	पाक्षिक	१२	७५	३००	३००
४)	चातुर्मासिक	२०	१२५	५००	५००
५)	सांवत्सरिक	४०	२५२	१००८	१००८

विजयोदया

		चतुर्विंशतिस्तव	श्लोक	चरण	उच्छवास
१)	दैवसिक	४	२५	१००	१००
२)	रात्रिक	२	१२ १/२	५०	५०
३)	पाक्षिक	१२	७५	३००	३००
४)	चातुर्मासिक	१६	१००	४००	४००
५)	सांवत्सरिक	२०	१२५	५००	५००

प्रवचनसारोद्धार और विजयोदयावृत्तिमें जो उच्छवास संख्या कायोत्सर्ग की दी गई है, उसमें एक रुपता नहीं है।

दिगंबर परंपराके आचार्य अमितगतिने यह विधान किया है कि दैवसिक कायोत्सर्ग में १०८ और रात्रिके कायोत्सर्ग में ५४ उच्छवासोंका ध्यान करना चाहिये एवं अन्य कायोत्सर्ग में २७ उच्छवासों का ध्यान करना चाहिए।[१३२] सत्ताईस उच्छवासों में नमस्कार मंत्र की नौ आवृत्तियाँ होती है क्योंकि तीन उच्छवासोंमें एक नमस्कार महामंत्र का ध्यान किया जाता है। नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, एक उच्छवासमें नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, दूसरे उच्छवासमें तथा नमो लोए सव्व साहूणं तीसरे उच्छावासमें - इस प्रकार तीन उच्छवासोंमे एक नमस्कार महामंत्र का ध्यान पूर्ण होता है। आचार्य अमितगति का कहना है कि श्रमण को दिन और रातमें कुल २८ बार कायोत्सर्ग करना चाहिए।[१३३] स्वाध्याय कालमें १२ बार, वंदनकाल में ६ बार, प्रतिक्रमण कालमें ८ बार, योगभक्ति कालमें २ बार, इस प्रकार कुल २८ कायोत्सर्ग करना चाहिए।

श्वेतांबर और दिगंबर दोनों परंपराओके साहित्य में यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि - श्रमण साधकों के लिए कायोत्सर्ग पर विशेष जोर दिया गया है। उत्तराध्ययन सूत्र के श्रमण समाचारी अध्ययनमें[१३४] और दशवैकालिक चूलिकामें[१३५] श्रमणको पुन: पुन: कायोत्सर्ग बताया है। कायोत्सर्गमें मानसिक एकाग्रता, सर्वप्रथम आवश्यक है। कायोत्सर्ग अनेक प्रयोजनोंसे किया जाता है। लेकिन क्रोध, मान, माया, लोभ का उपशमन कायोत्सर्ग का मुख्य प्रयोजन है। अमंगल विघ्न और बाधा के परिहार के लिए भी कायोत्सर्ग का विधान प्राप्त होता है।

कायोत्सर्ग की प्रक्रिया कष्टप्रद नहीं है। कायोत्सर्ग से शरीर को पूर्ण विश्रांति प्राप्त होती है और मनमें अपूर्व शांतिका अनुभव होता है। इसलिए कायोत्सर्ग लंबे समय तक किया जा सकता है। कायोत्सर्ग में मनको श्वासमें केंद्रित किया जाता है। इससे कालमान श्वास गिनती से भी किया जाता है।

कायोत्सर्ग का प्रधान उद्देश्य है - आत्मा का सानिध्य प्राप्त करना और सहज गुण है मानसिक संतुलन बनाअे रखना। मानसिक संतुलन बनाअे रखनेसे बुद्धि निर्मल होती है और शरीर पूर्ण स्वस्थ होता है। आचार्य भद्रबाहुने कायोत्सर्ग के अनेक फल बताये हैं।[१३६] को देह जाड्य बुद्धि - श्लेष्म आदि के द्वारा देहमें जड़ता आती है तो कायोत्सर्ग से श्लेष्म आदि के दोष नष्ट हो जाते हैं। इसलिए उनसे उत्पन्न होनेवाली जड़ता भी समाप्त हो जाती है।

२) मति जाड्य बुद्धि :

कायोत्सर्ग में मनकी प्रवृत्ति केंद्रित हो जाती है। उससे चित्त एकाग्र होता है। बौद्धिक जड़ता

समाप्त होकर उसमें तीक्ष्णता आती है।

३) सुख - दुख तितिक्षा :

कायोत्सर्ग से सुख-दु:खको सहन करने की अपूर्व क्षमता प्राप्त होती है।

४) अनुप्रेक्षा :

कायोत्सर्ग में अवस्थित व्यक्ति अनुप्रेक्षा या भावनाका स्थिरतापूर्वक अभ्यास करता है।

५) ध्यान : कायोत्सर्ग में शुभ ध्यान का सहज अभ्यास हो जाता है। कायोत्सर्ग में शारीरिक चंचलता के विसर्ग के साथ ही शारीरिक ममत्व का भी विसर्जन होता है, जिससे शरीर और मनमें तनाव उत्पन्न नहीं होता। शरीर शास्त्रियों का मानना है कि - तनावसे अनेक शारिरीक और मानसिक व्याधियाँ समुत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ शारीरिक प्रवृत्ति से -

१) स्नायु में शर्करा कम हो जाती है।
२) लैक्टिक एसिड स्नायुमें एकत्रित होती है।
३) लैक्टिक एसिड की अभिवृद्धि होने पर शरीर में उष्णता बढ़ जाती है।
४) स्नायुतंत्र में थकान का अनुभव होता है।
४) रक्त में प्राणवायु की मात्रा न्यून हो जाती है - किंतु कायोत्सर्ग से -
१) ऐसिड़ पुन: शर्करामें परिवर्तित हो जाता है।
२) लैक्टिक एसिड का स्नायुओंमें जमाव न्यून हो जाता है।
३) लैक्टिक ऐसिड की न्यूनता से शारीरिक उष्णता न्यून होती है।
४) स्नायुतंत्र में अभिनव ताजगी आती है।
५) रक्त में प्राणवायु की मात्रा बढ़ जाती है।

इस प्रकार स्वास्थ्य की दृष्टिसे कायोत्सर्ग का अत्यधिक महत्त्व है। मन, मस्तिष्क और शरीरका परस्पर गहरा संबंध है। जब इन तीनों में सामंज्यस्य नही होगा तब तनाव होते है। कायोत्सर्ग तनावको दूर करने का एक सुंदर उपाय है।

कायोत्सर्ग में सर्व प्रथम शिथिलीकरण की आवश्यकता है। यदि बैठे बैठे ही साधक कायोत्सर्ग करना चाहता है तो वह सुखासन या पद्मासन से बैठे। फिर रिढ़ की हड्डी और गरदन को सीधा करें कि उसमें झुकाव या तनाव न हो। आंगोपांग शिथिल सीधे और सरल रहे। उसके पश्चात् दीर्घ श्वास ले। बिना कष्ट के जितना लंबा श्वास ले सके उतना लंबा लेने का प्रयास करे। इससे शरीर और मन इन दोनों के शिथिलीकरण मे बहुत सहयोग मिलेगा। इस प्रकार शारीरिक अवयव के शिथिल हो जाने से स्थूल शरीर से संबंध विच्छेद

होकर सूक्ष्म शरीर से संबंध स्थापित किया जा सकता है।

कायोत्सर्ग से श्वास सूक्ष्म होता है। शरीर और मन के बीच में श्वास है। शास्त्रकारोंने श्वासक के पांच प्रकार बताये है -

१) सहजश्वास २) शांत श्वास ३) उखड़ी श्वास

४) विक्षिप्त श्वास और ५) तेज श्वास

ज्ञानियोंने दर्शाया है कि - साधक पहले अभ्यासमें गहरा और लंबा श्वास लेता है। दूसरे अभ्यास में लयबद्ध श्वास लिया जाता है। तीसरे अभ्यासमें सूक्ष्म, शांत और जमे हुए श्वास का अभ्यास करता है। चतुर्थ अभ्यास में सहज कुंभक की स्थिती होती है। प्राणायाम और ध्यान से इस स्थिती का निर्माण किया जाता है। प्राणायाम का सीधा असर शरीर पर होता है, किंतु मनोग्रंथी पर चोट करने के लिए मनका संकल्पबद्ध होना आवश्यक है। श्वासकी मंदता से शरीर निष्क्रिय हो जाता है और प्राण शांत हो जाते हैं। मन निर्विचार हो जाता है और अंतरमानसमें तीव्रतम वैराग्य जागृत हो जाता है। श्वास के स्थिर होनेपर मन की चंचलता भी नष्ट हो जाती है। श्वास की निष्क्रियता मन की शांति और समाधी है। जब हमें क्रोध आता है उस समय हमारी श्वास की गति तीव्र हो जाती है और ध्यान में श्वास की गति शांत होने से उसमें मन की स्थिरता होती है।

'प्रवचन सारोद्धार' आदि ग्रंथोमें कायोत्सर्ग के १९ दोष वर्णित हैं। १) घोटक दोष २) लता दोष ३) स्तंभ कुड्य दोष ४) माल दोष ५) शबरी दोष ६) वधु दोष ७) निगड़ दोष ८) लम्बोत्तर दोष ९) स्तन दोष १०) उर्द्धिका दोष ११) संयती दोष १२) खलीन दोष १३) वायस दोष १४) कपित्य दोष १५) शीर्षोत्कम्पित दोष १६) मूक दोष १७) अंगुलिका भ्रू दोष १८) वारूणी दोष और प्रज्ञा दोष [१३७]

बोधि

बौद्ध धर्ममें आचार्य शांतिरक्षितने बौद्धाचार्यावतार ग्रंथ में [१३८]लिखा है - सभी देहधारियों को जिस प्रकार सुख हो, वैसे ही यह शरीर मैंने न्यौछावर कर दिया है। वे चाहे इसकी हत्या करें, निंदा करे, या इस पर धूल फेंके, चाहे खेलें, चाहे हँसे, चाहे विलास करें, मुझे इसकी क्या चिंता ? क्योंकि, मैंने शरीर उन्हें ही दे डाला है। तथागत बुद्ध ने ध्यान साधन पर बल दिया। ध्यान साधना बौद्ध परंपरामें अतीतकाल से चली आ रही है। विपश्यना आदि में भी देह के प्रति ममत्व हटाने का उपक्रम मिलता है।

६) प्रत्याख्यान :

छठ्ठे आवश्यक का नाम प्रत्याख्यान है। प्रत्याख्यान का अर्थ हैं - त्याग करना[१३९] प्रत्याख्यान शब्द की रचना प्रति, आ, और ख्यान इन शब्दों के संयोग से होती है अविरति - असंयम के प्रतिकूल रूप में मर्यादा के साथ प्रतिज्ञा ग्रहन करना प्रत्याख्यान हैं।[१४०] दूसरे शब्दोंमे करे तो आत्मस्वरूप के प्रति अभिव्याप्त रूप से, जिससे अनाशंषा गुण समुत्पन्न हो, इस प्रकार कथन करना प्रत्याख्यान है, और भी अधिक स्पष्ट शब्दोंमे कहे तो भविष्यकाल के प्रति मर्यादा के साथ अशुभ योग से निवृत्ति और शुभ योग में प्रवृत्तिकरना प्रत्याख्यान हैं।

मानवकी इच्छाएं असीम है।[१४१] वह सभी वस्तुओं को पाना चाहता हैं। इच्छाऐं सतत् बढ़ती रहती है और इच्छाओं के कारण ही मानव के मन के भीतर सदा अशांति रहती है। उस अशांति को नष्ट करने का एक मात्र उपाय प्रत्याख्यान है। प्रत्याख्यान में साधक अशांति का मूल कारण आसक्ति और तृष्णाकों नष्ट करता है।

अनुयोगद्वारसूत्रमें प्रत्याख्यान का एक नाम 'गुणधारण' दिया गया है। गुणधारण का अर्थ है - व्रतरूपी गुणों को धारण करना। मन, वचन और कायाके अशुभयोंगो को रोक कर शुभ योंगो में प्रवृत्तिको केंन्द्रित किया जाता हैं। इस प्रवृत्ति से इच्छा का निरोध होता है, तृष्णाए शांत हो जाती है, अनेक सद्गुणों की उपलब्धि होती है, आचार्य भद्रबाहुने लिखा है - प्रत्याख्यान से संयम होता है। संयम से आश्रव का निरूंधन होता है और आश्रव के निरूंधन से तृष्णाका अंत हो जाना है।[१४३] तृष्णाके अंत से अनुपम उपशम भाव समुत्पन्न होता है और उससे प्रत्याख्यान विशुद्ध बनता है।[१४३]

उपशमभाव की विशुद्धिसे चारित्रधर्म प्रगट होता,चारित्र से कर्मनिर्जिर्ण होते है। उसके होने से केवलज्ञान, केवलदर्शन का दिव्य आलोक जगमगाने लगता है और शाश्वत मुक्ति रूपी सुख प्राप्त होता है। [१४४]

प्रत्याख्यान के मुख्य दो भेद है। १) मुलगुण प्रत्याख्यान और २) उत्तरगुण प्रत्याख्यान।

मुलगुण प्रत्याख्यान यावत् जीवन के लिए ग्रहण किया जाता है। इसके दो उपभेद हैं

१) सर्वमूलगुण प्रत्याख्यान और २) देशमूलगुण प्रत्याख्यान।

सर्वमूलगुण प्रत्याख्यानमें श्रमण के पांच महाव्रत आते है और देशमूलगुण प्रत्याख्यानमें श्रमणों पासक के पांच अणुव्रत आते है।

उत्तर गुण प्रत्याख्यान -

प्रतिदिन ग्रहण किया जाता है या तो कुछ दिनोकें लिए ग्रहण किया जाता है। इसके

भी दो उपभेद हैं। १) देशउत्तरगुण प्रत्याख्यान और (२) सर्व उत्तरगुण प्रत्याख्यान। ३) गृहस्थों के लिए तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये सात उत्तरगुण प्रत्याख्यान हैं।क्र श्रमणों और श्रमणोंपासक दोनों के लिए दशप्रकार कें प्रत्याख्यान है। भगवती सूत्र [१४५], स्थानांगवृत्ति[१४६], आवश्यक निर्युक्ति[१४७] और मुलाचार[१४८] में दशप्रत्याख्यानों का वर्णन हैं जिसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है।

१) अनागत :

पर्युषण आदि पर्वमें जो तप आदि करना चाहिये वह तप पहले कर लेना इसे अनागत कहते हैं। पर्व के समय वृद्ध, रुग्ण, तपस्वी आदि की सेवा सहजरूप से हो सके इसलिए तप पहले करने का आदेश दिया है। मूलाचार के टीकाकार वसुनंदी ने लिखा है - चतुर्दशी को किया जानेवाला तप त्रयोदशी को करना।

२) अतिकांत :

जो तप पर्व के दिनों में करना चाहिए वह तप सेवा आदिका प्रसंग उपस्थित होने से न कर सके तो उसे बादमें अपर्व के दिनोंमें करना अतिकांत हैं।४ वसुनंदी के अनुसार चतुर्दशीको किया जानेवाला उपवास प्रतिपदा को करना।

३) कोटिसहित :

जो पूर्वतप चल रह हो, उस तपको बिना पूर्ण किये ही अगला तप प्रारंभ कर देना इसे कोटि सहित कहा गया है। जैसे कि - उपवास का पारणा किये बिना ही अगलातप प्रारंभ करना इस तपमें शक्ति की अपेक्षा प्रगट की गई है। वसुनंदी के अनुसार यह संकल्प समन्वित प्रत्याख्यान है। जैसे - अगले दिन स्वाध्यायबेला पूर्ण होने पर यदि शक्ति रही तो मैं उपवास करूंगा, अन्यथा नहीं करूँगा।

४) नियंत्रित :

जिस दिन प्रत्याख्यान करनेका विचार हो उस दिन रोग आदि विशेष बाधाएं उपस्थित हो जाएं तो भी उन बाधाओं की परवाह किये बिना जो मनमें प्रत्याख्यान धारण किया है वह प्रत्याख्यान अवश्य करना। प्रस्तुत प्रत्याख्यान चतुर्दश पूर्वधारी, जिनकलपि और दशपूर्वधारी श्रमण करते थे। वर्तमान में यह प्रत्याख्यान नहीं है।

५) साकार प्रत्याख्यान :

इस प्रत्याख्यानमें साधक मनमें एक विशेष साकार की कल्पना करता है कि - इस

प्रकारकी परिस्थिति उत्पन्न होगी, तो मैं इसका त्याग करता हूँ। दूसरे शब्दोंमे कहा जा सकता है कि - मनमें अपवाद की कल्पना करके जो त्याग किया जाता है वह साकार प्रत्याख्यान है।

६) निराकार :

यह प्रत्याख्यान किसी प्रकार का अपवाद रखें बिना किया जाता है। उस प्रत्याख्यानमें दृढ़ मनोबल की अपेक्षा होती है। साकार प्रत्याख्यान में सभी प्रकार के अपवाद व्यवहार में लाये जा सकते है लेकिन अनाकार प्रत्याख्यान में अपवाद व्यवहारमें नही लाये जा सकते हैं। नक्षत्र आदि का विचार किये बिना स्वेच्छा से उपवास आदि करना निराकार प्रत्याख्यान है।

७) परिणामव्रत :

श्रमण भिक्षा के लिए जाते समय या आहार ग्रहण करते समय यह प्रतिज्ञा करता है कि - मैं आज इतना ही ग्रास ग्रहण करूँगा या तो यह विचार करता कि - अमुक प्रकार का आहार प्राप्त होगा तो ही मैं आहार, ग्रहण करूँगा, अन्यथा नहीं।

८) निरवशेष :

असण, पान, खादिम और स्वादिम इन चारों प्रकार के आहार का पूर्ण रूपसे परित्याग करना इसे निरवशेष प्रत्याख्यान कहा जाता है। वसुनंदीजी का कहना है कि - यह प्रत्याख्यान यावत् जीवन के लिए होता है। श्वेतांबर आगम साहित्यमें इस प्रकार का कोई वर्णन नही है।

९) सांकेतिक :

जो प्रत्याख्यान संकेत पूर्वक किया जाए वह सांकेतिक प्रत्याख्यान है। जैसे मुठी बांधकर या किसी वस्त्रमें गाँठ लगाकर - जब तक मैं मुठी या गाँठ नहीं खोलुँगा तब तक कोई भी वस्तू मुख में नहीं डालूँगा। ऐसा भी कहा गया है कि - इस प्रत्याख्यानसे साधक अपनी सुविधा के अनुसार प्रत्याख्यान करता है, वह सांकेतिक प्रत्याख्यान कहलाता है। मूलाचारमें इसका नाम श्रद्धानगत है।

१०) अद्धा :

समय विशेष की मर्यादा निश्चित करके प्रत्याख्यान करना। इस प्रत्याख्यान के

अंतर्गत नवकारसी, पोरसी आदि दश प्रत्याख्यान आते हैं। अद्धा का अर्थ काल हैं। आचार्य अभयदेवने अद्धा का अर्थ पोरसी आदि कालमान के आधार पर किया जानेवाला प्रत्याख्यान कहा है।

साधना के क्षेत्रमें प्रत्याख्यान का विशिष्ट महत्त्व रहा है। प्रत्याख्यानमें किसीभी प्रकार का दोष न लगें, इसके लिए साधक को सतत् जागृत रहना चाहिए। जागृत रहने के लिए छह प्रकारकी विशुद्धि का निरूपण किया गया है। ये विशुद्धियाँ निम्नांकित है -

१) श्रद्धान विशुद्धि :

पंचमहाव्रत, १२ व्रत, आदि रूप जो प्रत्याख्यान है उसका श्रद्धा के साथ पालन करना।

२) ज्ञान विशुद्धि :

जिन कल्प, स्थविर कल्प, मूलगुण, उत्तरगुण आदि जिस प्रत्याख्यान का जैसा स्वरूप है, उस स्वरूप को यथार्थ रूप से जानना।

३) विनय विशुद्धि :

मन, वचन और काया सहित प्रत्याख्यान होता है। प्रत्याख्यानमें जितनी वंदनाओंका विधान है, उतनी वंदना अवश्य करनी चाहिए।

४) अणुभाषणा विशुद्धि :

प्रत्याख्यान ग्रहण करते समय सद्गुरू के सन्मुख विनय मुद्रामें खड़े रहकर शुद्ध पाठ का उच्चारण करे।

५) अनुपालना शुद्धि :

भयंकर वनमें या दुर्भिक्ष आदि में या रुग्ण अवस्थामें व्रत का उत्साहके साथ सम्यक् प्रकार से पालन करें।

६) भावविशुद्धि :

राग-द्वेष रहित पवित्र भावना से प्रत्याख्यान का पाठ करना

आवश्यक निर्युक्ति में आचार्य भद्रबाहुनें लिखा है कि - प्रत्याख्यानमें तीन प्रकार के दोष लगनेकी संभावना रहती है। वे दोष इस प्रकार है।[१४९]

१) अमुक व्यक्तिने प्रत्याख्यान ग्रहण किया है जिसके कारण उसका समाजमें आदर हो रहा है। मैं भी उस प्रकार का प्रत्याख्यान करूँ जिससे मेरा आदर हो ऐसी

रागभावना को लेकर प्रत्याख्यान करना।

२) मैं ऐसा प्रत्याख्यान करूँ जिसके कारण जिन्होने प्रत्याख्यान ग्रहण किया है, उनकी कीर्ति धूंधली हो जाए। इस प्रकार दूसरों के प्रति दुर्भावनासे प्रेरित प्रत्याख्यान करना। इस प्रकारमें तीव्र द्वेष प्रगट होता है।

३) इस लोक में मुझे यश प्राप्त होगा और परलोकमें भी मेरे जीवनमें सुख और शांति रहेगी इस भावना से प्रेरित होकर प्रत्याख्यान करना इसमें यश की अभिलाषा वैभव प्राप्ति की कामना आदिक समावेश हुआ है।

शिष्यने जिज्ञासा प्रस्तुत की गुरूदेव किस साधक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान है ? और किस साधक का प्रत्याख्यान दुष-प्रत्याख्यान है ? भगवान ने समाधान किया - जिस साधक को जीव अजीवका परिज्ञान है, प्रत्याख्यान किस उद्देश्य से किया जा रहा है, जिसकी पूर्ण जानकारी है, उस साधक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान है। जिस साधक को जीवअजीवका परिज्ञान नही है, जो अज्ञानकी प्रधानता के कारण प्रत्याख्यान करता हुआ भी प्रत्याख्यान के मर्म को नहीं जानता। उसका प्रत्याख्यान दूषप्रत्याख्यान है, अत: ऐसा प्रत्याख्यान करनेवाला उसंयत है, अविरत है और एकांत बाल है।[१५०]

प्रवचनसारोद्धार,[१५१] योगशास्त्र,[१५२] आदि ग्रंथोमें प्रत्याख्यान ग्रहण करनेवाले साधक और न ग्रहण करनेवाले साधक की योग्यता और अयोग्यता को लक्ष्य में रखकर चतुर्भंगी का प्रतिपादन किया है -

१. प्रत्याख्यान ग्रहण करनेवाला साधक भी विवेकी हो और प्रत्याख्यान प्रदाता गुरू भी गीतार्थ हो तो वह पूर्ण शुद्ध प्रत्याख्यान है।

२. प्रत्याख्यान ग्रहण करनेवाला प्रत्याख्यान के रहस्यको नहीं जानता पर प्रत्याख्यान प्रदान करनेवाला गुरू प्रत्याख्यान के मर्म को जानता है और वह प्रत्याख्यान करनेवाले शिष्य को प्रत्याख्यान का मर्म सम्यक् प्रकारसे समझा देता है तो शिष्य का प्रत्याख्यान सही प्रत्याख्यान हो जाता है। यदि वह उसके मर्म को नहीं समझता है तो उसका प्रत्याख्यान अशुद्ध प्रत्याख्यान हैं।

३. प्रत्याख्यान प्रदान करनेवाला गुरू प्रत्याख्यान के मर्म को नहीं जानता है किंतु जो प्रत्याख्यान ग्रहण कर रहा है वह प्रत्याख्यान के रहस्य को जानता है, तो वह प्रत्याख्यान शुद्ध प्रत्याख्यान है। यदि प्रत्याख्यान ज्ञाता गुरू विद्यमान हो, उनकी उपस्थिति में भी परम्परा आदि की दृष्टि से अगीतार्थ से प्रत्याख्यान ग्रहण करना अनुचित है।

४. प्रत्याख्यान ग्रहण करनेवाला प्रत्याख्यानके मर्म को नही जानता और जिससे

प्रत्याख्यान ग्रहण करना है वह भी प्रत्याख्यान के रहस्य से अनभिज्ञ है तो उसका प्रत्याख्यान अशुद्ध प्रत्याख्यान है।

षड़ावश्यक में प्रत्याख्यान सुमेरू के स्थान पर है। प्रत्याख्यान से भविष्यमें आनेवाली अव्रत की भी सभी क्रियाएँ रूक जाती हैं और साधक नियमों-उपनियमों का सम्यक् पालन करता है। उत्तराध्ययन में प्रत्याख्यान के संबंधमें चिंतन करते हुए निम्न प्रकार बताये है।

१. संभोग प्रत्याख्यान [१५२]

श्रमणोंद्वारा लाए हुए आहार को एक स्थान पर मण्डलीबद्ध बैठकर खाने का परित्याग करना। इससे जीव स्वावलंबी होता है और अपने द्वारा प्राप्त लाभ से ही सन्तुष्ट रहता है।

२. उपाधि - प्रत्याख्यान [१५४]

वस्त्र आदि उपकरणों का त्याग करना। इससे स्वाध्याय आदि करने में विघ्न उपस्थित नहीं होता। आकांक्षा रहित होने से वस्त्र आदि मांगने की और उनकी रक्षा करने की उसे इच्छा नहीं होती तो मनमें संकलेश नहीं होता।

३. आहार - प्रत्याख्यान [१५५]

आहार का परित्याग करनेसे जीवको जीवन के प्रति ममत्व नहीं रहता निर्ममत्व होने से आहार के अभाव में भी उसे किसी प्रकार के कष्ट की अनुभूति नहीं होती।

४. योग - प्रत्याख्यान [१५६]

मन, वचन और काय संबंधी प्रवृत्ति को रोकना योग प्रत्याख्यान है। यह चौदहवें गुणस्थानमें प्राप्त होता है। ऐसा साधक नूतन कर्मोंका का बन्ध नहीं करता वरना पूर्व संचित कर्मों को क्षय करता है।

५. सद्भाव - प्रत्याख्यान १५७

सभी प्रकारकी प्रवृत्तियों का परित्याग कर वीतराग अवस्था को प्राप्त करना। इसमें जीव सभी प्रकार के कर्मों से मुक्त हो जाता है।

६. शरीर - प्रत्याख्यान [१५८]

इससे अशरीरी सिद्धावस्था प्राप्त होती है।

७. सहाय- प्रत्याख्यान [१५९]

अपने कार्योमें किसीका भी सहयोग न लेना। इससे जीव एकत्व भाव को प्राप्त करता है। एकत्वभाव प्राप्त होने से वह शब्दविहीन, कलहविहीन, संयमबहुल तथा समाधिबहुल हो जाता है।

८. कषाय- प्रत्याख्यान[१६०]

सामान्यरूप से कषाय को संयमी, साधक जीतता है ही, जिससे साधक कर्मों का बंध नहीं करते। कषायों पर विजय प्राप्त करनेसे उसे मनोज्ञ और अमनोज्ञ विषयोंके प्रति ममत्व या द्वेष नहीं होता। इस प्रकार उत्तराध्यन में प्रत्याख्यानों के प्रकार व उसके फल निरूपित किये है। प्रत्याख्यान से भविष्यमें होनेवाले पापकृत्य रूक जाते है, और साधक जीवन संयम के सुहावने आलोक से जगमगाने लगता है।[१६१]

इस प्रकार षडावश्यक साधकके लिए अवश्य करणीय है। साधक चाहे श्रावक हो अथवा श्रमण, वह इन क्रियाओं को करता ही है। हाँ, इन दोनों की गहराई और अनुभूति में तीव्रता, मंदता हो सकती है और होती है। श्रावक की अपेक्षा श्रमण इन क्रियाओं को अधिक तल्लीनताके साथ कर सकता है क्योंकि - वह संसार त्यागी है, आरंभ-समारंभ से सर्वथा विरत हैं। इसी कारण उसकी साधना में श्रावक की अपेक्षा अधिक तेजस्विता होती है। षडावश्यकों का साधक के जीवनमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। आवश्यक से जहाँ आध्यात्मिक शुद्धि होती है वहाँ लौकिक जीवनमें भी समता, नम्रता क्षमाभाव आदि सद्‌गुणों की वृद्धि होने से आनंद के निर्मल निर्झर बहने लगते है।

नमस्कार महामंत्र और षडावश्यक एक दूसरे से अभिन्न है। जैन धर्म के किसी भी अनुष्ठानमें या तो किसीभी आवश्यक कार्य के प्रारंभ से नमस्कार महामंत्र का जप या तो उच्चार अनिवार्य है। प्रत्येक आवश्यक में नवकारमंत्र का कोई न कोई पद समाविष्ट हुआ है। नवकार मंत्र का अंतिम लक्ष्य ही पांच परमेष्टि को नमस्कार करके उनके महान गुणों का साधक में भी प्रगटीकरण है। ऐसी मंगल भावना व्यक्त की गई है। प्रत्येक आवश्यक का फल भी महान है। एक पदके उच्चारण मात्रसे महान लाभ होता है। षडावश्यक में से किसी भी आवश्यक में नवकारमंत्र संलग्न ही है। इतना ही नही नवकारमंत्र के बिना किसी भी आवश्यक का हमें फल भी प्राप्त नहीं हो सकता है।[१६२]

धर्म उत्कृष्ट मंगल है।[१६३] जैन धर्म किसी लौकिक फलकी प्राप्ति का इच्छुक नहीं है अर्थात् लोकोत्तर गुण या तो लोकोत्तर मांगलिक जीव को प्राप्त हो ऐसी उदात्त भावना प्रत्येक आवश्यक के साथ दर्शायी गई है। नवकारमंत्र का अंतिम उद्देश्य भी सभी पापों का नाश करना - किसी एक जन्म के नहीं, अनेक जन्मों के कर्मोंका का क्षय करना दर्शाया गया है। साधक पूरी श्रद्धा से किसी भी आवश्यक और नवकार मंत्रकी प्रवृत्ति करेगा तो वह परमशांति और उत्तम सुख अवश्य प्राप्त कर सकेगा।

नवकार मंत्र में चार भावनाओं का समन्वय :

मानव जीवन शुभ और अशुभ भावों का मिश्रण है। प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि - उसके मनसे बूरे भाव बिदा हों और शुभ भावोंका आगमन हो ऐसी झंखना निरंतर बनी रहती है। साधक की उन्नति के लिए शास्त्रकारोने बताया है कि - जीव को सदा कुत्सित भावनाओं का त्याग करके उत्तम भावनाऐं भानी चाहिए। अकेला नमस्कार महामंत्र भी मनुष्य को अशुभ भावनासे बचाने में समर्थ हैं और इसके साथ जब मैत्री आदि मंगलभावनाओं का समन्वय होता है तब साधक को महामंगलकारी और कल्याणकारी भावोंकी प्राप्ति सहज ही हो जाती है। सुवर्ण में सुगंध की तरह नवकार मंत्र में मैत्री आदि चार भावनाओं का संगम परम उत्कर्षकारी और परम आनंद दायक सिद्ध होता है।

मनुष्यमें उत्कर्ष जगाने हेतु भावनाओंका एक मार्ग जैनधर्म में बताया गया है , जिसे भावना - योग भी कहा गया है। उसका लक्ष्य मानव को उत्तम भावनाओं के साथ जोड़ना है।

एकत्व अन्यत्व आदि बारह[१६४] भावनाओं का वहाँ चित्रण किया गया है। उत्तम भावों के नवनीत के रुपमें चार भावनायें - मैत्री प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थका विशेषरुप से उल्लेख हुआ हैं।

जैन दर्शन में बारह प्रकार की वैराग्य भावनाओंके अतिरिक्त प्राचीन ग्रंथोंमें कुछ अन्यभावनाओंका वर्णन भी किया गया है। कहीं मैत्री, प्रमोद आदि चार योग भावनाओंका कहीं, सत्व, तप, आदि पाँच भावनाओं का और कहीं ज्ञान , दर्शन आदि चार भावनाओंका वर्णन मिलता है। इनमें मैत्री आदि चार भावनाऐं जीवन व्यवहार एवं योग साधना की श्रेष्ठतम भावनाऐं कहीं जा सकती है। वैराग्य भावनाऐं (बारह भावनाऐं) जहाँ एकांत निर्वेद मूलक एवं निवृत्ति प्रधान है, वहाँ ये चार भावनाऐं जीवन की प्रवृत्तियों को सत् की ओर प्रेरित करनेवाली है। वास्तवमें ये न केवल श्रमण या श्रावक के लिए ही है किंतु प्रत्येक मानव के लिए उपयोगी तथा आवश्यक है। हम इन्हें योग भावना कह सकते हैं। शक्यता यह है कि इन चार भावनाओं के आधार पर ही मानव जीवन का कर्मयोग सुंदररीतिसे चल सकता है।

हृदय को वैराग्यरस में सराबोर करनेवाली बारह भावनाओं का चिंतन अनेक मनिषियोंने दर्शाया है। इन भावनाओं के सतत् चिंतन, मनन, एवं अनुशीलन से हृदय एक प्रकार की निवृत्ति तथा परम शांति का अनुभव करने लगता है। मन के विकार क्रोध, मान, माया, लोभ, ममत्व, मोह, शरीर एवं धन के प्रति आसक्ति स्वत: क्षीण होने लगती है और वैराग्य की जागृति होती है इसलिए इन भावनाओं का सतत् चिंतन जीवनमें आवश्यक है।

बारह वैराग्य भावनाओं के साथ साथ चार भावनाऐं और भी है। कुछ ग्रंथोमें तो सोलह भावनाओं का उल्लेख मिलता है, तो कहीं - कहीं ग्रंथोमें मैत्री आदि चार भावनाओंका स्वतंत्र रुपमें उल्लेख किया गया है। पातंजल योगसूत्र में भी इन भावनाओं का विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा इन भावनाओं के आधार पर सुख-दुख, पुण्य-पाप आदि विषयोंका चिंतन करने से चित्तमें प्रसन्नता और आल्हाद की जागृती होती है।

१००८ आचार्य सम्राट पू. श्री. आनंदऋषीजी म. लिखते है कि - योगसाधनामें मैत्री प्रमोद आदि भावनाओं की विशिष्ट साधना प्रक्रिया चलती है। ऐसा लगता है कि - इन चार योग भावनाओं को ही योग की आठ दृष्टियों के रुप में आचार्य हरिभद्र ने नई परिभाषाओं के साथ प्रस्तुत किया है।[१६५]

प्रारंभ की बारह भावनाओंका सीधा संबंध वैराग्य, निर्वेद से है और इन चार भावनाओं का संबंध ज्ञान को पुष्ट करना मान ले तो कूल भावनाओंकी फलश्रुति इस प्रकार हो जाती है। ज्ञान, दर्शन एवं चरित्र के विशुद्ध संस्कारों को स्थिर करना भावना का फल है; क्योंकि मैत्री आदि भावनाएँ एक प्रकार से ज्ञानयोग की भावनाऐं हैं। इसका विस्तृत वर्णन निम्नलिखित हैं।

उपाध्याय विनयविजयजीने शांतसुधारसमें मैत्रीभावना का विवेचन करते हुए लिखा है कि - हे आत्मन ! तू सर्वत्र मैत्री की उपकल्पना कर, अनुप्रेक्षा कर / इस जगत में मेरा कोई शत्रु नहीं है ऐसा अनुचिंतन कर। यह जीवन कितने दिनोंतक स्थायी रहनेवाला है ? इसमें तू दूसरों के प्रति शत्रु - बुद्धि रखकर क्यों खिन्न हो रहा है।[१६६]

इन चार योगोन्मुखी भावनाओं का व्यवस्थित वर्णन सर्व प्रथम आचार्य उमास्वाती ने तत्वार्थ सूत्रमें किया है - वह इस प्रकार है -

मैत्रीप्रमोद कारुण्यमाध्यस्थ्यानि सत्वगुणाधिक क्लिश्यमाताविनेयेषु।[१६७]

१) समस्त प्राणियों के प्रति - मैत्री भावना,

२) गुणाधिक जनों के प्रति - प्रमोद भावना

३) दु:खी जनों के प्रति - कारुण्यभावना

४) प्रतिकूलवर्ती लोगों के प्रति - माध्यस्थ भावना।

इसी को स्पष्ट करते हुए आचार्य अमितगतिने कहा है - सत्वेषु मैत्री, गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेष जीवेषु कृपा परत्वं। माध्यस्थ्यभावं विपरीत वृत्तो, सदा ममात्मा विदधातु देव।[१६८]

जीवमात्र के प्रति मैत्री, गुणीजनों के प्रति गुणानुराग, दु:खी जीवों के प्रति करुणा तथा विपरीत वृत्तिवालों के प्रति माध्यस्थ भावना सदा बनी रहें।

ये चार भावनाअें धर्मध्यान की सिद्धि के लिए परम सहायक है। इसलिए कहा गया है कि- ये भावनाअें भवनाशीनी है। भावना भाव शुद्धि के लिए उपकारक है। ध्यान मन का विषय है और भावना भी मन का विषय है। ध्यान मनको स्थिर करता है, एकाग्र करता है। मनको केंद्रित करता है। भावना मनको शुद्ध करती है। मन के राग -द्वेष आदि बाधाअें निकालके ध्यान के लिए शुद्ध भूमि तैयार करने का श्रेय मैत्री आदि चार भावना को मिलता है। आचार्य हेमचंद्राचार्य ने योगशास्त्र में लिखा है कि - मैत्री आदि चार भावनाअें ज्ञान के लिए महान साधक सिद्ध हो सकती है।

टुटे हुए ध्यान को पुन: ध्यानान्तर के साथ जोड़ने के लिए ये चार भावनाअें परम आवश्यक है। जिस तरह वृद्धावस्था से पीडित दूबले शरीर को शक्ति प्रदान करने के लिए रसायन उपकारक सिद्ध होता है। इसी तरह धर्मध्यान करते हुए यदि आराधक आत्मा की धारा खंडित हो जाती है, त्रुटित हो जाती है तो उसे जोडने के लिए ये चार भावनाअें आत्मा के लिए रसायन का काम करती है।[१६९] और साधक को ध्यान में लीन बना देती है। परभावमें चले गये आत्मा को पुन: स्वभाव में स्थित करती है। इसलिए इन भावनाओं को ध्यान की अनुसाधिका कहा गया है।[१७०]

शांत सुधारस के रचियता विनय विजयजी महाराज साहेब ने चार भावना के स्वरुप के बारेमें लिखा है -

संसार के सभी जीवों के हितका चिंतन करना मैत्री भावना है। गुणवान - गुणीजनों के गुण का अनुग्राही बनना प्रमोद भावना है और दीनदु:खी एवं पीड़ित जीवों के प्रति अनुकंपा उत्पन्न करना कारुण्य भावना है और जो जीव दुष्ट बुद्धिवाला है, बार बार समझाने पर भी जो दुष्टता का त्याग नहीं करता है, ऐसे जीवों के प्रति उपेक्षा द्दष्टि से देखना यह माध्यस्थ भावना है।[१७१]

इसीं बात को दूसरे शब्दोंमें पूज्य विनय विजश्रीने इस प्रकार लिखा है - हमसे जो पर सभी जीव हैं उनके हित की चिंता करना मैत्री भावना है। दूसरे का दु:ख किस तरह नष्ट होवें, कोई भी व्यक्ति दु:खी न होने पाये यह भावना करुणा भावना है।

इसी बात को दूसरे शब्दों में पूज्य विनय विजयजीने इस प्रकार लिखा है - हमसे जो पर सभी जीव हैं उनके हित की चिंता करना मैत्री भावना है। दूसरे का दु:ख किस तरह नष्ट होवें, कोई भी व्यक्ति दु:खी न होने पाये यह भावना करुणा भावना है। अन्य के सुख देखकर आनंदित होना यह प्रमोद भावना है और दूसरों के दोषोंकी अपेक्षा करना माध्यस्थ भावना है।[१७२]

संसार के सभी जीवों के सुखदु:ख के प्रति हमारी दृष्टि कैसी होनी चाहिये यह बात इन चारों भावनाओंसे हम जान सकते हैं। इसलिए जैन धर्म की प्रार्थनामें और बड़ी शांतिमें इन भावनाओं का बड़े आदर से उल्लेख किया गया है।

१)	शिवमस्तु सर्वजगत:	१)	मैत्रीभावना
२)	परहितनिरता भवन्तु भूतगणा:	२)	प्रमोदभावना
३)	दोषा: प्रयान्तु नाशं	३)	कारुण्यभावना
४)	सर्वत्र सुखी भवन्तु लोक:	४)	माध्यस्थ भावना

अर्थ -

१)	सारे विश्वका कल्याण होवें	-	मैत्री भावना
२)	सभी जीव दूसरों के हितमें रत होवे	-	प्रमोदभावना
३)	सभी के पाप दोष नष्ट होवे	-	कारुण्यभावना
४)	सभी ओर लोग सुखी होवे	-	माध्यस्थभावना

अर्थ -

१)	सर्वेऽपि सन्तु सुखिन:	-	मैत्रीभावना
२)	सर्वे सन्तु निरामया	-	प्रमोदभावना
३)	सर्वे भद्राणि पश्यन्तु	-	करुणाभावना
४)	मा कश्चित दु:र्खमागभवेत्	-	माध्यस्थभावना

अर्थ -

१)	सभी जीव सुखी होवे	-	मैत्रीभावना
२)	सभी जीव निरोगी होवे	-	प्रमोदभावना
३)	सभी जीवों का कल्याण होवे	-	करुणाभावना
४)	कोई भी जीव दु:खी न होवे	-	माध्यस्थभावना[१७३]

इस प्रकार बृहद्शान्ति स्तोत्र आदि में भी जो प्रार्थना स्वरुपात्मक श्लोक हैं उसमें भी गूढ़ार्थ रूप चारों ही भावनाअें समाविष्ट हैं। इन श्लोकों के अर्थ भी साथ में दिये हैं।इससे चारों ही भावनाओं के विषय कैसे हो सकते हैं उसका स्पष्ट खयाल आ जाता है।

चार भावना - अरिहंतादि ४ मंगल, लोकोत्तम, शरण

१)	मैत्रीभावना	-	अरिहंता मंगल, लोकोत्तम और शरण
२)	प्रमोदभावना	-	सिद्ध मंगल, लोकोत्तम और शरण
३)	करुणाभावना	-	साधु मंगल, लोकोत्तम और शरण
४)	माध्यस्थ भावना	-	धर्म मंगल, लोकोत्तम और शरण

अरिहंत परमात्मा की मैत्री भावना सर्वोच्च है। मैत्री भावना से ही अरिहंत बने है। सभी सिद्ध गुण के भंडार है। अनंतगुणी है। उनके गुणों को ग्रहण करना प्रमोद भावना है।सभी साधु भगवंतो को सभी जीवों के प्रति अपार करुणा होती है। मुनिवर परम दयालु, भवि और धर्म बुद्धि ही उपेक्षणीय जीवों के प्रति माध्यस्थ भावना रखने का सीखायेंगे।

४	भावना	-	४ धर्म
१)	मैत्रीभावना	-	सम्यग् दर्शन
२)	प्रमोदभावना	-	सम्यग् ज्ञान
३)	करुणाभावना	-	सम्यग् चारित्र
४)	माध्यस्थ भावना	-	सम्यग् तप

सम्यग् दर्शन रूप धर्ममें अनुपम श्रद्धामें सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव होना चाहिए। सम्यकत्वी मैत्री भावनावालाही होना चाहिए। ज्ञान यह गुण है। ज्ञान गुणवाले ज्ञानी के प्रति प्रमोद भावना व्यक्त करने से ज्ञान गुण की प्राप्ति होती है। चरित्रधर्म की साधना के लिए जीवमात्र के प्रति करुणा होनी चाहिए और तप धर्म दूसरों के प्रति माध्यस्थता सीखाता है।

४	भावना		४ धर्म
१)	मैत्रीभावना	-	दानधर्म
२)	प्रमोदभावना	-	शियल धर्म
३)	करुणाभावना	-	भावधर्म
४)	माध्यस्थ भावना	-	तप धर्म

मैत्री भावना होगी तो ही दया - दान धर्म होगा। शियल अर्थात ब्रह्मचर्य। ब्रह्म आत्म स्वरुपमें रमण करने के लिए प्रमोद भावना ब्रह्मचारियों के गुणों को अपने में आकर्षित करती है। जीव मात्र पर करुणाभाव रखना यही अपनी करुणा है और माध्यस्थ भावना स्वयं के तपधर्म की आराधना निर्विघ्न पूरी करना।[१७४]

भावना		कषायों का शमन
१) मैत्रीभावना से	-	क्रोध
२) प्रमोदभावना से	-	मान
३) कारुण्य भावना से	-	माया
४) माध्यस्थ भावना से	-	लोभ

मैत्री भावना अंतर को विशाल बनाती है। जहाँ सबको मित्र माने वहाँ क्रोध रुपी चांडाल को अवकाश ही कहाँ मिलेगा ? मान, अभिमान को दूर करने के लिए प्रमोद भावना का आश्रय ले के गुणजनों की ओर दृष्टि रखना ,जिससे दूसरों के गुण देखने के बाद अपना अभिमान नष्ट हो जाता है और दीन दु:खी के प्रति करुणा की दृष्टि होने से किसीको भी ठगने की माया बीचमें नहीं आएगी और पर पदार्थ के लोभ को दूर करने के लिए माध्यस्थ भावना उपेक्षा वृत्ति सीखाएगी, याने लोभ का नाश होगा।

४ संज्ञा दूर करने के लिए ४ भावना

१) आहार संज्ञा	-	मैत्री भावना
२) निद्रा संज्ञा	-	प्रमोद भावना
३) भय संज्ञा	-	कारुण्यभावना
४) मैथुन (परिग्रह)संज्ञा	-	माध्यस्थ भावना

मैत्री भावना आहार संज्ञा दूर करने के लिए सहायक है। प्रमोद भावना गुणानुरागी होने से निद्रा को दूर करेगी। कारुण्य भावना सभी के प्रति दयालु होने से भय संज्ञा दूर हो जाती है और माध्यस्थ भावना से मैथुन (परिग्रह) की संज्ञा दूर होती है।

४ अधर्म को दूर करने के लिए ४ भावना

१) हिंसा	-	मैत्री भावना
२) झूठ	-	प्रमोद भावना
३) चोरी	-	कारुण्यभावना
४) अब्रह्म (परिग्रह)	-	माध्यस्थ भावना

जीवमात्र के प्रति मैत्री हो तो हिंसा दूर होगी। गुणवान के प्रति प्रमोद वृत्ति होगी तो झूठ बोलना रुकेगा। सबके प्रति करुणा होगी, तो चोरी करने से रुकेगा। जब माध्यस्थ भावना होगी तो अब्रह्म (परिग्रह) से छूटकारा होगा।[१७५]

चारों भावनाओं में क्रमव्यवस्था -

ज्ञानियोने सम्यकत्व की चार भावनाएं बहुत ही वैज्ञानिक और तर्क संगत पद्धति से निरुपित की है। प्रथम मैत्री भावना, दूसरी प्रमोद भावना, तीसरी करुणा भावना, चौथी मध्यस्थ भावना। [१७९]

भावनाओं का इस क्रमसे जो निरुपण किया गया है वह रहस्यात्मक है। प्रथम भावना से दूसरी भावना, दूसरी से तीसरी और तीसरी से चौथी इसी तरह प्रत्येक भावनामें विषय लघु हो जाता है। यदि विरुद्ध क्रमसे देखा जाए तो प्रत्येक भावना का विषय व्यापक और बृहद् होता जाता है। मैत्री भावनामें विश्व के लघु, गुरु सभी प्रकार के जीव का मिलन होता है। इसलिए शास्त्रकारोंने बताया है कि, चारों गति और पाँचों जाति के सभी जीवों की ओर मैत्री भावना रखनी चाहिए। प्रमोद भावना तो गुणीजन की ओरें ही रखने की है, करुणा भावना दीन और दु:खितों की ओर रखने की है। माध्यस्थ भावना तो मात्र पापवृत्तिवालें जीवों की ओर रखने की है। [१७५]

मैत्री भावनामें बाकी तीनों भावनाओं का मिलन हो जाता है। प्रमोद में पीछे की दो, करुणामें माध्यस्थ और इसी तरह चारों की मैत्री भावना ही बनती है। मैत्री भावना के साथ करुणा का गाढ़ संबंध है लेकिन सर्वत्र यह नहीं चल सकता है। इनसे हम कह सकते है कि - करुणा भावना मैत्री भावना जैसी व्यापक नहीं है। अध्यात्म साधना के क्षेत्रमें भी सबसे अधिक महत्त्व मैत्री भावना को ही दिया गया है।

मैत्री आदि चारों भावनाओं का संक्षेपमें निरुपण -

१) मैत्री भावना -

"स्वसुख प्राप्ति तथा स्वदु:खनिवृत्ति" - इन दोंनों से संबद्ध तीव्र संक्लेश मिटाने का एक ही अन्य उपाय हैं, मैं सुखी बनुँ, इस इच्छा के स्थान पर मानव सभी सुखी बनें - इस भावना का सेवन करें यह मैत्री भावना है।[१७८]

मैत्री परेषां हितचिंतन यद दूसरों की हितचिंता करना और दूसरों के लिए मंगल कामना करना यह मैत्री है।[१७९]

मानव का हृदय यदि मैत्री भावना से सभर हो जाएगा तो उसकी आत्म समृद्धि में बहुत प्रगती होगी।[१८०] आत्मा की विशुद्धि ही मैत्री का मुख्य कारण है। ज्यों -ज्यों आत्मा की विशुद्धि होती जाती है, त्यों त्यों मैत्री की भी वृद्धि होती जाती है। मैत्री की वृद्धि आत्मा का

महान गुण है। क्रमशः मैत्री भाव का इतना विकास होता है कि - सारे संसार के सभी जीवों के साथ मैत्री भावना विकसती है। जैन दर्शन यह भी बताता है कि - चौद राजलोक के विशाल क्षेत्रमें अनंती बार हम जन्म और मरण का अनंत चक्र में घुमे हुए हैं। संसार के सभी जीवों के साथ एक या दुसरे प्रकार से आत्मिय संबंध से रह चूके हैं। तो अब किसको हम शत्रु समझेंगे। शत्रु बनाकर कौनसा लाभ होने वाला है। इसलिए अच्छी बात तो यह है कि - संसार के किसी भी प्राणी के साथ वैर मत रखना। सभी को मित्र समझना। अपकारी के साथ भी मैत्री रखना बहुत ही कल्याणकारी सिद्ध होगा।

मैत्री और क्षमा जैन धर्म का प्राण है। जैन दर्शन मैत्री और क्षमा पर अवलंबित है। प्रत्येक तीर्थंकर ने जैन साधक को साधना के अंतिम लक्ष्य मैत्री और क्षमा का विकास करने को बार - बार कहा है। मैं संसार के सभी जीवों की क्षमा चाहता हूँ। मेरे अपराधों की क्षमा चाहता हूँ। संसार के सभी जीव मुझे क्षमा करें। मेरे अपराध के लिए क्षमा प्रदान करें। मेरा सभी जीवों के साथ मैत्री का संबंध है। मैत्री है, किसी के साथ मेरा बैर नहीं है। [१८१]

वैर, साधनामें बाधा करता है। कषायका निमित्त होता है, भव परंपरा को विकृत करनेवाला है। उदाहरणार्थ - मरूभूति और कमठ जैसे दो भाईयों के बीच में दश- दश भव तक वैर परंपरा चलती रही और कमठ ने मुनि हत्या आदि करके इतने घोर पाप संचित किये और समत्व की साधना से मरुभूति की आत्मा तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान बन कर मोक्ष में पहुँच गये और कमठ तो आज भी संसार में भटक रहा है।

जो क्षमायाचना करता है वही सच्चा आराधक है और जो क्षमायाचना नहीं करता है उसकी आराधना आराधना ही नहीं है। जैन दर्शन उसे विराधक कहते हैं। उपशम या क्षमाभाव जैन साधनाका सार है। उपशम या तो क्षमा से ही सभी जीवों के लिए समता का भाव उदित होगा और संसार के सभी जीवों के प्रति मैत्रीभाव उनमें परिणत होगा। मैत्री के बिना समता नहीं आती और समता के बिना ही सामायिकसे कोई लाभ नहीं होता। क्षमा और समता के बिना धर्म का एक अंश भी हममें टीकता नहीं। इसलिए मैत्री या क्षमा धर्म के केंद्रबिंदू है।

जैसा कहा जाता है कि - एक म्यानमें दो तलवार एक साथ नहीं रह सकती है इसी तरह प्रेम और वैर, मैत्री और वैर एकसाथ एक व्यक्ति में कभी भी नहीं रह सकते हैं। वैर झेर से तो भव परंपरा या संसार बिगड़ता है, जबकि मैत्री भावना से संसार सुधरता है - भवकट्टी होती है। प्रेम मैत्री का जनक है लेकिन विशुद्ध और निःस्वार्थ प्रेम होना चाहिए। संसारके सभी लघु, गुरु जीवों के प्रति मैत्री भावना व्यापक रुप से रखनी चाहिए मैत्री भावना वाले आराधक के मनमें विश्वमांगल्यता के उत्तमभाव होने चाहिए। वह तो यह सोचता है कि इस

संसार के कोई भी जीव पाप न करें। किसी भी जीव को दुःख न पहुँचे। समस्त संसार दुःख एवं पाप से मुक्त हो जाए और उन्हें शाश्वत सुख की प्राप्ति हो।[१८२]

मैत्री भावना का जिसके भीतर उदय हुआ है उस साधक की आत्मा में सुकुमार भावों का विकास होता है। वह किसी भी जीव को दुःखी देखने के लिए तैयार नहीं है। दूसरों की अवदशा उससे देखी नहीं जाती। मैत्री भावनामें जीव मात्र के कल्याण की प्रार्थना भी समाविष्ट है।

मैत्री भावना सर्वश्रेष्ठ प्रार्थना :

सर्वोत्तम या श्रेष्ठ प्रार्थना यह है कि - जिसमें स्वार्थ वृत्तिका त्याग करके परमार्थ वृत्तिसे संसार के सभी जीवों के हित की चिंता करने को कहा गया है। ऐसी प्रार्थना को परावर्तित (Reflectie prayer) कहा जाता है। क्योंकि सर्व में स्वका समावेश हो जाता है। लेकिन स्वमें सर्व नहीं समाता।

"अणु परमाणु शिवबन जाए,
अखिल विश्वका मंगल होवे,"
"सभी जीव सुखी होवे,
अखिल विश्व को शांति मिले।"

उत्तम प्रार्थना स्वार्थ के लिए नहीं की जाती है। उत्तम प्रार्थनामें परमार्थभाव अवश्य होना चाहिए। तीर्थंकर बनने के लिए २० बोलकी आराधना करनी चाहिये।

जिन्होने बीस बोलकी आराधना की हो वे तीर्थंकर बन सकते हैं। वे बीस बोल इस प्रकार है - १) अरिहंत २) सिद्ध ३) प्रवचन (भगवंतो का उपदेश) ४) गुरु ५) स्थविर (वृद्धमुनि) ६) बहुसूत्री - पंड़ित ७) तपस्वी इन संतों का गुणनुवाद करनेसे बार-बार ज्ञानमें उपयोग लगाने से ९) निर्मल सम्यकत्व का पालन करने से १०) गुरु आदि पूज्यजनों का विनय करने से (११) निरंतर षडावश्यक का अनुष्ठान करने से १२) ब्रह्मचर्य अथवा उत्तर गुणों का व्रतों तथा प्रत्याख्यान का अतिचार रहित पालन करने से १३) सदैव वैराग्य भाव रखने से १४) बाह्य और अभ्यंतर तप करनेसे १५) सुपात्र दान देने से १६) गुरु, वृद्ध, रोगी, तपस्वी तथा नवदीक्षित मुनि की सेवा करने से (१७) समाधि भाव - क्षमा भाव रखने से १८) अपूर्व अर्थात् नित्य नये ज्ञान का अभ्यास करने से १९) बहुमानपूर्वक जिनेश्वर भगवान के वचनों पर श्रद्धान करने से और २०) तन, मन, धन से जिनशासन की प्रभावना करने से

तीर्थंकर गोत्र का बंध होता है। [१८३] तीर्थंकर होने के पहले तृतीय भव में (जन्ममें) इन वीस बोलों की आराधना करके तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन करता है। इस बीस बोल की आराधना के साथ भाव दयासे भरी हुई प्रार्थना आवश्यक है।

मैत्री भावना का भीतरमें उदय होने के बाद क्रमश: उसका विकास होता है। मैत्री भावना इतना व्यापक स्वरुप ले लेती है कि संसार के सभी जीव-राशि का हित सोचने लगती है। आज की मानवता को महान धर्म कहा गया है लेकिन मानवतावादी मैत्री भावना मनुष्यतक सीमित नहीं होनी चाहिए। समस्त जीवों की सुख और शांति के लिए मैत्री भावना का विकास होना चाहिए। [१८४]

जैन दर्शन की उत्तम प्रार्थना की यह विशेषता है कि - निगोद से निर्वाण तक की विकास गतिमें संसार के निकृष्ट तम जीवों से लेकर मानवतक के कल्याण की प्रार्थना की गई है। संसारके किसी भी जीव को किसी भी प्रकार की कोई परेशानी न हो, दु:ख या पीड़ा न हो ऐसी उन्नत भावना मैत्री भावना की मंगल प्रार्थना में अपेक्षित है। विश्व के किसी भी दर्शन में इतनी व्यापक भावना हमें नहीं मिलती है। जैन दर्शन की यह सर्वोत्तम भावना सच्ची प्रार्थना है उत्तम भावना है।

जैनदर्शन में यह भी बताया है कि - जैसा जीवंत तत्त्व हममें है वैसा संसार के सभी प्राणियों में है। आत्मतत्त्व या जीव तत्त्व की दृष्टि से संसार के सभी प्राणी समान है। यदि ऐसा हम स्वीकार करें तब ही हमारी मैत्री भावना का विकास होगा, अन्यथा यह असंभव है।

"आत्मवत् सर्व भुतेसु" अर्थात् सभी जीव मुझ जैसे ही है।[१८५] ऐसी उदात्तभावना मनमें प्रगट होने से ही मैत्रीभावना का प्राकट्य होगा।

"श्री दशवैकालिक सूत्रमें पढ़मं नाणं तओ दया।" अर्थात् प्रथम ज्ञान और बादमें दया या अहिंसा का पालन करना ऐसा स्पष्ट आदेश दिया गया है।[१८६] हिंदू धर्ममें भी बताया गया है कि - "दया धर्म का मूल है।" यदि हम जीवतत्त्व का स्वीकार करें, *उसका ज्ञान प्राप्त करें तो बाद में दया का काम सरल हो जाता है।* जीवतत्त्वका ज्ञान प्रथम प्राप्त करना अनिवार्य है। इसलिए चाहे मैत्रीभावना कहो या दया भावना नाम से पुकारो। अहिंसा भावना या क्षमाभावना कहो - वास्तव में ये सब एक ही है। मैत्री शब्द बहुत व्यापक है और जो अपने में दया अहिंसा और क्षमा को अपने में समाविष्ट कर लेते है। अहिंसा के बिना मैत्री संभवित नही हैं और मैत्री के बिना क्षमा का प्रागट्य भी नहीं हो सकता यथार्थ ही कहा गया कि - जहाँ-जहाँ अहिंसा की स्थापना होती है - वहाँसे वैरवृत्तिका त्याग हो जाता है। अहिंसा के समक्ष कभी भी वैर वृत्ति टीक नहीं सकती। पूर्ण मैत्री और अहिंसा का उत्तम उदाहरण तीर्थंकर परमात्माका समवसरण है। समवसरण

के दूसरे स्तर (गढ़) में जन्म से परस्पर वैरवृत्ति रखनेवाले पशु और पक्षी निजी जन्मजात वैरवृत्ति भूलकर आराम और शांति से परमात्माकी देशना को श्रवण करते है। इस समय एक दूसरे के प्रति किसी भी प्रकार की वैरवृत्तिका प्रगटीकरण नहीं होता है और हम यह भी नहीं कह सकते है कि - तीर्थंकर परमात्मा ने किसी भी प्रकार का जादु किया हो या चमत्कार किया हो, मगर तीर्थंकर की पूर्ण अहिंसकता, और पूर्ण मैत्री के कारण प्रत्येक जीव अपनी वैरवृत्तिका विस्मरण करता है या तो उसकी वैरवृत्तिका शमन हो जाता है। तीर्थंकर परमात्मा की अहिंसा और मैत्री का यह शुभ प्रभाव है। समवसरण में उपस्थित रहने मात्र से ही जीवका कितना कल्याण होता है - उसमें दया, मैत्री और करूणा का कितना सुंदर वातावरण निर्मित होता है। यह जानकर करूणासागर परमात्मा को हमवंदन करते है और हममें भी ऐसे उदात्त गुणोंका आविष्कार हो ऐसी बारंबार प्रार्थना करते हैं।

संपूर्ण अहिंसक ही अभयदाता हो सकता है। अर्थात् निर्भय ही सबका कल्याण कर सकता है। अहिंसक ही निर्भय बन सकता है और अहिंसक ही अभय का दान देकर अभयदाता बन सकता है।

उपसर्ग सहने में मैत्रीभावना :

जैनदर्शन में श्रावकाचार में उपसर्गों का बहुत सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है। उपसर्ग साधक की कसोटी तो करता ही है और उसमें अनेक गुणों का विकास भी होता है। भगवान महावीर के जीवनमें अनेको उपसर्ग आये लेकिन भगवान महावीर इन उपसर्गों से जरा भी विचलित न होकर समता भाव में स्थिर रहे और मैत्री एवं करूणा का अनोखा दृष्टांत संसार के सामने रखा। चाहे चंडकौशिक हो, चाहे गोशाला, वर्धमान महावीर स्वामी ने सब के साथ स्नेहपूर्ण, मैत्रीपूर्ण, औदर्यपूर्ण, क्षमापूर्ण व्यवहार ही किया। भगवान पार्श्वनाथने भी कमठ और धरणेंद्र दोनों की ओर एक समान कल्याण भावका प्रागट्य किया। इस तरह के अनेक उदाहरण जैनधर्म कथा में मिलते हैं।

चिरंतनाचार्य महापुरूष 'पंचसूत्र' में अकल्याण मित्र और कल्याणमित्र दो प्रकार के मित्र बताते है और स्पष्ट लिखते है कि - अकल्याण मित्र का कभी भी साथ नहीं करना चाहिए। हमारा कल्याण मित्र तो अहिंसा आदि व्रत हैं - भवाभिनंदी मित्रको अकल्याण मित्र कहा गया है, ऐसा मित्र धर्म प्रवृत्ति न करते हुए अधर्म प्रवृत्ति ही करता है। इसलिए ज्ञानियांने दर्शाया है कि - आत्मा को उन्नति के पथ पर ले जानेवाला मित्र ही हमारा सच्चा कल्याण मित्र है। कल्याण मित्र का सहयोग निरंतर करना चाहिए।[१८७]

मैत्री भावना का विस्तार व्यक्ति से लेकर विश्व तक हो सकता है - "वसुधैव कुटूंबकम्"

सारा संसार और सारे संसार के लोग मेरा परिवार है। Under heaven one family इस तरह की व्यापक भावना मैत्री भावना का अंतिम लक्ष्य है। इस भावना से ही विश्व शांति के लिए शुभ प्रवृत्ति करने का उत्तम विचार हमारे मनमें अवश्य स्थान लेगा।

मैत्री भावना अनेक गुणोंका भंडार है, अनेक गुणों की जननी है। अनेक गुणों की रक्षणहार है। मैत्री भावना का क्षेत्र बहुत ही व्यापक और विशाल है। संसार के सभी प्राणियों में क्रमशः मैत्री भावना का विकास हो ऐसी मंगल प्रार्थना हम करते हैं।

प्रमोद भावना

गुणों की ओर अभिरूचि, आनंद, पूज्य भाव और दीर्घदृष्टि रखना इसे प्रमोद भावना कहा गया है। किसी भी प्रकार के पाप दोषों का दुर्गुणों की जरा भी संभावना नहीं है, ऐसे वीतराग, सर्वज्ञादि भगवंतो की ओर अर्थात् उन महापुरुषों के गुणों की ओर सद्भाव रखना उनकी स्तुति और अनुमोदना करना प्रमोद भावना है।[१८८]

आचार्य हेमचंद्राचार्य प्रमोदभावना की व्याख्या करते हुए लिखते है 'गुणानुरागी प्रमोदभावना' अर्थात् प्रमोद भावना में गुण का पक्षपात होता है।[१८९] यहाँ पर पक्षपात शब्द गुण के साथ जोड़ा गया है। जिनको दोष दुर्गुण या पाप के प्रति अप्रीति होती है और गुण की ओर विशेष लक्ष्य रहता है, गुण का अनुराग होता है - गुणप्राप्ति का लक्ष्य होता है। इसे गुण पक्षपात कहा जाता है। गुणपक्षपात से जो आनंद मिलता है उसे प्रमोद भावना कहा गया है।

यदि मुझमें किसी भी एक गुण का होना मेरे लिए अच्छा बन जाता है और यदि वही गुण दूसरी व्यक्तिमें देखने को मिलता है तो उसे मैं बुरा मानता हूँ। यहाँ पर गुण की प्रशंसाका कोई सवाल ही नहीं उठता। यहाँ तो सिर्फ ईर्षा भाव है। तेजोद्वेष है। इस तरह की ईर्षा रखनेवाले से सच्चे अर्थ में साधक ही नहीं कहा जाएगा। इनमें तो प्रमोदभावना का एक अंश मात्र भी प्राप्त नहीं होगा। प्रमोद भावना हमें सच्चा साधक बननेकी प्रेरणा देती है।[१९०]

संसार में गुण और दोष दोनों अनादि अनंत काल से शास्वत है और दोनों निज-निज स्वरूपमें स्थिर है। सुवर्ण-सुवर्ण है, और पत्थर पत्थर है। इसी तरह जो गुण है वह गुण ही रहता है और जो दोष है वह दोष ही है। संसार के गुणदोष की संख्यामें कोई परिवर्तन नहीं हुआ हैं।

संसार होगा और गुणदोष नहीं होगें ऐसी संभावना हरगीज़ नहीं हो सकती है। जहाँ प्रतिदिन कुछ न कुछ अच्छा और कुछ न कुछ बुरा होता ही रहता है। उसका नाम तो संसार है। संसार में हँसना भी है और रोना भी है। पुण्य भी है और पाप भी है। ऐसे संसार से तैर

कर परम लक्ष्य की ओर गति करना साधक का कर्तव्य है। साधकोने हेय, ज्ञेय और उपादेय का विवेक रखकर गुणोंका स्वीकार करना चाहिये और दोषों का परिहार करना चाहिए।

प्रमोद भावना गुणग्राही भावना है। गुणों को देखना, गुणों को देखकर आनंदित होना, गुणीजन प्रति सद्भाव रखना - उनके गुणों की अनुमोदना करना यही प्रमोदभावना का कार्य है।

'मेरी भावना' नामक प्रार्थना में 'युगवीरजी' ने बहुत ही आनंदित स्वरमें हमारे अंतरमें भावना का कैसा स्थान होना चाहिए यह दर्शाया है - प्रमोद भावनाके बारेमें वे लिखते है कि - गुणीजनोंको देखकर जब हृदय में प्रेम और आनंद का भाव उमड़ आवे और उनकी सेवा करने का मनमें संकल्प जगे इतनाही नहीं, मैं कभी भी कृतज्ञ न बनुं या तो गुणी जनों के प्रति मेरे हृदयमें द्वेष या द्रोह की भावना न उठे, और उनके गुण ग्रहण का मेरे मनमें निरंतर भाव रहे, उनके दोष प्रति मैं निगाह तक न डालुं यह मेरी प्रार्थना है।[१९१]

गुणप्राप्ति की साधना ही सच्ची साधना हैं। गुणों के प्राकट्य के विनासाधना संभव नहीं है। लेकिन गुण का प्रागट्य कब होगा ? शास्त्रकारोंने समाधान करते हुए दर्शाया है कि - जब दोषों का परिहार करेंगे, दोषों को तिलांजली देंगे तब ही हममें गुणों का प्राकट्य होगा।

गुण और गुणी का आधार आधेय संबंध है। गुण आधेय याने रहनेवाला, द्रव्य आधार याने रखनेवाला कहा गया है, अर्थात् दोनों में आधार-आधेय संबंध है। आचार्य श्री उमास्वातिजीने तत्त्वर्थ सूत्र में दर्शाया है कि - गुण और पर्याय जिसमें होता है वह द्रव्य कहलाता है।[१९२] जिस तरह सूर्य प्रकाश के बिना हो ही नहीं सकता, सूर्य के साथ प्रकाश अवश्य संलग्न है, नित्य है। इसी तरह द्रव्य के साथ गुण नित्य है।

आचार्य हेमचंदाचार्य ने स्वादवाद मंजिरी नामक ग्रंथमें दर्शाया है कि - जहाँ जिसका गुण स्पष्ट दिखाई देता है वहाँ वह द्रव्य अवश्य होता है। गुण दिखाई दे और द्रव्य न हो ऐसा कभी भी नहीं होगा।[१९३] जीवमें जीव के गुण और अजीवमें अजीवके गुण नित्य रहते हैं। इस तरह किसी भी द्रव्य में जैसा गुण होता है वैसा ही होता है - परिवर्तित नहीं होता है। जीवमें जीव के गुण और अजीवमें अजीवके गुण हमेशाके लिए बिना परिवर्तित हुए जैसा का वैसा रहता है और इसी गुण की वृद्धि किसीभी द्रव्यमें होती है। एक द्रव्य और दूसरे द्रव्यके बीच भिन्नता दर्शानेवाला गुण ही है। गुण से ही द्रव्य की महत्ता बढ़ती है।

द्रव्य का लक्षण :

आचार्य भट्टाकलंक देवने तत्त्वार्थ राजवार्तिक द्रव्यका लक्षण इस प्रकार बताया हैं - "जो सत् है वह द्रव्य है",[१९४] सत् अर्थात जो इंद्रिय ग्राह्य अथवा अतिंद्रिय पदार्थ, बाह्य और अभ्यंतर निमित्त की अपेक्षा से उत्पाद्, व्यय और ध्रौव्य को प्राप्त होता है। तत्त्वार्थ सूत्रमें भी 'सत्' का यही लक्षण कहा है।

जिसमें उत्पाद् व्यय और ध्रौव्य ये तीनों वह 'सत्' है। द्रव्य, गुण, पर्याय के आश्रित होता है ऐसा सर्वज्ञ ने कहा है।[१९५]

गुणप्रधान जैन धर्म :

संसारमें दो प्रकार के संप्रदाय हैं।

१) व्यक्ति या विभूति प्रधान संप्रदाय २) गुणप्रधान संप्रदाय

प्रथम प्रकार में व्यक्ति विशेष का गौरव किया जाता है। उनके गुणों का व्यक्तित्व का संकिर्तन किया जाता है और दूसरे में गुणप्रधान का ही गौरव किया जाता है और गुणों को ही प्राधान्य दिया जाता है। जैन धर्म के सुप्रसिद्ध नमस्कार महामंत्र में २४ तीर्थंकरोंमें से किसीके नाम का उल्लेख तक नहीं है और न तो इसमें साधु, उपाध्याय या आचार्य भगवंतों का नामोल्लेख हुआ है। नमस्कार महामंत्रमें विश्व के पाँच सर्वोत्तम गुणों का ही, स्थानकाही आलेखन मिलता है।

नमस्कार महामंत्र के प्रथम पद नमो अरिहंताणं में अनंत अरिहंतों को नमस्कार किया गया है। अरिहंत की समझ देते हुए ज्ञानियोंने दर्शाया है कि - जिनमें उत्तरोत्तर गुणों की वृद्धि हुई है और चार घाती कर्मों (ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, मोहनीयकर्म, अंतराय कर्म) का जिन्होने क्षय किया है वे अरिहंत है। अरि + हंत- काम-क्रोधादि अंतरिक शत्रुओंका संहार करनेवाले सभी अरिहंतों को नमस्कार किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि अरिहंत गुणवाचक पद है, व्यक्तिवाचक पद नहीं है। और गुणों का संकीर्तन गुणोंका पक्षपात करना ही प्रमोद भावना कहा गया है।

साधक की साधना का प्रधान उद्देश्य यह है कि - दोष एवं दुर्गुणों को नाश करना - संवर करना और गुणों की स्थापना करना -नये नये गुणों की वृद्धि करना। जैन शासनमें गुणानुरागीही सच्चा साधक है और दोषानुरागी विराधक है। गुणानुरागी शीघ्र सम्यक्त्व प्राप्त

करता है। दोषानुरागी दुर्गुणानुरागी होता है। सम्यक्त्व की प्राप्ति के बाद भी यदि जीव दोषानुरागत्व की प्रवृत्ति चालू रखें तो सम्यक्त्व चला जाता है। इसलिए ऐसा भी कहा गया है कि गुण साधना यही आत्मा साधना है और आत्मसाधना ही गुण साधना है।

श्री जिनहर्ष महाराजने तो यहाँ तक कहा है कि - जिसके हृदयमें महापुरुषोके प्रति गुणानुराग का भाव होता है ऐसे भाग्यशाली को तीर्थंकर पद की प्राप्तितक की सिद्धि दुर्लभ नहीं है। सचमुच तीर्थंकर बनने के लिए गुणानुरागी होना प्रथम सोपान है। [१९६]

गुणानुराग ही प्रमोद भावना है। श्रेष्ठ पुरुषों या महापुरुषों के गुणों को देखकर यदि हम प्रसन्न होवें तो समझना चाहिए कि - वास्तव में हम गुणानुरागी हैं। हममें प्रमोद भावना का उदय हुआ है।

प्रमोद भावना से सभर हृदय कैसा उच्चारण करता है। इसके बारेमें श्री जिनहर्ष गणि लिखते है कि - वास्तव में वे ही प्रशंसनीय है,वे ही पुण्यशाली है और जिनके मन में गुणानुराग भरा पड़ा है उन्हें मेरा नमस्कार हो। इस व्यक्तिमें दूसरों के गुणों के प्रति राग या बहुमान सभर होता है, उनकी ओर हमेंमें भी आनंद होना चाहिए। [१९७]

गुणानुराग या तो प्रमोद भावना के विकास के लिए साधक को क्या करना चाहिए ? इस बात को बताते हुए पूज्य जिनहर्ष महाराज लिखते है कि - स्वाध्याय से तप से या तो दान आदि प्रवृत्तिसे यदि गुणों का विकास भी न हो तो दान, तप, आदि निरर्थक होता है। दान देने से दया गुण की वृद्धि होनी चाहिए। तप करने से अनाहारक वृत्ति विकसनी चाहिए। स्वाध्याय से नम्रता, मृदुता, ऋजुता आदि गुणों की वृद्धि होनी चाहिए। यदि ऐसा न हो तो - दुर्गुण दूर न होवें तो ऐसी साधना का कोई मूल्य नहीं है। इसलिए ज्ञानीयोंने दर्शाया है कि - साधकमें गुणवृद्धि अनिवार्य आवश्यक हैं। [१९८] दूसरों के गुणों के प्रति अनुराग, आराधना को सार्थक बनाता है और इर्षा, द्वेष आदि दुर्गुण निष्फल हो जाते हैं। [१९९]

शास्त्रकारोने यह स्पष्ट किया है कि - यदि दूसरों के गुणों के प्रति अनुराग न हो या तो प्रमोद भावना का विकास न हो तो मौन रहना अच्छा है, लेकिन दूसरों के दुर्गुण या दोष नहीं देखना चाहिये। यथार्थ ही कहा गया है कि - जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि,जैसी मति वैसी गति। इसलिए देखने की दृष्टि उत्तम होनी चाहिए। गुणवान महात्माके जीवन को, उनके गुण को लक्ष्य में रखकर उनके प्रति आदर भाव बढ़ाने से हममें भी प्रमोद भावना आती है। प्रमोद भावना लोहचुंबक जैसी है। यह भावना हमें भी गुणों की ओर खींचती है और महात्मा जैसे गुण यदि हममें भी आ जाए तो हम भी सर्व गुणी - अनंतगुणी बन सकते हैं।

गुणग्राही बननेमें बहुत ही लाभ है। सबसे उत्तम लाभ तो यह है कि - उत्तरोत्तर

गुणोंका विकास होता है , इसलिए दुर्गुण का त्याग करके सद्गुणकी साधना करना परम कर्तव्य है। जीवन साधनामें सद्गुणकी साधना ही सबसे बड़ी साधना है और गुणानुरागी द्दष्टि ही हमारे लिए महान उपकारक बन सकती है। आत्मकल्याण के लिए गुणानुरागी दृष्टि या तो प्रमोद भावना का विकास नितांत आवश्यक है।तीर्थंकर गोत्र नामकर्म उपार्जन के लिए बीस बोल ज्ञाता धर्म सूत्र में बताया हैं उसमें शुरुआत के बोल - परमेष्ठी और ज्ञानी, ध्यानी तपस्वी के प्रमोद भाव से गुणकीर्तन के है। [२००]

सिद्ध परमात्मा अनंत गुणों के स्वामी है। धर्म क्षेत्र में हम ऐसा भी कह सकते है कि - सभी गुण सिद्ध परमात्मा में आश्रय लेकर इकट्ठे हुए हैं। इसलिए सिद्ध परमात्मा को ही साध्य मानकर उनके गुणों की साधना करने से हमें अमूल्य लाभ होता है। सिद्धत्व प्राप्त करना ही आत्माका अंतीम लक्ष्य है। जिस तरह शुद्ध या स्वच्छ आईने में स्वच्छ प्रतिबिंब मिलता है उसी तरह अनंत गुणी सिद्ध परमात्मा को आईना बनाकर हमारी आत्मा का प्रतिबिंब इससे प्राप्त करना चाहिए और ऐसा करने से हमें पता लगेगा कि - हम कितने अपूर्ण है और सिद्ध परमात्मा कितने पूर्ण है।

सिद्ध मंगल, सिद्धा लोगुत्तमा और सिद्धे शरणं पवज्जामि ये हमारे आदर्श है। इसे लक्ष्य बनाकर साधक साधना करेगा तो वह भी वैसा बन सकेगा। वीतराग की साधना करनेवाला वीतरागी हो सकेगा। गौतम स्वामी का राग वीतराग पर था, तो वे भी एकदिन वीतरागी हो गये, सर्वज्ञ हो गये। यदि उन्होने किसी रागी पर राग रखा होता तो वे भी रागी बन सकते, वीतरागी नहीं। इसलिए हमें यदि राग रखना है तो वीतरागी पर ही होना चाहिए। सर्वज्ञता वीतरागता के बिना असंभव है। इसलिए वीतरागता के गुण प्राप्त करने के लिए सर्वज्ञ का आलंबन लेना परम उपकारक सिद्ध होगा।

गुण प्राप्त करना याने बाहर से किसी वस्तु को प्राप्त करना ऐसा अर्थ होता है। जैन दर्शन गुणों को प्रगट करने को कहता है। गुण आत्मा के भीतर ही है और हममें भी है और इन्हें प्रगट करने के प्रवृत्तिही हमारा कर्तव्य है। प्रगटीकरण की प्रक्रिया हमारी साधना का लक्ष्य होना चाहिये।

"तेरा है सो तेरे पास, अवर सब अनेरा।"
"आप स्वभाव में रे अवधु सदा मगन में रहना ॥"

हे चेतन ! तुझमें जो उत्तम गुण है उसे प्रगट करने का पुरुषार्थ तूं स्वयं कर। दुर्गुणों का परिहार करना और सद्गुण का विकास करना तेरा लक्ष्य होना चाहिए। सुकृत्य की अनुमोदना करने से अनेक जन्मों के भवभ्रमण से मुक्ति पाने का तेरा मार्ग सरल हो जाएगा। एक आदर्श जीवन की ओर तेरी गति और प्रवृत्ति बढ़ेगी और परमशांति प्राप्त होगी।

साधक के लिए गुणों की परम आवश्यकता है। जिस तरह दु:खी मनुष्य के लिए भोजन, तृषित मानवी के लिए जल और निर्धन के लिए जितनी धन की आवश्यकता रहती है इतनी ही नहीं बल्कि इससे भी ज्यादा सिद्धि मार्ग के साधक आत्मा के लिए गुणों की अनिवार्य जरुरत है। गुणों के बिना आत्मसाधना या आत्मशुद्धि असंवभव है। इसलिए शास्त्रकारोने बताया है कि - आत्मसाधना के लिए गुण साधना को प्राथमिकता देनी चाहिए और गुणों की उपासनासे ही प्रमोद भावना विकसित होती है।

पर निंदा और स्वप्रशंसा करने से - गुणों को आच्छादित करने से या तो बुरे गुणों को प्रगट करने से नीचे गोत्र कर्म बांधा जाता है। [२०१] इस तरह का कर्म बंधन आस्त्रव की प्रवृत्ति है। स्वप्रशंसा और परनिंदा करने से जीव नीच गोत्रमें या तो नीच कूल में, जाति में जन्म लेता है और फिर से पाप कर्मों के बंधनमें प्रवृत्तिमय बन जाता है। इस तरह जीव की पाप प्रवृत्ति का चक्कर चलता रहता है। [२०२]

स्व-पर की निंदा प्रशंसा की चौभंगी -

१)	पर - निंदा	नीचे गोत्र कर्म बंधता है।
	पर - प्रशंसा	उच्च गोत्र कर्म बंधता है।
	स्व - निंदा	उच्च गोत्र कर्म बंधता है।
	स्व - प्रशंसा	नीच गोत्र कर्म बंधता है।
२)	स्व - गुण - प्रशंसा	नीच गोत्र कर्म बंधता है।
	स्व - गुण - निंदा	उच्च गोत्र कर्म बंधता है।
	स्व - गुण - प्रशंसा	नीच गोत्र कर्म बंधता है।
	पर - गुण - प्रशंसा	उच्च गोत्र कर्म बंधता है।
३)	स्व दोष - दुर्गुण - प्रशंसा	नीच गोत्र कर्म बंधता है।
	स्व दोष - दुर्गुण निंदा	उच्च गोत्र कर्म बंधता है।
	पर - दोष -दुर्गुण निंदा	नीच गोत्र कर्म बंधता है।
	पर - दोष - दुर्गुण प्रशंसा	उच्च गोत्र कर्म बंधता है।

दूसरों के गुणों की प्रशांसा करने से, स्वनिंदा करने से, अच्छे गुणों को प्रगट करने से, दुर्गुणों को ढ़ंक देनेसे - गुणानुरागी दृष्टि रखने से नम्रता, सरलता, विनय आदि गुण रखने से एवं देव, गुरु धर्म की भक्ति करने से, पठन और पाठन की शुभ प्रवृत्ति करने से, आठ मद से

रहित, वृन्ति और प्रवृत्तिसे आत्मा उच्च गोत्र कर्म बांधता है और इससे जो विपरीत प्रवृत्तियाँ करता है वह आत्मा नीच गोत्र कर्म बांधता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्रमोद भावना जीवको परम उपकारक है। प्रमोद भावना से जीव का महान कल्याण होता है और भवकट्टी में महान सहायता मिलती है।

गुणानुमोदना किसकी करनी चाहिये ? गुणोपासक साधक गुणग्राही दृष्टिसे गुणों की खोजमें लीन रहता है। जहाँ से भी गुणप्राप्त होवे वहाँ से गुणों का स्वीकार करने के लिए वह पुरुषार्थ करता है। लेकिन इतना उनके मनमें स्पष्ट होना चाहिए कि विश्व के सभी लोकोत्तर और लौकिक गुण धारण करनेवाले गुणी जन के पास ही गुण प्राप्त हो सकता है। इसलिए गुण प्राप्ति के लिए पंचपरमेष्ठि भगवंतो, गणधर भगवंतो, पंचाचार के साधक आचार्य भगवंतो, सूत्रार्थ के वाचनदाता, उपाध्याय भगवंतो, एवं प्रवचन प्रभावक गुरु भगवंतो, कल्याणकारक महाव्रतधारी साधु-साध्वी भगवंतो देशविरति धारक, १२ अणुव्रत के पालनहार श्रावक-श्राविकायें और मार्गानुसारी के ३५ गुण के धारकों के गुणों की भी अनुमोदना करना उपकारक हो सकता है। स्वर्गीय देव और मनुष्य जो गुणों के धारक है, उनके गुणों का संकिर्तन भी प्रमोद भावना की वृद्धि के लिए उपकारक सिद्ध हो सकता है।

मालिक के प्रति पूरी निष्ठासे कार्य करनेवाला कुत्ता, दूध देनेवाली गाय, मानव के भिन्न- भन्न प्रकार के कार्य में सहाय करनेवाला हाथी, अश्व, उंट और अन्य पशुपक्षी के गुणोंका स्वीकार करना भी गुणानुरागीका कर्तव्य बन जाता है। चेतनमेंसे नहीं, जड़में से अजीवमें से भी गुण को ग्रहण करना उपयुक्त हो सकता है। श्री नवकारमंत्र का स्मरण याने प्रमोद भावना की उपासना करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है। नवकार मंत्र चौदह पूर्वोंका सार है। अर्थात् प्रमोद भावना चौदह पूर्व ज्ञान का सार हैं। जैसा नवकार मंत्र सभी शास्त्र में व्याप्त है वैसे प्रमोद भावना सभी शास्त्रोंमें व्याप्त है।

जिस प्रकार नवकार मंत्र पापनाशक है सभी मंगलोमें प्रथम मंगल है वैसे प्रमोदभावना भी सर्व पापनाशक और सर्व मंगलोमें प्रथम मंगल हैं।

श्रीकृष्ण की गुण ग्राहिता -

यादव मित्रों के साथ श्रीकृष्ण रास्ते से जा रहे थे। इस समय सभी मित्रोंने मरी हुई कुत्तीको वहाँ देखा। मरी हुई कुत्तीकी दुर्गंध से परेशान होकर यादव मित्र दूर भागने लगे। इसी समय श्रीकृष्णने कहा कि इस मृतक कुत्तीके दंत पंक्ति की श्वेतता और उज्ज्वलता प्रभावित करती है

। दुर्गंधसे मुझे कोई परेशानी नहीं हुई है। इस तरह श्रीकृष्ण की गुणग्राहिता का वर्णन शास्त्रकारोंने अच्छी तरह से किया है और हमें दर्शाया है कि - गुण प्राप्ति कहीं से भी हो सकती है।[२०३]

शास्त्रकारोंने यह दर्शाया है कि - यदि किसी में से गुण का स्वीकार करनाहो तो व्यापक एवं उदार दृष्टि से गुण का स्वीकार करना चाहिए क्योंकि गुण ही सर्वत्र पूज्य है, नहीं कि- लिंग या वय !

"गुणाः पूजास्थानं गुणीषु, नच लिंग, नच वयः ।"

छोटे बच्चेमें भी यदि गुण हो तो उसका स्वीकार करना गुणानुरागी का कर्तव्य बन जाता है। क्योंकि गुण और गुणी अभिन्न होने से गुणी पर राग रखना वह गुण पर राग रखने के समान हो जाता है।

प्रमोद भावना गुण और गुणी दोनों की ओर आनंद प्रगट करता है। किसी के गुण को देखकर गुणानुरागी साधक आनंद विभोर हो जाता है। उसके मन की शांति का विकास होता है। इतना ही नहीं प्रमोद भावना से युक्त जीव में सहनशीलता - सहष्णिुता इतनी विकसित होती है कि वह - विश्वबंधुत्व या विश्वमैत्री में परिणत हो जाती है। इस भावना से विशालता, निर्मलता, सरलता, प्रेम - मैत्री का विकास होता है।

जैन दर्शन में आत्मा के विकास के लिए १४ गुणस्थानक वर्णित किये है। साधक आत्मा क्रमशः एक एक सोपान चढ़कर चौंदवें सोपान तक पहुँच सकता है और कर्म जन्य कषायादि पापों को क्षय करके उत्तम आत्म गुणों का प्रगटीकरण कर सकता है। [२०४] वीतरागता, सर्वज्ञता और आत्मसिद्धि प्राप्त कर सकता है। इन चौदह गुणस्थानों में गुणोंका ही महत्त्व है। क्रमशः गुणों के विकास की अपेक्षा है और दोषों के नाश से ही आत्मा परमात्मा बन सकता है। [२०५] प्रमोद भावना का प्रारंभ व्यक्ति से होता है, बहिर्रात्मा से होता है और उन्नति के पथ पर आगे बढ़कर परमात्म पद की प्राप्ति भी करा सकता है। ऐसी महान प्रमोद भावना जीव मात्र में प्रगट हो यही मंगल कामना।

सर्व दुःखी विनाशिनी करुणा भावना :

आचार्य हेमचंद्राचार्य योगशास्त्र ग्रंथमें लिखते है कि - इस जगतमें जो जीव दीनदुःखी है, आर्त और पीड़ा ग्रस्त है, मृत्यु के भय से भयभीत है और जीने की इच्छा रखते है, और जीने की याचना करते हैं, ऐसे भयग्रस्त जीवोंके दुःखों को दूर करने की भावना को करुणा भावना कहा गया है।[२०६]

संक्षेप में किसी भी प्रकार के प्राणी के दुःखमें उसके दुःखको दूर करने का उपाय करना, या तो इच्छापूर्वक प्रवृत्ति करने की उपकार बुद्धि को करुणा कहा गया है। इस व्याख्या को हम दूसरी तरह से दर्शा सकते हैं। पीड़ित प्राणी की व्याधी को दूर करने की इच्छा यही करुणा है और व्याधि में, रोग, सुख का नाश, धन की हानि धर्म-हीनता आदि का समावेश किया गया है।

यह संसार सुख, दुःख से भरा है। यदि पूछा जाए कि संसार कैसा है ? तो ज्ञानियेोने प्रत्युत्तरमें दर्शाया है कि संसार सागर जैसा है, जिसमें सुख कम और दुःख ज्यादा है और इसमें सुख क्षणिक है।

वास्तवमें सुख है ही नहीं सुखाभास है। संसार के किसी भी सुख में दुःख समाया हुआ ही है। इसलिए ज्ञानियों ने दर्शाया है कि इस संसारमें जो व्यक्ति संसार के सुखों को छोड़ने की प्रवृत्ति करेगा वही तिरेगा - बचेगा।

वीतराग के शासन में प्रत्येक साधक का लक्ष्य यह होना चाहिये कि - सुखों का त्याग करना है और सुखों के त्याग सेही उनकी तृष्णाका अंत आ जाएगा। इच्छा आकाश की तरह अनंत है। इच्छा की पूर्ति कभी भी नहीं हो सकती। इच्छा या तृष्णा ही मानवी को भव भ्रमण करती हैं।[२०७]

परदुःख विनशिनी करुणा :

करुणा भावना का स्वरुप दर्शाते हुए महापुरुषोने उसे दुःख विनाशिनी भावना कही है। क्रूरता, निर्दयता, निष्ठुरता, घातकी वृत्ति आदि करुणा भावना के शत्रु है। ये सब करुणा भावना भाने नहीं देते है। इसलिए हमारा पुरुषार्थ यह होना चाहिए कि इन सब को किसी भी तरह हम दूर कर दें और हमारे हृदय में करुणारुपी आत्मगुण का उत्तरोत्तर विकास करें। सतत् करुणा भावना में भीगे रहने से हमारा जीव मात्रके प्रति समभाव रहता है। जीवमात्र की और तुल्यभाव जगानेवाली करुणा भावना है।

करुणा भावना का उपदेश मंत्र है - किसी भी जीव की हिंसा न करना - "मा हिंस्यात् सर्वभूतानि।" करुणा भावना यह अहिंसक दयाप्रेमी आत्माका आंतरिक स्रोत है। यह स्रोत कभी भी सूखना नहीं चाहिए। इसलिए निरंतर दया और दया धर्म का पालन करना चाहिए। जैसी मेरी आत्मा है वैसी सब की आत्मा है। मैंरे जैसे ही दूसरे की आत्मा है। इसतरह की व्यापक दृष्टि दया दृष्टि की करुणा भावना को जागृती करती है।

संसार के जीवमात्र सुख की इच्छा रखते है। कोई भी दु:ख की इच्छा नहीं रखता है। सभी जीव जीने की इच्छा रखते हैं, मरने की नहीं। मरना किसी को पसंद नहीं हैं क्योंकि, मरने में बहुत दु:ख है और जीनेमें जीवने सुखों की कल्पना की है। अत: किसी भी प्राणी की हत्या नहीं करनी चाहिए। [२०८]

दया और करुणा दोनों एक नहीं है। करुणा वह कारण है और दया कार्य है। जहाँ-जहाँ दया होती है, वहाँ-वहाँ करुणा अवश्य होती है मगर करुणा होते हुए भी कभीकभी दया नहीं भी होती है इसलिए दया और करुणा के बीच कार्य कारण का संबंध है। जन्यजनक भाव है। यदि मानवी के जीवन में दया और करुणा ये दोनों का संगम हो जाए तो मानव एक दिन महामानव बन सकेगा। करुणा भावना जीव मात्र की ओर दया वृत्तिको जागृत करती है और सभी जीवों के प्रति समभाव व्यक्त करती है।

दु:खी लोगों को देख दु:खी होना, उसकी दु:ख से मुक्ति होना ऐसा विचार करुणा भावना है। [२०९]

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान

तुलसी दया न छोडीये , जब लगैं घटमें प्राण।

"दया धर्म का मूल है" - धर्म की नींव है। दया के बिना धर्म का अस्तित्व हो ही नहीं सकता। [२१०] धर्मी मनुष्य दयालु होना चाहिए और करुणा सभर भी होना चाहिए। जैन दर्शन में करुणा भावना की बहुत ही प्रशंसा की गई है और दया और करुणा से इतिहास के पृष्ठोंपर बावीसवें तीर्थंकर यदुकूल भूषण नेमिनाथ तीर्थंकर पद की प्राप्ति के पूर्व जब संसारी थे तब बारात लेकर शादी के लिए जा रहे थे। स्वसूर के महलके पास बारात पहुँचती है और उन्हें अनेक पशुओं की दु:खपूर्ण आवाज सुनाई देती है। वे रथ चलाने वाले सारथी को पूछते हैं कि - पशुओं की दु:खपूर्ण आवाज क्यों आ रही है ? उत्तर में जब सारथी बतात है कि - बारातियों के स्वागत के लिए - भोजन के लिए पशुओं की कत्ल करके बारातियों को उसका भोजन परोसा जाएगा। यहु सुनकर वे सारथी को हुकुम करते है कि - पशुओं के बंधन को छोड़ दें, उनके बंद क्विवाड़ खोल दें और रथ को वापस घूमा दें। किसी को दु:ख पहुँचाकर या हिंसा करके शादी करने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं है। [२११] करुणा भाव का यह उदाहरण जैन जगत में ज्योति स्तंभ है।

गुजरात के राजवी महाराजा कुमारपाल आचार्य हेमचंद्राचार्य से प्रतिबोध लेकर आदर्श जैन बन गये थे। उन्होने पूरे गुजरात राज्य में अहिंसा के पालन के लिए आज्ञापत्र घोषित किया था, पशु या पक्षीकी हत्या लिए बहुत कड़ी सजा जाहिर की थी और जीवदया के

पालन के लिए अश्व और अन्य प्राणियों को पानी भी छान के और पूरी यतनासे पिलाया जाता था। इस तरह सभी जीवों की ओर एकसी करुणा - दया रखनी चाहिए।

दयालू बनने के लिए कोई भी मूल्य चुकाना नहीं पड़ता।
It does not cost be kind.'
Kind hearts are more then coronets [२१२]
दयालु हृदय राजा के राजमुकुट से भी मूल्यवान है।[२१३]

गणेशमुनिजी शास्त्रीने लिखा है -
"दया नदी के तीर पर, चलते सारे धर्म।
छिपा हुआ सत्कर्म में, दया धर्म का मर्म ॥"[२१४]
"जा घट दया न संचरे, ता घट जान मसाण ॥"[२१५]

द्रव्य और भाव करुणा भावना :

भावना का स्थान व्यक्ति की मन है अर्थात् मनोयोगमें भावना भानी चाहिए। मात्र भावना का आदर्श रखकर ही साधक का काम पूरा नहीं होता है। द्रव्य करुणा भावना ही रखनी चाहिए, अर्थात् दीन, दु:खी, अनाथ को यथा शक्ति कुछ न कुछ अवश्य देना चाहिये। दु:खियों के दु:ख दूर करने का यथासंभव प्रयत्न करना चाहिये। दु:खी को किसी न किसी प्रकार की साधन सामग्री देकर भी उसका दु:ख दूर किया जा सकता है। कभी - कभी तो हमारे शांत, मिठे बोल भी दु:खी को प्रसन्न कर देते हैं। किसी को कुछ देना, सहायता करना उसे द्रव्य करुणा भावना कहते हैं और किसी को शांति पहुँचाना, उसके दु:खको दूर करने का पुरुषार्थ करना यह भाव करुणा है। भावदया या भाव करुणा कोई भी कर सकते है - सवि जीव करूं शासन रसी ॥

ऐसी मंगल भावना हमें करनी चाहिए।इससे हमारी आत्मा को बहुत लाभ होगा, कर्म निर्जरा होगी, विचारोमें पवित्रता और निर्मलता आयेगी, क्रूरता और हिंसकता चली जाएगी।

करुणा सागर भगवान महावीर

दु:खीजन वत्सल, करुणासागर वीतराग परमात्मा भगवान महावीर स्वामीने संसारी अवस्था में एक साल तक दान देकर द्रव्य दया की। लाखों दीन दु:खियों के दु:ख दूर करके

संसार का त्याग किया - सर्वस्व का त्याग किया। प्रभु की करुणा का उत्तम उदाहरण तो दरिद्र याचक को देवदुष्य वस्त्र का दान करने में प्रगट होती है। भगवान की करुणा के अनेकों उदाहरण हमें मिलते हैं।

दीन- दुखी, आर्त और पीड़ित जीवों के प्रति करुणा भावना रखनी चाहिए। करुणासे हृदय कोमल होता है, मनोवृत्ति शांत होती है और अहिंसा की जननी करुणा है। शांतसुधा रसमें पूज्य विनय विजयजी महाराज फरमाते है कि - दु:खी, पिड़ित एवं त्रस्त जीव ही करुणाभाव का विषय है। करुणा सदा जीवाश्रयी है, जड़ाश्रयी नहीं हैं। करुणा सुख और दु:ख को केंद्रमें रखकर या तो निमित्त होकर आत्माशुद्धि एवं आत्मशांति करती है। स्व और पर उभय को करुणा भावना शांति प्रदान करने वाली यह भावना है।[२१६] कषायों को क्षय करनेवाली यह भावना है। क्रोधादि को दूर करके आत्माको नम्र और शांत बनाने वाली यह भावना है।

कषाय के परिणामों को जीव सहन करते हैं। ऐसे जीवों पर करुणा करना यह ज्ञानी गीतार्थ की करुणा है। सामान्य जन की करुणा और ज्ञानी की करुणामें जमीन आसमान का अंतर है। सामान्य मानवी की करुणा को द्रव्य करुणा कहते हैं और गीतार्थ की करुणा को भाव करुणा कहा जाता है। दु:ख से पीड़ित संसारी लोगों को संसार से तारनेवाली कल्याण भावना महान करुणा है। करुणाहृदयी ज्ञानी, आत्मा, कर्म से त्रस्त, संसारी जीवों को सच्चा सुख का पथ दिखा सकते हैं और अनंतधाममें निवास करने का उपाय भी बता सकते हैं।[२१७]

मैत्री और करुणा ये दोनों भावनाऐं एक दूसरे से बहुत निकट हैं हमें ऐसे भी उदाहरण मिलते है कि - किसी एक विषय में कभी-कभी इन दोनों भावनाओं का मिलन हो जाता है - सभी जीव सुख प्राप्त करें। इस वाक्य में मैत्री और करुणा - प्रेम और दया दोनों का मिलन हो गया है। मैत्रीभावना से प्रेम विश्व व्यापक हो जाता है। ईर्षा का भाव दूर होता है, करुणा भावना से जीवमात्र को आत्मवत् - अपने समान समझने की भावना होने से वैर और द्वेष दूर होता है और क्रोधादि कषयों का क्रमश: विगलन होता है।

संसार के दु:ख ग्रस्त और कर्म से त्रस्त जीवोंको दु:ख मुक्ति के उपाय दिखाने का कार्य करुणा भावना करती है। निराधार, अनाथ के लिए उनके दु:खनिवारण का प्रयत्न करना ही सच्ची करुणा भावना है। यदि संसार के दु:ख से पिड़ित संसारी लोगों के हृदय में प्रेम, दया और करुणा का भाव यदि जागृत न होवे तो हमें यह समझना चाहिए कि - हमारा हृदय हृदय नहीं है, पत्थर है। पत्थर दिलमें कभी करुणा का अविष्कार होता ही नहीं है। करुणा भावना शांत रससे भरी हुई है। इस भावना से अमृतरसपान का आनंद प्राप्त हो सकता है। द्वेष का सर्वथा नाश होता है। ऐसे अनुपम शांत रसका पान करके संसार के सभी जीव

करुणा भावना की ओर मंगल प्रस्थान करें, मांगलिक भावकों उनके हृदयमें विकास होवे और स्व और पर को शास्वत शांतिप्रदान करें, यही हमारी प्रार्थना होनी चाहिए और हमारा अंतिम लक्ष्य होना चाहिए।

माध्यस्थ भावना

चार परा भावनाओं में माध्यस्थ भावना अंतिम भावना है। इस भावना का संबंध मानवी की मनोवृत्ति के साथ है। मानस विद्या का जितना निकट परिचय हमें होगा इतना इस भावना का विकास हो सकेगा। इस भावना के बारे में आचार्य हेमचंद्राचार्यजी लिखते हैं - इस संसार में हिंसादि क्रूर कार्य करेवाले, दुष्टबुद्धिवाले अनेकों जीव हैं, देव, गुरु और धर्म की निंदा करनेवाले और स्वकी प्रशंसा करनेवाले जीवों के प्रति उपेक्षा दिखाने को माध्यस्थ भावना कहा गया है। [२१८]

इस संसारमें द्वैत भाव शास्वत है। मोक्ष शास्वत है तो संसार भी शास्वत है, जड़ और चेतन शास्वत है, पुण्य और पाप, सुख और दु:ख, धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य, हिंसा और अहिंसा राग और द्वेष, वैर और क्षमा, प्रेम और वैर आदि अनेक भावों इस संसार के शास्वत भाव है। ये सब भाव भूतकाल में भी थे, वर्तमान में भी है और भविष्यमें भी रहेंगे। समुद्र में जिस तरह एक ओर हिरे-मोती हैं तो दुसरी ओर कुड़े कचरे भी है। इसी तरह संसार में भी अच्छे और बूरे का चक्र निरंतर चलता रहता है। भगवान महावीर के समयमें भी हिंसक, क्रूर मानव थे और आज भी है।

इस संसार में धर्मी आत्माओं की संख्या कम है और अधर्मी ज्यादा है। पुण्य करनेवाले पुण्यशाली कम है और इसकी तुलनामें पाप करनेवालों की संख्या अधिक है। सज्जनों की संख्या कम है और दुर्जनों की संख्या अधिक है। संसार की यह कितनी भयंकर करुणता है।

इस संसारमें यदि कोई जीव दु:ख से पीड़ित हो तो हमें यह समझना चाहिए कि इससे अवश्य पाप किये होंगे और कोई सुखी दिखता हो तो हमें यह समझना चाहिए कि उसने जरुर पुण्य किये होंगे।

संसार की करुण विचित्रता का वर्णन करते हुए आचार्य श्री हरिभद्र सुरिश्वरजी महाराज लिखते हैं कि - पुण्य का फल जो सुख होवे तो सभी प्राणि इसकी इच्छा करते है, लेकिन वे ही प्राणी धर्म या पुण्य करने के लिए तैयार नहीं है। दूसरी ओरपाप का फल दु:ख की कोई भी प्राणी इच्छा नहीं रखता है। किसी को दु:ख प्रिय नहीं है, मगर आश्चर्य की बात तो यह है कि - दु:ख के मूलभूत कारण पाप प्रवृत्ति का त्याग करने के लिए कोई तैयार नहीं

होता है। वे लोग यह जानते है कि - पाप करने से दु:ख की प्राप्ति होगी। फिर भी पाप प्रवृत्ति का त्याग करने के लिए वे तत्पर नहीं होते है।[२१९]

क्रोधादि चार कषाय, हास्यादि नौ नो कषाय, निंदा, असूया, कलह आदि अंतर विकारों में मशगूल रहनेवाला सामान्यजन के प्रति भी समभाव रखना यही उदासीनता या माध्यस्थभाव है जिनके हृदय विकारों से भरे हुए है और संसार कोई सर्वस्व मानकर पुण्य कार्यों से विमुख हो - धर्म के प्रति तिरस्कर का भाव रखता हो, ऐसे सामान्य जीवों के प्रति समभाव रखना माध्यस्थ भाव है।

उदासीनता

माध्यस्थ्य आगम का सार है। बहुत शास्त्र, ग्रंथों के लेखन वाचन का अंतिम पर्यावसान प्राप्त करने का स्थान औदासीन्य भाव में ही है। ज्ञानसार के रचयिता उपाध्याय यशोविजयजीने दयर्शाया है कि - 'उपसार है प्रवचने' अर्थात् शास्त्रग्रंथों के पठन, पाठन का अंतीम उद्देश्य उपशम प्राप्त करना ही है। उदासीनता इष्ट फल देनेवाला कल्पवृक्ष है। यह औदासीन्य महान तीर्थ के समान है, इसलिए औदासीन्य का तू सतत् स्मरण कर पाठ कर। इस प्रवृत्तिसे तुझे परम शांति प्राप्त होगी और इस भावना को उपेक्षा भावना के नाम से भी वर्णित किया गया है।

उपदेश सलाह तबतक दी जा सकती है, जब तक सुननेवालो या ग्रहण करनेवालो को प्रिय लगती हो और उपदेश ग्रहण करने की उसकी तत्परता हो, अन्यथा उपदेश का कोई मूल्य नहीं रहेगा। यदि उपदेश ग्रहण करनेवाला तत्पर न हो तो शांत रहना ही अच्छा है। नीतिकारोंने दर्शाया है कि - उचित प्रसंग पर कही हुई बात चाहे कटु क्यों न हो, तो भी वह मीठी लगती है और उसका स्वीकार भी हो सकता है।

यदि किसी जीवको हितोपदेश दिया जाए और उसे यह पसंद न हो, उसका वह स्वीकार भी न करें तो भी उस पर क्रोध करना अच्छा नहीं है। क्रोध करने से तेरी शांति चलीत हो जाएगी। तेरी साधना और समता में ओट आएगी। इसलिए ऐसी परिस्थितीमें माध्यस्थ भावना रखने की परम आवश्यकता है। [२२०]

"माध्यस्थ भाव विपरीतवृत्तौ" ज्ञानियों ने यह दर्शाया है कि - जो कोई विपरीत दुष्ट वृत्तिवाला हो, इसे धर्म नहीं पाप ही पसंद हो और उसके पाप छूडाने की आदत तो चाहे कितना भी उपदेश देकर या तो समझा-बुझाकर धर्ममार्ग में लाने का प्रयत्न करें तो भी वैसी व्यक्ति पाप प्रवृत्ति से विमुख नहीं होती है। चाहे कितना भी कहा जाए तो भी शुभप्रवृत्ति की ओर कार्य करना पसंद न करें, ऐसी विपरीत वृत्तिवाले जीव के प्रति उदासीनता रखना, राग या द्वेष का परिणाम न करना और हमारी शांतिमें विक्षेप हो ऐसा कुछ न करना हमारा कर्तव्य

बन जाता है, और यही तो माध्यस्थ भावना है। संक्षेप में कहा जाए तो अन्य के दोषों की उपेक्षा करना माध्यस्थ भावना है और उसका दूसरा नाम भी 'उदासीन भावना' है।

"मौनं सर्वार्थं साधनं। जीवकी किसी न किसी परिस्थितीमें साधक मौन ही रखता है। इसलिए मौन का सहारा लेना हितावह है और यही माध्यस्थ भावना है। भगवान ने कहीं पर भी ऐसा नहीं कहा है कि - चाहे क्लेश हो, झगड़े हो फिर भी पर को सुधारने की कोशिश करे। पापी या दुष्ट को सुधारने के लिए ताड़ने और मारने का उपदेश नहीं दिया है। ऐसा हो भी नहीं सकता। इसलिए ऐसी परिस्थितीमें मौन या उपेक्षा ही परम उपकारी सिद्ध हो सकता है।

माध्यस्थ भावना के अधिकारी इस संसार के सभी जीव हो सकते है। प्रत्येक के लिए वे बहुत उपयोगी है। मुख्यतया संसार से विरक्त, अध्यात्ममार्गी, आत्मकल्याणकारी, स्वहितैषी, परोपकारी, मोक्षमार्गी, प्रत्येक धर्मी आत्मा के लिए यह भावना परम उपकारी है। यह भावना स्व और पर दोनों का रक्षण करनेवाली है। इसलिए यह भावना कोई भी भा सकते है। इस भावना से आचरण से साधक का कर्मबंध होता नहीं है और पर को क्लेश एवं कषाय से बचाया जा सकता है। दोनों की भव परंपरा कटती है और शांति से वह जीवन यात्रा समाप्त कर सकता हैं। यह भावना भाने से साधक को समता प्राप्त हो सकेगी और वह प्रशमरसके सुख सागर में लीन हो सकेगा। इतना ही नहीं उसे परम सुख और शाश्वत शांतिका परमानंद भी प्राप्त हो सकेगा। मैत्री, प्रमोद, करुणा, माध्यस्थ ये चार भावनाएँ मानवजीवन को स्पर्श करती है। यह भावनामें जो भावित होता है वह जीव कर्म समूह को जला देता है। हर्ष शोक नहीं करता और ये भावना संसाररुपी समुद्र को पार करने के लिए नाव समान है। "ये भावना मोक्षेण योजना योग:"[२२१] योग आत्मा का संबंध मोक्ष के साथ जोड़ता है।

चारों योग भावनाओं का निष्कर्ष बताते हुए आचार्य सम्राट पू. आनंदऋषीजी महाराज लिखते हैं कि- जीवनमें इन योग भावनाओं का विकास मनुष्य को मनुष्यता के श्रेष्ठतम शिखर पर पहुँचा देता है। इन भावनाओं का प्रयोग न केवल आध्यात्मिक जीवन में ही होता है बल्कि व्यावहारिक जीवन में भी बहुत उपयोगी है। आज के जन जीवनमें द्वेष, इर्षा, संघर्ष और कलह का कारण इन भावनाओं का अभाव ही है। यदि हम मैत्री गुण ग्राहकता, करुणा और तटस्थता सीख लें तो - वर्तमान संसार की अधिकांश समस्याअें स्वत: ही सुलझ जाएगी। वर्तमान संसार की समस्याअें मानवीय हैं, मानवकृत है। मनुष्य के राग - द्वेष, अहंकार और स्वार्थ ने ही संसार में समस्याअें पैदा की है। यदि ये समस्याअें सुलझ जाए तो, इसे सुलझाने में इन योग भावनाओंका बहुत बड़ा योगदान प्रदान हो सकता है। इसलिए आध्यात्मिक प्राप्ति के साथ-साथ मानवीय शांति के लिए इन

भावनाओंपर चिंतन करना नितांत आवश्यक है।[२२२]

नमस्कार महामंत्र के प्रत्येक पदमें मानव कल्याण का परमहित दर्शाया गया है। ऐसा भी कहा गया है कि - प्रत्येक वर्ण में संसार के सभी लोगों का कल्याण करनेवाली सात्विक विद्याका परमतेजोमय उल्लेख मिलता है। प्रत्येक पद साधक को मैत्री, करुणा आदि चारों योग भावनाओं की ओर प्रगति कराने में सहायक बन सकते हैं। अरिहंत या सिद्ध को नमस्कार करने के साथ ही साधक के चित्तसे पाप और विकार गायब हो जाते हैं। वैर वृत्ति क्रमशः मंद हो जाती है और संसार के सभी जीवों की ओर स्नेहभाव और करुणा भाव का उदय होता है। सभी जीवों की ओर समभाव या समताभाव की वृद्धि होती है। आचार्य, उपाध्याय और साधुभगवंतों को नमस्कार करने से उनकी निश्रा में बैठकर धर्म श्रवण करने से, धर्म क्या है, अधर्म क्या है ? पाप क्या है, पुण्य क्या है ? इन सभी उत्तम धर्म विचार का ज्ञान होता है। साधक जागृत बन जाता है और दोषों को दूर करने की प्रवृत्ति करता है और क्रमशः गुण प्राप्त करके आत्मा के वास्तविक स्वरुपका परिचय भी कर सकता है। उत्तरोत्तर मलीन भावों का नाश होता है और पवित्र मांगल्यकारक और कल्याण कारकभावोंका उदय होता है - चारों योग भावनाओं का विकास सरलता से हो सकता है। और सर्वोत्तम मंगल की परम इच्छा तृप्त हो सकती है इसलिए नवकार मंत्र के विश्वमंत्र भी कहा गया है। भवनाशिनी भावनाओंका इस मंत्र में मंगल मिलन हुआ है। शास्त्रकारोने यह भी दर्शाया है कि - यदि कोई पूर्ण- श्रद्धा से, एक चित्त से नवकार मंत्र की आराधना करेगा, नामस्मरण या जाप करेगा तो भी इस साधक के भीतर में परमशांति और परम आनंद का आगमन होगा। सभी उत्तम भावनाओं का उत्कर्ष होगा और वह साधक रागद्वेष पर विजय पाकर परमशांति और पर समाधि प्राप्त कर सकेगा।

नमस्कार महामंत्र और नवतत्त्व

आज के वैज्ञानिक युग में बुद्धिजीवी मानव अपने को शक्ति संपन्न बनाने का सतत् प्रयास कर रहा है किंतु उसका मन आध्यात्मिक मूल्यों की रिक्तता के कारण अशांति से ग्रसित है। विज्ञान से शक्ति प्राप्त होती है लेकिन मन:शांति नष्ट हो जाती है। वैज्ञानिक आवश्यकता से मानव अवश्य ही शक्तिशाली बना है लेकिन वह अपना मानसिक, स्वास्थ्य खो बैठा है। जिन्होने धर्म को स्वीकार किया उन्हें शांति का लाभ तो हुआ लेकिन दूसरों की तुलना में शक्तिहीन सिद्ध हुए। कोई भी व्यक्ति या राष्ट्र शक्ति और शांति दोनों

को प्राप्त करना चाहता है, उसे विज्ञान और तत्वज्ञान दोनों को स्वीकारना होगा। शांति रहित शक्ति क्रुरता और संहार का रुप धारण कर लेती है।

धर्म के अभाव में मनुष्य विवेक शून्य हुआ और बाद में विवेक रहित ज्ञान से विनाशक शस्त्रों की खोज करके मानवीय संस्कृति और सारे संसार के लिए बहुत बड़ी समस्या का निर्माण किया है। विश्व मानव के कल्याण के लिए शांति पाने के लिए विज्ञान और तत्वज्ञान के समन्वय की अतीव आवश्यकता है। सामान्य ज्ञान से किसी व्यक्ति की जानकारी में वृद्धि अवश्य हो सकती है, पर विशेष आत्मज्ञान ही सब दु:खों से मुक्त होने के लिए उपयुक्त होगा। साधक को सब दु:खोंसे मुक्ति पाने के लिए नवतत्वों का वास्तविक ज्ञान अत्यंत आवश्यक है ।

संसारी जीव अनेक प्रकारकी शारीरिक तथा मानसिक पीड़ाऐं भोगता है और उससे मुक्त होने की इच्छा करता है। रोग वृद्धि किस प्रकार मिट सकती है? पुराने रोग किस प्रकार दूर हो सकते है इसका भी ज्ञान आवश्यक है। संसार के सुखदु:खों का कारण क्या है ? इन सब प्रश्नों के उत्तर नवतत्वों में मिल सकते है। नवतत्वों का ज्ञान आत्मिक उन्नति का विज्ञान है। जो कोई आत्मिक आनंद के शोधक है और शांति के उपासक है उन्हें नवतत्वों का रहस्य जानकर चिंतन- मनन करना चाहिए। नवतत्वों में सर्वप्रथम तत्व जीवतत्व है और अंतिम तत्व मोक्षतत्व है। जीव को मोक्ष कैसे प्राप्त होगा इसका मार्ग नवतत्वों में दिखाया गया है।

नवतत्त्व निम्नलिखित है। १) जीव २) अजीव ३) पुण्य ४) पाप ५) आश्रव ६) संवर ७) निर्जरा ८) बंध और ९) मोक्ष [२२३]

१) **जीवतत्व -** जिसमें चैतन्य जानने की और देखने की शक्ति है, निज गुणों का ज्ञाता, भोगता है। शुभाशुभ कर्मों का कर्ता और भोगता है उसे जीव कहते हैं।[२२४]

२) **अजीवतत्व -** जीव के विरुद्ध लक्षणवाला अजीवतत्व है। जीव चेतन है, तो अजीव अचेतन है।

३) **पुण्यतत्व -** उत्तम अर्थात् शुभ फल प्राप्त करानेवाला कर्म पुण्य है। इस कर्म के उदय संचय से सुखका अनुभव होता है।

४) **पापतत्व -** पुण्यकर्म के विरुध्द अर्थात् अशुभ कर्मोके फल प्राप्त करानेवाला और जिनके उदय से दु:ख हो रहा है यह पापतत्व है।

५) **आश्रव तत्व :** जिसके योग से कर्म जीव की ओर आते हैं अर्थात्, शुभाशुभ कर्म के उपादान से हिंसा आदि में वृद्धि होती है वही आश्रव तत्व है। आश्रव के कारण ही संसार है।

६) **संवरतत्त्व -** आश्रव का निरोध करनेवाले तत्व को संवरतत्व कहते है। संवर मोक्षमार्ग की ओर प्रस्थान करने का प्रथम चरण है।

७) **निर्जरा तत्त्व** - जीव के साथ पूर्वबद्ध कर्मों को क्षय करना अथवा अंशत: क्षय करना निर्जरा है।

८) **बंधतत्त्व -** जीव कषाय युक्त होकर कर्म रुपमें परिणत होने के योग्य पुद्‌गल द्रव्य को ग्रहण करता है यही बंध है अथवा कर्म योग्य पुद्‌गलों का और जीव का अग्नि और लोह पीडं के समान परस्पर अनुस्युत (एकत्र) होना बंध है।

९) **मोक्षतत्त्व :** आत्मप्रदेश से सभी प्रकार के कर्मों का सर्वथा क्षय होना मोक्षत्तत्व है। 'कृस्न कर्म क्षयो मोक्ष: ।'[२२५]

जैन दर्शन में एक से आठ तत्वों का अनेक भेदों के साथ विस्तार से वर्णन किया गया है। लेकिन इसकी विस्तृत चर्चा यहाँ पर प्रस्तुत नहीं है।

नमस्कार महामंत्र - जिसमें पंचपरमेष्ठिको नमस्कार किया गया है, सभी प्रकार के पापों को नष्ट करनेवाला है। पापी से पापी व्यक्ति भी इस मंत्र के स्मरण से पवित्र हो जाता है तथा उसके सभी प्रकार के पाप इस महामंत्र के स्मरणमात्र सेही नष्ट हो जाते हैं।[२२६]

मंगल वस्तुओंमें सबसे उत्कृष्ट मंगल नवकार मंत्र है। नवकार मंत्र के जपसे अनेक प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती है और पुण्य की वृद्धि होती है। कहा जाता है कि - जन्म, मरण, भय, पराभव, क्लेश, दु:ख, दरिद्र आदि इस महामंत्र के जापसे क्षण भरमें भस्म हो जाते हैं।[२२७]

जैन दर्शन में जो नवतत्त्व स्वीकार किये गये हैं, वे दर्शनपक्ष और आचार पक्ष दोनों के ही पूरक है। अस्तित्व की दृष्टि से जीव और अजीव दो तत्व स्वीकार किये गये हैं, अर्थात् संसार में जीवात्मक और अजीवात्मक दो प्रकार के अस्तित्व हैं।[२२८] नमस्कार महामंत्र सबसे पहले जीव तत्वः का बोध प्रदान करता है क्योंकि अरिहंत से साधु तक पाँचों पद जीवात्मक हैं।

जीवको जब जाना जाता है तो उसके विपरीत तत्वका बोध भी हो जाता है। जैसे प्रकाश को जब जाना जाता है तब अंधकार की प्रतीती भी हो जाती है। अंधकार के बिना प्रकाश के उद्‌भव का बोध नहीं हो पाता है। जैसे हम जीव को जान लेते हैं, वैसे ही तुरंत हमें अजीव का भी बोध हो जाता है और हमारी चिंतन धारा जीव का लक्ष्य क्या होना चाहिये इस विषय में हम पूरी सावधानी से कार्य करने लगते हैं।

जीव के बद्ध और मुक्त मुख्य दो प्रकार है। मुक्तजीव चिन्मय, आनंदमय, शक्तिमय,

या शास्वत सुखमय अवस्थामें विद्यमान है। बद्ध जीव उस उन्नत पद को पाना चाहते हैं। जो मुक्तत्व से संबंध्द है अर्थात् जो मोक्ष तत्व का बोध कराता है। बद्ध जीव मुक्तावस्था पाने की दिशामें गतिशील और उद्यमशील होते हैं। तब उन्हें दो मार्ग अपनाने होते हैं। पहला अवरोध का और दूसरा नाश का। कर्मों का प्रवाह सर्वथा अवरोध करता है। इसके लिए उन्हें संवर तत्व को अपनाना होता है। संचित कर्म उच्छिन्न हो जाए इसके लिए निर्जरा का आश्रय लेना होता है।[२२९] इन दोनों मार्गों का अवलंबन लेकर जीव परिश्रम और जागृति से उन पर अग्रेसर होने से ही मोक्ष की सिद्धि प्राप्त कर सकता है।[२३०]

मोक्ष का ज्ञान और मोक्ष की सिद्धि बद्ध जीवों को बंधतत्व का भी परिचय करवाते हैं। संसारी जीव सुखात्मक एवं दुःखात्मक स्थितियोंसे गुजरते हैं और उन्हें मालूम होता है कि - पुण्यतत्व क्या है ? पापतत्व क्या है ? जिन जिन आत्माओं के साथ जो पुण्यकर्म बंधे हुए है वे उदय में आकर सुखप्रद होते हैं और जो पाप कर्म बंधे हुए हैं वे उदित होकर दुःखप्रद सिद्ध होते हैं। इसी तरह पाप पुण्य का स्रोत आश्रवतत्व है।

आचार्य की सन्निधि से अथवा आचार्य पद के जप से जब साधक आचार, व्रत आराधना तथा संयम की दिशामें प्रगतिशील होता है तो संवर और निर्जरामूलक अध्यवसाय में प्रवृत्त होता है। आचार्य और उपाध्याय का संसर्ग या जप साधक को ज्ञान की दिशामें अग्रसर होने की प्रेरणा देता है, इससे इसको हेय और उपादेय तत्वका बोध होता है। वह पुण्य, को पाप जानते हुए भी पुण्य को अपनाता है। पाप को छोड़ता है आश्रव का निरोध करता है और बंध मिट जाते हैं।

पंच महाव्रत धारी साधुओं के सत्संग से, साधुपद के जप से मुमुक्षु को साधना पथ की ओर आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है। स्वाध्याय, जप, तप, ध्यान, प्रत्याख्यान आदि द्वारा अपनी साधना को उत्तरोत्तर निर्मल, उज्ज्वल बनाने की अनवरत प्रेरणा प्राप्त करता है और अंत में सिद्धपद प्राप्त करने की विशुद्धि मिल सकती है।[२३१]

नवकार मंत्र की इस चर्चा से हमें यह ज्ञात होता है कि - नवकार मंत्र के पाँचों पदों में इतनी महान शक्तियाँ विद्यमान है। शास्त्रकारोंने तो बड़े आदर से बताया है कि - नवकार मंत्र के प्रत्येक वर्ण में बहुतसी विद्याएँ समन्वित है और इससे बढ़कर कल्याणकारी मंत्र विश्वमें शायद ही और कोई मिल सके। नवकार मंत्र और नवतत्व दोनों का मिलन अत्यंत पवित्र और मांगलिक है। किसी भी साधक के लिए नवकार मंत्र परम उपकारी सिद्ध हो सकता है। नवतत्वों के ज्ञान से साधक साधना की दिशा में दृढ़ता से आगे बढ़ सकता है और पुद्गल की आसक्ति को छोड़कर आत्मा की शाश्वतता प्राप्त कर सकता है।

नयवाद से नवकार की सिद्धि

नवकार मंत्र की भिन्न- भिन्न दृष्टि से ज्ञानियोने आलोचना की है। इसका प्रधान उद्देश्य नवकार मंत्र की महिमा को व्यक्त करने का है। नवकार मंत्र जैन धर्म का ही नहीं सारे विश्व धर्म का उत्तम मंत्र बनने की सामर्थ्य रखता है। नवकार मंत्र के प्रत्येक वर्णमें आत्मा को गुण समृद्ध करने की - आत्मामें आवरण रुप से ढ़ँके हुए गुण को प्रकाशित करने की उत्तम शक्ति छिपी है। किसी भी अवस्थामें नवकार मंत्र का स्मरण मात्र साधक को परमशांति देनेवाला है। इसलिए नवकार मंत्र के बारे में जितना भी लिखा जाए उतना ही कम है। जैन परिभाषा के भिन्न भिन्न आलोचकों ने अलग - अलग दृष्टि बिंदुओंसे नवकार मंत्र का रहस्य समझाने की महत्त्व दिखाने की सराहनीय प्रवृत्ति की है।

नवकार मंत्र की नवतत्व के संदर्भ में समीक्षा हमने पूर्ण की है और अब नय की दृष्टि से नवकार मंत्र की महत्ता दर्शानेका मेरा नम्र प्रयास है। जैन दार्शनिकोंने दर्शाया है कि - अनंत धर्मात्मक होने के कारण वस्तु बड़ी जटील है। उसको जाना जा सकता है पर कहा नहीं जाता। उसे कहने के लिए वस्तु का विश्लेषण करके एक - एक धर्म द्वारा क्रमपूर्वक उसका निरुपण करने के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है। कौनसे धर्म को पहले और किसको बादमें कहा जाए यह भी कोई नियम नहीं है। यथा अवसर ज्ञानी वक्ता स्वयं किसी एक धर्म को मुख्य करके उसका कथन करता है। उस समय उसकी दृष्टि में अन्य धर्म गौण होते है पर निषिद्ध नहीं और अंतमें वस्तु के यथार्थ, अखंड, व्यापक रुप को समझने की सफलता प्राप्त होती है।[२३२]

नय की परिभाषा :

श्रोता को वस्तु के निकट ले जाने के कारण 'नयतिती नय' अर्थात् श्रोता या वाचक को पदार्थ की ज्ञान प्राप्ति के लिए, पदार्थ के निकट ले जाने को नय कहते है। अथवा वक्ता के अभिप्राय को या वस्तुके एकांश ग्राही ज्ञान को नय कहते है।[२३३]

अनेक धर्मात्मक वस्तुका उसके अन्यान्य धर्मों का निषेध किये बिना, उसके किसी एक धर्म की अपेक्षा से ज्ञान करना या कथन करना नय है और इस तरह कथन करनेवाले ज्ञान को नयज्ञान या नयवाद कहा जाता है।[२३४]

समीक्षा

नवकार मंत्र में नवतत्त्व इस प्रकार घटाये जाते हैं - अरिहंत और सिद्ध ये मोक्षतत्व सूचक है। आचार्य उपाध्याय और साधु ये संवर और निर्जरा तत्व सूचक है। आश्रव निरोध यह संवर है। बंध का प्रतिपक्षी निर्जरा है।

एसो पंच नमो नमोकारो यह पुण्यतत्व हैं। सव्व पाव पणासणो यह पापतत्व हैं। मंगलाणंच सव्वेसिं ये अजीव मिश्र क्षयोपशम भाव से जीव तत्व है। पढमं हवई मंगलम् यह शुद्ध जीव तत्वकी पहचान कराता है।[२३५]

इस प्रकार नवकार मंत्र में पुण्यतत्व का समावेश हुआ है।

एक वस्तुमें दो मूल धर्म है।- १) द्रव्य और २) पर्याय इस दृष्टिसे नय द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दो प्रकारके हैं। इन मूल दो नयों के अंतर्गत विस्तृत भेद सात बताया गया है और दूसरी दृष्टि से भेद की संख्या के बारेमें निश्चित रुप से कुछ बताना आसान नहीं है। दार्शनिकोंने नय की संख्या या भेद के बारे में इतनी सूक्ष्म आलोचना की है कि समग्र जैन दर्शन इस चर्चा से विश्व दर्शन में विशिष्ट स्थान प्रदान कर सका है। इसलिए ऐसा भी कहा गया है कि- जितने जानने के या कथन करने के प्रकार है वे सभी नयवाद केअंतर्गत आते हैं।

तत्वार्थाधिगम भाष्यमें नय की परिभाषा के बारे में लिखा है कि - जीवादि पदार्थों कों जो लाते हैं, प्राप्त कराते हैं, बनाते हैं अवभाष कराते हैं, उपलब्ध कराते हैं, प्रगट कराते हैं वे नय हैं। [२३६]

दो विरुद्ध धर्मवाले तत्वमें किसी एक धर्म का वाचक नय है।[२३७]

नय के प्रकार :

नय के मुख्य सात प्रकार निम्नलिखित हैं। १) नैगम २) संग्रह ३) व्यवहार ४) ऋजुसूत्र ५) शब्द नय ६) समभिरुढ़ ७) एवंभूत [२३८]

वस्तुद्रव्य, पर्याय धर्म युक्त है। वस्तु के त्रिकालवर्ती पर्याय अनंत होते हैं। एक समय में भी वस्तु अनेक पर्याय युक्त रहती है। इस प्रकार एक वस्तु के अपने द्वारा या अन्य द्वारा किये गये संबंधकृत, शब्दकृत तथा अर्थकृत पर्यायोंसे उसकी एक ही साथ अनेक धर्मात्मकता सिद्ध होती है और ऐसी अनेक धर्मात्मक वस्तुओं का किसी एक धर्म की अपेक्षासे कथन करना वचनात्मक नय हैं। उसको जानना ज्ञानात्मक नय हैं।[२३९]

द्रव्यार्थिक नय सामान्य को विशेष रुप में ग्रहण करता है और पर्यायार्थिक नय विशेष को सामान्य रुप में ग्रहण करता है। इसी कारण नयज्ञान के ये दो भेद हैं। पहले तीन या चार भेद द्रव्यार्थिक नय के हैं और अंतिम तीन या चार भेद पर्यायार्थिक नय के हैं। नय के सात भेद का संक्षेप में विवरण निम्नलिखित है -

१) **नैगम नय :** संकल्पमात्र को विषयरुपमें जो ग्रहण करता है वह नैगमनय कहा जाता है। निगम शब्द का अर्थ संकल्प भी है। इसलिए संकल्प को विषय रुप में स्वीकार

करनेवाला नय भी नैगमनय कहलाता है।[२४०]

२) **संग्रहनय :** अभेद रुप से समस्त वस्तुओं को संग्रह करके उसका कथन करना संग्रह नय हैं। एक शब्द द्वारा अनेक पदार्थों को ग्रहण करना संग्रहनय है।[२४१]

जैसे जीव शब्द को कहने से सब प्रकार के त्रस - स्थावर जीवों का ग्रहण हो जाता है।

३) **व्यवहार नय :** संग्रह नय द्वारा ग्रहण किये जानेवाले पदार्थों का जो योग्य रीतिसे विभाग करता है, उसे व्यवहार नय कहा जाता है।

४) **ऋृजु सूत्र नय :** ऋजु का अर्थ अवक्र है। वस्तु को अवक्रता से, सरलता से कहना ऋजु सूत्र नय है। नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र ये चार नय अर्थनय है और इसके पश्चातवर्ती तीन शब्दनय है। इस प्रकार ये सात नय ज्ञानात्मक और शब्दात्मक है।

५) **शब्दनय :** शब्दों में लिंग आदि के भेद के आधार पर जो अर्थ का भेद बताता है वह शब्द नय हैं।

६) **समाभिरुढ़नय :** जहाँ शब्द का भेद है वहाँ अर्थ का भेद अवश्य होता है। अर्थ की दृष्टि की भिन्नता को स्वीकार करनेवाला समभिरुढ़नय कहा जाता है ।

७) **एवंभूत नय :** जिस शब्द का अर्थ जिस क्रिया को प्रगट करता है उस क्रिया में तत्पर पदार्थ को या व्यक्ति को उस शब्द का वाच्य मानना एवंभूतनय है। प्रत्येक शब्द का अर्थ किसी न किसी क्रिया के साथ संबंध रखता है।[२४२]

जैन दर्शन विभिन्न दृष्टियोंसे और सभी अपेक्षाओं से सत् का विश्लेषण करता है। अनेकांतवाद जैन दर्शन की विश्व दर्शन को महान भेट है। नयवाद भी इसीका सूचक है। यह विज्ञान में कुशल पुरुष एक एक नय के अभिप्राय से वस्तु का यथार्थ स्वरुप भलिभाँति जान सकता है, अन्य दर्शनों की अयथार्थता का भी परिचय प्राप्त कर सकता है और दूसरे को स्थिर रखने में सहाय भी कर सकता है।[२४३]

सातों नयों की अपेक्षा से इस महामंत्र नवकार की उत्पत्ति और अनुत्पत्तिके संबंधमें विचार करते हुए कहा जाता है कि - द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा यह नवकार मंत्र नित्य है। नैगम नय की अपेक्षा से यह नमस्कार मंत्र नित्य है। विशेष पर्याय को ग्रहण करनेवाले नयों की अपेक्षा से यह मंत्र उत्पाद व्यय से युक्त है क्योंकि इस महामंत्र की उत्पत्ति के हेतु समुत्थान, वचन और लब्धि ये तीन है। नमस्कार मंत्र का स्मरण सशरीरी प्राणी करता है और शरीर की प्राप्ति अनादिकाल से बिजांकूर से होती आ रही है और प्रत्येक जन्म में भिन्न भिन्न शरीर होते हैं, अत: वर्तमान जन्मके शरीर की अपेक्षा नमस्कार मंत्र सादी है। इस मंत्र की प्राप्ति गुरु वचनों से होती है, अत: उत्पत्तिवाला होने से सादी है। इस महामंत्र की प्राप्ति

श्रुतज्ञानवरणीय कर्म का क्षयोपशम होने पर होती है, इस अपेक्षा से यह मंत्र उत्पाद - व्ययवाला प्रमाणित होता है ।[२४४]

नैगम संग्रह और व्यवहार नय की अपेक्षा यह मंत्र नित्य अनित्य दोनों प्रकार का है । ऋजु सूत्र नय की अपेक्षा इस महामंत्र की उत्पत्तिमें वचन, उपदेश और लब्धि कारण है । और शब्दादी नय की अपेक्षा से केवल लब्धि ही कारण है । शब्द और अर्थ की अपेक्षा से नमस्कार मंत्र नित्यानित्यात्मक है । शब्द नित्य और अनित्य दोनों प्रकार के होते हैं ।[२४५]

सप्त नयों के आधार पर नमस्कार मंत्र नित्य है । वह अनादि - अनुत्पन्न है किंतु विशेष ग्राही नय प्रक्रिया के अनुसार उसे उत्पन्न भी माना जाता है, क्योंकि साधक जब उच्चारण करता है तब उसका शाब्दिक रुप प्रगट होता है । उसके शाश्वत् रुपों को नयवाद के आधार पर प्रमाणित मानने से साधक की श्रद्धा, आस्था और विश्वास में दृढ़ता आती है जिससे वह आराधनामें विशेष उत्साह प्राप्त करता है और नवकार मंत्र के प्रति उसके पूज्यभाव में वृद्धि होती है। उसे शांति और मंगल का आनंद प्राप्त होता है ।

शुद्ध नयानुसार आत्मा का स्वरुप :

सामान्यत: नय के दो भेद माने जाते हैं - निश्चय नय और व्यवहार नय । निश्चय नय - शुद्ध नय कहलाता है । क्योंकि वह एकांतत: आत्मा के शुद्धस्वरुप के साथ संबद्ध है । आत्मा ही परम सत्य या शुद्ध तत्व है । आचार्य कुंदकुंद ने समयसार में शुद्धनय के अनुसार आत्मा का जो वर्णन किया है, वह उसे शुद्धोपयोग की भूमिका में ले जाता है ।

उन्होने लिखा है : "जो जीव चारित्र, दर्शन और ज्ञान में स्थित है, निश्चय-दृष्टि से उसे स्व-समय- आत्मस्वरुपमय है , ऐसा समझे ।" जो जीव पुद्‌गल कर्मों के प्रदेशों में स्थित हैं उसे पर समय जानो । स्व - समय का अर्थ आत्मा का शुद्ध स्वरुप है । पर- समय का अर्थ उसकी विभावावस्था है । दर्शन, ज्ञान एवं चरित्र जीव का स्वभाव है । कर्म - पुद्‌गलों से बद्ध अवस्था पर भाव है । जब तक आत्मा पर - भाव में विद्यमान रहती है, तक तक वह संसारावस्था में, सुख-दु:ख में अवस्थित होती है ।

निश्चयनयानुरुप सिद्धान्त के अनुसार आत्मालोक में सुंदर या उत्तम हैं । वहाँ दूसरे के साथ बंधन का प्रसंग नहीं बनता । अर्थात् शुद्ध स्वरुप स्थित आत्मा के साथ कर्मों का बंध नहीं होता । [२४६]

शुद्ध आत्मा का चिंतन इस प्रकार अग्रसर होता है - मैं शुद्ध हूँ, दर्शन - ज्ञानमय हूँ, सदा अरुपी हूँ, कोई भी अन्य पदार्थ परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है।[२४७]

जीव शब्द, रुप, रस, गंध, स्पर्श से रहित है, अव्यक्त है - इंद्रिय गोचर नहीं है, उसका गुण चेतना है। वह निर्दिष्ट लिंग, चिह्न, संस्थान या आकार से परे है।

ज्ञानी पुरुष विचार करता है - निश्चय दृष्टि से मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममत्वरहित हूँ, ज्ञान - दर्शन से पूर्ण हूँ, अपने स्वभाव में स्थित होता हुआ, चैतन्य अनुभाव में लीन होता हुआ, क्रोध आदि सभी आस्रवों का - कर्म प्रवाहों का मैं नाश करता हूँ।[२४८]

जीव-अजीव पदार्थों का श्रद्धान सम्यक्त्व है, उनका अधिगम ज्ञान है। रागादि का परिहरण या त्याग चारित्र है । वही मोक्ष का मार्ग है।[२४९]

जिस जीव में, लेशमात्र भी राग आदि विद्यमान है, वह जीव समस्त आगमों का ज्ञान रखता हुआ भी आत्मा को नहीं जानता अर्थात् आत्मा के शुद्ध स्वरुप का उसको बोध नहीं है। जो आत्मा को नहीं जानता, वह अनात्मा को भी नहीं जानता। आत्मा के अतिरिक्त अजीव पदार्थ को नहीं जानता। उनके स्वरुप का उसको यथार्थ बोध नहीं होता, वह सम्यक् दृष्टि कैसे हो सकता है।[२५०]

अनुचिंतन :

निश्चय दृष्टि से जब चिंतन किया जाता है, तब आत्मा ही वह परम तत्व है, जो ध्येय उपास्य और आराध्य है। 'ध्यातुं योग्यं ध्येयं' - के अनुसार ध्येय का अर्थ ध्यान करने योग्य या ध्यान का विषय है। "उपासितुं योग्यं उपास्यम् " जो उपासना करने के योग्य होता है, उसे उपास्य कहा जाता है। उपासना का अभिधेय अर्थ - समीप बैठना है। उसका लक्ष्यार्थ भावात्मक दृष्टि से गुरु का अथवा पूज्य का सामीप्य प्राप्त करना है, उनके मार्गदर्शन से ध्येय के शुद्ध स्वरुप के समीप पहुँचना है, उसे अपनी अनुभूति में ढ़ालना है। आराधितुं योग्य आराध्यम् - जो आराधना करने योग्य है, उसे आराध्य कहा जाता है - आराधना का सूक्ष्म अर्थध्येय, उपास्य या आराध्य के स्वरुप की अपने में अवतारणा करना है।

आत्मा ही ध्येय, ध्याता और ध्यान है। तीनों का उसी में समावेश होता है। उसी प्रकार वही उपास्य, उपासक और उपासना है। वही आराध्य, आराधक और आराधना है। यह शुद्ध नयमूलक दृष्टिकोण है, जो शुद्धोपयोग से सिद्ध होता है। णमोक्कार मंत्र साधक को शुद्धोपयोग की भूमिका में अवस्थित होने की प्रेरणा प्रदान करता है।

अष्टांग योग : नवकार महामंत्र परिशीलन

आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में योग का अत्यंत महत्त्व है। योग चित्तवृत्तियों के निरोध का पथदर्शन करता है।[२५१] यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि - योग के ये आठ अंग है।[२५२]

इनके अभ्यास और साधन द्वारा साधक अपने चित्त की वृत्तियों को निरुद्ध करता हुआ समाधि-अवस्था प्राप्त करता है।[२५३] योग - साधना का यह एक ऐसा वैज्ञानिक मार्ग है, जिससे अनुप्रणित होकर विभिन्न परंपराओं में साधना पद्धतियों का विकास हुआ।

अष्टांग योग के संदर्भ में णमोक्कार मंत्र का गंभीरता से परिशीलन करने पर यह सिद्ध होता है कि इसके द्वारा जीवन का समाधिमय महान साध्य सहजरुप में स्वायत्त हो जाता है।

१) यम

योग का प्रारंभ यम के साथ हो जाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह योग में ये पाँच यम स्वीकार किये गए हैं। जब यमों का जाति, देश, काल, समय के अपवाद, विकल्प या छूट के बिना पालन किया जाता है। तब वे व्रत कहलाते हैं।[२५४]

जाति का तात्पर्य गो आदि पशु अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि है। जब व्यक्ति इन जातियों की हिंसा आदि का विकल्प नहीं रखता, तब वह जाति निरपेक्ष यम महाव्रत का रुप ले लेता है उसी प्रकार जब हरिद्वार, मथुरा, काशी आदि स्थानों का विकल्प नहीं रखा जाता, तब वह यम देश विषयक अपवाद से रहित होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि एकादशी, चतुर्दशी आदि तिथियों का विकल्प स्वीकार नहीं किया जाता ,तब वह काल के अपवाद से रहित होता है।

यहाँ प्रयुक्त समय शब्द काल का सूचक नहीं है किंतु विशेष नियम या प्रयोजन - सिद्धि का सूचक है। अर्थात् जब साधक किसी भी विशेष प्रयोजन का अपवाद न रखता हुआ यम का पालन करता है, तब वह यम समय के अपवाद से रहित होता है। यमों का अपवाद रहित पालन महाव्रत कहा जाता है। योग - दर्शन में प्रयुक्त महाव्रत शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जैन धर्म में भी इसी शब्द का प्रयोग हुआ है।[२५५] वहाँ मन, वचन, काय इन तीनों योंगों तथा कृत, कारित, अनुमोदितै तीन करणोंद्वारा व्रत पालन का विधान है। अर्थात् महाव्रत स्वीकार करने वाले के लिये किसी भी प्रकार का अपवाद नहीं होता। वह समग्रतया इनका पालन करता है।

णमोक्कार मंत्र में पाँचवे पद में साधु है। साधु उन्हें कहा जाता है - जो निरपवाद रुप में महाव्रतों का पालन करते हैं। जब तक एक साधक ऐसी भूमिका अपनाने में अपने को सक्षम नहीं समझता, तब तक वह अपनी क्षमता के अनुरुप विभिन्न अपवादों के साथ विभिन्न व्रतों का पालन करता है - वे अणुव्रत कहलाते हैं। वे एक प्रकार से यमों का ही रुप लिये हुए हैं। अणुव्रती साधक के मन में सदा यह भावना बनी रहती है कि उसे कब वह सौभाग्य प्राप्त होगा, जब वह जीवन को महाव्रतमय आराधना के साथ जोड़ सकेगा। श्रमणोपासक या अणुव्रती साधक के जीवन में यह भावना रहती है -

'कयाणमहं मुंड़ा भविता पव्वइस्सामि' - मैं संयमी जीवन कब स्वीकार कर पाऊँगा, वैसा शुभ अवसर मुझे कब मिलेगा।

उत्कंठा, उत्साहशीलता एवं अभिरुचि जब तीव्र होती है, तब भावना नि:संदेह फलवती एवं सिद्ध होती है। एक समय आता है कि वह अपवादों को छोड़कर अणुव्रतों या यमों से महाव्रतों की दिशा में प्रयाण करता है। णमोक्कार मंत्र के पाँचवें पद का अधिकारी बन जाता है। जीवन एक नया मोड़ ले लेता है। साधक व्रत पालन में सावधान रहता हुआ, आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर अग्रसर रहता है।

२) नियम:

यम के बाद योग का दूसरा अंग नियम है। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, तथा परमात्मोपासना - ये पाँच नियम हैं।[२५६]

णमोक्कार के पंचम पद के अधिकारी साधु के जीवन के साथ यदि इन नियमों को जोड़ा जाएँ तो ये बड़े संगत प्रतीत होते हैं। शौच का अर्थ बाह्य और आंतरिक पवित्रता है। आंतरिक पवित्रता का बहुत बड़ा महत्त्व हैं। कहा है -

"आत्मा नदी संयम - पुण्य - तीर्था सत्योदकां शीलतटा दयोर्भि: तत्राभिषेकं कुरु शुद्ध बुद्धे, न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा।"

अर्थात् आत्मा नदी हैं। संयम पवित्र तीर्थ है। उस आत्मारुपी नदी में स्नान करो। मात्र जल से आंतरिक शुद्धि नहीं होती।

आंतरिक शुद्धि पर सभी धर्मो में बड़ा जोर दिया गया है। संतोष का जीवन में बहुत महत्त्व है। तप से आत्मा निर्मल होती है। स्वाध्याय से सद्ज्ञान प्राप्त होता है। जीवन में पवित्रता का संचार होता है तथा परमात्मोपासना से साधक परमात्म - भाव की ओर या आत्मा की शुद्धावस्था की दिशा में प्रगतिशील होता है। ये पाँचो नियम ऐसे हैं, जो प्रत्येक साधक के लिए कल्याणकारी हैं।

आसन -

योग का तीसरा अंग आसन है। पूर्व प्रसंग में आसन के विषय में विस्तार से विवेचन किया है। सामायिक, स्वाध्याय तथा ध्यान आदि की दृष्टि से समीचीन रूप में -

बैठने का बहुत महत्त्व है। पंच महाव्रती साधक महाव्रतों के अनुसार णमोक्कार मंत्र के साथ - साथ, कर्म-क्षय के हेतु - तपश्चरण के रुपों में अनेक प्रकार से प्रयत्नशील रहता है। जिसके लिये आसन शुद्धि आवश्यक है।

स्वामी सत्यानंद सरस्वती ने 'आसन - प्राणायाम - मुद्रा - बंध' नामक पुस्तक में ध्यान के लिए निम्नांकित आसनों को उपयोगी बतलाया है। १) पद्मासन २) सिद्धासन (पुरुषोंके लिए) ३) सिद्धयोनि, आसन (महिलाओं के लिए) ४) स्वस्तिकासन। नए अभ्यासियों के लिए ध्यान के सरल आसन हैं। १) सुखासन २) अर्धपद्मासन [२५७]

पुनश्च - आसन, काय - सिद्धि का एक अंग है। समता की प्राप्ति के लिए काय - सिद्धि और काय - सिद्धि के लिए आसन के प्रयोग किए जाते हैं।[२५८]

स्थान निर्विघ्न हो, एकांत हो, ऊन आदि का शुद्ध आसन हो। बैठने में सुखमय आसन का प्रयोग किया जाएँ। कठोर आसनों का प्रयोग न किया जाए, जिनसे देह को अत्याधिक कष्ट होता है। ऐसा होने से मन स्वाध्याय, ध्यान आदि से हटकर देह में चला जाता है।

प्राणायाम

जीवन के साथ प्राणवायु का बड़ा गहरा संबंध है। प्राणवायु पर चित्त को स्थिर कर विशेष रुप से ध्यान करने की कई पद्धतियाँ प्रचलित हैं। जिनमें विपश्यना, प्रेक्षा आदि नाम प्रचलित हैं। प्राणायाम का हठयोग में बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। श्वासोच्छवास की क्रिया को संतुलित रखने के लिए रेचक, पूरक और कुंभक का अभ्यास आवश्यक है।

जैन मनीषियों ने प्राणायाम का आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा सूक्ष्म और सुंदर विवेचन किया है। उनके अनुसार रेचक का अर्थ मन में व्याप्त अशुभ या पापमय भावों को बाहर निकालना है। पूरक का अभिप्राय - शुभ-भावों को अपने भीतर भरना है। कुंभक का अर्थ - शुभ भावों को अपने अंत:करण में टिकाए रखना है। बारंबार ऐसा अभ्यास करने से मन में स्थित पापपूर्ण भाव नष्ट होते हैं। पुण्यात्मक भाव संचित या संग्रहित होते हैं। उनको जब अंत:करण में स्थिर कर लिया जाता है, तब मानव धार्मिक अनुष्ठान में विशेष रुप से अभिरुचिशील बन जाता है। उसका जीवन आत्मोत्कर्ष की भूमिकापर क्रमश: अग्रसर होता

है। इस प्रकार यह भावात्मक प्राणायाम एक साधक के लिए, उसकी आध्यात्मिक यात्रा में स्फूर्तिप्रद सिद्ध होता है।

प्रत्याहार :

यह योग का पाँचवाँ अंग है। इसका तात्पर्य इन्द्रियों को बाह्य वृत्तियों की ओर से उनसे संबंद्ध विषयों से हटाकर मन में विलीन करने का अभ्यास हैं। इसे साध लेने से साधक का मन - योगाभ्यास से विचलित नहीं होता।

जैन आगमों में प्रत्याहार के स्थान पर प्रतिसंलीनता शब्द का प्रयोग हुआ है। वहाँ भी प्रतिसंलीनता का यही तात्पर्य है, उससे उनकी दिशा परिवर्तित हो जाती है। जैन - आगमों में निर्जरा या तपश्चरण के बारह भेदों में इसे छठे भेद के रुप में स्वीकार किया गया है।

प्रत्याहारतक के योगों का अभ्यास शरीर, श्वासोच्छवास तथा इन्द्रियों को नियंत्रित करने का वशीकृत करने का मार्ग है। इतना हो जाने पर साधक आंतरिक सूक्ष्म - साधना मार्ग पर समुद्यत होने की योग्यता प्राप्त करता है।

धारणा, ध्यान और समाधि :

चित्त को किसी एक देश में या स्थान में केन्द्रित करना, स्थिर करना धारणा है।[२५९] जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाए, जब चित्त उसमें एकाग्र हो जाए, केवल ध्येय मात्र की ही प्रवृत्ति का प्रवाह चलता रहें उसके बीच में कोई दूसरी वृत्ति न उठे उसे ध्यान कहा जाता है।[२६०]

ध्यान करते - करते जब चित्त ध्येय के आकार में परिणत हो जाए, चित्त के अपने स्वरूप का ममता, आसक्ति, वासना, स्पृहा, माया आदि साधना में योगाभ्यास में विघ्न करते हैं। इसलिये ये साधक के एक प्रकार से शत्रु हैं। अरिहंत - पद के ध्यान से साधक के ये शत्रु स्वत: नष्ट हो जाते हैं। [२६१]

अरिहंत प्रभु का ध्यान - योग में सालंबन - ध्यान कहा जाता है। सालंबन का अर्थ - आलंबन सहित है। इस ध्यान में अरिहंत देव ध्येय के रुप में आलंबन होते हैं।

सिद्धपद साधना की सफलता या सिद्धि का सूचक हैं। इस पद की आराधना और ध्यान से साधक में असीम आत्मबल का जागरण होता है। ऊर्जा प्रस्फुटित होती है। यदि वह उसको संभालकर साधना में, योगाभ्यास में निरत रहता है। यहाँ प्रतीक के रुप में किसी मूर्त आलंबन का सहारा नहीं लिया जाता।

सत् - चित् - आनंदमय, अमूर्त, अभौतिक, भाव ही यहाँ ध्यान का विषय होता है।

यह ध्यान की उच्च स्थिति है। जैन परिभाषा में वहाँ शुक्ल - ध्यान अधिगत होता है। शुक्ल शब्द ध्यान की सर्वाधिक निर्मलता का द्योतक है।

योग के आठों अंगों की सिद्धि के पश्चात् जो कैवल्यावस्था प्राप्त होती है, वह णमोक्कार मंत्र आत्मा की वैसी परम शुद्धावस्था को बहुत ही सरलता से प्राप्त करने का एक सफल सिद्ध (approved)मार्ग हैं। इसमें अष्टांग योग सहज रुप में सिद्ध हो जाता है। योग आठों अंगो के माध्यम से जो प्राप्त कराता है, णमोक्कार मंत्र के स्मरण,जप, आराधन और ध्यान से वह शीघ्र सिद्ध हो जाता है। णमोक्कार अध्यात्म - योग का बीजमंत्र है। [२६२]

नवकार से लेश्या विशुद्धि का विश्लेषण

जैन दर्शन का लेश्या एक महत्त्वपूर्ण शब्द हैं। आत्मा के शुभ एवं अशुभ परिणामों के लिए इसका प्रयोग होता है। कर्म युक्त आत्मा को पुद्गल द्रव्यों के साथ धनिष्ट संबंध है। आत्मा की प्रवृत्तियों द्वारा शुभ एवं अशुभ पुद्गल गृहीत होते हैं। तथा वे उसके चिंतन को परिणामों को प्रभावित करते हैं। उसे द्रव्य लेश्या कहा जाता है। शुभ या उत्तम पुद्गल आत्मा में उत्तम विचारों या प्रशस्त परिणामों के आने में सहायक बनते हैं तथा अधम या निम्न कोटि के पुद्गल आत्मा में दूषित विचारों या अप्रशस्त परिणामों के उत्पन्न होने में सहयोगी बनते हैं। अनुत्तम अशुभ या अनिष्टकारी पुद्गल आत्मा के शुद्ध विचारों को एकाएक परिवर्तित कर देते हैं। कहा गया है - कषाय और लेश्या का अविनाभाव है। जहाँ लेश्या है वहाँ कषाय है। परंतु जहाँ जहाँ लेश्या है वहाँ कषाय रहती है ऐसा नहीं है। केवल ज्ञानी में कषाय नहीं होती परंतु लेश्या परिणाम होते रहते हैं।[२६३]

जैन साहित्य में लेश्या शब्द बहुत प्रचलीत है। वह मनो वैज्ञानिक है। मनुष्य के मन की शुभ और अशुभ भावनाओं की अभिव्यक्ति उसके द्वारा होती है। ये बड़ी विशिष्ट बात है कि आचार्यों ने मन की भावना के अनुरुप रंगों की भी परिकल्पनायें की हैं। साधारण व्यवहार में भी मनुष्य की वृत्तियों तथा प्रवृत्ति के अनुसार उसकी मुखाकृति पर भी विविध भाव दृष्टि गोचर होते हैं। जैनाचार्यों ने उनभावों को छह भागों में विभक्त किया है, तथा लेश्या शब्द द्वारा उनकी व्याख्या की है।[२६४]

मनुष्य के जीवन का आंतरिक तथा बाह्य निर्माण उसके परिणामों भावों, अध्यवसायों या मनोवृत्तियों के आधार पर निष्पन्न होता है। जिस व्यक्ति के जैसे अध्यावसाय होते हैं, परिणाम होते हैं उन्हीं के अनुसार उसके देह की कांति प्रभा या आभा बनती हैं। उन्हीं के अनुरुप उसके वर्ण, गंध, रस, स्पर्श होते हैं। राग -द्वेषात्मक एवं कषायात्मक आंतरिक

परिणति भी उसके मानसिक भावों या परिणामों के अनुसार बनती है। व्यक्ति की शुभा-शुभ विचार धारा, शुभाशुभ कर्म परमाणुओं को संचित करती है, व्यक्ति पर उसका वैसा ही प्रभाव होता है। आत्मा के शुभाशुभ परिणाम भाव लेश्या कहे जाते हैं। [२६५]

लेश्या की परिभाषा :

जिसके द्वारा जीव पुण्यपाप से अपने को लिप्त करता है, उनके आधिन करता है उसको लेश्या कहते हैं।[२६६] धवलामें लेश्या की दूसरी परिभाषा भी दी गई हैं। जो कर्मों से आत्मा को लिप्त करती है उसे लेश्या कहते हैं।[२६७] अथवा जो आत्मा और कर्म का संबंध करानेवाली है उसको लेश्या कहते हैं। [२६८]

लेश्या के दो मुख्य भेद है।

१) द्रव्य लेश्या और २) भाव लेश्या

द्रव्यलेशा :

वर्ण, नाम, कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ जो शरीर का वर्ण है उसको द्रव्य लेश्या कहते हैं। उसके उपभेद छः है।

१) कृष्ण लेश्या २) नील लेश्या ३) कापोत लेश्या

४) तेजोलेश्या ५) पद्मलेश्या और ६) शुक्ल लेश्या [२७२]

भावलेश्या :

कषाय से अनुरंजित जीव की मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं।[२७३] भावलेश्या को औदयिकी कहा जाता है, क्योंकि मोहनीय कर्म के उदय, क्षयोपशम, उपशम अथवा क्षय से उत्पन्न हुआ जो जीव का स्पंदन है वह भाव लेश्या है।[२७४]

छःद्रव्य लेश्यामें से कृष्ण, नील और कापोत ये तीनों अशुभ लेश्याऐं हैं और तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्या ये तीनों शुभ लेश्यायें है। नवकार मंत्र की सहाय के प्रत्येक साधक का यह कर्तव्य हो जाता है कि क्रमशः अशुभ लेश्यासे शुभ लेश्या की ओर अपनी साधना में विकासशील बनें। जब तक लेश्या शुद्ध नहीं होती तब तक जीव का शुद्ध विकास असंभव है।[२७५]

शास्त्रकारोने यह भी बताया है कि - नवकार मंत्र की सहाय से लेश्या परिवर्तन का काम सरल हो जाता है। नवकार मंत्र के प्रत्येक पद जीव को शुभ लेश्या की ओर ले जाने की क्षमता रखता है। ऐसा भी कहा गया है कि - जीव की अंतिम समय की जैसी लेश्या होती है उसके अनुसार ही उसका भावि- भव निर्माण होता है। यदि कोई जीव को अंतिम

क्षणोंमं अशुभ लेश्या होती है। तो उसका भविष्य का भव भी अशुभ - अशुद्ध होता है। लेश्या परितर्वन याने जीव के मनोभाव का परिवर्तन, हमारा सबका यह अनुभव है कि - जिस तरह हमारे मन की मनोवृत्ति होती है वैसा ही रंग हमारे चेहरे पर दिखाई देता है। यह रंग भीतर की लेश्या का बाह्य आविष्करण है। वर्तमान मनोवैज्ञानिकोनें इसे मनकी वृत्तियों - अंतरसंवेदना का बाह्य अविष्करण कहा है। मन के भीतर के संवेदनों का इस तरह का बाह्य प्रगटीकरण किसी भी व्यक्ति की असलियत को पहचानने में उपयोगी होती है और हम अपनी अशुभ या मलिन वृत्तियों को, लेश्या को शुभ की ओर ले जा सकते है।

जैन धर्म कथामें प्रसन्न चंद्र राजर्षि का द्दष्टांत लेश्या परिवर्तन का उत्तम द्दष्टांत है।

प्रसन्न चंद्र राजर्षि जब संसार अवस्थामें थे तब अपने युवा पुत्र को राजगादी की धरोहर - जिम्मेवारी सोंपकर दीक्षा अंगीकार करता है और आत्म कल्याणके लिए उग्र तप की आराधना करता है। जिस रास्ते से राजा श्रेणिक भगवान महावीर के दर्शन को नीकलते है, उस रास्ते के नजदीक ही प्रसन्नचंद्र राजर्षी ध्यान कर रहे थे। उनकी उग्र ध्यान साधना को देखकर श्रेणिक राजा के मन में बड़ा आदरभाव जागृत होता है और इसी आदर भाव के साथ ही वे भगवान महावीर के चरणों में पहुँच जाते हैं। भगवान को वंदना नमस्कार करके वे नम्रता से प्रश्न पुछते है कि - "भगवान! यदि इसी समय पर प्रसन्न चंद्र राजर्षि का आयुष्य समाप्त हो जाएं तो उसकी कौन सी गति हो सकती है ?" भगवानने उत्तर दिया, "सातवी नरक!" भगवान के इस उत्तर को सुनकर राजा श्रेणिक आश्चर्य चकित हो गये और थोड़ी देर के बाद प्रथम प्रश्न को दुहराया। इस समय पर भगवान ने उत्तर दिया - "सिद्ध गति की प्राप्ति।" भगवान का यह उत्तर सुनकर राजा श्रेणिक बहुत हैरान हो गये और बहुत आदर से भगवान को प्रश्न किया कि - "इतने थोड़े समयमें इनकी गति का इतना बड़ा परिवर्तन कैसे ? भगवानने उत्तर दिया कि - हे श्रेणिक! जब तुमने पहली बार प्रश्न पुछा तब उसी समय प्रसन्न चंद्र राजर्षि के मन के भीतर राग-द्वेष का बहुत भारी तुफान उठा था। पुत्र के सुख की कल्पना के पीछे वे अपने आचारधर्म भी भूल गये थे। अशुभ लेश्याएं मन की भावधारा को अमंगल कर चूकी थी। पुत्र की रक्षा के लिए वे मनोमन युद्ध करने लगे थे और शत्रु को पराजित करने के लिए एक के बाद एक शस्त्रों का उपयोग हो जाने के बाद वे अपने मस्तक के मुगट को शस्त्र बना कर शत्रु पर फेंकना चाहते थे और क्षण आगे उन्हें याद आता है कि - मैं राजवी नहीं हूँ, संयमी हूँ। तपस्वी हूँ। मैने कितनी बड़ी राग-द्वेष की पाप प्रवृत्ति की और इसी पर उनकी भावधारामें परिवर्तन आता है।"

अशुभ लेश्यायें विदा लेती है। पश्चात्ताप की पावन गंगा उसे शुभ बना देती हैं, और शुभ से शुद्ध का आविष्कार होता हैं और उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।

आत्मा का स्वरूप सर्वथा स्वच्छ है किंतु कर्म पुद्गलों से आच्छादित होने से उसका स्वरूप विकृत हो जाता है। कर्मो से होनेवाली उस विकृति की अल्पता और अधिकता के आधार पर आत्मा के परिणाम सद्-असद् होते रहते है। जब विकृतियों की न्यूनता होती है तब आत्मा के परिणाम शुभ होते है। नवकार मंत्र की आराधना से लेश्या परिवर्तन का कार्य सरल और उत्तम हो जाता है । इसलिए नवकार मंत्र को चतुर्दश पूर्वो का सार कहा गया है। यह श्रुतज्ञान का रहस्य है। इस मंत्र से कृतज्ञता का गुण उत्पन्न होता है। एवं परोपकार का भाव उदीत होता है। शास्त्रकारोंने परोपकार के गुण को सूर्य और कृतज्ञता के गुण को चंद्र की उपमा दी है।

नमस्कार मंत्र की आराधना से क्षमता, दमता तथा शमता आदि गुणों का विकास होता है। क्षमता का अर्थ क्षमाशीलता और क्रोध-रहितता है। दमता, याने इंद्रिय दमन तथा कामरहितता समझना चाहिये। शमता का अर्थ लोभ वर्जन है। जो दूसरो को अपने समान समझता हो, वह उस पर क्रोध कैसे कर सकता है ? जो दूसरे की पीड़ा को समझता हो वह दूसरे को कष्ट कैसे पहुँचा सकता है ? वैसा व्यक्ति माया, मिथ्यात्व एवं निदान रूप शल्य से भी विमुक्त रहता है।[२७६] नमस्कार मंत्र द्वारा होनेवाली लेश्या विशुद्धि का यह परिणाम है। यह मंत्र समस्त जीवों मे समता और स्नेह का परिणाम विकसित करता है। उससे विश्व वात्सल्य की भावना उत्पन्न होती है। आत्मा शांत निष्काम, निर्दंभ और नि:शल्य होकर उत्तम कार्योंमे तत्पर होती है।[२७७]

अहिंसा आदि समग्र धर्मों का मूल नम्रता है। धर्म को प्राप्त करनेका पहला सोपान विनम्र बनना है। नम्र बनकर संयमी बननेवाला जीव आते हुए कर्मोंका निरोध करता है तथा पुराने संचित कर्मों को निर्जीर्णकरने हेतु तपश्चरण आदि की साधना करता है। उस साधनामें वह सदा उल्लसित-प्रफुल्लित रहता है। इतना ही नहीं इनके मन, वचन और कर्म में पुण्यरूपी अमृत भरा रहता हैं।

नमस्कार मंत्र दानरूची का भी प्रेरक है। सर्व श्रेष्ठ पुरुषों के सद्गुणों के प्रति समर्पण करना यही दान हैं। दान की रूचि के बिना जैसे दानादि कार्य गुण नहीं बन सकते। वैसे ही नवकार मंत्र के बिना पुण्यकर्म पुण्यस्वरूप नहीं बन सकते। इन सब गुणों की प्राप्ति के लिए शुभ लेश्या का क्रमश: विकसित होना परम आवश्यक है। लेश्या परिवर्तन हमें अशुभ से शुभ भावमें और शुभ से शुद्ध भावमें उन्नत करने की क्षमता रखती है और व्यक्ति एवं विश्वकल्याण की भावना सुदृढ़ बन जाती है। ऐसी शुभ भावनाएँ सभी जीवों में विकसती रहे यह हमारी प्रार्थना है।

विश्वके साहित्यकारोंने अपनी साहित्य कृतियों में मानव शुभ और अशुभ लेश्याओं का बहुत ही कलापूर्ण रीति से आलेखन किया है। भिन्न भिन्न पात्रों के माध्यम से शुभ और अशुभ लेश्याओंका आवागमन बड़े ही सुंदर ढंग से वर्णित किया है। गुजराती साहित्य में आख्यानकार प्रेमानंद ने 'रणयज्ञ' नामक आख्यानमें रावण के मनमें उठनेवाली शुभ अशुभ भावों की सृष्टि का तादृश आलेखन किया है। रामायण के अमर पात्र सीता माता के प्रति उनके हृदयमें सात्त्विक एवं पवित्र भाव प्रेमानंद ने निरूपीत किया है। रावण कुंभकर्ण को कहता है -

"ज्यारे देखु हुं सती जानकी
जाणे होय अे आपणी मात रे !"[२७८]

अर्थात् रावण कहता है कि - जब अशोक वाटिका में वह सीताजीका अवलोकन करता है तब उसके मनमें सीताजी के प्रति पवित्रता और सात्त्विकता के भावों का उदय होता है। उसके सभी पाप विचार नष्ट हो जाते है। अशुभ लेश्याएं भाग जाती है और शुभ लेश्याअें उनको विशिष्ट शांति प्रदान करती है।

'रणयज्ञ' की इन पंक्तियों से कविने रावण के पात्र को बहुत ही गौरव प्रदान किया है। किंतु इससे बढ़कर भी इन पंक्तियों से भगवती सीता का, उनकी पवित्रता और विशुद्ध नारी शक्ति का प्रेमानंद ने बहुत आदर किया है। भगवती सीता के चारों ओर पवित्र परमाणुओं का विशुद्ध सुरक्षा चक्र मानो बन गया है। अंग्रेज वैज्ञानिकोंने जिसे 'Cosmic Rays' कहा है और भारतीय साहित्याचार्यो एवं तत्त्वज्ञानियोंने जिसे आभामंडल शब्द से सन्मानित किया है। यही पवित्र आभामंडल सीताजी की शुभ लेश्याओंका रावण पर भी सात्त्विक प्रभाव रखता है और पवित्र पुद्गल परमाणू रावणके मन की अशुभ वृत्तियाँ को शुभ में परिवर्तीत करने की उत्तम क्षमता रखता है।

जैन धर्म के अनुसार महान आत्माओं में प्रारंभ से ही शुभ लेश्याओं का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। भगवती सीताजी के मनके भीतर तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या का विराट सागर लहरा रहा था। अपवित्र का एक बूंद भी ढूँढने पर भी नहीं मिल पायेगा। इस परम पवित्र लेश्याओं का रावण पर अत्यंत विशुद्ध प्रभाव पड़ता है और उसके मन के बुरे विचार दूम दबाकर भाग जाते है। इसी तरह प्रेमानंदने सर्वोत्तम आर्य नारी सीताजी के विशुद्ध लेश्याओं का अत्यंत कलापूर्ण रीतिसे सन्मान किया है और भारतवासीओं के लिए उत्तम आदर्श का आलेखन किया है।

विश्वसाहित्य के उत्तम नाट्यकार शेक्सपियर ने भी अपनी Traged (करूणांत) नाट्य रचनामें लेश्या परिवर्तन का उत्तम, कलापूर्ण रीति में लेड़ी मेकबेथके पात्र के द्वारा लेश्या

परिवर्तन का मार्मिक निरूपण किया है। लॉर्ड मेकबेथ और लेडी मेकबेथ राजा डंकन के प्रिय दंपति थे। राजा डंकन नि:संतान थे ~~।~~ और लोर्ड मेकबेथ को अपने प्रिय पुत्र की तरह स्नेह और प्रेम था। अपनी मृत्यू के बाद राजगद्दी मेकबेथ को ही मिले ऐसी उसने घोषणा भी की थी। राज्य के अन्य अधिकारियों ने राजा की इस घोषणा का स्वागत भी किया था। लॉर्ड मेकबेथके मार्गमें राजा डंकन के निधन के बाद राजा बनने में किसी भी प्रकार के विघ्न की कोई संभावना नहीं थी।

लेड़ी मेकबेथ बहुत महत्त्वाकांक्षी नारी थी। वह चाहती है कि - वह जल्दी से रानी बन जाए और लोर्ड मेकबेथ राजा बन जाए। विलंब ~~सहन~~ उसे पसंद नहीं था। डंकन राजा के मृत्यू की प्रतिक्षा करना उसके स्वभाव से विपरीत था। वह अपने पति को कहती है कि - शीघ्रातीशीघ्र वे दोनों राजगादी प्राप्त करें। राजा डंकन को किसी भी तरह मार्ग से हटाया जाए और अपनी महत्त्वाकांक्षा जल्दी से पूर्ण हो जाए। लोर्ड मेकबेथ डंकन राजा के प्रति पूज्यभाव रखता है। किसी भी तरह की जल्दबाजी उसे पसंद नहीं है और न तो वह किसी भी प्रकारका अनैतिक आचरण करने को तैयार था। दोनों के मन के भीतर उठनेवाले शुभ अशुभ विचारोंका - लेश्यांओं का वर्णन लेखकने किया है।

लेडी मेकबेथ प्रतिक्षा करने के लिए तैयार नहीं थी। वह षड़यंत्र रचती है। राजा डंकन की हत्या करने की योजना बनाती है और किसी भी तरह इस षड़यंत्र में लोर्ड मेकबेथ को सामिल करती है।

षड़यंत्र की समाप्ति के लिए लेडी मेकबेथ व्यवस्थित योजना बनाती है। महल के सभी पहरेगीरों को दूर भेजती है और एक भयानक रात्रिमें राजा डंकन की हत्या करने के लिए वे दोनों तैयार हो जाते है। राजा डंकन के शयन खंड़ के बाहर वे दोनों आते है। लेडी मेकबेथ लोर्ड मेकबेथ के हाथमें खंजर रखती है और राजा डंकन की हत्या के लिए उसे प्रोत्साहित करती है और राजा के शयन खंड में भेजती है। लोर्ड मेकबेथ राजा के शयनखंड में जाता है। लेकिन राजा डंकन की हत्या नहीं कर सकता है। लेडी मेकबेथ के पुछने पर वह बताता है कि - निंद्रावस्थामें सोये हुए राजा डंकन की मुखमुद्रामें उसको उसके पिताजी के चेहरे का साम्य दिखाई देता है। लेखक ने यहाँपर शुभ और अशुभ लेश्याओं को वर्णित किया है।[२७९]

लोर्ड मेकबेथ की कायरता लेडी मेकबेथ को स्वीकृत नहीं थी। वह राजा के शयन खंड में जाती है और भयानक अधर्म कृत्य करती है - राजा की क्रूर हत्या। अशुभ लेश्या की चरम सीमा लेखक ने यहाँ वर्णित की है। राजा की हत्या के बाद लेडी मेकबेथकी

शांती चली जाती है। पश्चात्ताप और वेदना से वह पारावार पीड़ित-दुखी होती है। दिन-रात उसे कहीं भी चैन नहीं पड़ती। रात की नींद भी हराम हो जाती है। वह निद्रा में चलने लगती है। विश्व का उत्तम नाट्य दृश्य Sleep Walking Scene लेखक की कलम से हमें प्राप्त होता है। अशुभ भावनाओंका - अशुभ लेश्याओंका जितना उत्कृष्ट वर्णन इस दृश्य में हुआ है वैसा शायद ही किसी और कृतिमें मिल सके। पाप की सजा अवश्य मिलती है। अति महत्त्वाकांक्षा विनाश सर्जती है। इस सत्यको अतियश कलापूर्ण रीतिसे लेखक ने यहाँ निरूपण किया है और विश्वको उत्तम दृष्टांत प्राप्त हुआ है।

लेश्या से भवमुक्ति

जैन शास्त्रोमें प्रत्येक परिभाषा का विशेष अर्थ होता है। किसी भी परिभाषा का अंतिम उद्देश्य कर्म निर्जरा अथवा आत्मज्ञान की प्राप्ति है। ऐसा भी कहा गया है कि - जैनधर्म ने विश्वधर्म को ज्ञानका महासागर प्रदान किया है। प्रत्येक परिभाषा अपनेमें बड़ा ही अर्थ संगोपित रखती है। आत्मा का उत्कर्ष याने आत्मा के विरल गुणोंकी प्राप्ति। ज्ञानिओंने ऐसा वर्णन किया है कि - हमारी आत्मा अनेक आत्मगुणोंसे भरी है, मगर कर्म पुद्गलों के आवरण से उसका सही रूप हम नहीं जान सकते हैं, लेकिन साधना और पुरूषार्थ से जागृति और प्रमाद के त्याग से जीव आत्मा पर लगे हुए आवरण को दूर कर सकता है। तभी अज्ञान अंधकार का आवरण दूर हो जाता है। तब ज्ञान की तेजोमय ज्योती प्रकाशित हो जाती है।

शुभ लेश्याओं का मुख्य कार्य अंधकार को दूर करके प्रकाश का स्वागत करना है। शास्त्रकारोंने लिखा है कि - अशुभ लेश्या से कर्मबंधन होता है, और शुभ लेश्या से कर्ममुक्ति होती है। 'जैसा भाव, वैसा भव।' यह छोटा सा सूत्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। हमारे जीवन से - इस संसार के भवभ्रमण से, जन्ममरण के चक्र से यदि हमें मुक्ति पाना हो तो शुभ लेश्याएँ हमारे लिए बहुत ही उपकारक सिद्ध होगी।

मुक्ति पाने के लिए प्रत्येक जीव साधना कर सकता है। जैन धर्म व्यक्ति की साधना पर बहुत ही चिंतन करता है और भगवान महावीर ने स्पष्ट दर्शाया है कि - प्रत्येक साधक श्रावकाचार का पालन करके और बादमें साधू आचार का पालन करके अरिहंत पद - सिद्धपद की प्राप्ति कर सकता है। व्यक्ति स्पष्ट ही अपना भाग्य निर्माण कर सकती है। व्यक्ति की साधना की स्वतंत्रता जैन दर्शन की जगत दर्शन को अनुपम भेट है।

जैनधर्म ईश्वरवादी धर्म नहीं है अर्थात् ईश्वर कर्तृत्व में विश्वास नहीं करता। हिंदू धर्म या अन्य धर्म की तरह ईश्वरको ही सर्वस्व माननेवाला नहीं है। मानव स्व पुरुषार्थ से स्वयं परमात्मा बन सकता है, ऐसा जैन धर्म अनेक धर्मग्रंथो में बार बार दोहराता है। इतना ही नहीं, शास्त्रकारोंने यहाँ तक कहा है कि - जीव अपनी साधना से स्वयं शिव बन सकता है। अन्य धर्म में भगवान की भक्ति करने से साधक भक्त बन सकता है। जैन धर्म में भगवान की भक्ति करने से वह स्वयं भगवान बन सकता है।[२८०] आत्मा परमात्मा बन सकती है।

आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए भवभ्रमण से मुक्ति पाने के लिए लेश्याओं का विशुद्ध होना अनिवार्य है। विशुद्ध लेश्या हमारी आत्मा पर लगी हुई मलिन कर्मरज को दूर करने की क्षमता रखती है। भवभ्रमण से मुक्ति पाने के लिए लेश्या जितनी ही शुद्ध होगी उतना हमारा सरलतासे आत्मकल्याण होगा। कर्म पुद्गल के प्रभाव से बचने के लिए इस संसार में विशुद्ध लेश्याओं की सहाय से बढ़कर शायद ही और कुछ हो सकता है। संसार के छोटे से छोटे प्राणी से लेकर बड़े से बड़े प्राणी तक अर्थात् साधारण मनुष्य से लेकर गौतम स्वामी या तो भगवान महावीर तक सभी को मुक्ति प्राप्त करने के लिए नवकार मंत्र की एवं विशुद्ध लेश्याओं की सहाय की परम आवश्यकता है। विशुद्ध लेश्याओं का ज्योर्तिमय तेजवर्तुल कर्म के किसी भी गहन अंधकार को दूर करने की क्षमता रखता है।

उस फौलादी चक्र के समक्ष कार्मिक पुद्गलों की समग्र शक्ति प्रलय कालमें तांडव नृत्य करते हुए शीव के पैरो के नीचे कुचले जाते मुंगफली के छीलके तरह नष्ट हो जाती है।[२८१]

यह जगत् जीव और अजीव का समवाय है। जीव अपने द्वारा संचित किये गये कर्मो के आधार पर विभिन्न स्थितियों में विद्यमान हैं। सुख-दुखात्मक, काम-क्रोधात्मक, मोह-रागात्मक, प्रशस्त-भावात्मक, अप्रशस्त-भावात्मक, जिन जिन दशाओंमे जीव विद्यमान होता हैं, तद्नुरूप पुद्गल परमाणुओं से वह आवृत्त होता है। इसी समस्या से उसे मुक्त करने के लिए विशुद्ध लेश्याएँ महान सहायक हो सकती है।[२८२]

लेश्या और आगामी जन्म

जैन धर्म वैज्ञानिक धर्म है। भगवान महावीर विश्वके प्रथम वैज्ञानिक है। भगवान की वैज्ञानिकता भौतिक सुखो का कभी भी आदेश नहीं देती है लेकिन विश्व के जीवमात्र के कल्याण और मांगल्य की शुभभावनाका मांगल्य संदेश देती है। जीवमात्र परस्पर सहयोग से

इस संसार में अपना जीवन व्यतीत करता है और किसी भी जीव को दुख पहुँचाने का किसीको अधिकार नहीं है। आत्माको परमात्मा बनाने के लिए लेश्याओं का स्वरूप समझकर जागृत बुद्धि से अशुभ लेश्याओं को त्याग कर शुभ लेश्याओंकी ओर हमारी प्रगति होनी चाहिए।

विकास की गति मंद होती है और ऐसा भी हमें उदाहरण मिलता है कि - जीव बड़ी शीघ्र गति से परमपद को प्राप्त कर सकता है। भगवान महावीर के विचारमें या तो आदेश में धर्म और विज्ञान ऐसा कोई अलग अलग विभाग नहीं था। धर्म ही विज्ञान है ऐसा उनका कहना था। वर्तमान युगमें भी हम देख सकते है कि - विज्ञान यदि धर्म से विमुख हो जाएगा तो संसार का सर्वनाश हो जाएगा। विज्ञान और धर्म का समन्वय विश्वमानव के लिए कल्याणकारी होगा। वैज्ञानिक संपत्तिका विवेक पूर्वक सद्उपयोग महान उपकारक बन सकेगा। थोड़ी क्षणों की सुखशांति के लिए वैज्ञानिक साधनोंका उपयोग नहीं करना चाहिए। जैन धर्म में तो हमारे प्रत्येक कार्य में यतना, विवेक रखने को कहा है, क्योंकि यतना या विवेक रखनेसे अनेकों कर्म बंधन से हम बच सकते है। संयम और निग्रह हमारे जीवन का केंद्रबिंदू बनना चाहिये।

हमारे वर्तमान जीवनमें कदम कदम पर प्रलोभन और बाधाएं है। जीव जरा भी प्रमाद करेगा तो वह अपने साधना पथ से दूर हो जाएगा। डगर डगर पर जीव को लुभानेवाली अनेक सांसरिक प्रवृत्तियों का सामना करना आसान काम नहीं है। चारों ओरसे साधक की साधनामें बाधा यें उपस्थित हो वैसा ही माहोल देखनेको मिलता है। फिर भी जागृत साधक इन सभी परेशानियोंसे विचलित नहीं होता और अपने लक्ष्य की ओर गति करना अपना कर्तव्य समझता है। वह जानता है कि - साधना का मार्ग कठीन है। सतत् पुरुषार्थ और शुभ प्रवृत्ति से वह किसी भी संकट को दूर कर सकता है।

जैन धर्म में लेश्या की चर्चा करते हुए ज्ञानियोंने बताया है कि - हमारे जीवन के अंतिम समयमें जैसी हमारी लेश्या होगी वैसा ही हमारा आगामी भव होगा। यदि हम जीवनकी अंतिम क्षणों में कृष्ण नील या कापोत लेश्या जैसी अशुभ लेश्याओं के भावों से इस संसार की विदा लेते हैं तो हमारा आगामी भव उनमें से किसी भी एक अशुभ लेश्यामें अवतरीत होगा और पाप प्रवृत्ति से छुटकारा पाना मुश्किल हो जाएगा। नरक निगोद की भयानक यातना सहना ही एक मात्र उपाय रहेगा शुभ लेश्याएँ हमारे लिए शुभ परिणाम लाएगी। यदि जीव तेजो लेश्या तक पहुँच जाता है तो भी उसके कल्याण की प्रवृत्ति जोर से आगे बढ़ेगी वह धर्म प्रवृत्ति और कल्याण प्रवृत्ति आसानी से कर सकेगा और क्रमशः मुक्ति की मंझिल प्राप्त करना उसके लिए सुविधा जनक बन जाएगा। तेजो लेश्यासे वह पद्म और शुक्ल

लेश्या की ओर प्रगति कर सकेगा। शुभभावनाओं उसके दिल और दिमाग को विशुद्ध करेगी, और वह परमपद प्राप्त कर सकेगा। जीवन के अंतिम क्षण यदि वह शुभ लेश्यामें व्यतीत कर सकता है तो उसका आगामी भव शुभ गति में उच्चगति में होगा। इतनाही नहीं, यदि शुक्ल लेश्या के भावों में मृत्यू होती है तो पुनर्जन्म का कोई प्रश्न ही नहीं रहता, क्योंकि ज्ञानियों मे शुक्ल लेश्या को अलेश्या ऐसी भी संज्ञा दी है।

जैन तत्त्वज्ञान का लेश्या बहुत महत्त्वपूर्ण अभ्यासविषय है। विद्वानों ने इस विषय की गहराई से चर्चा की है लेकिन मनोविज्ञान के साथ भी लेश्या का घनिष्ठ संबंध है। मन के शुभ-अशुभ भावों अथवा परिणाम लेश्या का रूप लेते हैं। मानव का मन ही मानव को उत्थान या पतन की ओर ले जा सकता है। मन के अध्यवसायों की विशुद्धि लेश्या का उत्तम फल प्रदान कर सकती है। हमें भी अपने जीवन में अशुभ लेश्याओं का त्याग करके शुभ लेश्याओं का स्वीकार करना चाहिए और आगामी भव उन्नत बनाने के लिए सम्यक् पुरुषार्थ करना चाहिए।[२८३]

प्रशमरति प्रकरण में लेश्या का वर्णन

प्रशमरति प्रकरण में बंध के प्रसंग में लेश्याओं का वर्णन करते हुए कहा गया है : योग से प्रदेश बंध होता है। कषाय से अनुभाग बंध होता है और लेश्या की विशिष्ट से स्थिति और विभाग में विशेषता आती है। कृष्ण, नील, कापोत, तैजस, पद्म और शुक्ल लेश्या के ये छह भेद हैं। जैसे सरेश से रंग पक्का और स्थायी हो जाता है, उसी प्रकार लेश्याअें भी कर्म बंध की स्थिति को दृढ करती है।[२८४]

आत्मा का परिणाम विशेष लेश्या कहा जाता है। जामुन खाने के इच्छुक वह व्यक्तियों के दृष्टांतद्वारा समझाया गया है।

जामुन का एक बड़ा वृक्ष था उस पर जामुन लगे थे। छह मनुष्य जामुन खाने की इच्छा से वहाँ आये। पहले मनुष्य ने कहा हम इस पेड़ को जड़ से उखाड़ दें। यह जमीन पर गिर पड़ेगा, तब हम यथेच्छ रुप में जामुन खा लेगें। दूसरा बोला बड़ी - बड़ी ड़ालियों को ही काट लें। तीसरे ने कहा बड़ी - बड़ी ड़ालियाँ न काट कर छोटी टहनी क्यों न काट लें। चौथा बोला छोटी - छोटी टहनी को क्यों काटें, फलों के गुच्छों को ही तोड़ ले। पाँचवे ने कहा गुच्छों को भी तोड़ने की आवश्यकता नहीं है केवल पके हुए जामुन को ही हम नीचे गिरा दें। यह सुनकर छट्ठा बोला, जमीन पर बहुत से जामुन गिर हुए हैं, उन्हीं को ही हम खालें।[२८५]

यह दृष्टांत छहों लेश्याओं पर लागु होता है। जो पेड़ को उखाड़ने की बात कहता है, उस मनुष्य के परिणाम अत्यंत पापमय है। जो कृष्ण लेश्या का रुप है। दूसरा जो बड़ी ड़ालियाँ काटने की बात कहता है, उसके परिणाम पहले से कुछ कम दूषित हैं। वह नीलें लेश्या का रुप है। तीसरा जो छोटी टहनीयाँ काटने को कहता है, उसका परिणाम दूसरे की अपेक्षा कूछ और कम दुषित है, वह कपोत लेश्या का रुप है। चौथा जो फलों के गुच्छ तोड़ने की बात कहता है, वह तेजस लेश्या का रुप हैं। पाँचवाँ जो फलों को तोड़ने की बात कहता है, वह पद्म लेश्या का रुप है। छट्ठा व्यक्ति जो अपने आप नीचे गिरे हुए फलों को लेने को कहता है, वह शुक्ल लेश्या का रुप हैं। इनमें परिणामों की धारा क्रमशः निर्मल होती गई है।[२८६]

गोम्मटसार में लेश्या की परिभाषा करते हुए बतलाया गया है - कषायोदय से अनुरंजित योग प्रवृत्ति लेश्या हैं।[२८७]

यद्यापि आत्मा का स्वरुप स्फटीक के सदृश्य निर्मल है, तो भी कर्म पुद्गलों से आवृत्त होने के कारण उसका स्वरुप विकृत रहता है। उस विकृति की न्यूनता अधिकता के कारण आत्मा के परिणाम - विचार भले- बूरे होते रहते हैं। विचार धारा की शुद्धि एवं अशुद्धि में अनंतगुण तरतम भाव रहता है। पुद्गल जनीत इस तरतम भाव को संक्षेप में छह भागों में बाँटा गया है। इन छह विभागों को छह लेश्या कही जाती है। इनमें पहली तीन अधर्म लेश्यायें हैं और अंतीम तीन धर्म लेश्यायें हैं। लेश्याओं के नाम द्रव्य लेश्याओं के आधार पर रखे गये हैं।[२८८]

शास्त्रों में लेश्या पद के अंतर्गत सम-कर्म, सवर्ण, सम लेश्या, समवेदना, सम क्रिया, समायु, तथा कृष्ण, नील कापोत, तैजस, पद्म और शुक्ल लेश्या के आश्रय से प्रभावित जीवों का वर्णन किया गया है।[२८९]

उत्तराध्ययन सूत्र में कृष्ण, नील, कापोत, पद्म तथा शुक्ल लेश्याओं के रुप में उनका उल्लेख हुआ है। तत्पश्चात् उनका विस्तार से वर्णन हुआ है। कृष्ण, नील और कापोत लेश्यायें अशुभ लेश्यायें हैं। अधर्म मूलक हैं। तेजस, पद्म और शुक्ल लेश्यायें शुभ या धर्म मूलक है।[२९०]

आत्म परिणामों या लेश्याओं की शुद्धि के बिना जीव आत्मश्रेयस के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता। नवकार मंत्र की आराधना से क्षमता, दमता तथा समता आदि गुणों का विकास होता है। क्षमता का अर्थ शांत या क्षमाशीलता है। क्षमाशील व्यक्ति क्रोध रहित हो जाता है। दमता का अभिप्राय इंद्रिय दमन या कामनाओं का वर्णन है। जब इन्द्रियाँ

विषयों से वीरत हो जाती है, तो मन में कलूषित परिणाम नहीं आते। समता का अर्थ प्रशांत भाव या क्षोभ वर्णन है। जो दूसरों को अपने समान या सदृश्य समझता हो, वह उन पर क्षुब्ध - कृद्ध कैसे हो सकता है ? जो औरों की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझता हो, वह कामना या लोभ के वशीभूत होकर दूसरों को कष्ट नहीं पहुँचा सकता। वैसा व्यक्ति माया, मिथ्यात्व एवं निदानरुप शल्य से भी रहित होता है। नवकार मंत्र द्वारा जीवन में ये सब घटित होता है, क्योंकि उसे अशुभ आत्म परिणामों या अशुभ लेश्याओं का शुद्धिकरण होता है।

नवकार महामंत्र समस्त जीवों में समता और स्नेह के परिणाम विकसित करता है ! उससे विश्ववात्सल्य की भावना उत्पन्न होती है। आत्मा शांत, दांत, निष्काम, निर्दंभ और नि:शल्य होकर उत्तम कार्यों में तत्पर होती है।[२९१]

लेश्या विशुद्धि से आत्मा में निर्मलता, पवित्रता और सात्विकता के उदात्तभाव की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। नवकार लेश्या विशुद्धि का अनन्य हेतु हैं।

रंग विज्ञान के आधार पर नवकार मंत्र का निरुपण

रहस्यों की खोज मानवी की सनातन खोज है। यह संसार बड़ा ही रहस्यमय है और रहस्यों की खोज संसारमें होती ही रहती हैं। खोज के बिना किसी भी क्षेत्र में नया आविष्करण हो ही नहीं सकता। विकास की गति को आगे ले जाने के लिए खोज करना अनिवार्य है। चाहे अध्यात्म हो या चाहे विज्ञान। चाहे राजकीय या चाहे आर्थिक समस्या हो। खोज करने से ही नये - नये परिणाम प्राप्त होते हैं। खोज का द्वार कभी बंद नहीं होना चाहिए। आज के विज्ञान की सफलता का रहस्य भी प्रकृतिके गूढ़तम रहस्यों की खोज में संलग्न है। वैज्ञानिक रहस्यों को खोजने के नये - नये प्रयत्न चल रहे हैं। जैसे - जैसे विश्व के रहस्यों में कोई भी गहरी डूबकी लगाता है, वैसे - वैसे नए - नए रहस्यों उनके सामने उद्घाटित होते हैं और पौद्गलिक जगतके सारे नियम हमारी ज्ञान की सीमा में आ जाते हैं।

आज का युग विज्ञान का युग है। अनेक विषयों पर प्रयोग और गवेषणायें हो रही है। नये - नये तथ्य प्रकाश में आ रहे हैं।

परमाणुवाद तथा वनस्पति - जगत् आदि के संबंध में वैज्ञनिकों की लंबी खोज के बाद जो तथ्य उद्घाटित हुए हैं, उनमें से अनेक तथ्यों की सहस्रों वर्षों पूर्व वीतराग सर्वज्ञ महापुरुषों ने व्यक्त किए थे। आगमों में प्रतिपादित अनेक सिद्धान्त वैज्ञानिक दृष्टिसे भी तथ्यपूर्ण सिद्ध हो रहे हैं।

आधुनिक विज्ञान में रंगोंपर भी अन्वेषण हो रहा है। यह विज्ञान का एक स्वतंत्र विषय बन चुका है।[२९२]

नवकार मंत्र की आराधना बीजाक्षरों के साथ की जा सकती है। तथा एक - एक पद की एक - एक चैतन्य केंद्र में की जाती है। तथा वर्णों या रंगों के साथ भी की जाती है।

Dr. R. K. Jain ने A Scientist Treatise on Great Namokar Mantra नामक पुस्तक में The Namokar Mantra The Colour Therapy शीर्षक के अंतर्गत रंग विज्ञान पर साधना के संदर्भ में वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया है, जो मननीय है।[२९३]

मंत्रविद् आचार्योंने नमस्कार मंत्र के साथ रंगों का बहुत ही सुंदर वर्णन किया है। नवकार मंत्र की शक्ति में अपार श्रद्धा रखनेवाले आचार्य भगवंतोंने नवकार मंत्र के रहस्यों के आधार पर एक - एक पद के लिए एक एक रंग की समायोजना की है ऐसा बताया गया है कि हमारा सारा जगत् पौद्‌गलिक है। पुद्‌गल के चार लक्षण है - वर्ण, गंध, रस और स्पर्श ! सारा मूर्त संसार वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के प्रकंपों से प्रकंपित है। इतनाही नहीं वर्ण से हमारे शरीर का बहुत निकटका संबंध है। वर्ण से हमारे मनका आवेगोंका, कषायोंका बहुत बड़ा संबंध है। शरीर या मन की स्वस्थता का आधार भी रंगों पर है।

वैद्यकीय दृष्टि से रंगों की विगत पूर्ण चर्चा मिलती है। वर्तमान आरोग्य शास्त्र और रंगका नजदीक का संबंध है। नीला रंग शरीर में कम होता है तब क्रोध अधिक आता है। नीले रंग की पूर्ति हो जाने पर क्रोध कम हो जाता है। श्वेत रंग की कमी हो तो स्वास्थ्य बिगडता है। लाल रंग की कमी होने पर आलस्य और जड़ता बढ़ती है। काले रंग की कमी होने पर प्रतिरोध की शक्ति कम हो जाती है। रंगों के साथ मनुष्य के मन का, मनुष्य के शरीर का कितना गहरा संबंध है उसे जब तक हम जान नहीं लेते तब तक नमस्कार महामंत्र के रंगों के साथ साधना करने की बात हमारी समझमें नहीं आ सकती।

प्रथम पद नमो अरिहंताणं का ध्यान श्वेत वर्ण के साथ करना चाहिये। क्योंकि श्वेत वर्ण हमारी आंतरिक शक्तियों को जागृत करने वाला होता है। श्वेतवर्ण के बारे में मंत्र शास्त्र ऐसा कहते है कि ये स्वास्थ्यदायक मंत्र है। मंत्रशास्त्र की तरह आरोग्यशास्त्री भी कहते है कि- यदि किसी को सुखमय आरोग्य की प्राप्ति करना हो तो श्वेतवर्ण परम उपकारी साबित होगा। रोग निवारण और शांति के लिए सफेद रंग बहुत उपयोगी हो सकेगा। नवकार मंत्र के प्रथम पद और सफेद रंगका हमारी साधना में बहुत बड़ा योगदान हो सकता है।

दूसरा पद नमो सिद्धाणं का ध्यान रक्तवर्ण के साथ किया जाता है। बाल सूर्य जैसा लाल वर्ण हमारी आंतरिक दृष्टि को जागृत करनेवाला है। इस रंग की सबसे बड़ी

विशेषता यह है कि - वह सक्रीयता पैदा कर सकता है। सूस्ती या आलस्य का अनुभव हो अथवा जड़ता आ जाए तो, उसे दूर करने के लिए लाल रंग का ध्यान बहुत कल्याणकारी साबित होगा। आत्म साक्षात्कार, अंतर्दृष्टि का विकास, अतींद्रिय चेतना का विकास यह दूसरे पद में हो सकता है। नमो सिद्धाणं मंत्र, लालवर्ण दोनों का संगम हमारी आंतरिक दृष्टि को जागृत करने का अनुपम साधन है। इसलिए दूसरे पदमें लाल रंग का मिलन संयोजन अनिवार्य है। हम यह नहीं कह सकते है कि किसी को कब सिद्धि प्राप्त हो सकती है, लेकिन इतना हम अवश्य कह सकते है कि जिस मार्ग पर हम चलते है वह हमें अवश्य मंझिल तक ले जाएगा।

तीसरा पद नमो आयरियाणं है। इसका रंग पीला है। यह रंग हमारे मनको सक्रिय बनाता है। हमारे शरीर में सूरज है, चांद है, बुध है राहु है, मंगल है। सारे ग्रह हैं। चंद्र और मनका घनिष्ट संबंध है। जैसी स्थिति चंद्रमा की होती है वैसी स्थिती मनकी होती है। आरोग्य शास्त्री कहते है कि मानव वृत्तियों पर नियंत्रण करनेवाली ग्रंथी थायरोईड है। इस ग्रंथी का स्थान कंठ है। रंग के साथ इस केंद्र पर तिसरे पद का ध्यान करने से हमारी वृत्तियाँ शांत हो जाती है और पवित्रता की दिशामें वे सक्रिय बनती है। यहाँ मन पवित्र होता है, निर्मल होता है।

चौथा पद नमो उवज्झायाणं है। इसका रंग हरा है। हरा रंग शांति देनेवाला है। यह रंग समाधि और एकाग्रता पैदा करता है। कषायों को शांत करता है और आत्मसाक्षात्कार में सहाय करता है। नीले रंग के साथ इसपद की साधना करने से परमानंद की प्राप्ति होती है।

पांचवाँ पद नमो लोए सव्व साहूणं है। इसका काला रंग है। काले वर्ण के साथ इस पद की आराधना की जाती है। कालावर्ण अवशोषक होता है। वह बाहर के प्रभाव को भीतर नहीं जाने देता। काला वर्ण व्यक्तिको अपना व्यक्तित्व या गुण जैसा का वैसा रखने में उपयोगी साबित हो सकता है। बाह्य प्रलोभन या तो बाधाअें साधक आत्मा की आंतरिक चेतना को कुछ भी असर नहीं कर सकता है। काला रंग गुणवृद्धि में सहायक होता है। न्यायालय में न्यायाधीश और वकील काला कोट पहनते है इसका कारण यह है कि - उनको बाहरी वातावरण से सुरक्षित रखता है।[२९४]

नमस्कार महामंत्र के पाँच पदों के साथ पाँच वर्णों का चुनाव बहुत महत्त्वपूर्ण है, रहस्यमय है।[२९५] सुक्ष्म जगत की यात्र करने के लिए नवकार मंत्र के इन पदों का मिलन बहुत ही लाभप्रद होगा। नवकार मंत्र की आराधना में वर्णों की दिशा अक्षरों की दिशा और चैतन्य केंद्रोंकी दिशा - तीन दिशाअें उद्घाटित होती हैं। उन दिशाओं की खोज में

आंतरबाह्य विशुद्धि में रंग के साथ नवकार मंत्र का ध्यान बहुत ही उपकारक सिद्ध होगा और विषय कषायों को भगाने में उसका साथ परम मांगलीक और परम कल्याणकारी सिद्ध होगा।[२९६]

नवकार मंत्र और शरीर विज्ञान -

नमस्कार महामंत्र का भक्तिपूर्वक उच्चारण मनन और चिंतन करने से आत्मा में अनेक गुणोंका आविष्कार होता है। भावपूर्वक मंत्र के जाप और ध्यान से अध:पतन की अवस्था दूर होती है, राग द्वेष की दीवार जर्जरित होकर तूटने लगती है। दर्शन मोहनीय शिथील हो जाने से चारित्र मोहनीय भी मंद हो जाता है। यह क्रिया मंदगति से होती है और मंदता से उत्पन्न आत्मिक शक्ति को प्रारंभ में मानसिक विकारों के साथ युद्ध करना पड़ता है, परंतु नवकार मंत्र की अपनी अद्भूत शक्ति से मानसिक विकार दूर हो जाते हैं। रागद्वेष की दुर्भेद्य दिवार को तोड़ने में नमस्कार मंत्र समर्थ है। विकास की ओर आगे बढ़नेवाले आत्मा के लिए यह मंत्र सर्वोत्तम कल्याणकारी साबित हो सकता है।

इस मंत्र की आराधना से आत्मशुद्धि इतनी बढ़ जाती है कि मिथ्यात्व को पराजित करने में विलंब नहीं लगता। इतना ही नहीं शारीरिक कष्ट से मुक्त होकर मानसिक शांति भी मिल सकती है।

आत्मा जब प्रमाद का त्याग करता है तब वह शुद्ध और निर्मल बन सकता है।[२९७] लोभ आदि कषाय का दमन करके उत्तरोत्तर विशुद्धि प्राप्त करना साधक का एक मात्र लक्ष्य बन जाता है। नवकार मंत्र के प्रत्येक पद में शारीरिक कठीनाईयाँ और मानसिक क्षमता दूर करने क़ी महान शक्ति भरी हुई है। नवकार मंत्र के स्मरण से बाह्य विषयों में अरुचि भी होने लगती है और क्रोधादि भावों में मन की प्रवृत्ति नहीं होती है और शांति की ओर साधक की गति होती है। विषय और कषाय से मुक्ति पाने का वह सन्निष्ठ प्रयत्न करता है। शास्त्रकारों ने दर्शाया है कि - नमस्कार मंत्र की आराधना करनेवाले सम्यक्दृष्टि का राग नष्ट हो जाता है। वह रागी नहीं वीरागी बन जाता है। नमस्कार मंत्र केवल इस जन्म के ही नहीं अनेकों पूर्व जन्म के कर्मबंधन और पापोंसे मुक्त करता है और शाश्वत शांति प्रदान करता है। आधि, व्याधि, और उपाधिका अब तो साधक के शरीर या मनके भीतर कोई स्थान ही नहीं रहेगा और वह आत्म कल्याण के पथ पर आगे बढ़ता जाएगा।[२९८]

जैन दर्शन किसी भी प्रकारके चमत्कार को मानता नहीं। चमत्कार का जैन धर्म में

स्थान नहीं है लेकिन हम यह जानते है कि- अनेक व्यक्तियों को शारीरिक और मानसिक शांति देने का उत्तम कार्य नवकार मंत्रद्वारा होता है। नवकार मंत्र के स्मरणमात्रसे भारी संकट और भयानक कष्ट से एक पल में मुक्ति मिल जाती है। श्रद्धा और मनकी एकाग्रता से यदि नवकार मंत्र का स्मरण या जाप करने से सभी प्रकार की शारीरिक या मानसिक विपत्तियाँ आसानी से दूर हो जाती है। नवकार मंत्र अनादि है। यह मंत्र जैनों काही मंत्र नहीं सारे विश्वके लिए परम कल्याणकारी मंत्र है। मांगल्यकारक मंत्र है और जीवन की सभी परिस्थितीयों में नवकार मंत्र का स्मरण और जप परमशांति दायक सिद्ध हुआ है और होता रहेगा।

●●●

नवकार से कृतज्ञभाव का उद्‌भव तथा विकास

नवकार मंत्र श्रुत - ज्ञान का रहस्य भूत तत्व है। यह चतुर्दश पूर्वों का सार है। इसकी यह विशेषता है कि - इसको अपनाने से कृतज्ञ भाव का उद्‌भव होता है तथा परोपकार का भाव समुदित होता है। परोपकार के गुण को सूर्य की और कृतज्ञ भाव को चंद्र की उपमा दी जा सकती है। जिसने अपने पर उपकार किया हो, उपकृत व्यक्ति के हृदय में उसके प्रति सदा कृतज्ञ भाव रहना चाहिये। यह धर्म का आधार है।

अरिहंत आदि पंच परमेष्ठी नवकार मंत्र में वंदीत नमस्कृत है। वे हमारे परम उपकारक है। उनके उपकार को मानना, उनके प्रति आदर तथा सम्मान का भाव रखना उपकृत मनुष्यों का कर्तव्य है। नवकार मंत्र हमें कृतज्ञता का संदेश प्रदान करता है। पंचपरमेष्ठी सभी लोगों का सदा से अत्यंत उपकार करते आये हैं। उन्होंने भूतकाल में उपकार किया हैं। वर्तमान काल में भी वे हम सब के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं। भविष्य में भी वे समस्त प्राणियों के लिए प्रेरणा प्रद तथा उपकारी रहेंगे। अज्ञान एवं अहंकार के आग्रह को मिटाने हेतु नवकार की आराधना अनिवार्य है। नवकार का अर्थ देव और गुरु की अधिनता का स्वीकार है।[२९९]

परोपकार धर्म का अनन्य अंग है। कहा गया है - मैत्री भाव का विकास परोपकार का सेवन तथा शमवृत्ति की उपासना - ये धर्म के स्पष्ट तत्व है।[३००]

आचार्य हेमचंद्र ने योगशास्त्र में मार्गानुसारी के पैंतीस गुणों में परोपकृति कर्मठः। परोपकृति - कर्मठता का उल्लेख किया है। उसका अर्थ यह है कि मार्गानुसारी पुरुष परोपकार करने में सदैव, उद्यत तत्पर रहता है।[३०१]

उन्होने योगशास्त्र की टीका में इसका स्पष्टीकरण करते हुए उल्लेख किया है कि - परोपकार परायण पुरुष सभी के नेत्रों में अमृतांजन जैसा प्रिय लगता है।[३०२]

धर्मरत्न प्रकरण में धर्म के प्राप्ति के ग्यारह गुणों का उल्लेख हुआ है। वहाँ 'परहित्थकारी' शब्द आया है। इसका अर्थ दूसरों का हित या भलाई करने वाला है। वैसा जीव धर्मरुपी रत्न को प्राप्त करने योग्य होता है। वहाँ सोपज्ञ विवरण में इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए बतलाया है -

योहि प्रकृत्यैव परेषां हितकरणे निरन्तरं।
रतो भवति, स धन्यो धर्मधनार्हत्वात् ॥

अर्थात् जो स्वभाव सेही दूसरों का हित करने में निरंतर तत्पर रहता है, वह धन्य है। धर्मरुपी धन के लिए वे योग्य हैं, वह धर्म का सच्चा अधिकारी हैं।[३०३]

धर्म बिंदू में भी परोपकार की उपादेयता का उल्लेख हुआ है।[३०४]

टीका में कहा गया है कि परोपकार समस्त धर्मानुष्ठनों में उत्तम हैं।[३०५]

दशवैकालिक सूत्र में भी सभी प्राणियों को आत्म मुल्य समझते हुए, उनके प्रति उपकृति परायणता का उल्लेख किया है। आत्मवत् सर्व भूतेषु[३०६]

वैदिक धर्म के पुराणादि ग्रंथों में भी परोपकार के महत्त्व का उल्लेख हुआ है। इस संबंध में निम्नांकित श्लोक प्रसिद्ध है।

अष्टादशपुराणेषु, व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् ॥

अर्थात् अठराह पुराणों में मुख्य रुप से महर्षि व्यास ने दो ही बातें कही है - परोपकार से पुण्य होता है और दूसरों को पीड़ा देने से पाप होता है।[३०७]

नीतिशास्त्र में कहा गया है -'नदियाँ अपना जल स्वयं नहीं पीती, वृक्ष अपने फल खुद नहीं खाते, बादल अपने द्वारा की गई वृष्टि से उत्पन्न धान्य को स्वयं नहीं खाते। सत्पुरुषों की संपत्तियाँ दूसरों के परोपकार के लिए होती है।'[३०८]

परमेष्ठि भगवंतों का प्राणियों पर अत्याधिक उपकार है। जिसके प्रति कृतज्ञ रहना प्रत्येक साधक का कर्तव्य है। जो कृतज्ञभाव पूर्वक नवकार की आराधना करता है, उसका आत्मबल बढ़ता है।

नवकार मंत्र की फलवत्ता के संबंध में लिखा गया है - 'मंत्र से ही मन का बल विकसित और संवर्धित होता है। नवकार मंत्रों में सर्व श्रेष्ठ महामंत्र है। काम, क्रोध, लोभ, राग, द्वेष, तथा मोह रुपी आंतरिक शत्रु उसके द्वारा जीत लिये जाते हैं।'[३०९]

आराधक के लिये पंच परमेष्ठियों की पहचान करना आवश्यक हैं। वैसा कर उन्हें नमस्कार करना अपेक्षित है। इस प्रकार यदि ज्ञान पूर्वक, पहचान पूर्वक नमस्कार करना आ जाता है, तो साधक के लिए सभी पदार्थ सिद्ध हो जाता है।[३१०]

श्रद्धापूर्वक नवकार मंत्र के स्मरणद्वारा पुन: पुन: उसके जप द्वारा अनुप्रेक्षा और स्वाध्याय की योग्यता आती है, तथा उससे ज्ञान का प्रकाश व्यक्त होता है।[३११]

नवकार मंत्र के बिना तपश्चरण, चारित्र और शास्त्र ज्ञान निष्फल कहा गया है। यदि नवकार की आराधना नहीं होगी तो, कृतज्ञभाव नहीं होगा।नवकार की आराधना के बिना तप आदि उसी प्रकार मूल्य रहित है जिस प्रकार अंकविहीन, केवल शून्य युक्त संख्या होती है। नवकार मंत्र से होनेवाला कृतज्ञभाव जीवन के लिए बहुत उपयोगी है। सम्यकत्व गुण भी कृतज्ञभाव का द्योतक है। सम्यक्त्व में देव, गुरु, तथा धर्म के प्रति भक्ति एवं श्रद्धा का भाव नमन एवं बहुमान है। ये तीनों तत्त्व आत्मा के लिए अत्यंत उपकारी है। मन में ऐसे भाव लाने से सभी शुभ, उत्तम एवं सुखप्रद पदार्थ प्राप्त होते हैं। उन तीनों का स्मरण करना, उनके प्रति विनय व्यक्त करना कृतज्ञता है। कृतज्ञता कल्पवृक्ष है। वह नमस्कार में प्रकटीत है। कर्तव्यता कामकूंभ है। उससे सभी सद्इच्छायें पूर्ण होती है। वह क्षमापना है। नवकार से सुकृतों का, पुण्यात्मक भावों का अनुमोदन होता है। क्षमापना से दृष्कृतों की, पापों की गर्हा होती है।

तीर्थंकर भगवंतों का, सिद्ध परमात्मा का ज्ञानी महा-महापुरुषों का, साधुसंतों का हम पर बड़ा उपकार है, ऋण है। उन्होंने धर्म देशना, शिक्षा आदि के रुप में हमें बहुत प्रदान किया है और करते रहते हैं। उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति प्रकट करना कृतज्ञता है। वह एक ऐसा गुण है, जो ऋण मुक्ति की भावना उत्पन्न करता है। ऋण मुक्ति और कर्म मुक्ति-इन दोनों का नवकार में समन्वय है इनसे अव्याबाध, परम सुख स्वरूप मोक्ष प्राप्त होता है जो योग्य को, पूज्य को नमन करता है, उसका जीवन उन्नत और विकसीत होता है।

मनुस्मृतिमें ऐसा कहा है कि -

अभिवादनशीलस्य, नित्यं वृद्धापसेविन:।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते, आयुर्विद्या यशोबलम्॥

जो बड़ों को गुरुजन को, महापुरुषों को अभिवादन मनन या नमस्कार करता है तथा वृद्धजनों की सदा सेवा करता है। उसकी आयु,विद्या,यश और शक्ति इन चारों की वृद्धि होती है।

पारस्पारिक सहयोग एक दूसरे का उपकार, उपकार के प्रति आभार या कृतज्ञभाव इन्हीं के आधार पर सांसारिक प्राणियों का जीवन टीका हुआ है। आचार्य उमास्वाति ने "परस्परो - पग्रहो जीवानाम्" सूत्र द्वारा यह प्रगट किया है कि सभी जीव आपस में एक दूसरे के

उपग्रह - आधार या सहयोग पर अवस्थित हैं।[३१२]

नवकार मंत्र द्वारा सूचित, उद्‌बोधित श्रद्धा, भक्ति, कृतज्ञता, विनयशीलता आदि ऐसे ही भाव है, जिनसे मानव जीवन में सच्ची शांति का अनुभव कर सकता है। मनुष्य को उपकारी पुरुषों के प्रति कभी भी कृतघ्न नहीं होना चाहिये। कृतघ्नता बहुत बड़ा दोष है। पाप का मूल है, कृतघ्नी पुरुष अपने जीवन में कदापि उन्नति नहीं कर सकता। नवकार मंत्र की प्रत्येक पंक्ति में नमो शब्द इसी भाव का सूचक है।नमस्कार यह आत्मा के दिव्य खजाने की गुप्त चाबी है। A key to Cosmic secret [३१३]

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नमस्कार महामंत्र :

ज्ञानियोंने नमस्कार महामंत्र के बारेमें भिन्न-भिन्न दृष्टिबिंदूओंसे बहूत प्रभाव दिखलाया है। जब तक मानवी के पास मन है तब तक मनमें संकल्प विकल्प अवश्य उठते हैं। सारे संकल्प विकल्पोंपर अधिकार जमाना या तो उससे उत्पन्न सर्व दु:खों पर विजय प्राप्त करना कर्तव्य है। कोई भी व्यक्ति मन पर विजय प्राप्त कर लेती है - अमनस्क दशा प्राप्त कर लेती है तो उसे परमानंद की प्राप्ति होती है। मनोवैज्ञानिक यह बताता है कि मानवी की बाह्य दृश्य क्रियाए उसके चेतन मन में होती है और भीतर की अदृशय क्रियाअें अचेतन मनमें होती हैं। मनकी इन दोनों क्रियाओं को मनोवृत्ति कहा जाता है।

मनोवृत्ति के प्रधान तीन विभाग है।

१) ज्ञानात्मक, २) संवेदनात्मक और ३) क्रियात्मक

ज्ञानात्मक मनोवृत्तिके संवेदन प्रत्यक्षीकरण, स्मरण, कल्पना और विचार ये पांच उपभेद हैं।

संवेदनात्मक मनोवृत्ति के संदेश, उत्साह, स्थायी भाव और भावना ग्रंथी ये चार उपभेद हैं।

क्रियात्मक मनोवृत्ति के सहज क्रिया, मूलवृत्ति, आदत, इच्छित किया और चारित्र ये पाँच उपभेद बताये गये हैं।

नमस्कार महामंत्र के स्मरण के ज्ञानात्मक मनोवृत्ति, उत्तेजीत होती है और इसके साथ संवेदनात्मक और क्रियात्मक अनुभूति को भी उत्तेजन मिलता है। नमस्कार महामंत्र की आराधना के लिए ज्ञानकेंद्र और क्रिया केंद्र का समन्वय होता है इससे मानव मन सुदृढ बनता है और आत्मिक विकास के लिए उसे प्रेरणा मिलती है।

आचरण को विकसित करने के लिए मात्र विवेक से काम नहीं चलेगा। उसके साथ स्थायी भावों को भी सुदृढ़ बनाना पडेगा। ज्ञान मात्र से, दूराचार से हम नहीं बच सकेंगे और इसके लिए उच्च आदर्श प्रति श्रद्धारुप भावना का होना अनिवार्य है। नमस्कार महामंत्र अत्यंत उच्च और पवित्र आदर्श है और इसके सतत् रटन से हमारे स्थायी भावोंमें अच्छा परिवर्तन आयेगा मन पर हमारा नियंत्रण रहेगा संकल्प विकल्प से हम दूर हो जायेंगे और हमारे चारित्र के विकास के लिए मन की यह स्थिरता उत्तम साबित होगी।

इस महामंत्र के स्मरण से, चिंतन और ध्यान से कषाय भावोंमें अवश्य परिवर्तन होता है। मंगलमय पंचपरमेष्ठि आत्माओं के स्मरण मात्र से मन पवित्र बन जाएगा, दूराचार दूर हो जाएगा और सदाचार की ओर हमारी प्रगति होगी। मानसिक विकार दूर करने के लिए उच्च आदर्श के प्रति दृढ़ श्रद्धा महान उपयुक्त साबित होगी।

मनोविज्ञान का एक सिद्धांत है कि - मानवी अपने भीतर जिस प्रकार की योग्यता को प्राप्त करना चाहता है इस योग्यता का बार-बार स्मरण और चिंतन करना चाहिए। हमारा अंतिम लक्ष्य भी पंचपरमेष्ठि के पांच पदोंमें से किसी एक पदमें उत्तम स्थान प्राप्त करने का है। इतना ही नहीं जैन दार्शनिकोंने यह भी बतलाया है कि - साधक की अंतिम इच्छा सच्चिदानंद स्वरुप आत्मा को प्राप्त करने की होती है। इसलिए नमस्कार महामंत्र का जप परमावश्यक है।

मनोविज्ञान यह भी बतलाता है कि - प्रत्येक मानव में मूलभूत मनोवृत्ति समान होती है, लेकिन मनुष्य की विशेषता यह होती है कि इन वृत्तियों में वह समूचित परिवर्तन कर सकता है। इस परिवर्तन के लिए चार महत्त्व के अवलंबन दर्शाये गये है वे निम्नलिखित हैं। इसलिये मानवी की मूलवृत्तिमें Repression दमन Inhibition विलीयन Rediresion मार्गान्तरीकरण और Sublimcision शोधन (उच्चारीकरण) ये चार परिवर्तन होते रहते हैं वे मानव कर सकते हैं और ऐसे परितर्वन की क्षमता मानवी में है। इस प्रकार का परिवर्तन करके वह प्रगति की ओर आगे बढ़ सकता है, श्रद्धा और विवेक प्राप्त कर सकता है और अंतीम लक्ष्य परमपदकी प्राप्ति भी कर सकता है।[३१४]

नमस्कार महामंत्र की सहाय से साधक अपने मनपर अंकुश रख सकता है। उसकी नैतिक भावना का विकास होता है। अनैतिक वासनाओंका दमन करके संस्कार जागृत कर सकता है। अज्ञान का अंधकार दूर हो जाता है और ज्ञान का प्रकाश उसे प्रगति की सच्ची दिशामें आगे ले जाता है। इस मंत्र के निरंतर रटन, स्मरण और चिंतन से आत्मामें एक विशिष्ट प्रकारकी शक्ति उत्पन्न होती है, जिसको वर्तमान परिभाषामें विद्युत कहा जाता है। इस शक्ति से आत्मा की विशुद्धि होती है और परम शांति की प्राप्ति होती है।[३१५]

इहलौकिक और पारलौकिक दृष्टि से नवकार मंत्र का निरुपण :

भारतीय धर्मशास्त्रमें मानव के कल्याण के लिए भिन्न-भिन्न तरह की साधना पद्धिति आलेखन किया गया है। ऐसे तो विश्व के प्रत्येक धर्म में मानव की उन्नति के लिए मंत्र शक्ति का भी सहारा लिया गया है। मंत्र के जप और ध्यान से व्यक्ति का परमकल्याण होता है। एक ओर से सोचे तो मंत्र मात्र वर्ण ही है। वर्ण या अक्षर सेही मंत्र होता है। अक्षर शब्दात्मक शक्ति है। शब्द टाईमबम की भाँति होते हैं। जिस प्रकार अवधि पूर्ण होते हीबमका विस्फोट हो जाता है, वैसे ही मंत्र की शक्ति भी समय पाकर फलित होती है। नमस्कार महामंत्र के एक - एक अक्षर में इतना सामर्थ्य है कि जन्म व मृत्यु के क्लेशों से जीव को मुक्त कर वह नवजीवन प्रदान करता है।[३१६]

नमस्कार महामंत्र की महानता शास्त्रकारोने परम सद्भावना से वर्णित की है। नित्य जप करनेवालो के रोग, शोक, व्याधि, दु:ख, पीड़ा आदि सभी बाधाअें मिट जाती है। नमस्कार मंत्र सद्बुद्धि सद्विचार और सत्कर्मों की परंपरा कीं सर्जन करता है।[३१७]

अज्ञान एवं अहंकार के आग्रह को मिटाने के हेतु नमस्कार मंत्र अनिवार्य है।[३१८]

पवित्र, अपवित्र, रोगी दु:खि आदि किसी भी अवस्थामें इस मंत्र का जप करने से व्यक्ति बाह्य और आभ्यंतर दोनों दृष्टियोंसे पवित्र हो जाता है। यह मंत्र सब प्रकार के विघ्नों को नष्ट करनेवाला है।[३१९] संसारिक या धार्मिक किसी भी कार्य के प्रारंभ में नमस्कार मंत्र का स्मरण करने से वह कार्य निर्विघ्न रुप से पूर्ण हो जाता है। पापी से पापी व्यक्ति भी इस मंत्र के स्मरण से पवत्रि हो जाता है। इस महामंत्र के गुण इतने है कि - जिनकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते । इस मंत्र की महिमामें अनेक ग्रंथ रचे गये हैं। संक्षेप में कहा जाए तो हम यह कह सकते है कि - यह मंत्र तीनों लोकों में अनुपम है। इसके समान और कोई चमत्कारी और प्रभावशाली मंत्र मिलता ही नहीं है।

महामंत्राधिराज त्रैलोक्य दीपक नवकार मंत्र के बारे में पूज्य भद्रंकर विजयजीने परम श्रद्धा से विगतपूर्ण आलेखन किया है।

नवकार मंत्र की सर्व सिद्धांत सम्मतता

मंत्र शास्त्र में नवकार मंत्र -

मंत्र शास्त्र की दृष्टि से नमस्कार महामंत्र सभी तरह के पापमय विष का नाश करनेवाला है। साधक के मनमें किसी भी व्यक्ति या कार्य के लिए बूरे भाव से इस मंत्र का स्मरण करने

पर भी उनकी विशुद्धि हो जाती है। किसी का बूरा करने का भाव विदा ले लेता है और व्यक्ति नये कर्म बंधनों से आसानी से बच सकता है। परम शांति और सुख का अनुभव होना मंत्रकी सबसे बड़ी शक्ति है, ताकात है। नवकार मंत्र की महिमा मे के कारण ही मंत्रों की अनंतता बनी है। संसार के प्रमुख धर्मोंकी साधना पद्धतियोंमें मंत्र का माहात्म चिरस्थाई है। नमस्कार यह आत्मा के पूर्ण चैतन्य का प्रवेशद्वार है।[३२०]

"(Namaskar is an entrance into abandant energy.)"

"नवकार मंत्र यह आत्मा के दिव्य खजाने की चाबी है।"

(A key to Cosmic Secret)

योगशास्त्र में नवकार मंत्र -

योगशास्त्र की दृष्टि से देखा जाए तो पदस्थ ध्यान के लिए इसमें परम पवित्र पदों की आलंबन है। [३२१] ज्ञानार्णव आदि योग विषयक ग्रंथोंमें भी इसका विशद विवेचन हुआ हैं।[३२२] जिस प्रकार धन की रक्षा के लिए तिजोरी, शरीर की रक्षा के लिए वस्त्रादि महत्त्व हैं उसी प्रकार मन की रक्षा के लिए, ध्यान की, एकाग्रता के लिए यह महामंत्र अत्यंत आवश्यक हैं।[३२३]

●●●

आगम साहित्य में नवकार मंत्र -

आगम साहित्य -

आगम साहित्य की दृष्टि से सभी श्रुत-साहित्य में आभ्यंतर तप समाविष्ट है और इसलिए तो नमस्कार महामंत्र को चौदहपूर्व का सार भी कहा गया है और महाश्रुत स्कंध की उपमा दी गई है।[३२४] यह समग्र द्वादशांगी का सार है।

कर्मशास्त्र में नवकार मंत्र -कर्मशास्त्र की दृष्टि से देखा जाय तो कर्म सारे जगत पर शासन करते है, परंतु ये कर्म पंचपरमेष्ठी से डरते हैं इसलिए पंचपरमेष्ठी के साथ संबंध रखने से कर्म बंधन ढीले हो जाते हैं। इसके प्रत्येक अक्षर का उच्चारण से या ध्यान से अनंत - अनंत कर्म वर्गणाओंका विलय होता है। नवकार मंत्र केवल इस जन्म का ही नहीं, अपने को[३२५] पूर्व जन्मों की कर्म वर्गणाओं के विलय करने के लिए उपकारी हो सकता है।

ज्ञानवरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अंतराय ये आठ कर्म है। नवकार मंत्रद्वारा कर्मोंके आश्रवोंको रोका जा सकता है और संचित कर्मोंका

निर्जराद्वारा क्षय कर निर्वाण लाभ किया जा सकता है। णमोकार महामंत्र और कर्म साहित्य का निकटतम संबंध है। आत्मा के साथ अनादिकालीन कर्म प्रवाह के कारण सूक्ष्म शरीर रहता है। जिससे यह आत्मा शरीर में आबद्ध दिखाई पड़ता है। तीव्र कषाय होने पर कर्म परमाणु अधीक समय तक आत्मा के साथ रहते हैं और मंद ही फल देते हैं।

आचार्य कुंदकुंद स्वामीने बताया है कि - "णमोकार मंत्रोक्त पंचमेष्टियों की विशुद्ध आत्माओंका ध्यान या चिंतन आत्मासे चिपटा राग कम होता है। कर्मोंके बीजभूत राग-द्वेष को नवकार मंत्र की साधना द्वारा नष्ट किया जा सकता है। जिस प्रकार बीज को जला देने के बाद वृक्ष का उत्पन्न होना फल देना नष्ट हो जाता है इसी प्रकार णमोकार मंत्र की आराधना से कर्म - जाल नष्ट हो जाता है।"[३२६]

चरणकरणानु योग की दृष्टि से नवकार मंत्र -

चरणकरणानुयोग के अनुसार इसका संबंध आचार के साथ जुड़ा हुआ है। श्रमण और श्रमणोपासक की समाचारी या व्रत परंपरा के परिपालन में अनुकूल या विघ्न निवारण हेतु णमोकार मंत्र का पुनः पुनः उच्चारण या जप अत्यंत आवश्यक है और उपयोगी है। हृदय में भक्तिका संचार होता है। अरिहंत और सिद्ध के प्रति समर्पण भाव का उदय होता है और बाद में श्रद्धा का दृढ़ आरोहण होता है और अंतमें समभाव से चरण करण की सभी प्रवृत्ति साधक कर सकता है।[३२७]

धर्मकथानु योग की दृष्टि से नवकार मंत्र -

धर्म कथानुयोग की अपेक्षा से, जिसमें धार्मिक जीवन को उन्नत बनानेवाले कथानक होते हैं, उसमें णमोक्कार महामंत्र का बड़ा महत्त्व है। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधुकृंद के जीवन चरित्र- संबंधी अद्‌भुत कथाएँ इसके साथ संलग्न हैं। जिन्होने णमोक्कार की आराधना द्वारा समुन्नती की, उन जीवों की कथाएँ भी पाठकों को सत्मोत्थान का मार्ग प्रदर्शित करती है। ये सात्त्विकता, धर्मानुरागिता आदि गुणों को पोषण देती हैं। श्रमण, श्रमणी, श्रमणोपासक, श्रमणोपासिक चतुर्विध संघ की दृष्टि से णमोक्कार मंत्र सब को एक आध्यात्मिक श्रृंखला में जोड़ता है, तथा सभी को एक ही स्तर पर पहुँचाने का, आत्मा का शुद्ध स्वरुप स्वायत्त कराने का माध्यम है।

गणितानु योग की दृष्टि से नवकार मंत्र -

गणितानु योग की दृष्टि से नमस्कार महामंत्र की संख्या नौ है और नौ की संख्या गणित शास्त्र की दृष्टि से और अन्य संख्याओंकी तुलनामें अखंडितता और अभंगता का

विशिष्ट स्थान दर्शाता है। नवकार मंत्रमें आठ संपदाऐं वर्णित की गई है। इन आठ संपदाओंसे अनंत संपदाओं का लाभ होता है - साधक को संपदाओंकी प्राप्ति होती है। नवकार मंत्र से अणिमा आदि अष्ट सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। साधक को यदि एक भी सिद्धि की प्राप्ति हो जाए तो भी वह परम कल्याणकारी साबित होगा और यदि आठों सिद्धियाँ प्राप्त हो जाए, तो पूछना ही क्या ? इसका वर्णन करना अशक्य हो जाता है। नवकार मंत्र के अडसठ अक्षर तीर्थों का प्रतीक है और प्रत्येक अक्षर पर अनेक विद्याओंका वास है, निवास है। नमस्कार मंत्र के आरंभ के पाँच पदों के बारेंमें बहुत ही गौरवपूर्ण बात बताई गई है। तीर्थंकरोंने दर्शाया है कि - प्रारंभ के पदों को पंचतीर्थ कहा है - श्री अरिहंत का आद्य अक्षर अ अष्टापद तीर्थ का सूचक है श्री सिद्ध का आद्य सि सिद्धाचलजी का सूचक है , आचार्य के आद्य अक्षर आ आबूजी का सूचक है, उपाध्यायजी का आद्य अक्षर उ उज्जयंत अर्थात गिरनारजी का सूचक है और साधु के आद्य अक्षर स सम्मेत शिखरजी का सूचक है।[३२८]

द्रव्यानुयोग की दृष्टि से नवकार मंत्र -

द्रव्यानुयोग की दृष्टि से नमस्कार महामंत्र के प्रथम दो पद आत्मा के विशुद्ध स्वरुपको प्रगट करते है। साधक के लिए यह साध्य है और इस साध्य को प्राप्त करने का पुरुषार्थ ही ध्येय बनना चाहिए। बादके तीनों पद साधक अवस्था के शुद्ध प्रतिक रुप है। जब तक वह अरिहंत, या सिद्ध नहीं बन सकता है। द्रव्य और भाव से महामंत्र नवकार के साथ संबंध जोडे बिना अपना भव भ्रमण रुकनेवाला नहीं है। साध्य की प्राप्ति के लिए द्रव्य से भी प्रयास करना अनिवार्य है। [३२९]

श्रीमद् राजचंद्रजीने चार अनुयोगोंका आध्यात्मिक उपयोग बताते हुए लिखा है - जो मन शंकायुक्त होगा तो द्रव्यानुयोग का चिंतन करना, प्रमादमें होतो, चरणकरनानु योग को चिंतन करना, कषाययुक्त हो तो धर्मकथानुयोग का और जड़ता, मंदता हो तो गणितानुयोग का विचार करना चाहिए।[३३०]

गणितशास्त्र की दृष्टि से नवकार मंत्र

मंगलमय श्री नवकार मंत्र के एक अक्षर के जप करने से सात सागरोपम का नाश होता है एक पद के जप करने से पचास सागरोपम पाप का नाश होता है। संपूर्ण नवकार मंत्र के जाप करने से पंचसो सागरोपम पाप का नाश होता है। १०८ नवकार गिनने से ५४००

सागरोपम पापका नाश होता है। एक नवकार गिनने से दो लाख ६५ हजार पल्योपम देव आयुष्य का बंध होता है। १००८ नवकार गिनने से २ करोड, ६८ लाख, २० हजार पल्योपम देव आयुष्य का बंध होता है। भाव से सिर्फ १ नवकार गिनने से - साड़े १५ बार ७ वीं नरक के दु:ख टलते है। नवकार के १ अक्षर पर १००८ विद्यादेवीओंका वास है। नवकार के ६८ अक्षर पर ६८,५४४ विद्यादेवीओंका वास है। विधिपूर्वक १ लाख नवकार गिननेवाली आत्मा निश्चय से परमात्मा बनती है। भाव से नवलाख नवकार गिननेवाली आत्मा कभी नरक तिर्थंच जैसे दुर्गति में नहीं जाती। (९ लाख गणतां - नरक निवारे..) ८ करोड, ८ लाख, ८ हजार, ८०८ नवकार गिननेवाली आत्मा नि:संदेह तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन करती है।[३३१]

अ-रि-हं-त-सि-द्ध-आ-चा-र्य-उ-पा-ध्या-य-सा-धू-इन १६ अक्षरों का २०० बार जाप करने से एक उपवास का फल मिलता है। अ-रि-हं-सि-द्ध : इस ६ अक्षरों का मंत्र तीनसौ बार अ-रि-हं-त इन चार अक्षरों का मंत्र चार सौ बार और अरिहंत के सिर्फ अ का पाँच सौ बार जो जाप करता है उसे १ उपवास का फल मिलता है। प्रात:काल कमल के ध्यान से १०८ नवकार का जाप करने से भी १ उपवास का फल मिलता है।[३३२]

गणित शास्त्र की दृष्टि से यह नमस्कार मंत्र पर चिंतन किया जाय तो उसकी महत्ता और पूर्णता सिद्ध होती है। गणित शास्त्र मुख्यत: गणन और विभाजन के सिद्धांत पर आधारित है। (Law of Multiplication and Law of Division) इनके अतिरिक्त गणित में जोड़ और बाकी दो पक्ष और है। नमस्कार मंत्र के स्मरणमात्र से गणित शास्त्र के चारों सिद्धांत उत्कृष्ट प्रकार से प्रतित होते है। पुण्य का जोड, पाप की बाकी, कर्म का भागाकार और धर्म का गुणाकार हो जाता है।[३३३]

जैन शास्त्रानुसार नवकार मंत्र के स्मरणमात्र से धर्म का गुणाकार और कर्म का भागाकर किया जाता है। नमो अरिहंताणं कहते ही भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्कालमें जगत के परम उद्धारक सभी तीर्थंकरों को नमस्कार हो जाता है। Law of Multiplication and Law of Division

अपनी वृत्तियाँ को वापस खींच कर आत्मस्वरुपमें स्थीर रहना, यह सब साधना का रहस्य है। आत्मस्वरुपका अनुभव करना और स्वरुप को प्राप्त करना यही विश्व का सर्वोच्च गणित है। यह गणित का जिन्होंने अनुभव किया है वे Higher Mathematics के निष्णात पारंगत है।[३३४]

इससे धर्म का गुणाकार और कर्म का भागाकार हो जाता है। सभी संपत्तियों का सर्जन और विपत्तियों का विसर्जन हो जाता है। नवकार मंत्र के पाँचों पदों के जपसे उत्तरोत्तर सुकृत वृद्धि होती है। तथा दुष्कृत का नाश होता है।

श्री नवकार महामंत्र गिननेवाले के पाप नष्ट होते हैं। श्री नवकार महामंत्र सुननेवाले के पाप नष्ट होते है। श्री नवकार महामंत्र सीखनेवाले के पाप नष्ट होते हैं।[३३५]

चतुर्विध संघ की दृष्टि से नवकार मंत्र -

नमस्कार मंत्र सबको एक श्रृंखलामें बांधनेवाला और सबको समान स्तर पर पहुँचानेवाला है। नवकार मंत्र का किसी भी आराधक हमारे लिए समान है। इसे हम साधर्मिक कहते हैं। जैन और नवकार मंत्र एक दूसरे के पर्याय बने हैं। नवकार मंत्र के आराधक न तो दिगंबर है न तो श्वेतांबर, ये सभी वीतराग परमात्मा के आराधक है। चरम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के शासन में श्रावक और श्राविका पद पर स्थित होकर चतुर्विध संघ के आधार स्तंभ बन जाते हैं। समष्टि गत उन्नति की दृष्टि से एक दूसरे को एक समान आदर्श के उपासक एवं पूजक बनाकर सत्‌श्रद्धा और सत्‌चारित्रके पथ पर अड़िग खड़े रहने का बल प्रदान करता है। और जैन धर्म की आराधनामें जागृति के साथ पुरुषार्थ करने की श्रद्धा प्राप्त होती है।

वैयक्तिक उन्नति की दृष्टि से नवकार मंत्र -

बाह्य साधन सामग्री के अभावमें भी साधक केवल मानसिक बल से सर्वोच्च उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि - नवकार मंत्र की आराधना के लिए किसी भी प्रकार की बाह्य सामग्री की कोई आवश्यकता नहीं है। श्रद्धापूर्ण मन ही नवकार मंत्र का उत्तम फल प्राप्त कराने की क्षमता रखता है। व्यक्ति और समष्टि, व्यक्ति और समाज, व्यक्ति और विश्व का यह कल्याण मंत्र बेजोड़ मंत्र है।

इष्ट सिद्धि की दृष्टि से नवकार मंत्र -

शारीरिक बल, मानसिक बुद्धि, आर्थिक वैभव, राजकीय सत्ता, ऐहिक संपत्ति तथा दूसरे अनेक प्रकार के ऐश्वर्य, प्रभाव और उन्नति को करानेवाला नवकार है। क्योंकि यह मंत्र चित्त की मलीनता और दोषों को दूर कर निर्मलता और उज्ज्वलता प्रगट करता है। सर्व उन्नति का बीज चित्त की निर्मलता है और यह निर्मलता नवकार से सहज ही सिद्ध हो जाती है, क्योंकि नमस्कार महामंत्र अनादि है, अतित में था, वर्तमान में है और भविष्यमें भी अवश्य रहेगा। इसकी न आदि है और न अंत।

ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से नमस्कार मंत्र -

ज्योतिष विद्या द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर ज्योतिषी, जो घोषित करते हैं, वह तो

बहुत कम है। इसकी तुलना में नमस्कार मंत्र के प्रथम पदमें स्थित अरिहंत भगवान द्वारा भूत, भविष्य वर्तमान विषयक अभिव्यक्ति उससे अनंतगुणा महत्त्वपूर्ण हैं। अरिहंत परमात्मा के दिव्यज्ञान की तुलनामें ज्योतिषी का ज्ञान नगण्य है।[३३६]

दूसरी बात यह है कि - ज्योतिषीद्वारा ज्ञात कथ्य अन्यथा भी सिद्‌ध हो सकते हैं क्योंकि, वहाँ ग्रह, राशि, मुहुर्त, योग आदि की गणना में त्रुटी भी हो सकती है। त्रुटी होने से फलादेश में भी त्रुटी हो सकती है। सर्वदर्शी, सर्वज्ञानी, तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित त्रिकालविषयक तथ्य कभी अन्यथा नहीं होते, क्योंकि उनके ज्ञान को आवृत्त करनेवाले कर्मों का सर्वथा क्षय हो चुका है। नमस्कार मंत्र लौकिक ज्योतिष से विलक्षण आध्यात्म ज्योतिषका प्रतीक है और जीव अतीत, वर्तमान और भविष्य की समग्र विसंगतीयोंसे विमुक्त हो जाता है।[३२७]

राजनैतिक दृष्टि से नमस्कार मंत्र -

आज साधारण से साधारण मनुष्य के मन पर राजनीति व्याप्त है। दलगत राजनीति, राष्ट्रपति प्रणाली संसदीय लोकतंत्र, साम्यवाद, समाजवाद आदि उसके अनेक रुप हैं। लौकिक साम्राज्य की तरह धर्म का भी अपना साम्राज्य है।[३३८]

नमस्कार मंत्र धर्मसाम्राज्य का प्रतिनिधित्व करता है और अपनी रक्षा के लिए संयम, संतोष, त्याग, वैराग्य, क्षमा, निर्वेद, संवेग, समत्व आदि आत्मगुणों की विशाल सेना से सुसज्जित है। राग-द्वेष और मोह का अब यहाँ कोई स्थान है ही नहीं। इसलिए धर्मसाम्राज्य अपराजेय है। धर्म चक्र चारों दिशाओंमें व्याप्त है और अरिहंत, तीर्थंकर देव धर्मसाम्राज्य का अधिनायक है। उसे अरिहंत तीर्थंकर देव कहते हैं। इसिलिए इन्हें 'धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टी'[३३९] कहा गया है।

लौकिक शासन तंत्र में अनेक प्रकार के संकट आते हैं।राजकीय अस्थिरता प्रतिदिन आतीजाती है और लोगोंको अनेकों कठीनाईयोंका सामना करना पड़ता है।

विश्व की महासत्ताएं अपने साम्राज्य को बढ़ाने की लालसामें अन्य देशों पर बूरी निगाह से दृष्टिपात करते हैं और युद्ध भी छेड़ देते हैं। महाविनाशकारी युद्ध के साधनोंसे आज सारे विश्व में भय का आतंक मचा हुआ है। मानव संस्कृति और मानव जीवन गहरे संकट में पड़ गये है। सुख और शांति के लिए मनुष्य को भरसक प्रयत्न करना पड़ता है, जबकि अरिहंत के शासनमें ऐसी कोई समस्या नहीं है। नवकार मंत्र विश्व के प्रत्येक जीव को शांति और मैत्री का सुख और आनंद का सरलता से अनुभव कराता है और शांति से समाधि की ओर ले जाने की राह दिखाता है।[३४०]

अर्थशास्त्र की दृष्टि से नवकार मंत्र

अर्थशास्त्र का मूलभूत सिद्धांत कम से कम मेहनत और ज्यादा से ज्यादा फल के साथ संबंध है -

The fundamental principle of Economics is minimum effort and maximum resultL

अर्थशास्त्र का Time Limitation (समय मर्यादा) के साथ भी संबंध है।

अर्थशास्त्र की दृष्टि से सबसे पहले अर्थाशास्त्र का सिद्धांत - अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए। इसका विवरण यह है कि कम से कम प्रयत्न या उद्यम करना पड़े और अधिक से अधिक फलप्राप्ति हो। अर्थशास्त्र का इस प्रकार समय के साथ गहरा संबंध है। इसकी तुलनामें नवकार मंत्र में सहजरुपमें अल्पसमय में विराट एवं शास्वत फल प्राप्त होता है। नमस्कार मंत्र की आराधना की प्रक्रिया अनंतगुणा शाश्वत फल प्रदान करती है। परम उपकारी भगवान महावीर द्वारा बताये गये इस महामंत्र नवकार मंत्र का स्मरण सबसे अधिक लाभप्रद है।

वर्तमान जगत में अधिक से अधिक धन उपार्जित करनेवाला मनुष्य अपने समग्र जीवनमें जितना धनोपार्जन करता है, उसकी अपेक्षा असंख्य गुणाधिक लाभ नवकार मंत्र का आराधक केवल चार सेकंड में प्राप्त कर लेता है।

द्रव्य या धन प्राप्ति से सांसारिक सुख या भौतिक सुख की प्राप्ति अवश्य हो जाती है लेकिन शाश्वत सुख और शांति तो नवकार मंत्र की आराधना से मिल सकती है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से संसारमें सबसे अधिक प्रभावशाली और सुखदाता नमस्कार महामंत्र ही है। यह Eeonomically effective नवकार मंत्र है।[३४१]

न्यायतंत्र और नमस्कार मंत्र :

इस जगत की व्यवस्था शासक और शासित के रुपमें चलती है। विशालजन समुदाय शासित होता है और उसे नियम और विधि विधान के अनुसार चलाया जाता है। वैसा न होने पर व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है। समाज और राष्ट्र चल नहीं पाते। राष्ट्र में नीति, सदाचार और समुचित व्यवहार का पालन करने के लिए न्यायतंत्र का बहुत बड़ा महत्त्व है। न्यायतंत्र कानून के सिद्धांतों पर टीका हुआ है। (Law of Justice)

नमस्कार मंत्र कर्म सिद्धांतों के तंत्र पर आश्रित है। कर्मवाद का न्याय इतना उंचा है कि - कानून का न्याय वहाँ पहुँच भी नहीं सकता है। कानून के सिद्धांत पर तो प्रमाण वगेरे न

मिलने पर अपराधी बिना सजा के छूट जाता है लेकिन कर्मवाद के कानून में किसी को मुक्ति नहीं मिलती है और नवकार मंत्र के स्मरण या जप से सभी सावद्य या पापपूर्ण कर्म छूट जाता हैं और साधक उत्तरोत्तर कर्मक्षय करता हुआ, अरिहंतपद तक भी पहुँच सकता है। समग्र कर्मक्षय करके सिद्ध बन सकता है। इस प्रकार नमस्कार मंत्र एक ऐसे न्यायतंत्र का सूचक है कि - इसका निर्णय त्रिकालाबाधित है। भगवान का साम्राज्य दयातंत्र Law of Mercy सर्वोपरी है।[३४२]

वैधानिक दृष्टि से नवकार मंत्र :

संसारमें जितने भी संस्थान, प्रतिष्ठान, प्रजातंत्र, गणतंत्र आदि है। इन सब के अपने अपने विधान है। विधान के बिना इन संस्थाओं का कार्य सुचारु रुप से नहीं चल सकता है।

नमस्कार मंत्र भी एक आध्यात्मिक विधान का सूचक है। अन्य विधानोंमें समय समय पर परिवर्तन करना पड़ता है। इसकी तुलनामें नमस्कार मंत्र का विधान सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि है। आजतक नवकार मंत्र में किसी अक्षर मात्र का भी परिवर्तन नहीं हुआ है और नहीं होगा। अनंत तीर्थंकर भगवान, गणधर देव तथा अनंत महापुरुष हो गये है किन्तु नमस्कार मंत्र का विधान अति विशुद्ध होने के कारण आज तक अपरिवर्तित है। इससे यह सिद्ध होता है कि - नमस्कार मंत्र शाश्वत सत्य है और यह परमानंद की प्राप्तिका अनन्य साधन है।

नमस्कार मंत्र का विधान संसार के लोगों को आव्हान करता है कि- आप सब इसका अनुकरण करें और परमशांति को प्राप्त करें। इतना ही नहीं नवकार मंत्र को सांसारिक विधान के साथ - साथ जोड़ देना चाहिए। ऐसा करने से ही सांसारिक विधान में पवित्रता आयेगी।

नमस्कार मंत्र धार्मिक विधान का वह दस्तावेज है, जो किसी भी न्यायालय द्वारा असिद्ध साबित नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसमें वीतराग प्रभु की सर्वव्यापीनी, सर्व ग्राहीनी, अनंत ज्ञानात्मक शक्ति जुड़ी हुई है।[३४३]

नवकार मंत्र का स्मरण उभयकाल करना चाहिए। यह सर्व मत्रोंमें सर्वोत्तम मंत्र है।[३४४]

चराचर विश्वकी दृष्टि से नवकार मंत्र

चराचर या जंगमात्मक विश्व की दृष्टि से भी णमोकार मंत्र के आराधन का एक विलक्षण प्रभाव है। जो इस महामंत्र की आराधना करते है, वे अपनी ओर से समस्त प्राणियों

को अभय प्रदान करते हैं। प्राणातिपात या हिंसा से पृथक् रहते है, सदा समग्र संसार के प्राणियों की सुखशांति की कामना करते हैं। प्रत्युपकार या प्रत्याशा के बिना वे उस दिशा में प्रयत्नशील रहते हैं। वैयक्तिक दृष्टि से भी यह महामंत्र आराधक के लिए उन्नतिप्रद है साधक बाह्य साधनसामग्री के अभाव में भी इस मंत्र की प्रेरणा से मानसिक बल प्राप्त करता है। वह इसके द्वारा उन्नति के सर्वोत्कृष्ट शिखर पर पहुँचने में सक्षम होता है।

अनिष्ट निवारण नवकार मंत्र

अनिष्ट निवारण या विघ्नों की निवृत्ति की दृष्टि से णमोक्कार मंत्र का स्मरण अशुभ कर्मों को रोकता है। शुभ कर्मों के विपाकोदय को अनुकूल बनाता है। उसके परिणामस्वरूप प्राप्त सुखों को उपस्थापित करता है। इस महामंत्र के प्रभाव से समग्र अनिष्ट स्थितियाँ, विपरीतताएँ - इष्ट स्थितियों में, अनुकूलताओं में परिणत हो जाती है। जंगल में मंगल हो जाता है। भयंकर सर्प पुष्पमालाओं में परिवर्तित हो जाते हैं। अग्निका सिंहासन हो जाता है। अग्निका पानी हो जाता है। विष का अमृत हो जाता है।[३४५]

ऐहिक इष्ट-सिद्धि की दृष्टि से णमोक्कार मंत्र की आराधना के फलस्वरूप दैहिक - शक्ति, बुद्धि, मनोबल, आर्थिक वैभव, राजसत्ता, लौकिक संपत्ति, ऐश्वर्य, प्रभाव ये सब प्राप्त होते है, क्योंकि यह महामंत्र, चित्त की मलिनता और दूषितता को दूर करता है एवं मानसिक निर्मलता और उज्ज्वलता को प्रगट करता है। जब चित्त में निर्मलता आ जाती है, तो पुण्य - प्रभाव वश सभी प्रकार की उन्नति होती है।[३४६]

नवकार मंत्र की विलक्षण शक्ति

पंचपरमेष्ठि को नमन करने से विनय, सदाचार, परोपकार, सेवा आदि लोकोत्तर गुणों के प्रति मन में आकर्षण उत्पन्न होता है और भी अनेक लाभ होते है। वास्तव में नवकार मंत्र में एक विलक्षण शक्ति है। जीवन में शक्ति का बहुत महत्त्व है। शक्तिद्वारा ही आत्म विकारके विघ्नों को रोका जा सकता है। मोह जीव का वास्तविक शत्रु है जो अनादिकाल से उसके पीछे लगा है। अष्टविध कर्मों में मोहनीय कर्म मुख्य है। उसको जीतना बहुत दुष्कर है। मोहनीय कर्म के दो प्रकार हैं। १) दर्शन मोहनीय २) चारित्र मोहनीय, मोहनीय कर्म को जीत लेने से अन्य कर्मों की शक्ति जर्जर तथा क्षीण हो जाती है। परमेष्ठी नमस्कार से, उनके स्मरण से मोहनीय कर्म का मूलोच्छेद हो जाता है, मोह का नाश हो जाता है। जब मोह का नाश हो जाता है, तो अन्य कर्म अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं। नवकार का दूसरा पद 'सव्व

पावपणासणो' इसी का सूचक है।[३४७]

मोहनीय कर्म में दर्शन मोहनीय बड़ा बलवान है। नवकार मंत्र के प्रथम पद "नमो अरिहंताणं" के उच्चारण तथा स्मरण से दर्शन मोहनीय कर्म को जीता जा सकता है। दर्शन मोहनीय का अर्थ आत्मधर्म के विपरीत मिथ्याश्रद्धान है। अरिहंत देव को शुद्ध भाव से नमस्कार करने से जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है। उसकी विपरीत मान्यता नष्ट हो जाती है। सत्य धर्म के प्रति, आत्मस्वभाव के प्रति उसकी आस्था सुदृढ़ होती है। उसकी रूचि उन्मार्ग से हटती है, सन्मार्ग में आती है।

सामान्यत: संसार में भी नमस्कर का उत्तम फल होता हैं। यह नमस्कार तो परमोत्तम महापुरुषों को है। इसका फल नि:संदेह आत्म श्रेयस्कर होता हैं। नमस्कार के विषय भूत अरिहंत भगवान हैं। उनको भाव नमस्कार करने से आत्मसामर्थ्य उद्भाषित होता हैं। अनादिकाल से चला आता मिथ्यात्व दूर हो जाता है। वास्तव में नवकारमंत्र आत्यधिक शक्तिपुंज है, यह कहना सर्वथा उचित है।

मोहनीय का प्रथम भेद दर्शन मोह है, तथा द्वितीय भेद चारित्र मोह हैं। चारित्र मोह के भेदों मे क्रोध, मान, माया तथा लोभ ये चार मुख्य हैं। नवकार मंत्र के पदों से इन चारों का विजय किया जा सकता है।[३४८]

"णमो लोए सव्व साहूणं" से क्रोध को जीतने का बल व्यक्त होता है। जिन्होंने भाव साधुत्व को प्राप्त किया है, वे मुनिगण क्षमा द्वारा क्रोध को जीतने हेतु तत्पर हुए हैं। इसलिए उन्हें क्षमण कहा जाता है। उनके आश्रय में आनेवाले अन्य जन भी उनकी प्रेरणा से, प्रभाव से क्रोध को जीतने में सफल होते हैं, क्योंकि उनमें साधुओं के सान्निध्य क्षमा गुण का प्रादुर्भाव हो जाता है।

"णमो उवज्झायाणं" पद द्वारा मान या अहंकार रूप कषाय अपगत हो जाते हैं। नम्रता का गुण उत्पन्न होता है। उपाध्याय स्वयं विनय गुण से विभुषित होते हैं। जिन्होने जिस गुण को आत्मसात कर लिया हो, उनके समीप बैठने से, औरों में भी वह गुण प्रकट होता है। जैसे तीर्थंकर देव के समवशरण में उपस्थित वे प्राणी भी जिनमें जन्म जात वैर होता है उसे भूल जाते है और शांत हो जाते है क्योंकि तीर्थंकर देव अहिंसा और समता के सजीव प्रतीक होते है। अहिंसा का ऐसा ही प्रभाव होता है। महर्षि पतंजलिने योग सूत्र में लिखा है :-

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग: ॥"

जब जीवन में अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाती है, अहिंसा व्याप्त हो जाती है, तो अहिंसक के आसपास का वातावरण इतना पवित्र हो जाता है कि - वहाँ उपस्थित सभी प्राणी पारम्पारिक वैर भाव भूल जाते है।[३४९]

इसी प्रकार उपाध्याय भगवंत के जीवन व्यापी विनय का प्रभाव पड़ता है। जिससे उनको नमन करनेवालें, उनके सान्निध्य में आनेवाले लोगों का मान या अहंकार विनष्ट हो जाता है।

"णमो आयरियाणं" पद से मायाचार दूर होता है। अपने आप से प्राप्त शक्तियों को छिपाना, उनका सदुपयोग न करना, उनके कल्याण के कार्यों में न लगाना मायाचार कहलाता है। जो आचार्योचित भावों में परिणत हैं, वे धर्माचार्य अपनी शक्ति को जरा भी छिपाकर नहीं रखते। वे सदाचार की क्रियाओं में सदा संलग्न रहते हैं। आत्मा शक्ति या उर्जा का वे अध्यात्म विकास में उपयोग करते हैं। आचार्य पद को नमस्कार करने से नमस्कर्ता के भावों के अनुरूप उसमें शुभक्रियोपयोगी पराक्रम का उद्भाव होता हैं, उसका मायाचार या माया नामक दोष मिट जाता है। जब माया मिट जाती है, तो ऋजुता - सरलता नामक गुण प्रकट होता है।

"सोई उज्जुय भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।" यह आगमों में इसका साक्ष्य हैं। इसमें बताया गया है कि जो ऋजु होता हैं, उसके जीवन में शुद्धता आती है। शुद्ध व्यक्ति में धर्म टिकता हैं।[३५०]

"णमो सिद्धाणं" पद सांसारिक लोभ को मिटाने का अनन्य हेतु है। सिद्धपरमात्मा अनंत ऋद्धि से संपन्न होते हैं। उन्हें जरा भी सांसारिक लोभ नहीं होता। सांसारिक जीवों को पदार्थों का लोभ तब तक रहता हैं, जब तक आत्मा की अनंत ऋद्धि का वैभव का उन्हें दर्शन नहीं होता। उनको नमस्कार करने से, उनका स्मरण करने से साधक को आत्मा की अनंत ऋद्धि का दर्शन होता है, बोध होता है। उसके मन में संतोष वृत्ति जागृत होती है।[३५१]

परमेष्ठी भगवंतो के प्रति की जानेवाली नमस्कार क्रिया को पुण्यरूप शरीर को जन्म देनेवाली माता की उपमा दी गई है। जिस प्रकार माता बाह्य शरीर को उत्पन्न करती है, उसी प्रकार नमस्कार रूपी माता, पुण्यरूप शरीर को समुत्पन्न करती है। नमस्कार क्रिया से अनेकानेक शुभकर्मों का संचय होता है। बाह्य शरीर में भी स्वस्थता, दीर्घ आयुष्य, सुंदरता, दोषरहितता औदार्यता सहृदयता सौम्यता आदि गुण आंतरिक पुण्यरूप शरीर के बिना व्यक्त नहीं होते यह पुण्य का कारण हैं। शारीरिक, स्वस्थता, सुंदरता, बुद्धिमत्ता आदि कार्य हैं। एक ही समय में उत्पन्न होनेवाले दो बच्चों मे स्वभाव, स्वास्थ्य, शक्ति, बुद्धि एवं नीति आदि में अंतर पाया जाता है। इसका वास्तविक कारण पुण्यरूप शरीर का अंतर है। जिस मनुष्य का पुण्यरूप आभ्यंतरिक शरीर परिपृष्ट तथा प्रबल होता है, उसे उत्तम श्रेष्ठ पदार्थ और अनुकूल, सुखद स्थितियाँ स्वयं प्राप्त हो जाती है।

कोई जीव अपना आयुष्य पूर्ण कर जब एक गति से दूसरी गति में जाता है, तब उसके साथ तेजस और कार्मण दो शरीर होते है। ये जीव के साथ अनादिकाल से चले आ रहे हैं। उनमें कार्मण शरीर का अभिप्राय आत्मा के साथ संश्लिष्ट कर्म समूह से हैं। कोई भी जीव जिस प्रकार का कार्मण शरीर लेकर आता है, उसी प्रकार का बाह्य शरीर तथा साधन उसे प्राप्त होते हैं। यदि उस जीव में पुण्यों की प्रबलता होती है, तो उसका कार्मण शरीर पुण्यानुबंधी कहा जाता हैं। वह पुण्यों में उत्तम पदार्थों में, उत्तम कार्यो में रूचि उत्पन्न करता है। वह मोक्षानुकूल उत्तम सामग्री प्राप्त कराने का अनन्य हेतु होता है।

जीव अनादिकाल से कर्म के कारण परतंत्र है। वह सहज तया अशुभ कर्मों में तन्मय हो जाता है। शुभ आलंबन के बिना वह अशुभ भावना से दूर नहीं हो सकता, तथा शुभ आलंबन पुण्यानुबंधी पुण्य के बिना प्राप्त नहीं होते।

जीव को समस्त कर्मों से रहित बनना है। वही उसका परम, चरम, ध्येय है किंतु इस अंतिम ध्येय को प्राप्त करने के बीच में एक ऐसी अवस्था में से गुजरना पड़ता है, जो पुण्यानुबंधी कर्तव्यों द्वारा आत्मा को अंतिम लक्ष्य की ओर प्रेरित करती है।

इस तथ्य को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। एक चित्रकार के मन में दीवार पर चित्र बनाने की अभिलाषा जागृत होती है। इस कार्य हेतु सब से पहले उसको दीवार को ठीक करना आवश्यक होता है। उसमें विद्यमान खुरदरापन, गड्ढे आदि दूर करना, भित्ति को समतल, कोमल और स्वच्छ बनाना अपेक्षित होता है। यह सब कर लेने के अनंतर चित्रकार उस भित्ति पर चित्रांकन करता हैं। फलत: चित्र बहुत सुंदर बन जाता है।

इस तथ्य का विश्लेषण करें, तो यहाँ तीन अवस्थाएँ दृष्टि गोचर होती हैं। उनमें पहली अवस्था वह हैं, जिनमें भित्ति के चित्र के अयोग्य थी।

दूसरी अवस्था वह है जिसमें भित्ति को चित्र के योग्य बनाया।

तीसरी अवस्था वह है, जिसमें भलिभाँति चित्र बना। यदि चित्र बनने से पूर्व भित्ति को उपयुक्त नहीं बनाया जाता, तो चित्र कदापि सुंदर नहीं बन सकता था। उसी प्रकार जीव अनादिकाल से अशुभ भावों में अनुरक्त बना है। अत: उसे पहले पुण्यानुबंधी पुण्योंद्वारा उत्पन्न होनेवाले उत्तमोत्तम निमित्तों के शुभभाव में लाना आवश्यक हैं। जीव में शुभ भाव आने के पश्चात् शुद्ध-भाव रूपी रंग चढ़ सकता है।

यहाँ तीन स्थितियाँ निष्पन्न होती है - अशुभ भावों का वर्जन, शुभ भावों का ग्रहण शुभभावों से शुद्ध भावों में गमन। शुद्ध भावों का साक्षात्कार होना, मोक्षानुगामी साधना का उत्तम उपक्रम हैं। इस प्रकार शुभ भाव या पुण्यानुबंधी पुण्य, मोक्ष के अनुकूल उत्तम कार्यो में

रूचि, सन्मार्ग में स्थिरता, इत्यादि उत्पन्न करता है। नवकार मंत्र के जप एवं स्मरण से पुण्यानुबंधी पुण्य उत्पन्न होता है।

उपर्युक्त विवेचन का तात्पर्य यह है कि - साधक के लिए मोक्ष साध्य है यह कथन सुनिश्चित है, किंतु यह भी सुनिश्चित हैं कि - पुण्यानुबंधी पुण्य की पुष्टि के बिना वह कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। पुण्यानुबंधी पुण्य की प्राप्ति भी परमेष्ठी नमस्कार के बिना, वैसी उत्तम क्रियाओ के बिना नहीं होती। यह भी सुनिश्चित है। अत: नमस्कार की आराधना, पंच परमेष्ठी भगवंतो की उपासना मोक्ष प्राप्त का अनन्य हेतु है।

●●●

नवकार: परमात्म - साक्षात्कार का निर्बाध माध्यम

Direct Dialing to Divinity - परमात्मा के साथ सीधी बातचीत करने की कला -

आज विज्ञान का युग है। सभी क्षेत्रों मे विज्ञान ने अत्यधिक प्रगति की है, तथा उत्तरोत्तर प्रगति करता जा रहा है। दूरभाष या टेलीफोन के रूप में जनसंपर्क का एक विलक्षण माध्यम आज लोगों को प्राप्त है। भारतवर्ष में बैठा हुआ व्यक्ति अमेरिका में विद्यमान अपने मित्र या संबंधी से सीधी बात कर सकता है।

इस दूरभाष की प्रक्रिया में उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा है। लक्षित व्यक्ति के साथ सीधा वार्तालाप करने हेतु टेलीफोन कंपनियोंने सीधी संपर्क लाईनों की व्यवस्था की है, जिसके फलस्वरूप जिस व्यक्ति से बात करना चाहे, सीधे उसी से बात कर सकते है। वहाँ तीन प्रकार के नियमों का या व्यवस्था क्रमों का पालन आवश्यक है।

प्रथम नियम है - टेलीफोन की स्थानीय लाईन का असंबंध या स्थगन करना। जब तक लोकल लाईन द्वारा किसी स्थानीय व्यक्ति के साथ वार्तालाप होता रहेगा, तब तक डायरेक्ट लाईन में बातचीत नहीं हो सकती। डायरेक्ट लाईन में बात करना हो तो 'लोकल लाईन' का स्थगन करना आवश्यक है। लोकललाईन्सका Dis-connection पहले करना चाहिए।

दुसरा नियम है - कोड़ नंबर का डायलिंग करना। जैसे किसी को दिल्ली में स्थित व्यक्ति के साथ सीधी बात करनी हो तो, उसे दिल्ली के कोड़ नंबर का ड़ायलिंग करना अपेक्षित है। ऐसा करने से टेलीफोन दिल्ली सें जुड़ेगा।

तिसरा नियम है - जिस व्यक्ति के साथ बातचित करनी हो, उसके व्यक्तिगत नंबर का डायलिंग करना होगा। उस नंबर को जोड़ना होगा।

इस प्रकार ये तीन नियम आवश्यक हैं। ऐसा होने पर भी किसी के साथ 'डायरेक्ट लाईन' में, फोन में बातचीत हो सकती हैं। यह दैनन्दिन अनुभव की बात है।

इन्ही तीनों सिद्धांतो को णमोक्कार मंत्र के साथ जोड़ कर अरिहंत परमात्मा के साथ डायरेक्ट बातचीत कर सकते है -

पहला नियम

१. णमोक्कार महामंत्र में जिनके साथ हमें संपर्क साधना है, वे अरिहंत प्रभु है। उनके साथ संपर्क जोड़ने के लिये पहला नियम यह है कि जिस प्रकार टेलिफोन द्वारा किसी दूरवर्ती व्यक्ति के साथ बातचीत करनेवाला व्यक्ति स्थानीय लाईन को स्थगित कर देता है, उसी प्रकार वीतराग प्रभु के साथ संपर्क जोड़ने की भावना रखनेवाले व्यक्ति के लिये यह आवश्यक है कि वह लौकिक संबंधियों से तथा भौतिक वस्तु-संबंधी विचारों का त्याग करे। वैसा किये बिना वह परमात्मभाव के साथ जुड़ नहीं सकता। इसका अभिप्राय यह है कि - बहिरात्मभाव से छूटना 'लोकल लाईन' का disconnection है।

२. दूसरा नियम है - कोड़ नंबर का ड़ायलिंग। 'णमो' पद परमात्मा का कोड़ नंबर है।

जिस तरह दूर के व्यक्ति के साथ टेलिफोन पर संपर्क करने हेतु उस स्थान के कोड़ नंबर को ड़ायल करना पड़ता है, उसी प्रकार 'णमो' पद का उच्चारण परमात्मा के डायलिंग का कोड़ नंबर है। अर्थात् 'णमो' शब्द बोलते ही साधक परमात्मा-भाव की परिधि में आ जाता है। 'णमो' पद विभाव-दशा में से स्वभाव दशा में जाने के लिये 'टर्निंग पोईंट' है। 'णमो' पद अंतरात्म भाव रूप है।

३. तिसरा नियम है - जिससे बातचीत तथा संपर्क करना है, उसके नंबर का ड़ायल करना या साधक को परमात्मा के साथ अपना संपर्क जोड़ना है, परमात्मा के नंबर का ड़ायलिंग करना है परमात्मा के साथ डायरेक्ट बातचीत करने का नंबर यह है - ७५७७९।

परमात्मा का नंबर 'अरिहंताणं' पद है। इस पद का अर्थ परमात्म भाव में स्थिर होना है। इस प्रकार 'णमो अरिहंताणं' पद द्वारा साधक परमात्मा के साथ ड़ायरेक्ट लाईन द्वारा जुड़ सकता है। टेलीफोन में वार्तालाप करते समय कभी-कभी 'डायरेक्ट-लाईन' एंगेज भी आती है, परंतु परमात्मा की ड़ायरेक्ट लाईन कभी भी व्यस्त (engaged) नहीं होती।

टेलीफोन में बिना किसी रूकावट के सीधी बात हो सकती है, इसे हॉट लाईन (hot line) कह सकते है।

'णमो अरिहंताणं' पद परमात्मा के साथ सीधा संपर्क साधने की दिव्य कला या हॉट लाईन है।

परमात्मा के साथ डायरेक्ट लाईन में क्या बातचीत होती होगी ? यह प्रश्न मुमुक्षु के मन में उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता।

सांसारिक देव उपासना करनेवालों की इच्छाओं को पूर्ण करते हैं, किन्तु वे देव अपना स्वयं का स्वरूप उपासकों को नहीं देते। जबकि परमात्मा अरिहंत भगवान् 'निजस्वरूप के दाता' है। जब भक्त अपना तन, मन, धन, वचन तथा भाव, जो कुछ उसे प्राप्त है, वह सब परमात्मा के चरणों में समर्पित कर देता है तो परमात्मा उसके बदले भक्त को परमात्मा पद प्रदान करते है।

यह आदान-प्रदान के नियम (Law of receiving and giving) का प्रतीक है। इसी कारण अरिहंत प्रभु अपने स्वरूप के दाता कहे जाते है।

भक्त जब 'णमो अरिहंताणं' कहता है, तब भगवान् 'तत्त्वमसि' जिसको तू नमस्कार करता है, वह तू ही है, ऐसा भाव प्रदान करते है।[३५२]

'तत्त्वमसि' यह वाक्य उपनिषद् वाङ्मय में सुप्रसिद्ध है। वहाँ चार महावाक्यों का उल्लेख है - १) प्रज्ञानं ब्रह्म २) अहं ब्रह्मास्मि ३) तत्त्वमसि ४) अयमात्मा ब्रह्म।[३५३]

इन चार वाक्यों में पहला वाक्य प्रधान या विशिष्ट ज्ञान का सूचक है। ज्ञान विशिष्टता तब प्राप्त करता है, जब वह परिपूर्ण होता है। परिपूर्ण ज्ञान द्वारा ही आत्मा-परमात्मा का रहस्य समझा जा सकता है।

जीव शुद्धावस्था में ब्रह्म है। इसलिये अपने आप को वैसा ही समझे। ये चारों महावाक्य जीव और ब्रह्म के ऐक्य के सूचक है।

जैन दर्शन की भाषा में कर्म-मुक्त आत्मा और कर्म-युक्त आत्मा का रहस्य इनमें समाया हुआ है। कर्म-मुक्त और कर्म-युक्त आत्मा शुद्ध स्वरूप की दृष्टि से सर्वथा एक समान है। जो कर्म-युक्त हैं वे संसारावस्थित है तथा जो कर्ममुक्त है, मोक्षावस्थित है। मूलस्वरूप की दृष्टि से दोनों में भेद नहीं है। उपनिषद् का चौथा महावाक्य इसी आशय का प्रतिपादक है।

जब जीव अपने शुद्ध स्वरूपात्मक ज्ञान से ओतप्रोत हो जाता है, तब उसकी भेद दृष्टि मिट जाती है। उसे आत्मा -परमात्मा के अभेद का ज्ञान हो जाता है। वह परमज्ञानात्मक दशा परमात्मभाव या ब्रह्म है। इसीलिये प्रज्ञान को ब्रह्मरूप में प्रतिपादित किया गया है। दूसरा वाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' इस भाव का द्योतक है कि - जब जीव प्रज्ञानावस्था में परिणत हो जाता है, उसे अपने शुद्ध स्वरूप का परमात्मभाव का साक्षात्कार होता है और तब मैं ब्रह्म या परमात्मा हूँ, ऐसी आंतरिक अनुभूति होती है।

वास्तव में परमशुद्धावस्था में तो परमात्मा ही है। तीसरा 'तत्त्वमसि' यह वाक्य आत्मा को संबोधित कर कहा गया है।

अविद्यायुक्त जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न मानता है। यह उसका अज्ञान है। उसी अज्ञान को मिटाने के लिये यह महावाक्य है, जिसमें जीव को संबोधित कर यह ज्ञापित किया गया है कि तुम वही हो, जो परमात्मा है। अपने को उनसे भिन्न, हीन, तुच्छ मत समझो। चौथे महावाक्य मे तीनों वाक्यों का निष्कर्ष है।

नवकार मंत्र 'तत्त्वमसि' द्वारा जीव को स्मरण कराता है, उद्‌बोधन देता है कि - हे जीव ! तुम अपने को अन्य क्यों समझते हो ? तुम तो वास्तव मे परमात्मा हो। कर्मों के आवरणों ने तुम्हारे शुद्ध स्वरूप को आच्छादित कर रखा है, उन आवरणों को हटा दो। तुम्हें तत्त्वमसि की सहज अनुभूति प्राप्त होगी।[३५३]

अनुचिंतन

टेलिफोन या दूरभाष की प्रक्रिया आज के विज्ञान जगत को अद्वितीय देन है किन्तु णमोक्कार मंत्र मूलक आध्यात्मिक प्रक्रिया की उससे भी बड़ी देन हैं। टेलीफोन की प्रक्रिया से तो हम भौतिक जगत् के व्यक्तियों से ही अपने वार्तालाप का संपर्क जोड़ सकते हैं। भौतिक वस्तुएँ समस्त लौकिक संबंध, चर्चाएँ, विचार-विमर्श, इनमें से कुछ भी शाश्वत नहीं है। सब विनाशयुक्त है। उन्हें क्षणभंगुर कहा जाये तो भी अत्युक्ति नहीं होगी।

मोहवश, लोभवश, भौतिक उपलब्धियों को हम बहुत बड़ा मानते है, किन्तु वास्तविक दृष्टि से उनमें कोई बड़प्पन नहीं है। बड़प्पन या महत्त्व तो उस वस्तु का होता है जो शाश्वत् हो, शांतिप्रद हो, श्रेयस्कर हो।

संसार के किसी बड़े से बड़े राष्ट्रनायक, धनकुबेर या सत्ताधीश से संपर्क साध लेने, वार्तालाप कर लेने से ऐसा कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जो आध्यात्मिक निधि का रूप ले सके। *उन तथाकथित बड़े लोगों के स्वयं के पास भी तो ऐसी कोई दिव्य, महत्त्वपूर्ण,* अविनश्वर वस्तु नहीं है, फिर वे हमें क्या दे सकते है ?

णमोक्कार महामंत्र रूप टेलीफोन या दूरभाष से जुड़नेवाले संपर्क की महिमा का , उपादेयता का वर्णन नहीं किया जा सकता है। इनसे सम्पर्क साधनेवाले को वे अपने जैसा महान बना देते है, किन्तु सम्पर्क साधनेवाले में तीव्र उत्कंठा, जिज्ञासा, तितिक्षा तथा मुमुक्षों का भाव अनवरत रहना चाहिए।

इस भावधारा की पवित्रता साधक के आंतरिक कालुष्य को प्रक्षालित कर उसे निर्मल

एवं स्वच्छ बना देती है। उसकी चरम परिणति यह होती है कि - उपासक उपास्य का पद पा लेता है। वह जन-जन का आराध्य बन जाता है। णमोक्कार महामंत्र का यह अनुपम वैशिष्ट्य है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शीर्षक के अंतर्गत विविध पक्षों को लेते हुए णमोक्कार महामंत्र की उपयोगिता पर प्रकाश ड़ाला गया है। यहाँ आगम, योग, मंत्र, कर्म -साहित्य आगमगत अनुयोग, आध्यात्मिक दृष्टि, आत्मकल्याण, आत्माभ्युदय संघ-हित, व्यक्ति-उत्थान, सामाजिक - श्रेयस्, चराचर समस्त विश्व के कल्याण, दुःख-निवृत्ति, विघ्न-नाश, सुख प्राप्ति अनुकूलता इत्यादि विविध दृष्टिकोनों को लेते हुए विश्लेषण किया गया है। णमोक्कार महामंत्र की ऐसी गरिमा है कि वह इन सबकी कसौटी पर खरा उतरता है।

इन पक्षों को हम दो भागों मे विभक्त कर सकते है। एक वह भाव है - जिसका संबंध आत्मा के परम कल्याण या चरम श्रेयस् के साथ जुड़ा हुआ है। वह सर्वथा आध्यात्मिक है। वहाँ भौतिक अभिप्साओं और उपलब्धियों का कोई स्थान नहीं है। वह तो संवर निर्जरामय साधना के साथ संलग्न है।

कार्मिक आवरणों के निरोधमूलक संवर के लिए जिन प्रबल आत्म-परिणामों की आवश्यकता होती है, णमोक्कार महामंत्र के जप, ध्यान, तथा अभ्यासद्वारा वह उपलब्ध होती है। पुनःपुनः संसार सागम् में परिभ्रमण करनेवाला कर्म प्रवाह अवरूद्ध हो जाता है, जो आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। साथ ही साथ महामंत्र की आराधना से एक ऐसा आंतरिक उर्जा का जागरण होता है, जिससे साधक को तपश्चरण में आनंदानुभूति होने लगती है।

चिरकाल से लिप्त कर्म-मल धुलता जाता है - यह दूसरी आध्यात्मिक उपलब्धि है। जिसका उल्लेख आगमों में, आगमगत अनुयोगों में, मंत्र शास्त्रों में, योगशास्त्र में तथा कर्मग्रन्थों मे हुआ है। इन दोनों आध्यात्मिक उपलब्धियों से वह परमोत्कृष्ट प्रस्फुटित होता है, जिसके लिये अनंतकाल से जीव व्याकुल है।

दार्शनिक भाषा मे जीव को सिद्धत्व, मुक्तत्व प्राप्त हो जाता है, जिससे बढ़कर इस त्रैलोक्य में कोई भी उपलब्धि नहीं है। णमोक्कार मंत्र का यह महत्तम लाभ है।

दूसरा भाग ऐहिक या लौकिक है, जिसका संबंध सांसारीक उन्नति, समृद्धि-संपत्ति,

सुख इत्यादि के साथ संलग्न है। इन सभी की प्राप्ति के हेतु शुभ-कर्म है। यद्यपि णमोक्कार महामंत्र का परम लक्ष्य कर्मावरणों को तोड़ना है, पर साधना काल में ज्यों-ज्यों रागादि भाव हल्के पड़ते जाते हैं - अप्रशस्त से प्रशस्त बनते जाते हैं, त्यों-त्यों पुण्य प्रकृतियों का बंध होता जाता है। यद्यपि साधक का यह लक्ष्य नहीं होता, पर वे प्रासंगिक रूप में बंधती है, जिनके फलस्वरूप सांसारिक अनुकूलताएँ प्राप्त होती है।

सांसारिक सुख, वैभव आदि की प्राप्ति के दो प्रकार के परिणाम होते हैं। मिथ्या-दृष्टि पुरुष उन्हें प्राप्त कर नितांत भोगोन्मुख जीवन अपनाते हैं। सम्यग्-दृष्टि पुरुष उनमें विमूढ़ नहीं बनते। वे उनका सात्त्विक कार्यो में उपयोग करते है। यदि सद्बुद्धि और सदुद्देश्य हो तो संपत्ति विकार का हेतु नहीं बनती। वह सांसारिक सुविधा देते हुए जीवन को सात्त्विक बनाने में सहायता करती है।

णमोक्कार मंत्र का आराधक उसी कोटि का व्यक्ति होता है। भौतिक उपलब्धियाँ भी उसको आध्यात्मिक दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार वह आगे बढ़ता -बढ़ता आध्यात्मिक मार्ग स्वीकार कर लेता है, तथा मोक्षमार्ग का पथिक बन जाता है। यह णमोक्कार मंत्र का अद्भुत प्रभाव है।

णमोक्कार मंत्र और तद्नुस्यूत साधना पथ का अंतिम लक्ष्य सिद्धावस्था है। सिद्ध प्रणम्य और अभिवंद्य है। वह प्रणम्यता अन्त:स्फुर्ति के अमृत कणों से संसिक्त है। सिद्धावस्था प्राप्त करने पूर्व साधू पदपर विचार होगा क्योंकि साधू के आचार, विचार, क्रिया को जानना आवश्यक है इसलिए चतुर्थ अध्याय में विस्तृत वर्णन आएगा।

तृतीय प्रकरण

१ **जीवन नी सर्व श्रेष्ठ कला श्री नवकार :** (बाबुभाई कड़ीवाला) पृ. २९

२ **जीवन नी सर्व श्रेष्ठ कला श्री नवकार** : (ले. बाबुभाई कड़ीवाला) पृ. ४०

३ **मंगल मंत्र एक अनुचिंतन :** (ले. डॉ. नेमिचंद शास्त्री) पृ. १६०

४ **त्रैलोक्य दीपक - महामंत्राधिराज** : (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. १२४

५ **क) आत्मोत्थान :** (ले. विश्व हितेच्छु) पृ. २०

ख) जैन योग साधना : (श्री धनराजजी बांठिया) पृ. ८३-८५

ग) कर्म - विज्ञान : (ले आ. देवेंद्रमुनि) भाग ९, पृ. ४२,४३

६ नासद ध्यानानि सेव्या, कौतुकेनापि किन्त्विहा ।
स्वनाशोयैव जायन्ते, सेव्यमानानि तानि यत् ॥
योगशास्त्र - प्रकाश - ९, श्लोक १५

७) ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषू पजायते ।
संगात् संजायते कामः, कामात् क्रोधो ऽभिजायते ॥
क्रोधाद भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृति विभ्रमः ।
स्मृतिभ्रशांद् बुद्धिनाशो, बुद्धि नाशात् प्रणश्यति ॥
श्रीमद् भगवद् गीता अध्याय - २ श्लोक - ६२,६३

८) अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पाणमेवमप्पाणं, जइत्ता सुहमेहएं ।
उत्तराध्ययन सूत्र - अ. ९, गा. ३५

९) जाड्यं धियो हरति, सिञ्चति वाचि सत्यम् ।
मानोन्नतिं दिशति, पापमपा करोति ॥
चेतः प्रसादयति, दिशु तनोति कीर्तिम् ।
सत्संगतिः कथय, किं न करोति पुंसाम् ।
नीतिशतक श्लोक - १५,१६

१०) कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय नासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लाभो सव्व विणासणो ॥
दशवैकालिक सूत्र - (युवाचार्य मधुकर मुनि) अ. ८ ,गा. ३८

११) दुक्खं हयंजस्स न होई मोहो ... लोहो हओ जस्स न किंचणाइ ॥
उत्तराध्ययन सूत्र - अ. ३२, गाथा ८

१२) **एसो पंच नमोक्कारो :** (युवाचार्य महाप्रज्ञ) भूमिका पृ. ४

१३) **निर्ग्रंथ प्रवचन :** (श्रीमद् राजचंद्र) पृ. ६

१४) **निर्ग्रंथ प्रवचन** : (संग्राहक और अनुवादक - चोथमलजी महाराज)
अध्याय ६- पृ. २५५

१५) **प्रवचनसार** (कानजी स्वामी) गाथा १४५

१६) **त्रैलोक्य दीपक महामंत्राधिराज** : (भद्रंकर विजयजी) पृ. १०१

१७) ध्याता - ध्येय - ध्यान गुण एके, भेद- छेद करंशु हवे टेके।
खीर नीर परे तमसुं मिलशुं, वाचक यश कहे हैजे हलशुं ॥
शिवपद - पूजे: शिवपद पावे: (आचार्य यशोविजयजी) पृ. २६

१८) क) उपयोगो लक्षणम्
तत्वार्थ सूत्र : (उमास्वाती) अ.२, सूत्र ८

ख) जीवो उवओग - लक्खणो।
उत्तराध्ययन सूत्र (युवाचार्य मधुकर मुनि) अ. २८, गा. १०

ग) **प्रवचनसार :** (कुंदकुंदाचार्य) अ.२, गाथा ६३, पृ. १९७

१९) क) **प्रवचन रत्नाकार** : (ले. गुरुदेव श्री. कानजी स्वामी) पृ. ७९

ख) **छह ढाला** : (पं. दौलतराम) चौथी ढाल छन्द ५

२०) **रत्नसंग्रह** : (ले. ब. हरिलाल जैन) भा. १-२, पृ. १४९)

२१) क) गुणओ उवओगगुणे - (सं.पुष्पभिक्खु सुत्तागमे) (ठाणांग)
भा.१, अ.५, उ.३ पृ.२६६

ख) उवओगलक्खणे णंजीवे।
सुत्तगमे (भगवती) श. १३ उ.३ पृ. ६८४

२२) क) **जैन तत्व प्रकाश** : (पू. अमोलक ऋषिजी महाराज) पृ. १२५

ख) **तत्वार्थ सूत्र** : (उमास्वाति) अ.१, सू.९, पृ. ३२

ग) **बृहद् द्रव्य संग्रह,** गा. ४,५, पृ. ११,१२

२३) क) **तत्वार्थ सूत्र** :(उमास्वाति)- अ.६, सू. ३,४

ख) **तत्वार्थ श्लोकवार्तिक** : (विद्यानंद स्वामी) अ.६ सू.३, पृ. ४४३

ग) **तत्वार्थ राजवार्तिक** : (भट्टाकलंक देव) अ.६, सू.२, पृ. ५०६

घ) **प्रवचनसार :** (कुंदकुंदाचार्य) ज्ञानाधिकार गा.११, पृ. ११

२४) **प्रवचनसार** : (कुंदकुंदाचार्य) ज्ञेयोधिकार गा. ६४, पृ. १९७

२५) **चेतनालक्षणो जीव : ।**
षड्दर्शन समुच्चय (हरिभद्रसूरि) पृ. २११

२६) **जैनेंद्र सिद्धांतकोश** - भाग १ (ले. जिनेंद्रवर्णी) पृ. ४३३

२७) **तत्वार्थ सूत्र** : (उमास्वाति) अ.२, सू. १

२८) क) **जैन लक्षणावली :** (सं. बालचंद सिद्धांत शास्त्री) पृ. १५०

ख) **अध्यात्म पत्रसार** : (भद्रंकर विजयजी) पृ. ७-९

२९) **त्रैलोक्य दीपक - महामंत्राधिराज** : (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ११०

३०) क) **तत्वदोहन :** (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ४२

ख) **सामायिक सूत्र** : सारांश परिशिष्ट - ९ पृ. १

३१) **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास** :(ले. डॉ. मोहनलाल मेहता) पृ. ७५

३२) अभिधान राजेंद्र कोश में. सूक्ति - सुधारस - खंड - ७ पृ. १०१ (

३३) **सामायिक सूत्र** - पृ. ७३ (अमरमुनि)

३४) **त्रैलोक्य दीपक - महामंत्राधिराज :** (भद्रंकर विजयजी) पृ. २६३

३५) क) सुण्णमप्पाणं तं पसत्थभावेहिं आवसेतीति आवासं।
अणुयोगद्वार चूर्णि, पृ. १४

ख) सामाइयं, चउवीसत्थंओ,वंदणयं, पडिक्कमणं, काउसग्गो पचक्खाणं।
अणुयोगद्वार सूत्र (पू. घासीलालजीम.कृत) भा. १ सू.२९, पृ. १७८

३६) समग्रस्यांपिं गुणग्रामस्यावासकमित्यावासकम् ।
- अनुयोगद्वार (मलधारीय)टीका, पृ. २८

३७) समणेण सावएण य .... तम्हा आवस्सयं नमः।।
आवश्यक वृत्ति - गा. २, पृ. ५३

३८) **अनुयोगद्वार सूत्र :** (युवाचार्य मधुकर मुनि) प्रस्तावना पृ. ११

३९) सपाडिक्कमणो धम्मो .....कारण जाए पडिक्कमणं ॥
आवश्यक निर्युक्ति - गाथा १२४४

४०) क) **आवश्यक सूत्र** (युवाचार्य मधुकर मुनि) पृ. ५९
ख) सामायिक धर्म नुं विज्ञान (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ७८

४१) सामायिक - विशुद्धात्मा, सर्वथा धातिकर्मणाः ।
क्षायोत्केवलमाप्नोति, लोकालोक प्रकाशकम् ॥
हरिभद्र अष्टक - प्रकरण ३०-१

४२) क) जो समो सव्वभूएसु........ इइ केवलि- भासियं ॥
आवश्यक निर्युक्ति, ७९९
ख) **अनुयोग द्वार** - पृ. १२८
ग) **नियम सार गाथा** - पृ. १२७

४३) क) जस्स सामाणिओ अप्पा .... इइ केवलि भासियं ॥
आवश्यक निर्युक्ति ७९८
ख) अनुयोग द्वार १२७
ग) नियम सार १२७

४४) सामाइयं संखेवो चोद्दस पुव्वत्थपिंडोत्ति ॥
विशेषावश्यक भाष्य : (आ. जिनभद्रगणि क्षमा श्रमण) गाथा २७९६

४५) **तत्वार्थ वृत्ति :** (उपाध्याय यशोविजयजी) प्र.१, गा. १

४६) आया णे अज्जो ! सामाइए, आयाणे अज्जो !
सामाइयस्स अट्ठे - जाव आयाणे +अज्जो ।
क) **भगवती सूत्र :** (युवाचार्य मधुकर मुनि) पृ. १३०
ख) **धर्मकथानुयोग :** द्वितीय स्कंध - सूत्र - ५६८

४७) आदिमंगलं समाइयज्झयणां .... सामाइयज्झयणं मंगलं भवति ॥
आवश्यक चूर्णि

४८) **आवश्यक निर्युक्ति**, गाथा ७९६

४९) समाइयं च तिविहं, समत्तं .... आगारमणगारियं चेव ॥ आवश्यक निर्युक्ति ७९७

५०) **अनुयोगद्वार सूत्र :** (युवाचार्य मधुकर मुनि) पृ. ४६०

५१) **उत्तराध्ययन सूत्र :** (युवाचार्य मधुकर मुनि) अ. १२

५२) **अंतकृत दशांग सूत्र :** (युवाचार्य मधुकर मुनि) वर्ग ६, अ. १३

५३) क) **मूलाराधना** २१ / ५२२ - ५२६

ख) **धवला** ८/३, ४१

ग) **अनुयोगद्वार :** (सं. मधुकर मुनि) पृ. ५०

घ) **राजवार्तिक** - ६/२४/११

ड) **श्रावकाचार :** (अमित गति)८ / ३१

५४) समाइएणं भन्ते ! जीवे किंजणयई ?
सामाइएणं सावज्जोगविइं जणंयई ॥
उत्तराध्ययन सूत्र (सं. मधुकर मुनि) अ. २९, सू. १२, पृ. ४९४

५५) **तत्वार्थ** - ७ - १६ (उमास्वामि)

५६) क) दीघनिकाय - महासतिपट्ठान - सुत्त पृ. १५

ख) **संयुत्तनिकाय** - पृ. ८-१०

५७) **सुत्तनिकाय** - १/१/८

५८) **सुत्तनिकाय** - १/२/६

५९) **मज्झिमनिकाय** - ३/४०/२

६०) **सुत्तनिपात** - ३/३/७/७

६१) **श्रीमद् भगवद्गीता** - २ / ४८

६२) **श्रीमद् भगवद्गीता** ५/ १८

६३) **श्रीमद् भगवद् गीता** ४ /२२

६४) क) **श्रीमद् भगवद् गीता** ५ / १९

ख) **गीता (शांकर भाष्य)** ५ / १८

६५) **श्रीमद् भगवद्गीता** ५ / १९

६६) **श्रीमद् भगवद् गीता** ९ / १९

६७) **श्रीमद् भगवद् गीता (शांकर भाष्य)** ६ / ३२

६८) **गीता** - २ / ५

६९) **गीता** - १८ / ५४

७०) **श्रमण सूत्र :** (उपाध्याय - अमरमुनि) पृ. ६९

७१) **प्रतिक्रमण सूत्र लोगस्स सूत्र :** (महासतीजी डॉ. धर्मशीलाजी महाराज) पृ. १०-१५

७२) **बृहद् वृत्ति** - पत्र ५८१

७३) **गीता** - १८/६६

७४) **सूत्रकृंतांग सूत्र :** (युवाचार्य मधुकर मुनि) १ / १६

७५) क) **मज्झिमनिकाय** ३ / ४४

ख) **इतिवुत्तक** ३ / ४३

७६) **श्रीमद् भगवद्गीता** - १७/३

७७) **श्री उत्तराध्ययनसूत्र :** (युवाचार्य मधुकर मुनि) अ. २९, सू. २४, पृ. ४९४

७८) **बृहद् वृत्ति,** पत्र ५८१

७९) पासत्थाइं वंदमाणस्स नेव ... तह कम्मबंधं च ॥
आवश्यक निर्युक्ति : (आ. भद्रबाहु) गा. ११०८

८०) जे बंभ चेरभट्टा पाए ... सुदुल्लहा तेसि ।
आवश्यक निर्युक्ति : (आ. भद्रबाहु) गाथा ११०९

८१) **धम्मपद** १०८

८२) **धम्मपद** १०९

८३) **मनुस्मृति** २ /१२१

८४) **श्रीमद् भागवत् पुराण** ७/५/२३

८५) **श्रीमद् भगवद् गीता** - १८ / ६५

८६) क) **आवश्यक निर्युक्ति** - १२०७ -१२०७-१२११

ख) **प्रवचनसारोद्धार** - वंदनाद्वार

८७) वन्दणएणं भंते ! जीवे किं जणयई ? वन्दणएणं नीचागोयं .. णं जणयई ।
उत्तराध्ययन सूत्र : (सं. मधुकर मुनि) अ. २९, सू. ११, पृ. ४९४

८८) **तत्वार्थ सूत्र :** (उमास्वाति) अ. ९, सू. २२

८९) प्रतीपं क्रमणं प्रतिक्रमण् अयमर्थः - शुभयोगेभ्यो .....

९०) स्वस्थानाद यत्परस्थानं .... प्रतिक्रमणमुच्यते ॥
आवश्यक वृत्ति

९१) प्रति प्रतिर्वनं वा ..... ज्ञेयं प्रतिक्रमण् ॥ -आवश्यक निर्युक्ति, गा. १२५०

९२) पडिकमणं पडियरणा.... पडिकणमं अट्ठहा होइ ॥ -
आवश्यक निर्युक्ति १२३३

९३) क) **पडिक्कमणं पुनरावृत्तिः** - आवश्यक चूर्णि
ख) ध्यान एक दिव्य साधना (आ. शिवमुनि) पृ. ५५

९४) अत्यादरात् चरणा पडिचरणा अकार्य परिहारः कार्यप्रवृत्तिश्च । -
आवश्यक चूर्णि

९५) **उत्तराध्ययन सूत्र :** (सं. मधुकर मुनि) अ. २९, सू. ११

९६) **अशुभभाव -** नियत्तणं नियत्ती - आवश्यक चूर्णि

९७) **उत्तराध्ययन सूत्र :** (सं. मधुकर मुनि) अ. २९ सू. ६

९८) **उत्तराध्ययन सूत्र :** (सं. मधुकर मुनि) अ. २९ सू. ७

९९) पडिसिद्धाणं करणे ...विवरीय परुवणाए अ ॥ - आवश्यक निर्युक्ति, गाथा १२६८

१००) **भाव - प्रतिक्र मण :** (डॉ. साध्वी धर्मशीलाजी महाराज) एम.ए.पीएचडी.)
पृ. १-१०

१०१) मिच्छत्ताइं ण गच्छइ ... भाव पडिकम्मणं ॥ -आवश्यक निर्युक्ति (हा. भ. वृ.)

१०२) क) **आवश्यक निर्युक्ति**
ख) प्रतिकमण शब्दो हि अत्राशुभयोग .... अशुभयोग निवृत्ति न दोष इति ।
(आचार्य हरिभद्र)

१०३) **स्थानांग सूत्र :** (सं. मधुकर मुनि) ६/५३७

१०४) Shri Patikrman Sootra- (with meaning) (Editor-Translator) Dr,
Dharmashilaji M.A.Ph.D. Shahitya Ratna) - Page 19

१०५) **उदान :** (अनुवादक - जगदीश काश्यप) ५ /५

१०६) अनुजानामि भिक्खवे.... विनयपुरेक्खा रता। महावग्ग - पृ. १६७

१०७) **बोधिचर्यावतार -** ५ / ९८

१०८) **कृष्ण यजुर्वेद - दर्शन और चिंतनः** भाग २ पृ. १९२ - से उद्‌घृत

१०९) **खोरदेह अवस्ता -** ५ /२३ - २४

११०) क) **उत्तराध्यायनसूत्र :** (फूलचंद्रजी महाराज) अ. २९, गा.१३, पृ. ५३९
ख) भावनी भिनाश, करे कर्म विनाश - ले. वनिताबाई महाराज - पृ. ६५

१११) **अर्हम् :** (ले. युवाचार्य महाप्रज्ञ) पृ. ५६

११२) **अनुयोगद्वार सूत्र :** (सं. मधुकर मुनि) पृ. ४९, ५०

११३) तस्स उत्तरीकरणेणं पायच्छित्तकरणेणं .... ठामि काउस्सग्गं।
आवश्यक सूत्र : (सं. मधुकर मुनि) आगार सूत्र पृ. १५

११४) **तत्वार्थ सूत्र :** (उमास्वाति) अ. ९, सू. २१, २२

११५) **अनुप्रेक्षा नुं अमृत :** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ४०

११६) **आवश्यक निर्युक्ति :** गा. १५४८

११७) तिविहाणुवसग्गाणं ... काउसग्गो हवइ सुद्धो ॥
आवश्यक निर्युक्ति, गा. १५४९

११८) **कायोत्सर्ग ध्यान :** (ले. अमृतलाल, कालीदास दोशी) पृ. ९

११९) सो पुण काउस्सगो .... भावतो काउस्सग्गो झाणं ॥ आवश्यक चूर्णि

१२०) काउस्सगं तओ कुज्जा सव्वदुक्खविमोक्खणो ॥
उत्तराध्ययन सूत्र (सं. मधुकर मुनि) अ. २६, गा. ४२

१२१) **आवश्यक निर्युक्ति,**गाथा १४५९, १४६०

१२२) **योगशास्त्र :** ३ पत्र २५०

१२३) तत्र शरीरनिस्पृह; स्थाणुरिवोर्ध्वकायः.... विवक्ते देशे।
मूलाराधना - २ - ११३, विजयोदया, पृ. २७८, २७९

१२४) चउव्विहे संसारे पण्णत्ते, तं जहा ..., भाव संसारे। स्थानांग सूत्र - ४,१२,६१

१२५) **जैन थोक संग्रह :** (धींगडमलजी गिडिया) भा. २ पृ. ११०

१२६)   जे गुणे से आवट्टे। आचारांग १/१/१५

१२७)   सो उस्सग्गो दुविहो चिट्ठए... उवसग्गभिजुं जणे बिइओ ॥
आवश्यक निर्युक्ति, गा. १४५२

१२८)   क)   तत्र चेष्टा कायोत्सर्गोऽष्ट-पंचविंशति ... बाहुबलिरिव भवति ॥
योगशास्त्र - ३ पत्र २५०

ख)   अन्तमुहूर्तः कायोत्सर्गस्य जघन्यःकालः वर्षमुत्कृष्ट
- मूलाराधना -२, ११६ विजयोदयावृत्ति

१२९)   क)   लोगस्स सुत्तं (संशोधन - गुजराती - विजय विक्रम सूरिश्वरजी)
पृ. १०-२०

ख)   योगशास्त्र ३ पत्र २५१

१३०)   चत्तारि दो दुवालस .... वरिसे अट्ठोत्तर सहस्सा ॥
प्रवचन सारोद्धार

१३१)   सायाहने उच्छ्वास शतकं ... योगभक्तौ तौ द्वादुदाहतौ ॥
मूलाराधना - विजयोदयावृत्ति - १, ११६

१३२)   अष्टत्तोरच्छ्वासः कायोत्सर्ग प्रतिक्रमे.... नवधा चिन्तिते सति ॥
अमितगति श्रावकाचार ८,६८, ६९

१३३)   अष्टविंशति संख्यानाः कायोत्सर्गामता जिनैः .... तौ द्वावुदाहृतौ ॥
अमितगति श्रावकाचार, ८, ६६, ६७

१३४)   **उत्तराध्ययन सूत्र** - अ. २६, गा. ३९-५१

१३५)   अभिक्खणं काउस्सगकारी - **दशवैकालिक चूलिका,** २-७

१३६)   क - देहमइजड्ड सुद्धी सह दुक्खति तिक्खया अणुप्पेहा.... सहदुहमज्झत्थचा
चेव ॥ - कायोत्सर्गशतक - गा. १३

ख)   मणसो एगग्गतं जणयइ ... सुहदुहमज्झत्थया चेव ॥ - व्यवहार भाष्य
पीठिका वृत्ति- गा. १२५

ग)   प्रयत्नविशेषतः परमलाघवसंभवात् । - व्यवहार भाष्य पीठिका वृत्ति
गा.१२६

१३७)   **प्रवचन सारोद्धार** - पृ. ४९

१३८) **बोधिचर्यावतार** - ३ /१२, १३

१३९) प्रवृत्तिप्रतिकूलतया आ - मर्यादया ख्यानं - प्रत्याख्यानम् - योगशास्त्रवृत्ति

१४०) अविरति स्वरुप प्रभृति प्रतिकूलतया आ-मर्यादया .... कथनं प्रत्याख्यानम् ॥
प्रवचन सारोद्धार वृत्ति

१४१) **उत्तराध्ययनसूत्र :** (सं. मधुकर मुनि) अ.९,गाथा ४८

१४२) तत्तो चरितधम्मो, कम्मविवेगो तओ अपूव्वं तु... मुक्खो सयासुक्खो ॥
आवश्यक निर्युक्ति १५९६

१४३) आणागतं १ अतिक्कंतरं कोडिसहितं.. चेव अद्धाए १०, पच्चखाणं भवे
दसहा। **भगवती सूत्र** ७/२, गा. १, पृ. १२७

१४४ क) अणागयमातिक्कंतं..... पच्चखाणं दसविहंतुं
स्थानाङ्ग सूत्र - दशकस्थान - प्रथम उद्देशक - सू. ४६, पृ. ७८७, ७८८

ख) **स्थानाङ्गवृत्ति पत्र** - ४७२, ४७३

१४५) **आवश्यक निर्युक्ति** - अ. ६

१४६) **मूलाचार :** (आ. वट्टेकर) पूर्वार्ध - षड़ावश्यक अधिकार - गा. १४०, १४१

१४७) **आवश्यक निर्युक्ति** - ८८५

१४८) एवं खलु से दुप्पच्चक्खाइ सव्वपाणेहिं... मोसं भासं भासइ ॥
भगवती सूत्र - ८/२

१४९) जाणगो जाणगसगासे, अजाणगो ... सगासे, अजाणगो ॥ प्रवचन सारोद्धार वृत्ति

१५०) **योगशास्त्र :** (ले. हेमचंद्राचार्य) पृ. १५३

१५१) **उत्तराध्यन सूत्र :** (सं.मधुकर मुनि) अ.२९- गा. ३३

१५२) **उत्तराध्ययन सूत्र :**(सं. मधुकर मुनि) अ. २९/३४

१५३) **उत्तराध्ययन सूत्र :** (सं. मधुकर मुनि) अ. २९/३५

१५४) **उत्तराध्ययन सूत्र :** (सं. मधुकर मुनि) अ. २९/३७

१५५) **उत्तराध्ययन सूत्र :** (सं. मधुकर मुनि) अ. २९/४१

१५६) **उत्तराध्ययन सूत्र :** (सं. मधुकर मुनि) अ.२९/३८

१५७) **उत्तराध्ययन सूत्र :** (सं. मधुकर मुनि) अ.२९/३९

१५८) **उत्तराध्ययन सूत्र :** (सं. मधुकर मुनि) अ. २९ / ३६

१५९) **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास :** (ले. प. बेचरदास जी. दोशी) पृ. १६२

१६०) **त्रैलोक्य दीपक महामंत्राधिराज :**)ले.भद्रंकर विजयजी) पृ. २६३-२६५

१६१) **जैन धर्म में तपका महत्त्व :** (श्री. चंदनमल बाबेल) लेख १२०

१६२) **भावना योग एक विश्लेषण :** (आ. आनंद ऋषिजी महाराज) पृ.३५६

१६३) **शांतसुधारस :** (ले. उपाध्याय, विनज विजयजी) पृ. ३२७

१६४) **ध्यान - जागरण** - पृ. ५५

१६५) **तत्वार्थ सूत्र :** (उमा स्वाति) अ. ७, सूत्र ६

१६६) क) **भावनायोग एक विश्लेषण :** (ले. आ. आनंदऋषीजी महाराज) पृ.३२

ख) **मंगलवाणी** - पृ. २७४, २७५

१६७) क) मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि नियोजयेत्
धर्म-ध्यान .....तस्य रसायनम् योगशास्त्र (आ. हेमचंद्र)
प्रकाश - ४ श्लोक ११७, पृ. १४४

ख) **साम्यशतक :**(सं. डॉ. धर्मशीलाजी महाराज एम.ए.पीएचडी.साहित्यरत्न)
पृ. १०

१६८) आत्मनं भावयन्नाभि ... विशुद्ध ध्यान संततीम् ॥
भावना भवनाशिनी १४ मु. (अरुणविजयजी) पृ. १०

१६९) क) मैत्री परेषां हितचिंतनं........ दुष्टधियामुपेक्षा ॥
भावना भवनाशिनी (ले. मुनि अरूणोदयजी) व्या. ८ मु. पृ.२२

ख) **भावना शतक :**(सं. पू. डॉ. धर्मशीलाजी महाराज एम.ए. पीचडी.
साहित्यरत्न)- पृ. २५

१७०) पर हित चिन्ता मैत्री, परदु:खविनाशिनी तथा करुणा... परदोषक्षणमुपेक्षा ॥
- भावना भवनाशिनी (मुनि. अरुण विजयजी) व्या.८ मु. पृ. १७

१७१) **योगशास्त्र** - ४ /११८ पृ. १४५

१७२) **तत्वभावना** : (आ. अमितगति) सामायिक पाठ श्लोक १

१७३) **चिंतन की चिनगारी :** (सं. मुनिश्री रत्नसेन विजयजी) पृ. ४४

१७४) परिकम्मेति वा भावनेति वा - बृहत्कल्पभाष्य - भा. २, गा. १२८५ की वृत्ति पृ. ३९७

१७५) **भावना भव नाशिनी :** (अरुण विजयजी) व्या. १४ पृ. १३

१७६) क) **योगशास्त्र -** २ / २०, पृ. २६

ख) **तत्वदोहन** - पृ. १३१

१७७) **शांतसुधारस :** (उपाध्याय विनय विजयजी) १३/३ पृ. ३७४

१७८) क) खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे ।
मित्तिमे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ ॥
आवश्यक सूत्र - अध्ययन ४ क्षमा श्रमणा सूत्र पृ. ९१

ख) **त्रैलोक्य दीपक - मंत्राधिराज :** (भद्रंकर विजयजी) पृ.४८७

१७९) क) मा. कार्षीत्कोऽपि पापानि मा च... मतिमैत्री निगद्यते ॥
योगशास्त्र : (आ. हेमचंद्र) चतुर्थ प्रकाश - गाथा ११८

ख) Samya Sataka (Edited by - Dr. Dharmashilaji M. M.A. Ph.D.) Gatha 74 Page 27

१८०) क) ज्ञाताधर्म कथाङ्गसूत्र (सं.मधुकर मुनि) ८/२/७-२१८

ख) जैन तत्व प्रकाश (पू. श्री. अमोल ऋषिजी) पृ. ५,६

१८१) अनुभव अमृतकुंभ याने भद्रंकर विजयजीनां सानिध्यनी दिव्य पळो । (ले. बाबुभाई कडीवाला) पृ.४९

१८२) क) **दशवैकालिक :** (युवाचार्य मधुकर मुनिजी) पृ. १३०

ख) **गीता** - ५ /७

१८३) क) **दशवैकालिक :** (मधुकर मुनि) अ.४, गा. १० पृ. १३३

ख) **आचारमणि मंजूषा** - टीका - भा.१ पृ. ३००

१८४) सेविज्ज धम्ममित्ते विहाणेणं .... । पंचसूत्र (ले. चिरंतना चार्य)

१८५) अपास्ताशेष, दोषाणां.... स: प्रमोद: प्रकीर्तित: ॥
योगशास्त्र : आ. हेमचंद्र - चतुर्थ प्रकाश गा. ११९

१८६) क) **प्रमोदो गुणपक्षपातः योगशास्त्र :** (आ. हेमचंद्र) ७/११/३४९
ख) **शांतसुधारस :** (उपाध्याय विनय विजयजी) १३/३ पृ. ३७४

१८७) **अमूर्त - चिंतन :** (युवाचार्य महाप्रज्ञ) पृ. ९७-९९

१८८) **जीवन श्रेयस्कर पाठमाला - मेरी भावना** गा. ११,१२ पृ. ३२७-३२८

१८९) **गुणपर्यायवद् द्रव्यम् - तत्वार्थ सूत्र** - अ. ५, सू. ३७

१९०) यत्रैव यो दृष्टगुणः स तत्रकुम्भादिवत् निष्प्रतिपक्षमेतत् ।
स्याद्वाद मंजरी : (आ. हेमचंद्र) श्लोक ९ पृ. ६७

१९१) **सद्द्रव्यलक्षमण् - तत्वार्थ राजवार्तिक :** (भट्टाकलंक देव) भा. २ अ.५ सू. २९, पृ. ४९४

१९२) क) उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत् -
तत्वार्थ राजवार्तिक : (भट्टाकलंक देव) भा.२, अ.५, सूत्र ३०, पृ.४९४

ख) द्रव्यं सल्लक्षणकं उत्पादव्यय ध्रुवत्वसंयुक्तं .... भणति सर्वज्ञाः ॥
पंचास्तिकाय टीका(श्री. ब्र. शीतल प्रसादजी - पंचास्तिकाय टीका)
श्री ब्र. सीतलप्रसादजी)- प्रथम भा. श्लोक १० पृ.५३

१९३) गुणापुराओ - निवसई ... न दुल्लहा तस्स रिद्धीओ ॥
- गुणानुराग कुलक (श्री जिनहर्ष गणि महाराज) पृ. २५

१९४) ते धन्ना ते पुन्ना, तेसु पणामो... होइ अप्पवरयम् -
गुणानुराग कुलक : (श्री. जिनहर्षगणि) पृ. २६

१९५) किं बहुणा मणिएणं, किं वा तविएण.. सिक्खह सुक्खाण कुलभवणं ॥
गुणानुराग कुलक : (श्री. जिनहर्ष गणि) पृ.२७

१९६) सोऊण गुणुक्करिसं, अन्नस्स... पराहवं सहसि सव्वत्थ ॥
गुणानुराग कुलक : (श्री. जिनहर्ष गणि) पृ. २८

१९७) **ज्ञाताधर्म कथा :** (युवाचार्य मधुकर मुनि) १/८/१४ पृ. २१७

१९८) परात्मनिंदाप्रशंसे सद्सद्गुणाच्छे दनोभ्दावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥
तत्वार्थ सूत्र : उमास्वाती - षष्ठोऽध्यायः सू.२४

१९९) **चिंतन की चिनगारी :** (भद्रंकर विजयजी) पृ.८२, ८३

२००) जीवन धर्म (ले. विश्वसंत उज्ज्वलकुमारीजी महाराज) पृ. ६९

२०१) कर्मग्रंथ - भाग ५ (देवसूरि विरचित - स्वोपज्ञ - टीकायुक्त) गा. ८३

२०२) गुणस्थानक्रमारोह - सटीक (ले. श्रीमान रत्नशेखर सूरिकृत)
गा. ३८ की वृत्ति का २९

२०३) दीनेष्वार्तेषु भीतेषु याचमानेषू जीवितम् ।
प्रतीकारपरा बुद्धिः, कारुण्यमभिधीयते ।।
योगशास्त्र : हेमचंद्राचार्य - प्रकाश ४, श्लोक -१२० पृ. १४५

२०४) इच्छाऊ आगाससमा अणन्तिया - **श्री उत्तराध्ययन सूत्र** अ. ९, गा. ४८

२०५) सव्वे - जीवावि,इच्छान्ति, जीविउं न मरिज्जिउं ।।
तम्हा पाणि - वहं घोरं, निग्गन्था वज्जयन्ति णं ।।
दशवैकालिक सूत्र : अ.६, गाथा ११

२०६) **जैन सिद्धांत कोश** - खंड - २, पृ. १४,१५

२०७) **जीवन धर्म :** (प्रवचनकार -विश्वसंत पू. उज्ज्वलकुमारीजी महाराज) पृ.११४

२०८) **जीवन धर्म :** (प्रवचनकार विश्वसंत पू.उज्ज्वलकुमारीजी महाराज) पृ. ६३

२०९) **सरल भावनाबोध :** (ले. गणेश मुनिजी शास्त्री) पृ.१५७

२१०) **तुलसी पदावली** - पद १११

२११) **तुलसी ग्रंथावली** - ३ / ११५

२१२) **उत्तराध्ययन सूत्र :**(युवाचार्य मधुकर मुनि)- अ. ९

२१३) मैत्री परेषां हितचिन्तनं.. जिहीर्षेत्यपेक्षणं दुष्टधियामुपेक्षा ।।
शांतसुधारस :(विनय विजयजी महाराज)
प्रकरण १३, गा.३, पृ. ३७४,३७५

२१४) अमूर्त - चिंतन : (युवाचार्य महाप्रज्ञ) पृ. १००, १०६

२१५) क्रूरकर्मसु निःशंकं, देवता - गुरु - निन्दिषु
आत्मशंसिषु योपेक्षा, तन्माध्यस्थ्यमुदीरितम् ।।
योगशास्त्र : (आ. हेमचंद्र) चतुर्थ प्रकाश श्लोक - १२१ पृ. १४५, १४६

२१६) पुण्यस्य फलमिच्छन्ति, पुण्यं नेच्छन्ति मानवा : ।

फलं पापस्य नेच्छंति, पापं कुर्वन्ति सादराः ॥
उज्ज्वलवाणी (सं. पू. डॉ. धर्मशीलाजी महाराज एम.ए. पीचडी.) पृ. १९

२१७) योडपिं न सहते हितमुपदेशं... कुरुषे जिनसुखलोपं रे ॥
शांतसुधारस (श्री विनय विजयजी) गेयाष्टक, श्लोक ३ पृ. ४६४

२१८) क) **प्रकीर्णक आराधना -** २, ८०२, ८०९
ख) **ज्ञानसार -गाथा** २०९ पृ. ३९७
ग) **भगवती आराधना -** पृ. २०६

२१९) क) **भावना योग-एक अनुशीलन :** (पू. आ. आनंदऋषीजी महाराज) पृ. ३५७
ख) **योगशास्त्र :** (आ. हेमचंद्र) श्लोक १२२, पृ. १४६
ग) **ज्ञानार्णव** - सर्ग २७ - श्लोक १५ - १९ पृ. २६०, २६१
घ) **जैन योग ग्रंथ चतुष्ट्य योगबिंदू -** गाथा ४०२-४०६, पृ. १९३, १९४
ड) **पातंजल योग शास्त्र -** सूत्र १/३३

२२० क) जीवाजीवो तथा पुण्यं पापमाश्रवसंवरो ।
बन्धो विनिर्जरामोक्षो, नव तत्वानि तन्मते ॥
षड्दर्शन समुच्चय : हरिभद्र सूरि - गा. ४७, पृ. २०१
ख) सचित्र जैन तत्व दर्शन भा. १, पृ. २८ - ३३

२२१) **जैन दर्शन स्वरूप और विश्लेषण :** (ले. देवेंद्र मुनि शास्त्री) पृ. ८७

२२२) क) **सर्व दर्शन संग्रह :** (माधवाचार्य) प्रस्तावना पृ. ३५
ख) **षड्दर्शन समुच्चय :** (हरिभद्र) गा. ४९, ५०, पृ. २१३, २६९
ग) **जैन दर्शन मनन और मीमांसा :** (ले. मुनि नथमल) पृ. १४१

२२३) **विचारों के आयाम :** (ले. सौभाग्यमलजी जैन) पृ. २३३

२२४) **मंगलमय नमोक्कारएक अनुचिंतन :** (डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री) पृ. ३४,३५

२२५) **जैन दर्शन के नवतत्व - हिन्दी :** (ले. पू. डॉ. डॉ. धर्मशीलाजी महाराज एम.ए.पीचडी) पृ. १२

२२६) **मंगलमय णमोकार एक अनुचिंतन :** (डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री) पृ. ३४,३५

२२७) **निर्वाण मार्गनुं रहस्य :** (ले. भोगीललाल गी. शेठ) पृ. ३०

२२८) **नमो सिद्धाणं पद समीक्षात्मक परिशीलन :** (साध्वी डॉ. धर्मशीलराजी महाराज एम.ए. पीचडी.) पृ. ८५, ८६

२२९) **जैनेंद्र सिद्धांत कोश** - भाग ३ पृ. ५०७

२३०) **नमो सिद्धाणं पद, समीक्षात्मक परिशीलन :** (डॉ. धर्मशीलाजी महाराज एम.ए. पीचडी.) पृ. ८६

२३१) **नमो सिद्धाणं पद, समीक्षात्मक परिशीलन :** (डॉ. धर्मशीलाजी महाराज एम.ए. पीचडी.) पृ. ८५-९०

२३२) **तत्वार्थधिगम भाष्य -** अध्याय१, गा. ३५

२३३) **पंचाध्यायी -** उत्तरार्ध श्लोक ११

२३४) **तत्वार्थ सूत्र :** (उपाध्याय श्री केवलमुनि) सू. ३४,३२५ पृ. ६८

२३५) **जैन सिद्धांत कोश -** भा, र. (जिनेंद्र वर्णी) पृ. ५०७

२३६) **धवला :** (कुंदकुंदाचार्य) अ. १३, गा. ५

२३७) **नमो सिद्धाणं पद समीक्षात्मक परिशीलन :** (डॉ. धर्मशीलाजी महाराज एम.ए. पीचडी.) पृ. ८८

२३८) **तत्वार्थ सूत्र :** (उपाध्याय केवलमुनि) पृ. ६८, ७२

२३९) **त्रैलोक्य दीपक - मंत्राधिराज :** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ४२- ५९

२४०) क) **जैन तत्व प्रकाश** : (ले. अमोलक ऋषीजी महाराज) पृ. ३७६-३८०

ख) **त्रैलोक्य दीपक - मंत्राधिराज :** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ४३-५९

२४१) **मंगल मंत्र णमोकार एक अनुचिंतन :** (नेमिचंद्र शास्त्री) पृ. १०३

२४२) **भारतीय दर्शन :** (डॉ. राधाकृष्णन) पृ. २७५

२४३) **समयसार :** (कुंदकुंदाचार्य) गा. ३, ४

२४४) **समय सार :** (कुंदकुंदाचार्य) गा. ३८

२४५) **समयसार :** (कुंदकुंदाचार्य) गा. ७३

२४६) **समयसार :** (कुंदकुंदाचार्य) गा.१५५

२४७) **समयसार :** (कुंदकुंदाचार्य) गा. २०१

२४८) **योग सूत्र :** (आ. हेमचंद्र) समाधिपाद सू.२

२४९) क) **योग सूत्र :** (हेमचंद्राचार्य) साधन पाद, सू. २९

ख) **मंत्राधिराज :** (भद्रगुप्त विजयजी) भा.२, पृ. ३२९

२५०) **जैन धर्म की मौलिक उद्भावनाएँ** - पृ. १४०

२५१) **योगसूत्र, साधन पाद -** सूत्र ३३१

२५२) **नमो सिद्धाणं पद : समीक्षात्मक परिशीलन :** (डॉ. धर्मशीलाजी महाराज) पृ.५०

२५३) **योगसूत्र - साधन पाद** - सूत्र - ३२

२५४) **आसन - प्राणायाम** - मुद्रा बंध पृ. ६१

२५५) **अपना दर्पण, अपना बिंब** - पृ. ५५

२५६) **योगसूत्र :** (हेमचंद्राचार्य) विभूतिपाद सूत्र १

२५७) **योगसूत्र :** (हेमचंद्राचार्य) विभूतिपाद सूत्र २

२५८) **त्रैलोक्य दीपक :** महामंत्राधिराज - पृ. ५१५

२५९) क) **योगसूत्र :** (हेमचंद्राचार्य) विभूतिपाद - सू. ३

ख) **नमो सिद्धाणं पद: समीक्षात्मक परिशीलन :** (डॉ. धर्मशीलाजी महाराज, एम. ए., पी.एच.डी) पृ. ९४-९७

२६०) **प्रज्ञापना सूत्र :** सूत्र १२-२ उसकी टीका

२६१) क) **आराधनानी वैज्ञानिकता** पृ. १२२

ख) **सचित्र जैन तत्वदर्शन -** भा २, पृ. ४९

२६२) **मीठी मीठी लागे छे महावीर नी देशना :** (ले. मुनि प्रकाशचंद्रजी) पृ. २३९

२६३) **धवला :** (कुंदाकुंदाचार्य) अ.१, गा. १

२६४) **धवला :** (कुंदकुंदाचार्य) अ.१, गा. ४

२६५) **धवला :** (कुंदकुंदाचार्य) अ.१, गा. १३६

२६६) क) **पंचसंग्रह प्राकृत अधिकार** अ.१, गा. १८३

ख) **धवला :** (कुंदकुंदाचार्य) अ. २, गा. ४८

२६७) क) **गोम्मट सार :** (कुंदकुंदाचार्य) जीवकांड - अ.२, गा. ६

ख) **तत्वार्थ सूत्र** : २-६ औश्र उसकी टीका

२६८) **सर्वार्थ सिद्धि** - अ. २ गा. ६

२६९) **भगवती सूत्र :** (सं. मधुकर मुनि) शतक १/६/२/८

२७०) **अपना दर्पण अपना बिंब :** युवाचार्य महाप्रज्ञ) पृ. १७७

२७१) क) **त्रैलोक्य दीपक - नमस्कार मंत्र** पृ. ४००

ख) **नवकार शरणं मम :** (ले. हेमचंद्र सागर सूरि) पृ. २-५

२७२) **रणयज्ञ :** (कवि प्रेमानंद) कडवुं ११ कडी १०

२७३) **मैकबेथ नाटक** : (शेक्सपीयर) सारांश

२७४) **जैनाराधनानी वैज्ञानिकता** : (ले. डॉ. शेखरचंद्र जैन) पृ. १५

२७५) **महामंत्र ना अजवाळां -** पृ. ६०-६६

२७६) **नमो सिद्धाणं पद, समीक्षात्मक परिशीलन :** (डॉ. धर्मशीलाजी महाराज एम.ए. पीचडी.) पृ. १०७

२७७) क) **नमो सिद्धाणं पद:समीक्षात्मक परिशीलन :** (डॉ. धर्मशीलाजी महाराज एम.ए.पीचडी.) पृ. ७४-७६

ख) **लेश्या विभाग :** (मोहलनलाल बांठिया)

ग) **जैन विषयक कोश ग्रंथमाला** १९६६

२७८) **प्रशमरति प्रकरण -** गा. ३४, पृ. ३०

२७९) क) **जैन स्तोक संग्रह** पृ. ३०

ख) **हरिभद्र टीका** - ४ -६

ग) **आवश्यक चूर्णि**

२८०) क) **सचित्र जैन तत्वदर्शन भाग** १, पृ. ५०-५४

ख) **द्रव्यानुयोग** - खंड ३ (सं. कन्हैयालालजी कमल) पृ. १५८३

ग) **भगवती शतक** १-६-२-८

२८१) जोगपउत्ती लेस्सा कसायोदयाणुरंजिया होई ।

- गोम्मटसार-जीवकांड, गाथा ४९०

२८२) **जीव अजीव -** पृ. ११६

२८३) **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास** - पृ. ९८

२८४) क) **उत्तराध्ययन सूत्र** : (सं. मधुकर मुनि) अ. ३४, गा. ३
ख) **आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन खंड** -१, पृ. ४१६

२८५) **त्रैलोक्य दीपक - नमस्कार महामंत्र :** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ४००- ४०२

२८६) क) **बहुआयामी महामंत्र णमोकार** - पृ. ५४
ख) **नमस्कार महामंत्र महात्म्य** - पृ. ४३

२८७) A scientific Treatise ion Great Namokar Mantra Page 33

२८८) **आत्मानुशासन :** (ले. अे. अेन. उपाध्याय) पृ. १४१

२८९) **एसो पंच नमोकारो -** (महाप्रज्ञजी) पृ. ७६-७८

२९०) **तीर्थंकर मासिक पत्रिका - णमोकार मंत्र विशेषांक** : (सं. नेमिचंद्र जैन) पृ. ५१-५४

२९१) **जैन दर्शन के नवतत्व हिन्दी आवृत्ति :**
(डॉ. धर्मशीलाजी महाराज एम.ए.पीचडी) पृ. ४१६

२९२) **तीर्थंकर मासिक पत्रिका - णमोकार मंत्र विशेषांक** (सं.नेमीचंद शास्त्री)पृ. ६३

२९३) **महामंत्र की अनुप्रेक्षा :** (भद्रंकर विजयजी) पृ. २८

२९४) तत्वं धर्मस्य सुस्पष्टं ... शमवृत्तेरुपासनम्। नमस्कार चिंतामणि पृ. ३८

२९५) दीर्घदर्शी विशेषज्ञः... परोपकृतिकर्मकर्मठः ॥
योगशास्त्र प्रकाश -१, श्लोक ५५

२९६) परोपकार पज्ञे हि पुमाज् सर्वस्त्र नेत्रामृताञ्जनम् ॥
धर्मरत्न प्रकरण (टीका)

२९७) **नमस्कार चिंतामणि** पृ. १२

२९८) क) **धर्मबिंदू - गाथा** ४-६, पृ. १२
ख) **धर्मबिंदू - गाथा** ६ -९

२९९) परार्थसंपादनस्य एवं सर्वधर्मानुष्ठानेभ्य उत्तमत्वात् ॥ धर्मबिंदु (टीका) १२

३००) क) **दशवैकालिक सूत्र :** (सं. मधुकरमुनि) गा. ६५
ख) **जिन चूर्णि** - पृ. १६०

ग) **अगस्त्य चूर्णि** - पृ. ९३

घ) **हारि वृत्ति,** पत्र - १५७

ड) **दशवैकालिक सूत्र :** (मुनि नथमलजी) पृ. ६३

३०१) **जीवन धर्म :** (प्रवचनकार - पू. प्रवर्तीनी विश्वसंत उज्ज्वलकुमारीजी महाराज) पृ. ११२

३०२) पिबन्ति नद्य: स्वयमेव नाम्भ:.... परोपकराय सतां विभूतय: ॥
सुभाषित रत्नाभाण्डा गा[२]मू, श्लोक १७०-पृ.४९

३०३) **अनुप्रेक्षा किरण :** (भद्रंकर विजयजी) १,२,३ पृ. ३

३०४) **नवकार मंत्र तत्काल केम फळे ?** - पृ. २६

३०५) **श्री नमस्कार महामंत्र नुं दर्शन** - पृ. ५१

३०६) **तत्वार्थ सूत्र :** (उमास्वाति) अ. ५, सू. २१

३०७) क) **जीवननी सर्व श्रेष्ठ कला - श्री नवकार** : (बाबुभाई कडीवाला) पृ. १३९

ख) **जैन योग साधना** - पृ.१२०

३०८) क) **जीवन जीववानी सर्वश्रेष्ठ कला :** (बाबुभाई कड़ीवाला) पृ. १५-१६

ख) **त्रैलोक्य दीपक - महा मंत्राधिराज :** (भद्रंकर विजयजी) पृ. ६७८-६९१

३०९) **नमस्कार महामंत्र की प्रथा व कथाएँ :** (मुनि - किशलालजी) पृ. १९

३१०) **नवकार मिमांसा :** (नेमिचंद्र जैन) पृ. २२

३११) **मंत्राधिराज नवकार मंत्र :** (आ. भद्रंकर विजयजी) पृ. ३६१

३१२) **जैन मंत्र साहित्य एक परिचय :** महासतीद्वय - स्मृति ग्रंथ : (सं. चंद्रप्रभा) पृ. १२७

३१३) **महासतीद्वय स्मृति ग्रंथ :** (सं. चंद्रप्रभा) पृ. १०७

३१४) **योगशास्त्र :** (हेमचंद्राचार्य) प्रकाश १ , श्लोक ८

३१५) **ज्ञानार्णव** - सर्ग - ३८, श्लोक १,२

३१६) **चुंटेलुं चिंतन** - पृ. ३

३१७) क) **जैन दर्शन :** (ले. डॉ. मोहनलाल मेहता) पृ. ३४५

ख) **जैन धर्म दर्शन :** (ले. डॉ.मोहनलाल मेहता) पृ. ४१३

ग) **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास** : (ले. मोहनलाल मेहता) पृ. १०७

३१८) क) **श्रीनवकारसाधना :** (सं. भद्रंकर विजयजी) पृ. १०९, ११०

ख) **जैन परंपरा का इतिहास :** (ले. युवाचार्य महाप्रज्ञ) पृ. ६५

३१९) क) **सद्गुण साधना :** (ले. कुंदकुंद विजयजी) पृ. १५७

ख) **मदन वैराग्य सिंधु :** (सं. मदनलाल गोठी) पृ. ८

ग) **जीवननी सर्व श्रेष्ठ कला श्री नवकार (**बाबुभाई कडीवाला) पृ. १३३-१३६

३२०) **मंगलमय णमोकार - एक अनुचिंतन :** (डॉ. नेमिचंद्र जैन) पृ. ९०-९१

३२१) क) **चरण करणानुयोग** - भाग १ (सं. मुनि श्री कन्हैय्यालालजी कमल पृ. १,२

ख) **उपदेश तरंगिणी** - पृ. १०

३२३) क) **जीवननी सर्व श्रेष्ठ कला -श्री नवकार** : (ले. बाबुभाई कड़ीवला) पृ. १४,१५

ख) **नमस्कार चिंतामणि** : (भद्रंकर विजयजी) पृ. १०

३२४) **द्रव्यानुयोग :** (पू. श्री. कन्हैयालालजी महाराज 'कमल') पृ. ५

३२५) **श्रीमद् राजचंद्र** - पृ. ११

३२६) **नवकार करेगा रक्षा** : (ले. पं.हर्षसागरजी) पृ. २०,२१

३२७) **जीवननी सर्व श्रेष्ठ कला श्री नवकार :** (बाबुभाई कड़ीवाला) पृ. १३-१५

३२८) **नमो सिद्धाणं पदः समीक्षात्मक - परिशीलन :** (डॉ. धर्मशीलाजी महाराज, एम.ए.पीचडी.) पृ. १२२

३२९) **जीवननी सर्वश्रेष्ठ कला श्री नवकार :** (बाबुभाई कड़ीवाला) पृ. ९५-९९

३३०) **जीवननी सर्व श्रेष्ठ कला श्री नवकार :** (बाबुभाई कड़ीवाला) पृ. १००

३३१) **नमो सिद्धाणं पद : समीक्षात्मक परिशीलन :** (डॉ. साध्वी धर्मशीलाजी महाराज एम.ए. पी.एचडी) पृ. १२२

३३२) **जीवननी सर्व श्रेष्ठ कला श्री नवकार :** (ले. बाबुभाई कड़ीवाला) पृ. २०

३३३) **नमो सिद्धाणं पदः समीक्षात्मक परिशीलन :** (साध्वी डॉ. धर्मशीलाजी महाराज एम.ए. पीएचडी) पृ. १२६-१३१

३३४) क) **सामाईक सूत्र - शक्रस्तव** - पृ. २
ख) **सामाईक सूत्र - लोगस्स सूत्र** - पृ. १०

३३५) **जीवननी सर्वश्रेष्ठ कला श्री नवकार :** (बाबुभाई कड़ीवाला) पृ. १३,१४

३३६) **जीवननी सर्वश्रेष्ठ कला श्री नवकार :** (बाबुभाई कड़ीवाला)

३३७) **जीवननी सर्वश्रेष्ठ कला श्री नवकार :** (बाबुभाई कड़ीवाला) पृ. २-६

३३८) क) **नमो सिद्धाणं पद समीक्षात्मक परिशीलन** : (डॉ. धर्मशीलाजी महाराज, एम.ए. पीएचडी) पृ. १३५
ख) **जीवननी सर्वश्रेष्ठ कला श्री नवकार :** (बाबुभाई कड़ीवाला) पृ. ८

३३९) **नवकार मंत्र का चमत्कार, प्रताप कथा कौमुदी** - भाग २, पृ. ६३

३४०) **नमस्कार महामंत्रनां दृष्टांतो : (मुनिराज श्री कुंदकुंद विजयजी)** पृ.५१

३४१) **परमेष्ठि नमस्कार** - पृ. ८४-८६

३४२) **मंत्र विज्ञान अने साधन रहस्य :** (ले. विश्वशांति चाहक) पृ. १४,१५

३४३) **प्राकृत भाषा और साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास** :(ले. नेमीचंद्र शास्त्री) पृ. २३८

३४४) **योगसूत्र - साधना पाद** - २, सूत्र ३५,पृ. ५८

३४५) **उत्तराध्ययन सूत्र** - अ.३, गा. १२

३४६) **त्रैलोक्य दीपक - महामंत्राधिराज** : (ले. भद्रंकर विजयजी) पृ. ६०५, ६०६

३४७) **जीवननी सर्वश्रेष्ठ कला श्री नवकार :** (डॉ.नेमीचंद्र शास्त्री) पृ. ५६,५७

३४८) **शुक रहस्य - उपनिषद, कृष्ण यजुर्वेदयि उपनिषद - अंक** (कल्याण विशेषांक १९४९) खंड २

३४९) क) **जीवननी सर्व श्रेष्ठ कला श्री नवकार** : (भद्रंकर विजयजी) पृ. ५८, २९
ख) **सद्गुण साधना** : (कुंदकुंद विजयजी) पृ. १५७